'गिरती दीवारें' शरबत का गिलास नहीं कि आप उसे एक ही घूंट में कंठ के नीचे उतार लें। कॉफ़ी के तल्ख़ प्याले की तरह आपको इसे घूंट-घूंट पीना होगा। पर कॉफ़ी की तल्ख़-शीरीनी (कटु-मिठास) का जो शख्स आदी हो जाता है, वह फिर शरबत की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता।

....

कोई उत्कृष्ट कलाकृति लेखक ही से नहीं, पाठक और आलोचक से भी श्रम और समझदारी की वांछा रखती है।

....

गिरती दीवारें

उपेन्द्रनाथ अश्क

नीलाभ प्रकाशन

इलाहाबाद-१

ज़िन्दगी के नाम
जो अपने सारे सुख-दुख के बावजूद दिलचस्प है

"....दुख और ग़रीबी का एक रोशन पहलू भी है। इनमें से गुज़र कर इन्सान इन्सान बनता है और उसमें दृढ़ता आती है...."

प्रेमचन्द

प्रकाशक की ओर से

●

'गिरती दीवारें' आज से लगभग दस-बारह वर्ष पहले छपा था। इस अर्से मे हिन्दी-उपन्यास-साहित्य मे इसने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। पिछले दस वर्ष मे किसी उपन्यास के पक्ष-विपक्ष में इतना नही लिखा गया जितना 'गिरती दीवारें' के और यह बात उपन्यास की शक्तिमत्ता का सहज-प्रमाण है।....जहाँ श्री नलिनविलोचन शर्मा अपने सारे भारी-भरकमपन के साथ उपन्यास को अति साधारण बताते हैं, वहाँ श्री शिवदानसिंह चौहान उतने ही जोर से इसे प्रेमचन्द की परम्परा का सर्व-श्रेष्ठ उपन्यास मानते हैं। एक ओर रामविलास शर्मा इसे एक आँख नही देख पाते, दूसरी ओर शमशेर बहादुर सिंह न केवल इसमे स्वयं रस पाते है, वरन् दूसरो का मार्ग भी सुगम करते हैं। फिर श्री सुमित्रानन्दन पंत इसकी एक-एक पंक्ति पढ़ जाते है और श्रीमती महादेवी वर्मा इसकी भूलभुलैयाँ में राह नही पाती—अज्ञेय, अमृतराय, प्रभाकर माचवे, सुरेन्द्र बालूपुरी, आदित्य मिश्र, शिवचन्द्र शर्मा, देवराज उपाध्याय, मिसला मिश्रा, गंगाप्रसाद पांडेय....अलग-अलग स्कूल के

आलोचको और साहित्यिकों में ही नही, वरन् एक ही स्कूल के आलोचकों और साहित्यिकों मे भी इसके सम्बन्ध में घोर मतभेद है। .और लेखक ने सारे-के-सारे उपन्यास में कही कुछ नही कहा। अपनी ओर से कोई भाषण नही दिया। उसकी वात जानने के लिए उपन्यास के हर पन्ने को पूरे ध्यान से पढना जरूरी है।

इस संस्करण को लेखक ने महीनो के श्रम से संशोधित और परि-वर्धित कर, पहले से कही अच्छा वना दिया है।

उन पाठको के लिए जो केवल मनोरंजन के लिए उपन्यास नही पढते, दो आलोचनाएँ और लेखक का अपना दृष्टि-कोण भी संकलित कर दिय गया है, जिससे इस संस्करण की उपादेयता कही अधिक वढ गयी है।

प्रकाशक की ओर से हम उपन्यास के पहले प्रकाशक के शब्दों को ही दोहराना पर्याप्त समझते है कि : "भले ही कुछ लोग चेतन (उपन्यास के नायक) के विचारो से सहानुभूति न रखें, परन्तु उनकी उपेक्षा करना उनके लिए भी कठिन होगा।" और जैसा कि श्री देवराज उपाध्याय ने उपन्यास की तीव्र आलोचना करते हुए भी विवश हो माना है—"चेतन के जीवन-प्रवाह की घटनाओ में हम अपने ही जीवन की झलक पाते हैं और लाख कोशिश करने पर भी उसकी सत्यता मे अविश्वास नही कर पाते। उपन्यास मे वर्णित घटनाएँ छाया की तरह हमारा पीछा करती हैं और उनसे पिंड छुडाना कठिन हो जाता है।"

९ फ़रवरी, १९५१ प्रकाशक

तीसरे संस्करण पर दो शब्द

●

'गिरती दीवारें' के तीसरे संस्करण पर ये पंक्तियाँ लिखते हुए मुझे खुशी है कि मेरा यह उपन्यास जिसे लिखते और छपवाते समय मैं इसकी सफलता के सम्बन्ध मे सशंकित था, पाठको को मेरे सभी उपन्यासो मे सर्वाधिक प्रिय हुआ। अभी चार वर्ष पहले मैंने इसका एक संक्षिप्त संस्करण 'चेतन' के नाम से प्रकाशित कराया था। उसका चौथा संस्करण इस समय प्रेस मे जा रहा है।

मुझे इस बीच मे बराबर इस उपन्यास के सम्बन्ध में पाठकों से पत्र मिलते रहे है। यहाँ डलहौजी मे वे सब पत्र मेरे पास नही कि मैं उनका आभार प्रकट करूँ। लेकिन अभी दो दिन पहले रूस से प्रो० बेस्क्रोवनी, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग लेनिनग्राड विश्वविद्यालय का एक पत्र मिला है। वे लिखते है :

> "कुछ दिन हुए मैंने आपकी 'गिरती दीवारें' पढी। वह मुझे बहुत पसन्द आ गयी। जिस वातावरण में आपका नायक रहता है, वह स्पष्ट रूप से आँखो के सामने आ रहा है। जब

पाठक पुस्तक पढना समाप्त करता है तो उसे अनुभव होता है कि जैसे उसने आत्म-कथा पढी हो या डायरी।"

यह जान कर कि उपन्यास अन्य देश के हिन्दीभाषी को रुचा और वे इसमे रस पा सके, मुझे सचमुच प्रसन्नता हुई है। यद्यपि यह भाग अपने मे पूरा है तो भी जो मै 'गिरती दीवारें' मे लिखना चाहता था, वह सब इसमे नही आया और मैने तय किया कि पहली फुर्सत मे इस उपन्यास को मै आगे बढाऊँ। मै आशा करता हूँ कि मै शीघ्र ही पाठकों की सेवा मे इसका दूसरा भाग प्रस्तुत करूँगा।

दूसरा पत्र जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूँ, सर्वोदय आश्रम चुरु (राजस्थान) के श्री गोविन्द अग्रवाल जी लिखते है :

> "उपन्यास (गिरती दीवारें) को दोबारा पढ गया। इच्छा होती है कि एक बार इसे और पढ डालूं (फिर भी शायद तृप्ति न हो।) उपन्यास दरअसल ऐसी छोटी-छोटी घटनाओ का सकलन है, जो प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे घटती रहती है। घटनाएँ साधारण होते हुए भी उनका वर्णन ऐसा सजीव और सांगोपाग हुआ है कि वे असाधारण बन गयी है और पाठक पर अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। पाठक को ऐसा लगता है जैसे उसके ही दिल की बात खोल कर रख दी गयी हो...."

इन शब्दों के साथ अग्रवाल जी ने उपन्यास की बहुत-सी गलतियों की ओर मेरा ध्यान दिलाया है। उनमे से अधिकाश भूलें प्रेस की हैं। कुछ मेरी भी है।

मै अग्रवाल जी का विशेषकर आभारी हूँ कि न केवल उन्होंने उपन्यास को श्रम से पढा, बल्कि काफी समय लगा कर उन भूलों की सूची भी बनायी। उन गलतियों को ठीक करने के बहाने मैं उपन्यास को ले कर बैठा तो मैं पूरी तरह इसका संशोधन कर गया। कई पैरे मैने काट दिये और कई बढा दिये और इस संस्करण मे मैने वही गलतियाँ ठीक नही कीं

जिनकी ओर अग्रवाल जी ने मेरा ध्यान आकर्षित किया था, बल्कि वे भी, जिनकी ओर उनका ध्यान नही गया।

लेकिन इस पर भी यह तीसरा संस्करण छापे की भूलो से एकदम पाक होगा, इसका विश्वास मैं नही दिला सकता। क्योकि प्रेस का काम हमारे यहाँ सुचारु रूप से नही होता और बड़े-से-बडे प्रेस मे भी छापे की भूले रह जाती है।

तो भी यदि अग्रवाल जी का यह पत्र और भूलो की उतनी लम्बी सूची न आती तो मैं कभी उपन्यास को फिर ले कर न बैठता। मैं उनका आभारी हूँ कि उन्होने उपन्यास को बेहतर बनाने का एक बहाना मुझे जुटा दिया। प्रकट है कि इस संशोधन-परिवर्धन से उपन्यास का यह संस्करण पहले संस्करणो से कही बेहतर हो गया है।

स्नो-व्यू, डलहौजी
४ अगस्त '५७

उपेन्द्रनाथ अश्क

चौथे संस्करण पर

'गिरती दीवारें' का चौथा सस्करण पाठको के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। न केवल इसलिए कि गत लगभग बीस वर्षों मे इस उपन्यास ने समान रूप से पाठकों और आलोचको को प्रभावित किया, अपनी शक्ति का प्रमाण दिया, वरन् इसलिए भी कि इन बीस वर्षो मे इस उपन्यास का व्यापक प्रभाव हिन्दी कथाकारों और उपन्यासकारों पर भी पड़ा।

इस बीच अश्क जी ने 'गिरती दीवारें' का अगला भाग—'शहर में घूमता आईना'—भी लिखा और 'गिरती दीवारें' की तरह वह उपन्यास भी (जिसमें अश्क जी ने एक सर्वथा नयी शैली अपनायी) अपने आप में पूर्ण, लेकिन 'गिरती दीवारें' की कथा को आगे बढाने वाला बना। 'शहर में घूमता आईना' के अलावा इस बीच अश्क जी ने तीन और उपन्यास लिखे जो उनकी पैनी दृष्टि, उद्देश्यपरकता, भाषा-शैली और विषय-वस्तु का पूरी तरह प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन अश्क जी अब भी 'गिरती दीवारें' को उसके पाँच भागो के साथ सम्पूर्ण करने के प्रति कार्यरत और आश्वस्त हैं। हमे आशा है कि हम निकट भविष्य ही में ये अगले तीन भाग पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सकेंगे।

१७ अगस्त '६७ —प्रकाशक

अपने पाठकों और आलोचकों से | अश्क

●

आज से लगभग तेरह-चौदह वर्ष पहले की बात है, मै एक साँझ मकतबा-ए-उर्दू[1] लाहौर में बैठा यो ही किताबें उलट रहा था कि प्रो० फ़य्याज़ महमूद आ गये। प्रोफेसर साहब मेरी ही उम्र के युवक थे। उन्ही दिनों लिखने लगे थे। कहानियाँ और एकाकी लिखते थे। दो-चार रचनाओं ही से उन्होंने साहित्यिको का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था— न बहुत उतार न चढाव, एक-सी गति से बहने वाली मैदानी नदी की-सी उनकी शैली थी। पर बडे सूक्ष्म व्यंग्य और मँजी हुई लेखनी से वे उसे आकर्षक बना देते थे—बात-बात मे जाने कैसे, उपन्यास की बात चल पडी। उन दिनो मेरा उपन्यास 'सितारो के खेल' प्रकाशित हुआ था, उसको लेकर बात आरम्भ हुई अथवा चौधरी नजीर[2] ने उनसे कोई उपन्यास लिखने को कहा; जो भी हो, प्रोफेसर साहब बोले कि वे पहले से गढे-गढाये उपन्यास पसन्द नही करते। वे कभी लिखेंगे तो ऐसा उपन्यास लिखेंगे जो जीवन ही की तरह चले, बढ़े और फैले; पहले से तय-शुदा आरम्भ या अन्त उसका न हो। (ऐसे उपन्यास का अन्त पहले से निश्चित हो भी कैसे सकता है? अन्त तो व्यक्तियो का निश्चित है, जीवन तो अविरत हिलोरें लेने वाले महासागर-सा अक्षय है।)

नही जानता प्रोफेसर साहब ने अपना वह उपन्यास लिखा या नही?

---

१. मकतबा-ए-उर्दू : लाहौर का प्रसिद्ध प्रकाशन-गृह, जो लाहौर के साहित्यिको की रांदेवू (सम्मिलन-स्थल) था। घूमते-फिरते लेखक जहाँ दिन में एक-आध बार अवश्य जा पहुँचते थे।

२. चौधरी नज़ीर अहमद : मकतबा के संचालक।

(उपन्यास तो दूर, वर्षों से उनकी कोई कहानी भी नहीं देखी। साहित्य-सृजन शायद उनके एकांत क्षणो का विनोद-मात्र था। एक से जब दो हुए तो शायद उन्हे समय नही मिला।) पर मेरे दिल मे अनजाने ही उनकी बात रम गयी। 'सितारों के खेल' १९३८ में लीडर प्रेस, प्रयाग से छपा था। यद्यपि 'हंस' में उसकी बड़ी ही अच्छी समालोचना हुई और दूसरे पत्र-पत्रिकाओ ने भी उसका प्रोत्साहन भरा स्वागत किया, पर मै अपने उस उपन्यास से उतना सन्तुष्ट न था और जिस प्रकार 'जय-पराजय' लिखने के बाद मैंने तय कर लिया था कि वैसा नाटक न लिखूंगा, इसी तरह 'सितारों के खेल' समाप्त करते ही मैंने तय किया कि वैसा गढ़ा-गढाया उपन्यास अब मेरी कलम से दूसरा न आयेगा।

मेरा यह निर्णय केवल प्रोफ़ेसर महमूद की चलते-चलते कही गयी उस बात के कारण हो, ऐसा नही। मेरा अपना जीवन उन दिनो कुछ ऐसी तेजी से बदला कि उसके साथ, जाने या अनजाने, जिन्दगी के बारे में मेरा दृष्टि-कोण बदल गया। पहले मन कुछ ऐसे कल्पना-लोक मे रहता था कि निकट का कूडा-करकट, भूख-गरीबी, रोग-शोक, गंदगी-ग़लाज़त कुछ भी दिखायी न देता था। उन दिनो मैंने बगदाद और बम्बई को बिन देखे वहाँ की रोमानी कहानियाँ लिखी; पहाडी प्रदेशों से बिना गुज़रे वहाँ के प्रेम अफसाने लिखे और राजस्थान के जीवन का गहन अध्ययन किये बिना अपना नाटक 'जय-पराजय' लिखा, जिसमें कई आदर्श-मानवो को सृष्टि की। वे चीज़ें बहुत अच्छी समझी गयीं और आज भी बहुत-से पाठको को प्रिय है, पर मेरे लिए वह सब अरुचिकर हो गया। बहुत-से ऐसे कवि जो मुझे प्रिय थे और जिनकी रचनाएँ पढ कर मै झूम उठता था और मेरी नीद हराम हो जाती थी (अब भी अपनी कला को सँवारने के लिए मैं जिनकी शरण जाता हूँ) मुझे वस्तु की दृष्टि से एकदम फीके लगने लगे। मेरी उस नयी दृष्टि ने अपने आस-पास जो जीवन देखा, उनमे से कोई भी उसे न छूता था। ठहरे पानी की सतह पर ज़ोर से फेंकी गयी चपटी ठीकरी की तरह वे जीवन-सागर के ऊपर-ऊपर

बड़े सुन्दर ढंग से फिसलते चले जाते थे। वैसे फिसलते चले जाना मुझे नही रुचा।

'जय-पराजय' की 'भारमली' के सम्बन्ध में कभी डॉक्टर नगेन्द्र ने लिखा था : 'और भारमली ! वह तो देवसेना और मालविका के गौरव की अधिकारिणी है। भारमली इस युग की अमर-सृष्टि है'—और यदि मै उसी पथ पर अग्रसर रहता तो लेखनी की प्रौढता से निश्चय ही 'चंड' अथवा 'भारमली' से कही ऊँचे पात्रों की सृष्टि करता। पर उस नयी दृष्टि से देखने पर मुझे लगा कि चंड और भारमली जैसा तो एक भी पात्र कही नही मिलता; कि मानव तो गुण-दोषों से बना है; कि जीवन तो कूड़े-करकट, धुएँ-धुंध, गर्द-गुबार, कीचड और दलदल से अटा पड़ा है; कि प्रकृति मानव के दुख-सुख से नितान्त उदासीन, अपनी आभा व अपरूपता बिखेरती है और वह अपने सुख-दुख के चश्मे से उसे देखता है; कि वह सुखी होता है तो प्रकृति की भयावहता भी उसे सुन्दर लगती है, दुखी होता है तो उसका अनुपम सौन्दर्य भी उसे वीभत्स दिखायी देता है; कि वह इतना सरल नही कि देवता हो; वह पासे का सोना नहीं, अष्ट-धातु का मिश्रण है; कि उसके बाहर ही उलझनो का अपरिमित विस्तार नही, उसके अन्तर मे भी बेगिनती स्तर है, जिनके नीचे ऐसी-ऐसी अँधेरी कन्दराएँ है, जिनकी झाँकी-मात्र कँपा देने को यथेष्ट है। और मैने सोचा कि किसी पासे के सोने से बने देवता का चरित्र-चित्रण करने के बदले इस अष्ट-धातु से बने मानव का चित्रण क्यों न किया जाय और देवता की आँखो से उस प्रकृति को देखने के बदले इसी मानव की आँखो से उसे क्यो न देखा जाय।

उन्ही दिनों मैने 'गोदान' पढा और मुझे यह मानने मे तनिक भी संकोच नही कि उसका मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। पहली बार प्रेमचंद के आदर्शवाद ने यथार्थ की आँखों से देख, गुण-दोषों का पुतला; अपने वातावरण मे पिसता और उससे लड़ता, अपनी विवशता ही से शक्ति ग्रहण करता एक पात्र सृजा था—और 'होरी' का चरित्र-चित्रण मुझे बहुत अच्छा

लगा ।

लेकिन मेरी आकाक्षा बडी थी; अनुभूतियाँ भी बडी (गहरी) थीं, मै 'गोदान' से कही वडा उपन्यास लिखना चाहता था । बीसियो छोटे-छोटे ऐसे अनुभव थे, जो नाटको अथवा कहानियो मे—जैसी नख शिख से दुरुस्त कहानियाँ मै तब लिखता था—न समा सकते थे और मैने देखा था कि जीवन तो वास्तव मे उन्ही छोटे-छोटे अनुभवो, उन्ही नन्ही-नन्ही, प्रकट मे अकिंचन और निरर्थक, पर यथार्थ-जीवन पर गहरा असर छोड जाने वाली तफसीलो (details) से बना है और मैंने, कदाचित प्रो० महमूद की बात से प्रेरणा पा कर, निम्न-मध्य-वर्ग के एक साधारण युवक के जीवन का खाका खीचने का फैसला कर लिया । मैने उपन्यास का जो ढाँचा बनाया, वह उन्ही अनुभूतियों को दृष्टि मे रख कर बनाया और उस युवक के जीवन के पाँच वर्ष ले लिये और सोचा कि पाँच वर्ष के उस जीवन पर तीन भागो मे एक बड़ा उपन्यास लिखूंगा । (मन मे कही यह आकाक्षा भी थी कि यदि वह उपन्यास लिखा गया तो अगले पाँच वर्षो पर फिर उतना ही बडा और उनसे अगले पाँच वर्षों पर एक और उतना ही बड़ा उपन्यास लिखूंगा ।) 'गिरती दीवारें' उस वृहद उपन्यास का पहला भाग—अथवा यो कहा जाय कि पहले भाग से (जहाँ मै पहला भाग समाप्त करना चाहता था, उससे) कुछ कम है । उपन्यास का ढाँचा बना कर मैंने चार परिच्छेद लिख भी लिये । पर नायक की अन्तर और वाह्य की उलझनो को समान रूप से प्रकट करने वाला जैसा उपन्यास मै लिखना चाहता था, वह पुराने पैटर्न (बुनावट) पर चल न सकता था और नया पैटर्न मेरे पास था नही । तब मैने नये पैटर्न की खोज की ।

दुर्भाग्य से मैने अधिक उपन्यास न पढ़े थे । (अब तक भी नही पढे, पहले धन और वाद में अवकाश का अभाव सदा मेरी इस अभिलाषा के मार्ग की दीवार बना रहा) मेरे एक मित्र तुर्गनेव पर फिदा थे । उन्होने मुझे तुर्गनेव के उपन्यास पढने की राय दी । छोटे-छोटे उपन्यास ! कम क़ीमत । एक-एक करके मै सभी पढ़ गया : रूडिन, स्मोक, लिज़ा, फ़ादर

एंड सन्ज़ और वर्जिन साइल । मुझे वे बड़े ही रोचक लगे, बिलकुल शरत् बाबू के उपन्यासो ऐसे ! पर जिन अनुभूतियो को मै व्यक्त करना चाहता था, वे उस पैटर्न मे ढाली न जा सकती थी । तब किसी ने मुझे रोम्याँ रोलाँ का 'याँ क्रिस्ताव' पढने का परामर्श दिया । मै लाहौर के प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेता 'रामाकृष्णा' के निकट ही अनारकली मे रहता था । झट दुकान पर पहुँचा, पर 'याँ क्रिस्ताव' का मूल्य सुन कर चुप रह गया । था तो उस समय साढे पाँच-छः रुपये, पर तब मै अपने खाने-रहने पर बारह-तेरह रुपये महीने से अधिक खर्च न करता था । बहरहाल पड़ोसी के नाते मैत्री तो थी, एक-आध छोटी-मोटी पुस्तक भी खरीद लेता था, वही दुकान पर चार-छः बार जा कर मैने उस उपन्यास के डेढ-दो सौ पृष्ठ पढ डाले और उसका पैटर्न मुझे ठीक लगा ।

लम्बाई और छोटी-छोटी तफसीलों को ले कर चलने वाली शैली की समस्या तो हल हो गयी, पर साथ ही ऐसा पैटर्न दरकार था जिसमे नायक के अन्दर और बाहर की उलझनो को भी बुना जा सके । उन्ही दिनो मैने 'वर्जिनिया वुल्फ' अथवा उसी ग्रुप के किसी लेखक का उपन्यास पढा । उसमे कुल कार्य-सम्पादन नायक के बिस्तर से उठ कर खिडकी तक जाने अथवा सैर करके आने तक ही सीमित है और उसी मे उसका सारा जीवन लेखक ने बड़ी चतुराई से बुन दिया है । यह बुनावट मेरे अनुकूल थी, इसलिए दोनो को ले कर मैने अपने उपन्यास का पैटर्न बना लिया ।

एक आलोचक ने लिखा है : "उपन्यास (गिरती दीवारें) पर 'सरशार' का प्रभाव स्पष्ट है, पर उसकी किस्सा-गोई की विविधता नही ।" पहली बात तो यह है कि 'गिरती दीवारें' किस्सा-गोई के खयाल से नही लिखा गया—किस्सा-गोई मे केवल सुनने वालो का ध्यान रहता है, वे जैसे प्रसन्न हो, वही ढग किस्सा-गो को अपनाना पड़ता है । यह उपन्यास, जैसा कि मैने कहा, निम्न-मध्य-वर्ग के युवक के अन्दर और बाहर की उलझनो को दर्शाने और कुछ ऐसी अनुभूतियो को व्यक्त करने के लिए लिखा गया है, जिन्हे व्यक्त किये बिना कई बार लेखक को निष्कृति नही मिलती, फिर सरशार

का कोई उपन्यास मै (इच्छा होते हुए भी) नही पढ सका। हाँ, यदि प्रभाव ही की खोज करनी हो तो मेरे खयाल मे आलोचक को उन्ही लेखको मे उसे ढूंढना होगा, जिन्हे मै उस जमाने मे पढता रहा—तुर्गनेव, गॉल्जवर्दी, रोम्याँ रोलाँ, वर्जिनिया वुल्फ, शॉलोखोव और प्रेमचन्द। मुझे तुर्गनेव का परिष्कृत (polished) चुलवुलापन और हास्य मिला व्यंग्य; गॉल्जवर्दी का छोटी-छोटी तफसीलो को उजागर करने वाला चरित्र-चित्रण; रोम्याँ रोलाँ के 'याँ क्रिस्ताव' का पैटर्न और प्रेमचन्द की जागरूकता अच्छी लगी। शॉलोखोव से मैंने, जहाँ तक इस उपन्यास का सम्वन्ध है, क्या पाया? यह नही कह सकता—शायद कथानक का ढीलापन!

०

'गिरती दीवारें' के नाम ने आलोचको को खासी परेशानी में डाल दिया। पन्द्रह-वीस लेख मेरी दृष्टि से गुजरे है और एक भी ऐसा नही जिसमें आलोचक ने किसी-न-किसी तरह, कोई-न-कोई 'दीवार' गिराने का प्रयास न किया हो। दोष उनका नही। दोष मेरा है। जव मैंने उपन्यास का नाम 'गिरती दीवारें' रखा तो आलोचको के लिए यह स्वाभाविक ही था कि उपन्यास मे गिरती हुई दीवारो की घडघडाहट अथवा मलवे की गर्द-धूल देखने की वाछा रखे। 'दीवारें' शव्द ने ही कुछ को उपन्यास का रस लेने के वदले दीवारें ढूंढने और परेशान होने की उलझन मे डाल दिया। फिर आलोचको ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इसमे दीवारें और उनका गिरना देखना चाहा और वैसा न होने पर उन्हें निराशा हुई।

जहाँ तक मेरा सम्वन्ध है, मै पहले इस उपन्यास का नाम 'चेतन' रखना चाहता था। चेतन के नाम से इसके दो-तीन परिच्छेद तव पत्र-पत्रिकाओ मे छपे भी थे। उपन्यास छपने के वाद कभी-कभी मै सोचता था कि मैने नाहक इसका नाम वदला! 'गिरती दीवारें' नाम जिस योजना के कारण रखा था, वह तो पूरी न हुई, जिस रूप मे छपा, उसमे 'चेतन' से भी काम चल सकता था। लेकिन आलोचकों ने इस नाम को ले कर

जो पटखनियाँ खायी है, उन्हे देख कर (मुझे आलोचकगण क्षमा करें) मुझे रस भी मिला और मन मे आया कि अच्छा हुआ इसका यह नाम रखा गया (कुछ आलोचको ने मुझे मूर्ख मान कर जो गालियाँ दी, उसका कुछ प्रतिकार भी, उनकी झुंझलाहट को देख कर अवश्य हुआ।) एक-दो को छोड, किसी 'समझदार' को यह नही सूझा कि उपन्यास पूरा नही, एक भाग अथवा उससे भी कम है, यह और बात है कि पूरा जान पडता है, किसी ने यह नही किया कि लिखता : 'हमारे खयाल में उपन्यास का नाम 'गिरती दीवारें' न होकर 'चेतन' होना चाहिए था।' और इतना कह कर उपन्यास के गुण-दोषों का विवेचन करने लगता।

जैसा कि मैंने कहा, मै उपन्यास को तीन (सम्भव हो तो नौ) भागों मे लिखना चाहता था और मैंने सब का नाम मिला कर 'गिरती दीवारें' रखा था। इसी कारण मैंने 'चेतन' नाम छोड़ दिया, और. चूँकि 'चेतन' को छोड दिया, इसलिए अकेले चेतन की प्रेम-कहानी भी छूट गयी। चेतन मात्र रह गया, क्योकि वही तो वह सूत्र था, जिसमे मुझे उन पाँच अथवा पन्द्रह वर्षो के मनके पिरोने थे। इसीलिए उपन्यास मे छोटे-छोटे पात्र अपनी छोटी-छोटी दुनियाओ को लिये हुए आ गये। यो यह स्वाभाविक भी था, क्योकि यह तो पहले तय था कि उपन्यास यथार्थ के निकट रहेगा; गढा-गढाया कथानक न होगा; जीवन मे जैसे आदमी चलता, बढ़ता, आगे-पीछे की सोचता है, वैसे ही इसका नायक भी चले, बढे और सोचेगा। यदि उपन्यास के सारे भाग मै लिख पाता तो शायद इसके नाम के सम्बन्ध मे किसी को आपत्ति न रहती।

वडे-वडे तीन अथवा नौ उपन्यास लिखना कठिन था, अथवा उतने पृष्ठो में मनोरंजकता न बनी रह सकती थी, ऐसी बात नहीं। अपनी अनुभूतियो के विस्तार और कला पर मुझे विश्वास है (था भी) पर जो बात आशा और उत्साह से भरी मेरी जवानी ने तब नही सोची, वह यह थी कि इस महाजनी युग मे किसी निम्न-मध्य-वर्गीय लेखक के लिए उतना अवकाश पाना असम्भव है, जिसमे उतने बड़े उपन्यास का सृजन हो सके।

उसके लिए टैगोर अथवा तालस्ताय अथवा रूस के आधुनिक लेखको की सुविधा चाहिए। और वह सुविधा जीवन की साधारणतम आवश्यकताओ को जुटाने के निरंतर संघर्ष मे रत भारतीय लेखक का भाग्य नही। साल-डेढ साल के अनवरत श्रम से जो उपन्यास लिखा जा सकता था, उसे सात वर्ष लग गये, और अभी पहला भाग भी पूरा न हुआ था कि मेरा स्वास्थ्य एकदम गिर गया। जब यह लगा कि जाने जियेंगे भी या नही तो जितना लिखा गया था उसे राउंड-अप (round-up) कर दिया।

रही दीवारें तो वे इस भाग मे भी मौजूद है। उपन्यास के अन्त मे चेतन देखता है कि: 'यह दीवारें उसके और उसकी पत्नी के मध्य ही नही, नीला और त्रिलोक के मध्य भी हैं। न केवल यह, बल्कि कविराज और चेतन, चेतन और जयदेव, जयदेव और यादराम—इस देश के सभी स्त्री-पुरुषो, तरुण-तरुणियो, वर्गों और जातियो के मध्य ऐसी अगनित दीवारे खड़ी हैं....'

लेकिन दीवारें स्थूल ही नही, सूक्ष्म भी है। स्थूल दीवारें तो साफ दीख जाती है और जैसा कि ख्वाजा अहमद अब्बास ने उपन्यास के उर्दू संस्करण का मसौदा पढते हुए कहा—वे हर पृष्ठ पर गिरती है। (पाठको के लिए, चेतन के लिए नही, क्योकि उसे तो सब ओर दीवारें खडी दिखायी देती है। केवल यौन-कुंठा की नही, जैसा कि एक 'अव्यवसायी' आलोचक ने उपन्यास को बडी सरसरी दृष्टि से पढ कर लिखा है—बहुमुखी कुंठा की दीवारें, जो सारे-के-सारे निम्न-मध्य-वर्गीय जीवन को घेरे हुए हैं।) लेकिन उन स्थूल दीवारो के साथ सूक्ष्म दीवारें भी हैं, जो नायक के मन-मस्तिष्क को बाँधे है और जो उसके अनुभवो के बढने के साथ गिरती है। जिनके गिरने से वह जीवन की यथार्थता को देखने और समझने में धीरे-धीरे सफल होता है। जिनके गिरने से उसके मस्तिष्क का अंधकार दूर होता है और यथार्थता के ज्ञान का प्रकाश उसके कोने-अंतरे जगमगाता है। दिल और दिमाग की दीवारो का टूटना क्योकि निःस्वन होता है और वे धीरे-धीरे गिरती हैं, इसलिए उनकी धडधड़ाहट सुनायी नही देती।

कुछ आलोचकों ने उपन्यास के इस स्थूल रूप ही को देखा है और इसे घोर यथार्थवादी, अथवा केवल फोटोग्राफ़िक, प्रकृतिवादी, अथवा कोई ऐसी ही उपेक्षा पूर्ण संज्ञा दे कर टाल दिया है। किंतु उपन्यास की मनोवैज्ञानिकता की ओर उनकी पूर्वाग्रह-युक्त उपेक्षा-भरी दृष्टि का ध्यान नहीं गया। जो ब्योरे अथवा घटनाएँ उनको चेतन की प्रेम-कहानी की दृष्टि से असंगत लगती हैं और जिनसे उनके विचार मे 'रस-भंग', होता है, वे बड़े सोच-विचार के बाद रखी गयी हैं। उपन्यास किसी प्रेम-कहानी का लेखा-जोखा देने अथवा रसों का परिपाक करने के विचार से नही लिखा गया। कहानी उसमे महत्व नही रखती, महत्व रखता है निम्न-मध्य-वर्ग के वातावरण का चित्रण और उस वातावरण के अँधेरे मे अपनी प्रतिभा के विकास का पथ खोजने वाले जागरूक अति भाव-प्रवण युवक की तड़प और उसका मानसिक विकास।

जहाँ तक 'गिरती दीवारें' के इस भाग का सम्बन्ध है वह नायक की उम्र के उस हिस्से को ले कर लिखा गया है जब कि वह नही समझ पाता कि अन्ततोगत्वा जीवन मे उसे क्या करना है? कि उसकी प्रतिभा जीवन मे किस मार्ग को पकड़ कर विकसित होगी? वह कभी इस मार्ग को पकड़ता है, कभी उसको; कभी एक ओर सरपट भागता है, कभी दूसरी ओर—वह कथाकार, कवि, उपन्यासकार, संगीतज्ञ, चित्रकार, अभिनेता सभी कुछ बनना चाहता है। आजकल मेरे यहाँ एक युवक कथाकार सातवें-आठवें आते हैं। उनकी जेब मे नयी लिखी कहानी, हाथ में स्केच की कापी और तर्जनी मे मिजराब होती है और मुझे शिमले के चेतन को याद हो आती है—उम्र के इसी भाग के जोश, वलवलो, आशाओं, निराशाओं, कल्पना के पारस को छू कर एक क्षण मे बन उठने वाले और यथार्थता की ठोकर से दूसरे क्षण ढह जाने वाले बुदबुद-से सपनो और निम्न-मध्य-वर्गीय युवक के अन्तर और बाह्य के द्वन्द्वो को उपन्यास का यह भाग दर्शाता है।

बहुत-से मध्य-वर्गीय युवक जीवन भर अपने ध्येय अथवा मार्ग का निर्णय नही कर पाते और उनकी प्रतिभा अँधेरे में टामकटोये मारते खत्म

हो जाती है । कुछ पथ-भ्रष्ट हो जाते है । कुछ किसी छोटे-बडे दफ्तर की फ़ाइलो मे उसे समाप्त कर देते है, विरले अपनी प्रतिभा के विकास का ठीक माध्यम चुन पाते है, चेतन कुछ बनेगा या नही, यह उपन्यास के इस भाग का विषय नही । अभी से कुछ नही कहा जा सकता । ठीक मार्ग पाने के लिए उसके दिमाग का और विकसित होना आवश्यक है और दिमाग का विकास विजली का बल्ब नही कि लेखक बटन दबा कर उसे दिखा दे । उसके लिए नायक को जीवन के छोटे-मोटे अगनित अनुभवो से गुजरना जरूरी है ।

उपन्यास लिखते समय मैने दो बातों का खास खयाल रखा, जिनकी ओर आलोचको का ध्यान नही गया ।

एक यह कि जो कुछ कहा जाय, वह पात्रो के जीवन, उनके जीवन की घटनाओ, अन्तर्द्वन्द्वो और उलझनो के माध्यम से कहा जाय । लेखक, जहाँ तक सम्भव हो, स्वयं उसमे न कूदे । न बहस मे पडे, न भाषण झाडे ।

[उस समय जब मैने उपन्यास लिखना आरम्भ किया था, श्रेष्ठ कला का यही गुण समझा जाता था । कुछ आलोचको को इसमे कदाचित इसी कारण, दर्शन और चिन्तन की कमी लगी है । बडे-बडे दार्शनिको ने जीवन की भट्ठी मे तप कर जो निष्कर्ष निकाले है, उन्हे बटोर कर उपन्यास मे इस या उस पात्र के मुँह मे भर देना कठिन नही, पर मैने यही अच्छा समझा कि अपने सामाजिक जीवन के जिस कूडे-कचरे की सफाई मै चाहता हूँ, अथवा जिसकी ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट करना मुझे अभीष्ट है, उसको ही—उसकी सारी यथार्थता के साथ—व्यक्त कर दूँ और पाठको को निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दूँ ।]

दूसरा यह कि नायक जितनी उम्र का है उससे बडी उम्र की बात न बोले । उसके मुँह मे बडी-बडी बातें रखना मुश्किल न था; मुश्किल, न रखना था ।

उपन्यास के इस पैटर्न और निम्न-मध्य-वर्ग के एक बीस-इक्कीस वर्षीय युवक के अनुभवो द्वारा निम्न-मध्य-वर्ग के जीवन का चित्र उपस्थित करने के कारण, कुछ आलोचको को उपन्यास के घेरे की परिमितता

की शिकायत रही है। प्रेमचन्द से असर पा कर भी जो मैंने देश के आन्दोलनो का जिक्र नही किया, उसका कारण भी यही पूर्व-निश्चित योजना रही। जीवन-सागर की विशालता और उसकी गगन-चुम्बी महोर्मियो को दिखाना मुझे अभीष्ट न था। सागर का पानी जहाँ आ कर रुक गया है और सड रहा है, उसकी ओर पाठको का ध्यान मै दिलाना चाहता था। और जिन मित्रों ने इसकी कटु आलोचना की है, उन्होने भी माना है कि मै (कम-से-कम) इसमे सफल रहा हूँ। फिर प्रेमचन्द ही से मैंने यह भी पाया कि जिस चीज का पूरा अनुभव न हो, उसे न छेडा जाय। प्रेमचन्द ने जहाँ किसान-जीवन का वर्णन किया है, वहाँ वे पूर्ण-रूप से सफल हुए है, पर उच्च-मध्य-वर्ग के जीवन का उतना अनुभव न होने से वे उसे उतनी अच्छी तरह से नही दिखा सके। इस तरह के लोभ से अपने-आपको बचाने का भरसक प्रयास मैंने किया और उसी जीवन का चित्र खीचा जिसका मुझे पूरा अनुभव है।

०

आलोचनाओ और आलोचको की वात चली है तो मेरे सामने 'गिरती दीवारें' पर की गयी कई तरह की आलोचनाएँ और आलोचक आ गये है। इन आलोचनाओ के माध्यम से आलोचको को पढना उपन्यास लिखने अथवा पढने से कम मनोरंजक नही। चार तरह के आलोचक इन आलोचनाओ मे दिखायी देते है :

१. जो आलोचक नही, उपन्यासकार है और वडे सफल उपन्यासकार है, उनके अहं को यह स्वीकार नही कि उनके सिवा कोई दूसरा भी अच्छा उपन्यासकार कहलाये। वे आलोचना का कुठार ले कर मैदान मे उतर आये है और छोटे-छोटे लेखको की पीठ ठोक और समवयस्को को ललकारते अथवा लताडते, छोटे-छोटे चूजों मे गर्दन उठाये फिरने वाले मुर्गो की भाँति साहित्य-ससार मे ऐंड रहे है। अपनी व्यंग्योक्तियो के कुठार उन्होने 'गिरती दीवारें' और उसके लेखक पर भी चलाये है। उनके प्रयास, उनकी महानता को देखते हुए दयनीय है। इनमे से एक ने

उपन्यास की डिटेल्ज (details) की शिकायत करते हुए उसकी घोर नीरसता व असफलता का उल्लेख किया है; लेखक को बडी कृपा कर, कला के कुछ मर्म भी समझाये है और व्यंग्य किया है कि उपन्यास मे 'दीवारें नही, नारियाँ गिरती है ।' दूसरे ने अपने अहं मे उपन्यास के उद्देश्य को समझने का प्रयास किये बिना, उसके नायक (अथवा लेखक) को 'किसी मूर्ति पर चलते हुए उस चीटे जैसा बताया है, जो उस मूर्ति की रचना की एक-एक बारीकी और सतह के खुरदरेपन को तो देखता है, लेकिन मूर्ति को नहीं देख सकता और उसके रूप की तो कल्पना ही नही कर सकता [और इस प्रकार वे यह कहते से-जान पडते है कि यह काम मैंने अपने उपन्यास मे करके दिखाया है—जब कि उन्ही के उपन्यास के नायक के (अथवा उनके) सम्बन्ध मे एक दूसरे सफल उपन्यासकार ने लिखा कि 'वह उस कुत्ते के समान है जो अपनी ही दुम को पकडने के प्रयास मे चक्कर काटता रहता है ।']

इन्ही के उपन्यास की जटिलता का उल्लेख करके किसी ने उस 'द्रविड प्राणायाम' का उल्लेख किया था जो साधारण पाठक को उसका अर्थ समझने में करना पडता है । इन्होने बडे इत्मीनान से उसी दोप का आरोप 'गिरती दीवारें' पर करके अपनी चोट को सहला लिया है ।

'द्रविड प्राणायाम' की शिकायत करने वाले महानुभावो से मै केवल इतना कहना चाहता हूँ कि कोई उत्कृष्ट कलाकृति लेखक ही से श्रम और समझदारी की माँग नही करती, पाठक और आलोचक से भी उसकी अपेक्षा रखती है।

२. जो आलोचक ही है, पर ऐसे असफल कहानीकार अथवा उपन्यासकार, जिसकी कुंठा ने उन्हे आलोचक बना दिया है । जो हिन्दी-उपन्यासो से अग्रेजी जासूसी उपन्यासो को अच्छा समझते है (और पढते है ।) इन्होने न केवल 'गिरती दीवारें' को हर लिहाज से निकृष्ट साबित कर दिया है, वरन् इस बात की भी घोपणा कर दी है कि लेखक ने ऐसा निकृष्ट उपन्यास इसलिए लिखा है कि हिन्दी में घटिया उपन्यासो की माँग है और लेखक

को कदाचित पैसे की तंगी थी । [मन को वे यो तसल्ली दे लेते हैं कि ऐसे 'अनगढ' उपन्यास लिखना कोई मुश्किल न था, पर हम जो लिखते हैं, उसकी हिन्दी मे माँग नही, इसलिए सृजन की अपेक्षा पहले हिन्दी वालों की रुचि का परिष्कार करना चाहिए ।]

इन महानुभावों से मेरा निवेदन है कि यदि वे हिन्दी पाठकों की रुचि का परिष्कार अपनी आलोचनाओ से नही, सुन्दर कला-कृतियों से करें तो उनका और हिन्दी पाठको, दोनो का भला होगा ।

३. ऐसे आलोचक, जो प्रसिद्ध रूसी कहानी से प्रेरणा पा कर आलोचक बने है और वह रूसी कहानी कुछ यो है :

एक मूर्ख था । उसे सब लोग मूर्ख कह कर चिढाते थे, आखिर एक दिन अपने ठस दिमाग से उसने एक तरकीब सोच निकाली । जब एक मित्र ने उससे एक प्रसिद्ध लेखक की नयी पुस्तक के स्टाइल की प्रशंसा की तो वह बोला :

"अच्छा स्टाइल ! मियाँ तुम जमाने से बहुत पीछे हो, वह स्टाइल तो कभी का पुराना हो गया । कुछ नयी चीज पढा-लिखा करो ।"

मित्र ने हैरानी से उसकी ओर देखा और सोचता हुआ चला गया ।

दूसरे दिन उसके पड़ोसी ने उनके एक साझे परिचित का जिक्र किया कि कितना भला है वह ।

"भला !" मूर्ख बोला, "भाई तुम जमाने से बहुत पीछे हो । तुम उसे नही जानते, वह अव्वल दर्जे का बदमाश है ।"

और वह इसी तरह हर चीज की निन्दा करता चला गया, पहले लोगों ने उसे सनकी समझा, फिर वे उसकी बात पर कान देने लगे, फिर उन्होंने कहना शुरू किया कि बात तेज़ कहता है, पर तत्व उसकी बातो मे जरूर है और फिर एक पत्रिका के संचालक ने उसे अपनी पत्रिका का सम्पादक बना दिया । नये लेखक डर के मारे उसकी चिरौरी करने लगे और वह महान आलोचक बन गया ।

४. आलोचक जो केवल आलोचक है, न बिगड़े कवि, न कथाकार,

न उपन्यासकार—केवल आलोचक ! गम्भीर, परिश्रमी, चीज़ को पढ़ कर, नाप-जोख कर, उसके गुण-दोषो की विवेचना (अपने-अपने मत के अनुसार) करने वाले ! इनमे से कुछ ने उपन्यास को सराहा है और उसके कुछ दोष भी दिखाये हैं, कुछ ने उपन्यास की निन्दा की है और उसके कुछ गुण भी बताये है । इनका मै आभारी हूँ । उनकी सराहना का भी और निन्दा का भी । इनमे से कुछ की धारणाओ से मेरा मतभेद है । लेकिन उन्होंने जिस श्रम से उपन्यास को समझने का प्रयास किया और अपनी बात कहते हुए लेखक के पक्ष को जानने की चेष्टा की है, वह स्तुत्य है । अपनी बात मैंने इस लेख मे साफ कर दी है । आशा है वे इसे ध्यान से पढ़ेंगे । श्री शमशेर बहादुर सिंह मेरे विशेष आभार के अधिकारी हैं, क्योकि वे ही अकेले ऐसे आलोचक हैं, जिन्होंने कम-से-कम उपन्यास का काल जानने की कोशिश की है और उसमे उन प्रगतिशील सिद्धातो को ठूँढने का प्रयास नही किया जो बाहर चाहे कभी के पुराने हो गये हो, पर हिन्दुस्तान मे कही बाद आये ।

०

उन आलोचको से, जो चैखव के शब्दो मे, गौ-मक्खी की तरह काट कर ही अपनी सत्ता सिद्ध करना चाहते है, मुझे कुछ नही कहना; पर, उन बंधुओ से, जिन्होने उपन्यास की 'नन्ही-नन्ही निरर्थक तफसीलो,' 'अति साधारण घृणित जीवन' और उसमे घिरे हुए 'रीढ-रहित, ढ़लमुल कमजोर और अत्यन्त साधारण मानवो' का उल्लेख कर, 'साहित्य के आस्वादन में हृदय के लोकोत्तर चमत्कार और तृप्ति;' 'उसकी आत्मा को अपील करने और छूने;' 'जीवन के व्यापक दृष्टिकोण,' 'आध्यात्मिकता और 'उन्नयन' की बात की है, मै रूस के प्रसिद्ध यथार्थवादी उपन्यासकार 'गोगोल' के शब्दो मे केवल यही कहना चाहता हूँ कि : उन नन्ही-नन्ही निरर्थक तफ़सीलो और उन छोटे-छोटे, अकिंचन; अति हेय पात्रो को— जिनसे हमारा जीवन-पथ अटा पड़ा है और जिन्हे आसमान मे लगी हमारी दृष्टि देख कर भी नही देख पाती— दैनिक जीवन की दलदल से निकाल,

वना-सँवार, आपकी अन्यमनस्क, उदासीन आँखों के सामने इस प्रकार रखना कि आप उन्हे बरबस देखने और उनका नोटिस लेने को विवश हो जायँ, कम कष्ट-साध्य नही; कि सूर्य की भव्यता का दिग्दर्शन कराने वाली दूरवीन के मुकाबिले मे नन्हे-नन्हे अदृश्य, अकिंचन कीटाणुओं को दिखाने वाली खुर्दबीन कम महत्वपूर्ण और उपादेय नहीं; कि जीवन के किसी साधारण खाके मे रंग भर कर उसे कला की उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए आत्मा की उतनी ही गहराई दरकार है जितनी कि उसकी महानता और व्यापकता का दिग्दर्शन कराने के लिए !

कुछ बंधुओ को उपन्यास मे सब जगह फ़्रायड दिखायी दिया है। मैने फ़्रायड नही पढा। मैने जो लिखा है, पंजाब के निम्न-मध्य-वर्गीय युवको के जीवन को अत्यन्त निकट से देख कर लिखा है। यदि फ़ायड ने भी वह सब कहा है तो उसने निश्चय ही ठीक कहा है और हमे उस महान वैज्ञानिक की बारीक सूझ की दाद देनी चाहिए। सच्चाई कटु है, सूफी कवि साईं बुल्ले शाह ने कहा है :

झूठ आखाँ ते कुछ वचदा ए
सच आखाँ ते भांबड़ मचदा ए
दिल दोहाँ गलाँ तो जचदा ए
जच जच के जिह्वा कहँदी ए
मुँह आयी बात ना रहँदी ए[1]

यथार्थवादी लेखक की स्थिति साईं बुल्ले शाह से भिन्न नही, अंतर केवल यह है कि वह जच-जच कर, संकोच से, सच्ची बात नही कहता, निर्भीकता से कहता है।

०

रविबाबू ने कवि कालिदास के सम्बन्ध मे लिखा है कि न जाने कितना

---

[1] झूठ कहता हूँ तो कुछ लाभ होता है। सच कहता हूँ तो शोले लपकते हैं। दिल दोनो बातो से डरता है। डर-डर कर जबान कहती है, सच्ची बात मुँह पर आये विना नहीं रहती।

गरल स्वयं पी कर उस महाकवि ने रसिकों को अमृत पिलाया है। हिन्दी के कुछ कलापारखी आज के संघर्षमय जीवन मे रत लेखक से भी कुछ ऐसी ही वाछा रखते हैं। चाहते हैं कि वह स्वयं तो गले तक डूबा, कीचड मे लथपथ रहे, पर किनारे पर खडे उनको उस कीचड का छीटा तक न लगने दे। उनके हाथों मे चुपचाप कमल तोड-तोड कर देता जाय, जिनके रंग, रस और गंध से शराबोर हो कर वे जीवन के रोग, शोक और पीडा को भूले रहे। पर प्रश्न तो यह है कि आज के संघर्षमय युग का कथाकार किसके लिए लिखता है ? कालिदास के समकालीन महाराजाओ का स्थान लेने वाले आज के सेठ-साहूकारो और अभिजात-वर्गीय साहित्यिको अथवा आलोचको के लिए या अपने ही जैसे संघर्ष मे रत सहस्रो लोगो के लिए ! कालिदास और उनके समकालीन कवि, राजाओ और महाराजाओ के आश्रय मे रह कर, उन्ही के सुख के लिए साहित्य का सृजन करते थे और प्रकट है कि राजाओ को रोग, शोक, दुख, दैन्य, जीवन की छोटी-छोटी तफसीलो और झुँझला देने वाली—मुँह मे कडवा-स्वाद भर देने वाली—अति साधारण, अकिंचन घटनाओ से क्या काम ! हमारे कुछ कला पारखी भी अपने-आपको उन राजाओ के रूप मे ही देखते है और लेखक से वैसी ही आशा रखते है। पर यदि साहित्यिक उनके लिए नही लिखता, उस कीचड मे लथपथ अपने जैसे सहस्रो दूसरे लोगो के लिए लिखता है तो प्रकट है कि वह उन्हे कमल का सौन्दर्य नही, तालाब मे फैली हुई जडें, कीचड, फिसलन, गढे और वह सब कुछ दिखायेगा, जिससे वे तालाब को साफ करना चाहते है—वह सव कुछ—जो कि दस-पाँच कमल चाहे उगाता हो, रोग के कोटिशः कीटाणु और सडाँध पैदा कर रहा है।

जहाँ तक कालिदास और रविबाबू का सम्बन्ध है, उनकी कृतियो की महानता से मुझे इन्कार नही, मेरा केवल यही निवेदन है कि अपने सम्पन्न वातावरण मे वे वही दे सकते थे जो उन्होने दिया। वे अपनी प्रतिभा की सारी प्राजलता के साथ भी यदि चाहते तो वह न दे सकते जो गोर्की ने अपनी जीवनी और प्रेमचन्द ने 'गोदान' मे दिया। जिस प्रकार कोई

कुवाँरा कल्पना मात्र से वैवाहिक जीवन के सत्यो को नही जान सकता, चाहे वह दस लडकियो के साथ भी क्यों न रहे, उसी प्रकार जीवन की सच्चाइयो को जानने के लिए उसकी चक्की मे पिसना आवश्यक है। उससे दूर रह कर, आसमान मे उडती कल्पना चाहे कितने ही सुन्दर चित्र क्यो न प्रस्तुत कर दे, जीवन के घिनौने यथार्थ को व्यक्त नही कर सकती।

०

वर्षों पहले लिखे हुए उपन्यास का संशोधन, जिये हुए जीवन को फिर उसी तरह जीने के बराबर है। आदमी जो जीवन जी चुकता है, उसे यदि वह फिर जीना पडे तो निश्चय ही वह उसके कुछ अंशों को बदल देना चाहता है, लेकिन वह बदला हुआ जीवन पूर्णतः उसकी तुष्टि करता है, यह कहना कठिन है। क्योकि यदि कुछ वर्षो के बाद उसे फिर वही जीवन दिया जाय तो वह फिर उसमे कुछ-न-कुछ बदल देना चाहेगा।

इधर दो-तीन महीनों से मै लगातार 'गिरती दीवारें' का संशोधन करता रहा हूँ। दो-एक बहुत अच्छे परिच्छेद मैने इसमे बढ़ा दिये है, कुछ काट-छाँट दिये है। जैसा मै चाहता था, वैसा संशोधन तो मै कर नही पाया। इसका दूसरा भाग लिख कर ही करूँगा। पर तो भी पहले संस्करण से यह काफी बढ गया है।

अपने पाठको का मै बड़ा आभारी हूँ कि उन्होने इसे हृदय मे स्थान दिया है। आलोचको से मेरा निवेदन है कि वे इसे फिर एक बार ध्यान से पढें।

५, खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद
९ फरवरी, १९५१

उपेन्द्रनाथ अश्क

गिरती दीवारें

एक

तंग आ कर आखिर एक दिन चेतन चुपचाप अपनी भावी पत्नी को देखने के लिए बस्ती गज़ाँ की ओर चल पड़ा।

बस्ती गज़ाँ जालन्धर से कुछ अधिक दूर नही। दोनों मे इतना ही अंतर है कि सुन्दर-से-सुन्दर घोड़े-ताँगे वाला भी बडी खुशी से फी सवारी दो पैसे ले लेता है और कभी-कभी किसी सूखी-सड़ी कंजूस बुढिया को एक पैसे पर ले जाने को भी तैयार हो जाता है। किसी जमाने मे यह गज जाति के लम्बे-तगडे पठानो की बस्ती थी, लेकिन अब इसमें पतले-दुबले तपेदिक के रोगी-से हिन्दू-मुसलमान दोनों जातियों के लोग आबाद है। न जाने ये बाहर से आ कर यहाँ बस गये है या उन्ही सुन्दर, सुगठित, बलिष्ठ पठानो के वंशज है।

चुपचाप अपने मन मे उस लडकी का चित्र बनाता, (जिसकी चर्चा इतने दिनो से उसके घर में बराबर हो रही थी) चेतन चला जा रहा था। दिन ढल रहा था और बाज़ारो में छिड़काव के कारण मिट्टी की सोंधी-सोंधी महक फैल रही थी। चारो ओर खासी चहल-पहल थी। 'बाजियाँ वाला बाज़ार' में अपनी-अपनी दुकानों के तख्तो पर बैठे दो कलावन्त मर्तबानों पर मुँह फुला-फुला कर अपनी कला का परिचय दे रहे थे। कुछ आगे 'चौरस्ती अटारी' मे गा कर किस्से बेचने वाले दो व्यक्ति तहमद लगाये, लट्ठे की खुले गले वाली कमीजें पहने, उल्टी-सीधी पगड़ियाँ बाँधे, पान से होंट लाल किये अनपढ-सास और पढी-लिखी बहू की लड़ाई का किस्सा गा-गा कर सुना रहे थे और जैसे, अपनी ही कटी हुई पतंग को

ताँगे वाले ने लापरवाही से उत्तर दिया, "एक सवारी तो सरकार, यही उतर जायगी।"

चेतन का जी चाहा, ऐसे पाजी ताँगे वाले को छोड़ कर दूसरी सवारी पर जा बैठे, पर दूसरा कोई ताँगा तैयार न था और उसे जल्दी थी। बोला, "अच्छा जरा तेजी से चला, एक सवारी के पैसे मैं और दे दूँगा।"

प्रसन्न हो कर ताँगे वाले ने दुआ दी, टिटकारी भरी और ताँगा हवा बातें करने लगा।

दो |

बस्ती गज़ाँ को आसानी से दो हिस्सों मे बाँटा जा सकता है। एक वह, जो उत्तर और दक्षिण के दो पुराने, बड़े, महराबदार दरवाजों के अन्दर, छोटी ईंटों के अँधेरे सीलदार मकानो को अपनी चारदीवारी मे लिये, अपनी दुनिया मे मस्त है—इनमें छोटा, तंग, टेढ़ा-मेढ़ा, कटे-फटे फर्श पर अपने निवासियो के दिलों की भाँति; गहरे गढ़े लिये हुए एक ही बाज़ार है। दूसरा वह जो बड़ी ईंटो के नये ढंग पर बने हुए मकानों से सजा है। इसमें यद्यपि बाज़ार के नाम पर अड्डे की चन्द दूकानें ही है, लेकिन इसकी गलियाँ बडी चौड़ी है और हाल ही मे उन पर म्युनिसिपल कमेटी का काला, बेडौल, तारकोल की सडकों पर मस्त हाथी की तरह झूम कर चलने वाला इंजन भी फिर गया है। इसके अतिरिक्त इस हिस्से की एक गली मे लड़कियो का एक मिडिल स्कूल भी है और नगर की ओर दो-तीन नयी सुन्दर कोठियो के सामीप्य का सौभाग्य भी इसे प्राप्त है। यह हिस्सा नगर के साथ बस्ती वालो के बढ़ते हुए मेल-मिलाप और पुराने हिस्से के कौटुम्बिक झगड़ों के कारण धीरे-धीरे अपना एक अलग अस्तित्व पा गया है।

इन दोनो भागों के बीच—एक के महराबदार दरवाज़े और दूसरे की

दूकानो के सामने—नगर से आने वाली सडक आ कर समाप्त हो गयी है और प्रातः छै बजे से रात के ग्यारह बजे तक हर घड़ी यहाँ ताँगे वालों की आवाजें सुनी जाती हैं।

सडक के साथ पुराने भाग की ओर एक बडी नाली है और इसके साथ ही मकानो की दीवारो तक खुली-सी जगह है। इस तरह सड़क, इसके पास का स्थान और नाली के साथ की खुली जगह—सब को मिला कर एक चौक-सा बन गया है। पुराने भाग की ओर, इसी चौक मे बस्ती के बेकार और भिखमंगे दिन भर बैठे धूप मे ऊँघा करते हैं और नये हिस्से की दूकानों पर बस्ती के बेफ़िक्रे, पान चबाते, गँडेरियाँ चूसते या आती-जाती स्त्रियो पर शरारत भरी नजर डाल कर आवाजें कसते रहते हैं।

इसी चौक मे आ कर चेतन चुपचाप ताँगे से उतरा। उसने ताँगे वाले को पैसे दिये और लपक कर बायी तरफ नये हिस्से की एक गली की ओर बढा। तेज चलता हुआ वह लडकियों की पाठशाला के पास से गुजरा और एक उडती हुई दृष्टि उसने उसके बन्द दरवाजे पर भी डाली। गली के कोने वाले मकान के सामने जा कर वह रुका और उसने जोर से आवाज़ दी, "मुल्कराज, मुल्कराज !"

एक छोटे कद के पतले-दुबले लडके ने किवाड़ खोले और जैसे हँसने की नकल उतारते हुए कहा, "आओ, आओ !"

"नही, मैं आऊँगा नही"—यह कहता हुआ चेतन अन्दर दाखिल हो गया।

कमरा छोटा और अँधेरा था। फर्श पर एक पुरानी दरी बिछी हुई थी जिस पर पुस्तको के अम्बार लगे हुए थे। वही जा कर अपने स्थान पर बैठते हुए मुल्कराज ने पुस्तकों से बची हुई दरी पर कुछ खाली जगह की ओर इशारा किया और चेतन से कहा, "बैठो, बैठो !"

"नही, मैं बैठूंगा नही," यह कहते हुए चेतन बैठ गया और फिर तनिक खिसियानी-सी मुस्कराहट के साथ उसने कहा, "इतना न पढ़ो, मर जाओगे !"

मुल्कराज केवल हँस दिया।

"देखो," चेतन बोला, "मुझे जल्दी है। एक मामले में तुम्हारी सहायता लेने आया हूँ। यहाँ तुम्हारी गली मे जो स्कूल है, उसमे 'बेरी वाली' गली के पंडित दीनवन्धु की लड़की पढती है।"

"चन्दा? हाँ, हाँ!"

"तुम उसे जानते हो?"

"अरे, मैं—वस्ती का रहने वाला—बस्ती की लड़कियों को न जानूँगा? और फिर वे तो हमारे दूर के शरीक[1] होते है।"

"लडकी यही पढती है न?"

"हाँ, हाँ!"

"तो उठो। छुट्टी होने वाली होगी, मुझे पहचान नही; वह निकले तो जरा वता देना।"

उठते हुए एक अर्थ-भरी दृष्टि से चेतन की ओर देख कर मुल्कराज ने कहा, "क्यो?" और अपने वही साधारण मैले कपड़े पहने वह गली मे आ गया। जब चेतन भी बाहर निकल आया तो मुल्कराज ने किवाड़ वन्द करके कुंडी लगा दी।

गली के सामने चौक में, एक हाथ मे छोटी-सी बाँसुरी थामे उस पर 'जग विच मैनूँ कमलिए हीरे' की तर्ज़ का कोई गीत गाता और दूसरे से डुगडुगी वजाता हुआ, एक मदारी लोगों को इकट्ठा करने का प्रयास कर रहा था। दूकानो पर बैठे हुए बेफिक्रे और अपने फटे हुए कुर्तों और पैबन्द लगे तहमदो में मस्त बेकार वहाँ जमा होने लगे थे और कही से छोटे-छोटे नंग-धडग बच्चो की टोली, शैतानी सेना की भाँति, उधर उमड़ पड़ी थी। अड्डे के ताँगे वाले तब और भी ज़ोर-ज़ोर से सवारियो को आकर्षित करने के लिए आवाज़ें लगाने लगे थे और जैसे मदारी की बाँसुरी और उनकी आवाज़ों में घोर प्रतियोगिता आरम्भ हो गयी।

मुल्कराज और चेतन उस गली से निकल कर प्रकट तमाशा देखने

१. शरीक=खानदानी। दूर के रिश्तेदार।

के उद्देश्य से भीड़ के पास आ खडे हुए । गली की ओर देखते हुए मुल्कराज ने कहा, "अब छुट्टी होने ही वाली है ?"

तभी छोटी-छोटी लड़कियाँ अपनी तख्तियाँ और बस्ते लिये पाठशाला के फाटक से निकली और पेड की डाली से विभिन्न दिशाओ को उड जाने वाली चिडियो की भाँति विखर गयी ।

मुल्कराज बोला, "अब कुछ देर बाद ही ऊँचे दर्जो मे भी छुट्टी होगी ।"

चेतन ने जैसे यह बात नही सुनी, मुल्कराज के कन्धे पर हाथ रखते हुए उसने पूछा । "तो तुम्हे पसन्द नही !"

"पसन्द को तो कोई ऐसी बुरी वह नही, पर मैने तुम्हे अपनी राय दे दी ।" मुल्कराज ने कन्धे सिकोडते हुए कहा, "ढीली-ढाली, सुस्त, मझोले कद की लडकी है । साधारण युवतियो की भाँति मैने उसे कभी हँसते-बोलते इठलाते-खेलते नही देखा । तुम ठहरे चालाक चुस्त ! तुम्हारे साथ उसकी निभ सकेगी, कह नही सकता ।"

"रंग कैसा है ?" चेतन ने पूछा ।

"गेहुआँ है, गोरा तुम उसे नही कह सकते ।"

चेतन का उत्साह मन्द पड गया । उसने सोचा कि वही से वापस हो जाय । फिर खयाल आया—माँ ने पूछा तो क्या जवाब दूँगा और स्वयं ही सोच लिया—कह दूँगा कुरूप है । लेकिन फिर अन्तर मे किसी ने कहा—कौन जाने सुन्दर ही हो ! मुल्कराज बस्ती ही का रहने वाला है, उनके घराने मे से ही, शायद वह न चाहता हो कि उनके शरीक की लडकी को ऐसा अच्छा वर मिले । और सन्देह की एक दृष्टि मुल्कराज पर डाल कर अनमना-सा वह तमाशा देखने लगा ।

सड़क की ओर जिन मकानो की खिडकियाँ खुलती थी, उनमे बच्चो के नन्हे चेहरे झाँकने लगे थे । किसी-किसी खिडकी की चिलमन के पीछे प्रात. से संध्या तक काम-काज मे जुटी रहने वाली, कोई पर्दे वाली गृहिणी भी आ खडी हुई थी । खेल कोई नया न था । वही तीन सीगों वाला बैल,

वही रुपया पैदा करने वाला जादू का मंत्र और गोली गुम करने वाली थैली ! किंतु मदारी की बातें ही कुछ ऐसी दिलचस्प थी कि कुछ क्षण तक चेतन उनमें खो गया। और फिर यद्यपि उसके कानों मे मदारी के शब्द स्वप्न-संसार के शब्दो की भाँति सुनायी देते रहे, किन्तु उसकी आँखो के सम्मुख अनायास कई प्रकार के चित्र अंकित हो चले। कल तक ये सब चित्र सुन्दर कोमलागी तरुणियो के चित्र थे। पर आज वे सब असुन्दर बन बन आते। वही खडा वह एक बार फिर इन कुरूप चित्रों को उन्ही सुन्दर तस्वीरो मे परिणत करने का प्रयास कर रहा था, पर बार-बार वही असुन्दर मँझोले गेहुँए रंग के चित्र उसकी आँखों मे आते और फिर सब कुछ जैसे गडमड हो जाता। खीझ-खीझ कर वह तमाशे मे ध्यान जमाता, किन्तु कल्पना उसे कही-का-कही ले जाती।

तभी मुल्कराज ने उसके बाजू को छूते हुए धीरे से कहा, "छुट्टी हो गयी है, बडे दर्जों की लडकियाँ आने लगी है।"

चेतन चौंक कर मुडा और दोनो कुछ तिरछे हो कर ऐसे खडे हो गये कि न मालूम हो कि तमाशा देख रहे है और न मालूम हो कि बाजार में किसी की प्रतीक्षा कर रहे है।

एक सुन्दर, बारह-तेरह वर्ष की लड़की, हाथ मे किताबें थामे मानो माप-माप कर कदम रखती हुई, जैसे अपनी चाल की सुन्दरता से अभिज्ञ, तीन-चार सहेलियो के साथ जा रही थी। जाते-जाते उसने एक चंचल दृष्टि चेतन पर भी डाली। चेतन का दिल धक-धक करने लगा और उसके गाल सुर्ख हो गये।

अनायास उसने मुल्कराज के बाजू को छुआ। इशारे से मुल्कराज ने बता दिया कि यह नहीं।

चेतन लज्जित-सा चुप खडा हो गया, फिर उसने कहा, "मै चलता हूँ।"

"अब तो वह आने ही वाली है।"

"नहीं, मै चलता हूँ।"

"पागल हो गये हो क्या !"

इस बीच मे छोटी-बड़ी लड़कियों की कई टोलियाँ निकल गयी। वे सब गरीब साधनहीन वेफिक्रे, जो केवल देख कर ही अपनी वासना की भूख को मिटा पाते, आज मदारी का तमाशा देखने मे व्यस्त थे और उनकी अनुपस्थिति के कारण लड़कियाँ अपनी इर्द-गिर्द की दुनिया से अनभिज्ञ, धरती मे निगाहें गाड़े चली जा रही थी। एक-दो ने अड्डे पर खडे इन दोनों को भी देखा, पर कल्पना-ही-कल्पना में चेतन उस चंचल किशोरी का चित्र देखने मे इतना मस्त था कि वाकी कौन आया, कौन गया, इसकी उसे सुध न रही। तभी मुल्कराज ने उसके कन्धे को छुआ और जैसे अपने ही कन्धे से वात करते हुए धीरे से कहा, "वह आ रही है।"

उत्सुकता से चेतन ने देखा—एक मँझले कद की, कुछ मोटी-सी, गेहुएँ रंग की लड़की जैसे घर के ही धुले,मटमैले कपड़े पहने, सीधी-सादी चाल से चली आ रही है। उसके दोनो हाथो पर स्लेट थी जिस पर लगा हुआ किताबो का अम्बार जैसे उसके वक्ष का सहारा लिये पड़ा था। उसकी आँखें जैसे धरती मे गडी जा रही थी।

चुपचाप वह उसके पास से हो कर गुज़र गयी।

मदारी का खेल खत्म हो गया था। भीड़ के ऊपर से पैसो की थाली वाला हाथ उसने चेतन के आगे कर दिया। लाचारी से एक 'उँहुँ' करके चेतन वहाँ से चल पड़ा और एक ताँगे की पिछली सीट पर जा बैठा।

मुल्कराज ने सड़क पर खडे-खड़े पूछा, "क्यो?"

चेतन जैसे विवशता से सिर्फ मुस्करा कर रह गया।

मुल्कराज वोला, "मैंने तो कहा था शादी...."

चेतन ने वात काट कर कहा, "इस मोटी-मोटल्लो से ? हरगिज़ नही !"

तीन

इसी वर्ष स्थानीय कॉलेज से चेतन ने बी० ए० की परीक्षा दी थी और उसकी माँ को उसके विवाह की चिन्ता लग गयी थी। लाहौर की पढ़ाई का खर्च सह सकने की शक्ति उनमे नहीं थी। इतना भी न जाने कैसे हो गया? पिता का अपना ही खर्च मुश्किल से चलता था। माँ ने जैसे-तैसे अब तक चेतन की शिक्षा का प्रवन्ध किया था। पर उसे लाहौर भेजना तो उसके वस में भी न था। गहने थे, पर कितने? और वे भी न जाने कहाँ-कहाँ गिरवी रखे हुए थे? इन्ही कारणों से अब वह चाहती थी कि उसका यह बेटा जब इतना पढ-लिख गया है तो उसका कर्तव्य है कि कही नौकरी करे, घर-वार वसाये और इस प्रकार शीघ्र ही नौकरी से रिटायर होने वाले अपने पिता और गृहस्थी के झंझटो से रिटायर होने वाली माँ को सहारा दे।

किन्तु चेतन की उच्चाकांक्षा इस तरह सीमित होने को तैयार न थी। कारागार के सीखचों मे वन्द व्यक्ति के अरमानो की भाँति वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। यद्यपि परीक्षा-फल निकलने से कई दिन पहले उसने अपने ही स्कूल मे नौकरी कर ली थी और जिन दर्जो की बेंचों पर बैठ कर अध्यापको की झिड़कियाँ सुनी थी, उन्ही में अब अध्यापक की कुर्सी को सुशोभित करने का गर्व भी उसने अनुभव कर लिया था; तो भी यह कोल्हू के बैल का-सा जीवन उसे पसन्द न था। लाहौर के किसी कॉलेज के बदले स्कूल जैसे उस स्थानीय कॉलेज में बी० ए० तक पढ़ने के कारण कॉलेज-जीवन के जिन अनुभवो से वह वंचित रह गया था, उन्हे एक बार लाहौर जा कर प्राप्त कर लेने की उत्कट लालसा उसके मन में, जैसे विवश हो, दबी पड़ी थी। वह चाहता था कि यदि बी० ए० की परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाय तो जैसे भी हो, लाहौर जा कर एम० ए० या एल-एल० बी० करने का प्रयत्न करे।

जब वह लाहौर में शिक्षा पाये हुए अपने ही मुहल्ले के मित्रों को देखता था तो अपने-आपको उनके सामने निरा स्कूल का छात्र पाता था। क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या देशी, क्या विदेशी सभी विषयों पर वे बड़ी सुगमता से अंग्रेजी में धारा-प्रवाह बोलते चले जाते थे। स्वयं उससे तो अंग्रेजी का एक शुद्ध वाक्य भी न बोला जाता था। इसलिए लाहौर भाग जाने को उसका मन छटपटाया करता था। तभी एक दिन बस्ती से एक लकवे की बीमारी से लाचार वृद्ध महाशय अपने हिलते हुए शरीर को एक डंडे के सहारे थामे, एक दूसरे व्यक्ति के कन्धे पर हाथ रखे, उनके घर आये। बैठक के साथ जो कमरा था, चेतन उस समय उसी में बैठा कहानियों की एक पुस्तक पढने का प्रयास कर रहा था। प्रयास इसलिए कि पढ़ने की अपेक्षा वह स्वयं कहानी लिखने को अधिक व्यग्र था, पुस्तक तो वह केवल प्रेरणा के लिए पढ रहा था। उसने कहानी लिखने का प्रयत्न किया था, पर वह सफल न हो पाया था। किसी कागज़ पर दो, किसी पर चार और किसी पर दस-बीस पंक्तियाँ तक लिख कर वह फेंक चुका था और पुनः कहानियों की पुस्तक पढ़ने में निमग्न हो गया था।

मकान के बाहर मुहल्ले के खुले चौक में खड़े हो कर उन वृद्ध के साथ आने वाले व्यक्ति ने चेतन के दादा का नाम ले कर आवाज़ दी।

चेतन के दादा भोजन करके बड़े इत्मीनान से ऊपर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उन अपरिचित व्यक्तियों को अपना नाम पुकारते सुन हुक्का हाथ मे ही लिये नीचे बैठक में आ गये और उन्हें सादर बैठा कर आप भी बैठ गये। इसके बाद उन आगन्तुकों की बातें सुन कर दादा के चेहरे पर जो उल्लास खेलने लगा था और धीरे-धीरे होने वाली वार्ता की जो भनक चेतन के कान में पड़ी थी, उससे उसने जान लिया था कि उन महानुभावों के आने का प्रयोजन क्या था। वास्तव में ब्राह्मण जाति के निम्न-मध्य-वर्ग में अच्छे पढ़े-लिखे और रोज़गार में लगे हुए लड़कों का अभाव है। इसी कारण जो लोग उसकी प्रतिभा का पता पा कर और यह जान कर उनके घर आया करते थे कि कॉलेज से निकलते ही वह अपने स्कूल में

चालीस रुपये मासिक की नौकरी प्राप्त करने मे सफल हो गया है, उनकी बातो से वह पूरी तरह परिचित था। उसे पूरा विश्वास था कि अभी उसके दादा उसे आवाज़ देंगे और उसे कुछ मनोरंजन का सामान मिलेगा। पर ऐसा नही हुआ। वह प्रकट पुस्तक मे ध्यान जमाये इसी बात की प्रतीक्षा करता रहा, पर उसके दादा ने कोई आवाज़ न दी और कुछ देर बातें करने के बाद वे ऊपर, सम्भवत. चेतन की माँ से कुछ पूछने, चले गये।

ऐसी दशा मे पहले वह स्वयं उठ कर बैठक मे आ जाया करता था और आगन्तुको को अवसर दे दिया करता था कि वे उससे बातें करके विवाह सम्बन्धी उसके विचारो को जान लें या फिर वह अपने मित्र अनन्त को बुला लाता था और वे दोनो मिल कर आगन्तुकों को लडकियो के पिता होने का दण्ड दिया करते थे। किन्तु उस दिन दादा के चले जाने पर भी वह उठ कर वहाँ न जा सका। लकवे के कारण, शरीर-कम्पन की बीमारी मे ग्रसित, प्रतिक्षण अत्यन्त दयनीय रूप मे अपने हाथ और गर्दन को हिलाते रहने वाले उन बुजुर्ग की आकृति मे कुछ ऐसी बात थी कि वह उनसे किसी तरह के परिहास का विचार मन मे न ला सका। उनका स्वर इतना धीमा, गम्भीर और संयत था कि साधारण लोगों की अपेक्षा उनके व्यक्तित्व से अनायास ही श्रद्धा हो जाती थी। भाग कर पास की गली से अपने मित्र अनन्त को बुला लाने की इच्छा भी तब उसे नही हुई।

कुछ देर बाद दादा ने कागज उनके हाथ मे ला कर दिया। बडी कठिनाई से उसे अपने काँपते से हाथ मे थाम कर, उन्होने अपनी जेब से ऐनक का डिब्बा निकाला और उसे अपने शरीर से सटा कर खोलने का प्रयास करने लगे। तब जैसे चौंक कर उनके साथ आये हुए व्यक्ति ने झट उसे खोल कर उन्हे दे दिया। सफेद कमानी की साधारण सस्ती ऐनक—उसे बड़ी कठिनाई से नाक पर लगा कर उन्होने कागज पढा और लपेट कर जेब मे रख लिया। चेतन समझ गया, उसके दादा ने उसकी माँ से पूछ कर चारों अंग लिख कर दिये हैं।

इसके बाद नमस्कार करते हुए वे वृद्ध उठे। जाते-जाते चेतन के पास

आ कर उन्होंने अपना काँपता हुआ हाथ उसके सिर पर फेरा और कहा, "अब तो परीक्षा हो चुकी है बेटा, अब इतनी मेहनत न किया करो। कुछ दिन आराम करो और सेहत बनाओ।" बस इतना कह, अपने हिलते हुए शरीर को जैसे-तैसे सम्हालते हुए, वे बैठक की सीढियाँ उतर गये। न उन्होंने दूसरो की भाँति उसकी शिक्षा-दीक्षा, वेतन या विचारों के सम्बन्ध मे प्रश्न किये, न अपने ही बारे मे कुछ बताया।

उनके चले जाने के बाद चेतन के मन मे प्रबल आकांक्षा उठी कि वह अपनी माँ अथवा दादा से उनके इस आगमन का ठीक कारण पूछे, पर वह मन मार कर बैठा रहा।

शाम को खाना खाते समय उसे पता चल गया कि उसका अनुमान गलत न था। लकवे की बीमारी से ग्रसित वे बुजुर्ग, रिटायर्ड ओवरसियर थे। उसके साथ उनका छोटा भाई था जिसके ईंटो के दो भट्टे 'काला-बकरा' में थे। उसी की लडकी के सम्बन्ध में बात करने वे आये थे। उसे यह भी पता चला कि वे चारों अंग[1] लिख कर ले गये हैं। तब खीझ कर चेतन ने अपनी माँ से कहा था, "दादा जी जाने क्यो उनको साफ इन्कार नही कर देते। क्यो व्यर्थ दो भलेमानुसो को परेशान करते है ?"

माँ ने आँखो मे आँसू भर कर वही पुरानी बातें दुहरानी शुरू की थी: 'बच्चा यदि तू घर न बसायेगा तो मै मुहल्ले मे किस तरह मुँह दिखा सकूँगी ? विवाह, शादी और बीसियों दूसरे संस्कारों और त्योहारो पर किसी-न-किसी घर से कुछ-न-कुछ आता रहता है। मेरे घर अब तेरे विवाह के सिवा इतनी जल्दी और कौन-सा उत्सव होगा कि मै उन सब का बदला दे सकूँगी। और फिर तेरे विवाह न करने से कुल को लाछन अलग लगेगा।

---

१. लड़के का, लड़के की माँ का, उसके पिता तथा उसके दादा का, अपना और ननिहाल का गोत्र बताने को चारों अग बताना कहते हैं। पुराने विचार के हिन्दुओं में यदि लड़के के इन चारों अंगों में कोई लड़की के चारों अंगों में से किसी एक से भी मिल जाय तो सगाई नहीं होती।

यह कोई न कहेगा, लड़का नही मानता । सब यही कहेंगे कि वंश ही मे कोई दोष होगा जो अब तक शादी नही हुई ।"

इन बातो का कोई जला-कटा उत्तर देने के बदले चेतन ने अपना वही पुराना अस्त्र प्रयोग मे लाने का विचार किया । गम्भीरता से उसने कहा, "मै तुम्हारी सब बातें मानता हूँ, पर मै लड़की देखे बिना विवाह न करूँगा, और इस बात के लिए शायद वे तैयार न हों ।"

माँ ने कहा, "वे लड़की दिखा देंगे ।"

और माँ ने बात ठीक ही कही थी । दूसरे ही दिन वे वृद्ध फिर आये और उन्होंने कहा कि परमात्मा की कृपा से अंग तो नही मिले और आग्रह किया कि यह नाता तो अब हो ही जाना चाहिए । तब दादा ने उत्तर दिया कि उनकी और बहू की ओर से तो कोई आपत्ति नही, वे तो घर अच्छा चाहते हैं—भलेमानुस लोग ! बाकी किसी चीज की उन्हे परवाह नही....पर लडके के पिता से भी पूछ लेना चाहिए । और फिर सकुचाते-सकुचाते उन्होंने कहा कि लडके को मना लेना भी आप ही का काम है ।

इस पर वृद्ध ने दादा से चेतन को बुलाने के लिए कहा था और दादा ने चेतन को आवाज़ दी थी ।

जैसे गहरे लाल रंग के ऊपर हल्का-पीला रंग उसकी ललाई को नहीं छिपा पाता, इसी तरह जब पहिले ऐसे अवसरो पर चेतन आ कर बैठा करता था तो उसके चेहरे पर जो हल्की-सी गम्भीरता होती थी, उसके नीचे शरारत साफ छिपी दिखायी देती । किन्तु उस दिन जब रोग से विवश उन वृद्ध के सामने चेतन जा कर बैठा तो उसकी वह शरारत ऐसी छिप गयी जैसे उसका कभी अस्तित्व ही न था । चुप, गम्भीर, शर्माया-शर्माया-वह आ कर बैठ गया ।

बड़े मीठे स्वर मे हकलाते-हकलाते उन बुजुर्ग ने पूछा, "क्यो बेटा तुम्हें इस रिश्ते मे कुछ आपत्ति तो नही ?"

चेतन ने चाहा आश्चर्य प्रकट करता हुआ पूछे, 'किस रिश्ते मे ?'—पर न तो वह आश्चर्य का प्रदर्शन कर सका और न कुछ पूछ ही सका,

बस चुप बैठा रहा ।

उन वृद्ध ने कहा, "तुम्हे लड़की दिखा देंगे बेटा, मैं स्वयं आजाद-खयाल आदमी हूँ । जिसके साथ जीवन भर का नाता हो, उसे देखा तक न जाय, इसे मैं अन्याय समझता हूँ ।"

चेतन फिर भी चुप बना रहा, उसकी सब मुखरता न जाने कहाँ हवा हो गयी ।

फिर कुछ देर बाद वे बोले, "रहे तुम्हारे पिता जी तो भाई उनकी सेवा मे उपस्थित हो कर भली-भाँति उनकी अनुमति प्राप्त कर ली जायगी । तुम्हारी ओर से तो कोई आपत्ति नही ?"

चेतन का गला सूख-सा रहा था, उसके कंठ मे जैसे गोला-सा अटक गया था, पर उनके अन्तिम वाक्य से उसे जैसे जबान मिल गयी । धीरे से बोला, "जी....जी....मैं अभी आगे पढना चाहता हूँ !"

"तुम जैसे अध्ययनशील, बुद्धिमान युवक से ऐसी ही आशा है बेटा," उन्होने समर्थन करते हुए कहा, "आगे जरूर पढो ! गुण अपने पास हो तो क्या बुरा है ? कोई छीन तो लेगा नही । और दो वर्ष तो पलक झपकते बीत जायँगे । चन्दा उन लड़कियों मे से नही जो पति के मार्ग का रोड़ा बन जायँ । सरल, सीधी, समझदार लड़की है, तुम्हारी पढाई में किसी प्रकार की बाधा न डालेगी । फिर हमसे भी जहाँ तक हो सका तुम्हारी सहायता करेंगे ।"

चेतन क्या कहे ? वह स्थिर न कर सका ।

वृद्ध अपने भाई के कन्धे का सहारा ले कर उठे और दादा की ओर देख कर बोले, "हम आज ही पंडित जी के पास जायँगे और परमात्मा ने चाहा तो उन्हे मना कर ही आयँगे, नमस्कार !"

और अपने हिलते हुए हाथ जोड़ कर उन्होंने विदा ली ।

कृतज्ञता के बोझ से जैसे दब कर दादा भी उनके साथ उठे ।

"आप बैठिए, व्यर्थ कष्ट न कीजिए !" और यह कह कर वे तनिक हँसते हुए अपने छोटे भाई को साथ ले कर उसी दयनीय दशा मे काँपते,

हिलते, झूलते, डोलते सीढ़ियाँ उतर गये।

कुछ देर तक चेतन चुपचाप वहीं बैठा रहा था। फिर उसका सारा क्रोध पोते के विवाह की सुखद कल्पना में डूबे, धीरे-धीरे हुक्का गुडगुडाते हुए अपने सत्तर वर्ष के बूढे दादा पर उतरा। चीख़ कर उसने कहा, "मैंने कितनी बार आपसे कहा है कि मुझे तंग न किया करें, फिर क्यो आप लोग मुझे सताते है ? मै घर छोड़ कर चला जाऊँगा।" और पैर पटकता हुआ वह अपने कमरे मे जा कर लेट गया।

दोपहर को उसकी माँ जब खाना खाने के लिए उसे बुलाने आयी तो वह छत की ओर टकटकी लगाये चारपाई पर लेटा था।

माँ चारपाई पर जा कर बैठ गयी और प्यार से बोली, "खाना नही खाओगे आज ?"

बिना उसकी ओर देखे रुखाई से चेतन ने कहा, "मुझे भूख नही।"

इस वाक्य के पीछे जो बवंडर छिपा हुआ था, वह शायद माँ से छिपा न रहा। खाना खाने के लिए फिर उसने नही पूछा।

कुछ क्षण तक चुप रह कर वह बोली—"आज ज्वाली महरी की लडकी आयी थी।"

चेतन चुप रहा।

"उसकी ससुराल भी तो बस्ती गजाँ ही मे है," माँ ने कहा "बेचारी बडी दुखी है। अभी दो वर्ष भी नहीं हुए कि उसका ब्याह हुआ था। फिर लडका भी कौन घर-घर का पानी भरने या कुल्फियाँ लगाने वाला था।[1] रेलवे मे पैंतीस रुपये पाता था। अभी छः महीने हुए उसके घर लड़का हुआ था। सब तरह आनन्द था...."

किसी पर उतार न सकने से चेतन के हृदय में क्रोध उमड़ा पड़ रहा था, पर ज्वाली महरी की इस मन्द-भाग्य लडकी के दुख की बात सुन कर जैसे वह कुछ क्षण के लिए सन्न हो कर बैठ गया।

---

१. पंजाब के धीवर (कहार) प्रायः घरों में पानी भरते है या मलाई की कुल्फियाँ लगाते हैं।

एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर और सहज ही भर आने वाली आँखो को पोछ कर माँ ने कहा, "आज वेटा वह विधवा है । कुछ ही दिन हुए उसके पति की वदली सम्मा-सट्टा की ओर किसी रेगिस्तानी स्टेशन पर हुई थी । वडी लाइन, दिन-रात का काम और रेगिस्तान की गर्म झुलसा देने वाली लू । वहाँ जाते ही उसे ज्वर हो आया । पर काम तो ज्वर की अपेक्षा नही करता । इससे पहले कि छुट्टी की प्रार्थना स्वीकार हो कर आती और उसके स्थान पर दूसरा वावू जाता, वह घर मे वेहोश हो कर पड़ गया । उस वीराने मे अपना कौन था ? दूसरे ज्वाली की लडकी वच्चे से थी और रेल का डाक्टर भी इन छोटे स्टेशनो पर कहाँ आता है । वेचारा अकेला चार-पाँच दिन वेहोश पड़ा रहा । यहाँ तक खवर पहुँची जव वह सभी व्याधियों से सदा के लिए मुक्त हो चुका था ।"

चेतन का क्रोध विलकुल जाता रहा । ज्वाली की लड़की के दारुण दु:ख से जैसे दु:खी हो कर उसने कहा, "तुम वीरो ही की वात कर रही हो न ?"

माँ ने कहा, "हाँ हाँ, उसी की ! उन्ही की गली के पास तो उनका घर है ।"

"किनका ?"

"पंडित दीनवन्धु का ।"

"कौन दीनवन्धु ?"

"वही जो आज वस्ती से आये थे ।"

"कौन ?" समझ कर भी चेतन ने न समझते हुए पूछा ।

माँ ने किंचित हँस कर कहा, "अरे वही जो आज तुम्हारे लिए आये थे । वातो-वातो मेँ वीरो से लड़की की वात चली थी । उसने कहा, "भाभी, लड़की तो ऐसी सुशील और हँसमुख है कि क्या कहूँ । स्वर तो इतना मीठा है कि जो दो मिनट उससे वात कर लेता है उस पर निछावर हो जाता है ।"

चेतन चुप रहा ।

माँ ने कहा, "बेटा, लड़कियाँ तो एक से एक बढ कर सुन्दर, सुशिक्षित मिल जाती है, पर सरल और सुशील लडकी का मिलना कठिन है । तू जा कर देख क्यो नही आता, न पसन्द होगी न करना !"

माँ यह कह कर चुप हो गयी और चेतन अपने मन-ही-मन उस भोली-भाली लडकी के चित्र बनाने लगा ।

कुछ देर बाद जब फिर माँ ने उससे खाना खाने के लिए कहा तो वह चुपचाप उठ खडा हुआ ।

०

माँ की बातो का, उस भोली-भाली लडकी की उस प्रशंसा का, जो बीरो से मिलने के बाद वह प्रतिदिन किया करती थी और उस लडकी को एक नजर देख आने के लिए माँ के अनुरोध का खयाल करके चेतन मन-ही-मन हँस पडा । सिनेमा के चित्रो की भाँति गत कई दिनों के दृश्य उसकी कल्पना के सम्मुख घूम गये और सिर नीचा किये वह उन्ही के विवेचन में मग्न चलता आया । उसे नही मालूम—कब वह अड्डे पर ताँगे से उतरा कब उसने पैसे दिये और कब वह इतने लम्बे, तंग, जन-संकुल बाज़ारो को पार करके इतनी दूर चला आया । जब उसने सिर उठाया तो वह चौरस्ती अटारी के समीप पहुँच गया था ।

संध्या के सूरज की अन्तिम मुस्कान ऊँचे श्वेत मकानो की छतो को सुनहरा बना रही थी । मुहल्ले के चौक मे केवल विधवा मसो का चर्खा अभी तक चल रहा था । शेप स्त्रियाँ अपने घरो मे जा कर काम-धन्धे मे जुट गयी थी । कुएँ पर भीड क्षण-प्रतिक्षण बढ रही थी और किसी पल भी झगडे की सम्भावना की जा सकती थी । कुएँ के पास ही जरा हट कर काले-कलूटे शरीर को लिये मोटा, बलिष्ठ तेलू भैसो की सानी-पानी का प्रबन्ध कर रहा था । कुर्ते की आस्तीने उसकी चढी थी और हाथ भूसे तथा खली के पानी से लिथड़े थे । खली की एक तीखी-सी बास मुहल्ले के चौक में फैल गयी थी ।

उस समय धीरे-धीरे चलता हुआ चेतन मुहल्ले मे दाखिल हुआ ।

चार

माँ रसोई-घर में बैठी खाना पका रही थी जब चेतन ने जा कर कहा, "देख आया हूँ तुम्हारी बस्ती वाली शहज़ादी ! उससे तो मैं सात जन्म शादी करने की बात नहीं सोच सकता ।"

माँ रोटी बेल रही थी । रुक कर उत्सुकता से उसने पूछा, "तुमने कहाँ देखा उसे ?"

"बस्ती में और कहाँ," चेतन ने उत्तर दिया ।

बेसब्री से माँ ने कहा, "तुम इधर आ कर बैठो तो मालूम हो । वहीं खड़े-खड़े क्या बातें कर रहे हो ।"

"अब जूते तो मैं उतारने से रहा," चेतन ने ज़रा हँस कर उत्तर दिया । "और फिर बातें ही ऐसी कौन-सी हैं, बस स्कूल से घर जाते समय देखा उसे ! मझोले क़द की भद्दी सुस्त लड़की है....।"

माँ रोटी बेलना छोड़ कर चौखट में आ खड़ी हुई । चेतन कहता गया, "अपने शरीर का, अपने कपड़ों का, अपनी किसी बात का उसे होश नहीं—बाल बिखरे, कपड़े मैले—ऐसी फूहड़ लड़की से मैं ब्याह करूँगा ? ठीक ही वह मेरी पढ़ाई में मुझे मदद देगी !"

"पढ़ाई," खीझ कर माँ ने कहा, "अब तुम और कहाँ तक पढ़ते जाओगे । बहुतेरा पढ़ लिया । नौकरी मिली है तो अब कुछ दिन उस पर टिको, शादी करो, घर बसाओ और ऐसे रहो जैसे दुनिया रहती है । तुमसे तीन-तीन वर्ष छोटे लड़के मुहल्ले ही में दो-दो बच्चों के बाप हैं । सालिगराम को देख लो, चरणदास को देख लो....।"

कटु हो कर चेतन बोला, "सारे-का-सारा मुहल्ला कुएँ में जा पड़े तो क्या मैं भी कूद पड़ूँ ? और नौकरी भी क्या मैं अभी छोड़ रहा हूँ । लाहौर जा कर पढ़ लेना भी कौन आसान बात है ? मैं तो उन महाशय की बात कर रहा था जो यह कहते थे कि लड़की समझदार है और मेरे

रास्ते की रुकावट न बनेगी।"

और यह कह कर चेतन उपेक्षा से हँस दिया।

माँ ने कहा, "तो बहुत ही कुरूप और फूहड़ है ? वीरो तो कहती थी....।"

"मैंने तुम्हें बता दिया न कि मोटी-मुटल्ली, ढीली-ढाली लडकी है। मोटे होंट और पिलपिला-सा मुँह, सुस्त इतनी दिखायी देती है कि क्या कहूँ। अपने कपड़े धोना, वाल सँवारना तक नही जानती।" फिर चबा-चबा कर कहने लगा, "वीरो कहती थी....वीरो कहती थी....वीरो....।"

पर माँ ने बात काट कर कहा, "वेटा सीधी लडकियाँ अच्छी होती है और बनाव-सिंगार—मैं तो इससे पहले ही जली वैठी हूँ। अपनी भावज ही को देख लो। वह ताश शतरंज में लगा रहता है, यह वनाव-सिंगार में; और मैं उनकी बाँदी वनी सारा दिन घर का काम करती रहती हूँ।"

चेतन ने हँस कर रद्दा जमाते हुए कहा, "तो यह तुम्हारा काम करेगी, इस आशा से हाथ धो रखो! माँ-बाप के लाड-प्यार में पली इकलौती लड़की है। हाथ से तिनका उसने कभी तोड़ा नही, यदि तुम अब बाँदी हो तो फिर भी बाँदी ही रहोगी, इसका मैं तुम्हे विश्वास दिला देता हूँ।"

"तो ऐसी निकम्मी लडकी को ले कर मैं क्या करूँगी ?"

तवे पर जो रोटी पडी थी, वह जलने लगी और जब तीखी गंध उड़ कर उन तक पहुँची तो झट माँ ने जा कर उसे उठाया। एक ओर से बिलकुल कोयला हो कर तवे से चिमट गयी थी। रोटी को एक ओर फेंक कर माँ ने चिमटे से तवे को साफ किया, कपडे से पोछा और नीचे आग को मन्द करके फिर रसोई-घर की चौखट पर आ खडी हुई।

चेतन जाने लगा था। उसे रोक कर माँ ने कहा, "तुम उन्हें चिट्ठी लिख दो।"

"चिट्ठी!" चेतन ने हैरानी से पूछा।

"हाँ, चिट्ठी के बिना वे बेचारे शायद दुविधा में रहें और शायद

तुम्हारे पिता के पास वे हो आये हों, इसलिए तुम उन्हें लिख दो।"

"क्या लिख दूँ ?"

"कोई वहाना वना दो। लिख दो, मैं अभी आगे पढ़ना चाहता हूँ, मैं जल्दी विवाह नहीं कर सकता। जो तुम्हें उचित लगे लिख दो।"

यह कह कर वह जल्दी से अपने आसन पर जा वैठी और रोटी वेलने लगी।

चेतन नीचे अपने कमरे मे गय', जल्दी-जल्दी उसने वह सूट उतार डाला, जिसे जाते समय पहनने में उसने आधा घंटा लगाया था। गले में कुर्ता पहन और कमर में तहमद कस कर वह वाहर अपने दोस्तों में गपशप करने निकल पडा। तभी ऊपर रसोई-घर की खिड़की से झाँक कर माँ ने कहा, "देखो देर न लगाना, जल्दी आ जाना, और वह 'वुढऊ' कहीं मिले तो उसे भेजना। आ कर खाना खा जाय, फिर मेरी ओर से चाहे सारी रात पड़ा ताश-शतरंज से सिर फोड़ा करे।" और फिर जैसे माँ ने अपने से कहा, "सुवह से खाना खा कर गया है, एक मिनट के लिए भी नहीं आया। भगवान शत्रु को भी ऐसी निकम्मी सन्तान न दे!"

पाँच

चेतन के वड़े भाई रामानन्द को माँ ने यों ही 'वुढऊ' की उपाधि न दे रखी थी। चेतन के दादा उनके विषय मे कहा करते थे: 'इसके सामने घी का घड़ा लुढक रहा हो तो यह हिलने का नाम न ले!' घर के सुख-दुख तो दूर रहे, अपनी परेशानियाँ भी उन्हें छू न पाती थी। पिता की डाँट-डपट, मार-पीट; माँ के गिले-शिकवे, कोसने-उलाहने; पत्नी के ताने-मेहने और रोना-रुठना—कोई वस्तु कभी उनकी निर्लिप्तता को भंग न कर पाती। एक विचित्र ढंग की, शुष्कता की सीमा को पहुँची हुई, वीतरागता उनकी

आकृति से सदैव टपका करती ।

यह वीतरागता उस ढीठपने ही का दूसरा रूप थी जो प्रायः रोज-रोज़ की डाँट-डपट या मार-पीट के कारण बच्चो में पैदा हो जाया करती है। चेतन के ये बड़े भाई, न केवल बचपन ही में अधिक पिटे थे, वरन् युवावस्था में भी उनकी खूब 'आवभगत' हुई थी। बचपन में पिता की निर्दयता के भय से माँ ने उन्हे अपने पीहर भेज दिया था। वहाँ मार-पीट से तो मुक्ति मिल गयी, किन्तु नानी सौतेली थी, इसलिए डाँट-डपट, ताने-मेहने आठों पहर उनके गले का हार रहे। चेतन के पिता रेलवे मे थे। जब वे 'रिलीविंग' मे हुए, माँ ने सब बच्चो को जालन्धर दाखिल करा दिया और नानी इस 'डहूस'[1] से तंग आ गयी तो माँ ने भाई साहब को भी जालन्धर बुलवा लिया। यहाँ नानी के सौतेले व्यवहार और नाना की रूखी-फीकी डाँट-डपट से पिंड छुटा तो पिता के तूफानी दौरे और तूफानी मार-पीट से पाला पडने लगा। चेतन के पिता पंडित शादीराम किसी दूरस्थ स्टेशन से किसी दूरस्थ स्टेशन को (छुट्टी पर जाने वाले किसी स्टेशन मास्टर का स्थान लेने के हेतु) जाते हुए जालन्धर से गुज़रते तो अपने इस आगमन की स्मृति के रूप मे अपने इस बडे लडके को सौ-पचास थप्पड और दस-बीस पटखनियाँ दे जाते।

चेतन या उसके छोटे भाइयो की अपेक्षा उसके ये बडे भाई ही क्यों अधिक पिटते? इसका कारण सम्भवत उन दो उपाधियो में निहित है जो माँ और नानी ने उन्हे दे रक्खी थी—'बुढऊ' और 'डहूस'।

वे बडे थे, इसलिए शायद पंडित जी की दृष्टि सबसे पहले उन्हीं पर पडती और प्रायः उन्ही को पंडित जी की 'कृपाओं' का भाजन बनना पड़ता।

या फिर नानी की उपाधि के अनुसार उन्होने ऐसा मन-मस्तिष्क और शरीर पाया था कि न उन पर मार-पीट का प्रभाव पड़ता और न वे उससे बचने का उपाय सोच पाते। पंडित शादीराम भी, जिन्हें मार-पीट

---

१. डहूस : मन्द-बुद्धि, मोटी खाल वाला बैल सरीखा व्यक्ति।

की कला में अपूर्व दक्षता प्राप्त थी, कई बार अपने बड़े बेटे की इस सहनशीलता से हार कर कह उठते, 'पीटते-पीटते मेरे हाथ दुखने लगते हैं, लेकिन इस 'ढहूस' के कान पर जूं भी नहीं रेंगती,' और उनके इस ढीठपने से चिढ़ कर वे पंजाबी भाषा की एक लोकोक्ति सुनाते :

दो पइय्याँ, विस्सर गइय्याँ
सदका मेरी ढूई दा[1]

पंडित जी साधारणतः पढ़ाई के सिलसिले ही में पीटते। यदि वे अपने किसी के बेटे के हाथ में पुस्तक देख लेते तो पहले मामूली तौर पर, बड़े स्नेह से, हँसते-हँसते, पुस्तक ले कर उसके दो चार पृष्ठ उलटते। फिर सहसा उसकी परीक्षा लेने के लिए (जैसी भी पुस्तक हो, उसके अनुसार) कोई अंग्रेज़ी, गणित, भूगोल अथवा इतिहास का प्रश्न पूछ बैठते। यदि उत्तर ठीक होता तो लड़के की पीठ ठोंकते, उसे उठा कर चूम लेते और प्रसन्नता से उसके भविष्य के सम्बन्ध में कई उत्साह-भरी भविष्यद्वाणियाँ करते हुए अपने उस जोश में और कठिन प्रश्न पूछते—परिणाम सदैव ठुकाई होता।

चेतन भी बचपन में दो-तीन बार पिटा था, इस बुरी तरह कि वह महीनों बीमार रहा था; किन्तु बचपन में पिटा सो पिटा, उसके पश्चात् यथाशक्ति उसने ऐसा अवसर न आने दिया। वह सदा उनकी मार-पीट से बचने; उनके सामने न पड़ने; जिस समय वे घर में हों, उस समय घर से ग़ायब हो जाने के बीसों बहाने सोच लेता। उसका छोटा भाई, छोटा होने पर भी, उसकी इस 'दूरदर्शिता' से लाभ उठा लेता और पिता की मार-पीट से बचने के उपाय सोचने और उन्हें कार्यरूप में परिणत करने में सदैव उसकी सहायता करता। वह बीमार पड़ जाता कि चेतन उसे डॉक्टर के पास ले जा सके; पीड़ा से कराहने लगता कि चेतन उसका सिर दबा सके; गुम हो जाता कि चेतन उसे ढूंढने का बहाना कर सके।

जब पंडित जी घर पर होते तो दोनो छोटे भाई सदा उनके सामने

---

१. दो पड़ीं भूल गयीं, सदक़े मेरी पीठ के !

जाने से बचने के बीस बहाने सोच लेते । वे इस बात का भी विशेष ध्यान रखते की पंडित जी आयें तो उन दोनों के हाथ में तो क्या, घर के किसी कोने मे भी उन्हे पुस्तक का कोई पृष्ठ तक न दिखाई दे । बाहर मुहल्ले ही से उनकी आवाज सुन कर वे पुस्तकें छिपाना आरम्भ कर देते । पंडित जी नीचे होते तो वे तुरन्त ऊपर की पुस्तकें छिपा देते और जब वे ऊपर आते तो बहाने से नीचे जा कर, वहाँ यदि कोई पुस्तक पड़ी हो तो उसे उड़ा देते । अपनी समस्त सतर्कता और चाबुकदस्ती के बावजूद यदि उन्हें पंडित जी के कमरे मे जाना पड़ जाता तो न केवल वे कभी हाथ मे पुस्तक न ले जाते, वरन् पंडित जी जिस कमरे मे हों, वहाँ यदि भूले से भी कोई पुस्तक पड़ी रह गयी हो तो बातों-बातों मे उसे बड़ी कुशलता से, उनकी दृष्टि बचा कर, उड़ा देते । यदि पंडित जी को गर्मी लग रही हो तो उन्हे इस जोर से पंखा करते कि उनका मन लेट जाने को चाहे । वे लेट जाते तो उनके पाँव तथा पिंडलियाँ इस निष्ठा से दबाते कि वे खुर्राटे लेने लगते ।

यदि इस समस्त सावधानी के बावजूद दुर्भाग्य उनका कोई वश न चलने देता, उनमे से कोई पंडित जी के चंगुल मे फँस जाता और पंडित जी उसकी परीक्षा लेने लगते तो दूसरा सदैव इस बात का प्रयास करता कि पंडित जी के किसी घनिष्ठतम मित्र को उनके आने का समाचार इस भाँति पहुँचा दे कि वह भागा-भागा पंडित जी से मिलने चला आये और भाई का गला छूटे ।

किन्तु चेतन के ये बड़े भाई (यों चाहे सदा उपन्यास पढते या आवारा-गर्दी करते) जब पंडित जी घर आते तो तुरन्त पुस्तकें ले बैठते । न केवल वे घर से गुम रहने या पंडित जी के समक्ष जाने से बचने के उपाय न सोचते, वरन् जब पंडित जी के घर आते तो वे सदैव घर ही मे बने रहते —सम्भवतः अपनी आवारागर्दी का हाल छिपाने और पढ़ने मे अपनी निष्ठा उन्हे बताने के लिए ! फिर चेतन और उसके छोटे भाई की-सी सतर्कता और चाबुकदस्ती भी उनके यहाँ न थी । वे न हाजिर-जवाब थे,

न जल्दी बहाने सोच सकते थे। पिटने पर भी वे सदा अपने पिता के साथ चिपके रहते और इसीलिए प्रायः घर तो घर, बाजार मे भी पिटते।

पंडित जी पुस्तक देख कर ही प्रश्न पूछते हो, यह बात न थी। कई बार सहसा वे ऐसे समय और ऐसा प्रश्न पूछते, जिसकी रत्ती भर भी सम्भावना न होती।

०

....एक बार वे एक दावत के सिलसिले मे, (पूर्ववत भाई साहब साथ थे) सड़क की ओर से जाने के बदले लाइन-लाइन, थानेदार के यहाँ जा रहे थे कि सहसा एक सिगनल की ओर सकेत करके उन्होने पूछा "इसे अग्रेजी मे क्या कहते है ?"

भाई साहब ने तुरन्त उत्तर दिया, "सिगल !"

और धड़ से एक थप्पड़ उनके मुँह पर पडा, "साले, यह पंजाबी भाषा का नही, अंग्रेजी का शब्द है। स्टेशन मास्टर का लड़का हो कर गँवारों की तरह 'सिगल सिगल' बके जा रहा है।"

दो और थप्पड़ जडते हुए उन्होंने वैसे ही और शब्द पूछे। थानेदार बेचारे बढिया पुरानी देशी शराब रखे उनकी प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु पंडित जी भाई साहब की मरम्मत करते हुए रास्ते ही से लौट आये।

०

....'चीचोकी मलियाँ' स्टेशन के सामने एक मिलिट्री का डिपो था। चेतन के बड़े भाई उस समय आठवी श्रेणी मे पढते थे और चेतन छठी मे। वह पहली बार अपने बडे भाई के साथ चीचोकी मलियाँ आया था। एक दोपहर जब अपने पिता के साथ वे दोनो डिपो के सामने से जा रहे थे, चेतन ने सहसा अपने भाई से प्रश्न किया, "यह बैरक-सी क्या है, भरा जी ?"

भाई साहब ने बोर्ड पढते हुए बताया, "चीचोकी मलियाँ मिलिट्री डिपोट...."

अभी उन्होने वाक्य पूरा भी न किया था कि पूरे जन्नाटे के साथ एक

थप्पड़ उनकी कनपटी पर पड़ा और उनकी आँखों के आगे तारे नाचने लगे, "आठवी मे पढ़ता है और यह भी मालूम नहीं कि शब्द 'डिपो' है, 'डिपोट' नही ।"

और पंडित जी ने काँटे वाले से वहीं कुर्सी मँगायी और भाई साहब से पुस्तक लाने को कहा । चेतन पानी पीने के बहाने खिसक गया । पीछे भाई साहब की जो दशा हुई उसका अनुमान लगाया जा सकता है ।

०

....उन दिनों चेतन स्वयं आठवी श्रेणी मे पढ रहा था उनका नया मकान अभी पूरा न बना था और वे सब मुहल्ले के साथ ही 'खोसलों की गली' मे एक विधवा का मकान किराये पर ले कर रहते थे । उसकी गणित की परीक्षा थी और घर पर पडित जी (मकान बनवाने के हेतु छुट्टी ले कर) आये हुए थे ।

०

चेतन को गणित से तनिक भी लगाव न था । वह सदैव सौ मे से एक-दो नम्बर ही पाता । ये एक-दो नम्बर भी उसकी योग्यता की अपेक्षा अध्यापक की उदारता ही का प्रमाण होते । वार्षिक परीक्षा मे रेखागणित ही उसकी सहायता करता ।

बात यह थी कि बचपन ही से उसका गणित कमजोर और अंग्रेजी अच्छी थी । पंडित शादीराम ने उसका गणित सुधारने की ओर कभी ध्यान न दिया था और उस समय जब उसे दूसरी का गणित भी न आता था, तीसरी कक्षा मे दाखिल करा दिया था । उन्हे विश्वास था, कि वह एक ही वर्ष मे दो कक्षाओ का गणित सीख लेगा । इसीलिए स्कूल ही के एक अध्यापक की ट्यूशन भी उसे रख दी थी । यद्यपि वे महाशय वर्ष भर उसे गणित पढाते रहे और चेतन उन महाशय के कारण तीसरी श्रेणी मे पास भी हो गया तो भी गणित में वह कोरे-का-कोरा ही रहा । रहता भी क्यों न, जब कि अध्यापक महाशय उसे गणित का अभ्यास कराने की अपेक्षा उससे हुक्का भरवाते और पांव दबवाते । गणित मे यह कमज़ोरी धीरे-

धीरे उस विषय से अरुचि और फिर घृणा में परिणत हो गयी और फिर ऐसा हुआ कि गणित की पुस्तक देख कर ही चेतन एक विचित्र प्रकार की उदासीनता और उकताहट अनुभव करने लगा।

०

उस दिन यद्यपि परीक्षा चार बजे ही समाप्त हो गयी थी, किन्तु चेतन बड़ी देर बाद घर पहुँचा—इस आशा से कि उसके पिता अपने अभिन्न-हृदय-मित्र देसराज के साथ बाजार शेखाँ की शोभा बढ़ाने चले गये होंगे। पर, कदाचित उस दिन देसराज आया न था, या पंडित जी की जेब में मदिरा के लिए पर्याप्त पैसे न थे या कोई और कारण था, नियम के विरुद्ध वे घर ही पर थे। चेतन के जाते ही उन्होंने डाँट कर पूछा, "कहाँ मर गये थे? अब परीक्षा समाप्त हुई है तुम्हारी?"

चेतन का गला सूख गया। उसकी आँखों में धुँधियाली-सी छा गयी। हकलाते हुए उसने जो बहाना बनाने की चेष्टा की, उसे पंडित जी ने बीच ही में काट दिया और उससे प्रश्न-पत्र माँगा।

काँपते हाथों से चेतन ने पेपर अपने पिता की ओर बढ़ा दिया।

झटके के साथ पेपर उसके हाथों से छीनते हुए उन्होंने पूछा "कितने प्रश्न ठीक हैं?"

यद्यपि चेतन का एक भी प्रश्न ठीक न था तो भी उसने कहा कि उसके पाँच प्रश्न ठीक हैं। सहपाठियों से सुने हुए ठीक उत्तर उसने अपने पिता को बता दिये और अपने इस झूठ को सत्य का रंग देते हुए उसने यह भी कहा कि केवल 'काम और वक्त' और 'सूद-दर-सूद' के प्रश्न उसकी समझ में नहीं आये।

इससे पूर्व कि पंडित जी ठीक प्रश्नों के विषय में उसके सत्य की जाँच करते, उन्होंने 'काम और वक्त' का प्रश्न पढ़ा और बोले "इसमें मुश्किल क्या है? कौन-सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आयी?"

चेतन मुँह ही में कुछ बड़बड़ा कर रह गया।

"जाओ अपनी पुस्तक लाओ।"

उस समय भाई साहब ने, जो उन दिनों मैट्रिक में पढते थे, अपने पिता से पेपर लिया और प्रश्न पढ़ कर बोले, "यह तो बिलकुल आसान है।"

चेतन ने एक क्रोध-भरी दृष्टि अपने भाई पर डाली और धीरे-धीरे उस व्यक्ति की-सी चाल से लडखडाता हुआ पुस्तक लेने चला जिसके भाग्य का निर्णय, मृत्यु के रूप मे, जज ने सुना दिया हो।

भाई साहब ने इस बीच में प्रसन्नता पूर्वक लैम्प ला कर उसकी चिमनी को साफ़ किया, बत्ती काटी, तेल भरा और उसे चौकी पर रख कर जला दिया। इस ओर से निश्चिन्त हो कर वे अपने पिता के लिए हुक्का भर लाने को चले गये। जब इतने पर भी चेतन पुस्तक ले कर न आया तो उसके पिता गरजे। तब माँ ने आ कर रुआँसे स्वर से कहा कि भूखा था, खाना खा रहा है....।

चेतन ने बैठे-बैठे यह बात सुनी। उसके पेट मे एक गोला-सा उभर कर उसके कंठ तक आ गया। यदि नीचे न जाना होता तो वह फूट-फूट कर रो उठता, किंतु किसी प्रकार अपनी समस्त शक्ति से अपने-आपको संयत रख, दो कौर किसी-न-किसी तरह निगल कर वह उठा। उसके पाँव मन-मन भर के हो रहे थे। उसे कुछ दिखायी न दे रहा था। पुस्तक यद्यपि ताक ही मे पडी थी, फिर भी उसे ढूँढने मे उसे काफ़ी देर लग गयी। इतने मे उसके पिता की गरज फिर सुनायी दी। काँपते हुए रुआँसे स्वर मे 'आया जी' कह कर, पुस्तक स्लेट और पेंसिल ले, वह चीटी की-सी चाल से नीचे को चला। उस समय उसे ऐसा लग रहा था जैसे प्रत्येक सीढी उसे किसी गहरे अँधेरे गर्त्त मे लिये जा रही है। उसका शरीर रेंगते हुए उस गरीब घोंघे की तरह अपने-आप मे सिकुड़ा-सा जा रहा था, जिसने संकट का स्पर्श पा लिया हो।

जब वह जा कर पंडित जी के सामने बैठ गया तो उन्होंने स्लेट पेंसिल और पुस्तक ले कर उसे एक उदाहरण समझाया कि यदि पच्चीस मजदूर एक खेत को पाँच दिन मे काटते है तो पाँच मजदूर उसे पच्चीस दिन मे

काटेंगे । और उन्होंने उसे समझाया कि काम करने वालों की संख्या अधिक हो तो समय कम हो जाता है और कम हो तो अधिक ।

चेतन का वह भय जो मार-पीट की निकट सम्भावना से उत्पन्न हुआ था, कुछ दूर हो गया । भय के दूर होने के कारण घोंघा फिर खोल से बाहर निकलने लगा । चेतन फिर सम्हल कर बैठ गया और ध्यान से समझने लगा । उस समय उसे न जाने कैसी एकाग्रता प्राप्त हो गयी कि वह प्रश्न जो गणित से घृणा होने के कारण कभी उसकी समझ मे न आया था, अपनी समस्त सूक्ष्मता के साथ तुरन्त उसकी समझ मे आ गया । वास्तव मे उसने कभी समझने का प्रयास ही न किया था । उस समय मार के भय से, या समझने वाले के सामीप्य के कारण प्रश्न की समस्त जटिलता सर्वथा स्पष्ट हो कर उसकी समझ मे आ गयी ।

जब चेतन के पिता ने उससे पूछा कि प्रश्न उसकी समझ मे आ गया है या नही तो उसने 'हाँ' सूचक सिर हिलाया ।

तब पंडित जी ने उससे योंही एक मौखिक प्रश्न पूछा । चेतन ने झट उसका उत्तर बता दिया । फिर वे उससे प्रश्न करते गये और चेतन उत्तर देता गया । हर बार वे प्रश्न को जटिल बनाते गये यहाँ तक कि उन्होने एक खासा मुश्किल प्रश्न उससे पूछा ।

चेतन का साहस बँध गया था । उसने कहा, "जी मैं तनिक सोच कर बताता हूँ ।"

चेतन की मेधा-शक्ति से प्रसन्न हो कर उसके पिता ने उसे सोचने का समय दे दिया और जब सोचने पर भी उसने डरते-डरते कहा, "जी यह मेरी समझ मे नहीं आया," तो सहसा पंडित जी की दृष्टि मूर्खो की तरह मुँह बाये बैठे अपने बडे लड़के पर चली गयी । और उन्होने जैसे बन्दूक दागी, "तू बता !"

भाई साहब सिटपिटाये ! काफ़ी सोचने के बाद उन्होंने जो उत्तर दिया, उसकी दाद मे एक जोर का थप्पड़ उनके गाल पर पड़ा ।

"मैट्रिक मे पढ़ता है साले और आठवी क्लास का प्रश्न नही आता ।"

और पंडित जी ने अपनी कृपा-दृष्टि को चेतन के बदले भाई साहब की ओर मोड़ दिया।

o

मैट्रिक तक मार-पीट के बल पर किसी-न-किसी तरह पढ कर भाई साहब कॉलेज मे दाखिल तो हो गये, किन्तु परीक्षा मे सफल होना उन्होंने उतना आवश्यक नही समझा। वे अंग्रेजी मे कमजोर थे, किन्तु संस्कृत से तो जैसे उनके प्राण जाते थे। यह बात वे कभी न समझ पाते कि यह क्लिष्ट भापा, जो न किसी सरकारी नौकरी मे काम आती है, न किसी व्यापारिक दफ्तर मे, जो आर्यो के समय मे भी जन-साधारण की भाषा न थी, आज-कल क्यो पढायी जाती है ?, क्यों आवश्यक है कि संस्कृत या अरबी-फ़ारसी मे से एक विषय अवश्य लिया जाय। इसके स्थान पर किसी ललित कला या शिल्प की शिक्षा क्यों नही दी जाती, जिसमे वे निश्चय अपने जौहर दिखा सकते थे। और एक दिन गर्मी की छुट्टियों से पहले तीन महीने की फीस ले कर वे दिल्ली भाग गये थे और वहाँ एक पेंटर की दुकान पर शिष्य हो गये थे। दुर्भाग्य से पंडित शादीराम के एक पुराने मित्र ने उन्हे देख लिया और इस प्रकार भाई साहब को न केवल विवश हो कर लौट आना पड़ा, बल्कि उसी कॉलेज मे फिर से शिक्षा पाने के लिए वाध्य होना पड़ा।

पिता की कठोरता से भाई साहब घबराये नही। मार के भय से वे कॉलेज मे दाखिल भी हो गये, किन्तु क्लास मे वैठ कर प्रोफेसरों के शुष्क लेक्चर सुनने की अपेक्षा कॉलेज के सुहाने उपवन के किसी घने वृक्ष की छाया मे वैठ कर नित्य-नये मनोरंजक उपन्यास पढने लगे। वे सब उपन्यास भाई साहव 'महन्तराम वुक सेलर' का दुकान से, दो पैसे प्रतिदिन के हिसाव से, किराये पर ले आते। महन्तराम की दुकान 'भैरो वाजार' मे थी और उसमे फजल वुक डिपो, लाहौर से ले कर नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ तक सभी प्रकार की संस्थाओ से छपी हुई पुस्तकों के ढेर लगे रहते थे। भाई साहव वह राशि-राशि ज्ञान दीमक की भाँति चाट गये थे और

साहित्य के उस महान्-कोष को चाट जाने पर भी वे दीमक ही की तरह कोरे-के-कोरे थे ।

उपन्यास वे केवल मन बहलाव या समय काटने के लिए पढते थे, मनन-चिन्तन के लिए नही । इसी कारण जिस उल्लास और उत्सुकता से वे 'वेगुनाह कैदी', 'नीली छतरी', 'बहराम डाकू', 'चन्द्रकान्ता संतति', 'भोलानाथ' और तीरथराम फिरोजपुरी के अनुवाद आदि पढ गये थे, उतने ही आनन्द से वे बंकिम चन्द्र, टैगोर, शरत् और प्रेमचन्द के उपन्यास निगल गये थे ।

परिणाम वही हुआ जिसकी उन्हे आशा थी । उनकी हाजरियाँ कम हो गयी, और यद्यपि पंडित शादीराम ने अपने सिद्धान्त 'तेल तमाँ जिसको मिले, तुरत नरम हो जाय' के अनुसार प्रोफ़ेसरो को रिश्वत देने का प्रयास भी किया और दूसरे विपयो मे किसी तरह भाई साहब के लेक्चर पूरे भी हो गये, किन्तु संस्कृत के प्रोफेसर को वे किसी भाँति राम न कर पाये । भाई साहब परीक्षा मे न बैठ सके और जब एक बार नही बैठे तो फिर नही बैठे ।

कॉलेज से पिंड छूटा तो भाई साहब ने जीविकोपार्जन की चिन्ता करने की अपेक्षा ताश और शतरंज को अपना साथी बनाया । इसमे कुछ उनका दोप था, कुछ उनके पिता का जब भाई साहव दिल्ली से आ गये तो माँ के परामर्श से पंडित जी ने इस चंचल 'बोते'[1] को बाँधने के विचार से, उसकी नाक में नुकेल डालना आवश्यक समझा । अपने एक स्टेशन मास्टर मित्र की लड़की से उनकी सगाई कर दी । जब भाई साहब परीक्षा मे बैठने के स्थान पर घर बैठ गये तो उन्हे किसी काम पर लगाने या कोई कला-कौशल सिखाने के बदले पंडित जी ने उनकी शादी कर दी ।

इसके बाद, यद्यपि दूसरे वर्ष भाई साहब ने कॉलेज जाने से साफ इन्कार कर दिया, तो भी पंडित जी को उन्हे नौकर कराने की चिन्ता नही हुई । एक बार माँ के अनुरोध से तंग आ कर वे उन्हे ऑडिट आफ़िस मे,

---

१. ऊँट ।

अपने एक मित्र के पास, अवश्य ले गये, किन्तु जब उसने उन्हें केवल पैंतीस रुपये मासिक पर 'ऑफिस ब्वाय' रखने से अधिक कुछ करना स्वीकार न किया तो पंडित जी ने अपने उस मित्र को बीसियों गालियाँ दीं और कहा कि : "पैंतीस रुपये तो मैं रोज शराब पर खर्च कर देता हूँ साले।" और अपने इस थर्ड डिविजन मैट्रिक पास सुपुत्र को ले कर चले आये।

फिर यद्यपि पंडित जी ने उनकी नौकरी लगाने के हेतु फ़िरोजपुर, लाहौर और दिल्ली जाने के लिए, चेतन की माँ से कई बार रुपये लिए, किन्तु वे बाज़ार शेखाँ के साक़ी की दुकान तक हो कर ही लौट आये।

रहे भाई साहब, तो उन्होंने अपने लिए माँटो बना रखा था : 'सोचो मत।' इसी माँटो पर अक्षरशः चलने का परिणाम था कि इस बेकारी और बेरोजगारी के होते भी एक लड़का और दो लड़कियाँ उनके यहाँ हो गयी थीं। एक मर चुकी थी और दूसरी को उनकी पत्नी कूल्हे से लगाये फिरती थी और वे स्वयं अपने इन बीवी-बच्चों को पालने के लिए कहीं नौकरी ढूँढने की बात एकदम भुलाये, गुलछर्रे उड़ा रहे थे। कभी जब माँ या पत्नी घर में उनका नाक में दम कर देतीं और ऐसे तीखे व्यंग्यबाण छोड़तीं कि भाई साहब सोचने को विवश हो जाते तो वे आँगन में किसी औंधी बाल्टी पर या दरवाजे की किसी चौखट में कुछ क्षणों के लिए घुटनों पर कुहनियाँ टिकाये, हथेलियों पर ठोड़ी रखे, अतीव एकाग्रता से सोचने की मुद्रा बना कर बैठ जाते। सम्भवतः वे सोचना भी चाहते, किन्तु इस क्षेत्र में अपने-आपको सदैव उस खिलाड़ी-सा पाते जिसे खेल का आरम्भिक-ज्ञान भी न हो। कुछ क्षण इसी मुद्रा में बैठे रहने के बाद सहसा सिर को झटक कर वे उठते और सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान या पंडित बनारसीदास सूत वाले की दुकान पर जा कर किसी ताश या शतरंज की टोली में सम्मिलित हो जाते। धीरे-धीरे वे उस क्षेत्र में अपना स्थान बना लेते। ताश और शतरंज में उनकी अपूर्व प्रतिभा के सम्मान में कोई-न-कोई खिलाड़ी उनको अपना स्थान दे देता और फिर एक बार जूते एड़ियों से ठकोर कर झाड़ने के बाद वे जम कर जो बैठते,

तो दूसरो को अपनी योग्यता का लोहा मनवाये बिना न उठते ।

किन्तु चेतन की माँ अपने इस बेटे की बेकारी और अकर्मण्यता तथा उसकी बहू के कर्कश, झगडालू, स्वभाव से अत्यन्त दुखी थी । जब अपने सुपुत्र को काम में लगा देखने के लिए पिता के समस्त प्रयत्न शराबखाने तक जा कर ही समाप्त हो गये तो माँ ने कही से ऋण ले कर उसे एक लॉन्ड्री खोल दी ।

बात वास्तव मे यों हुई कि भाई साहब के प्रिय मित्र सरदार नन्दासिह सोडावाटर वाले की दुकान पर, जहाँ शीतकाल मे सोडे का बाजार सर्द और शतरंज की महफ़िल गर्म रहती थी, फिरोजपुर का एक व्यक्ति आया, जो शतरंज का जबरदस्त खिलाड़ी था । उसने पहली ही बैठक मे भाई साहब को, जो उस इलाके मे शतरंज के चैम्पियन माने जाते थे, निरन्तर कई बार मात दे दी ।

जब बिसात उठी तो एक सच्चे खिलाड़ी की तरह भाई साहब ने उसके खेल की भूरि-भूरि प्रशंसा की और लेमोनेड की एक बोतल खोलते हुए उसे दूसरे दिन के लिए आमंत्रित किया । तब उसने बताया कि वह तो काम की खोज मे जालन्धर आया है । उधर से निकला था, शतरंज बिछी देख कर बैठ गया, नही उसे तो काम-धन्धा ढूंढना है । भाई साहब का कुतूहल बढा और वे उसे उसके अड्डे—स्टेशन की सराय तक छोड़ने गये । बातों-बातों मे उन्हें यह ज्ञात हो गया कि उसका नाम राजाराम है । वह लॉन्ड्री के काम मे निपुण है, धोने और रँगने मे दोआबा (सतलज और व्यास नदी के मध्य का प्रदेश) भर मे उसका कोई साथी नही । किसी समय फ़िरोजपुर ही मे उसकी लॉन्ड्री थी, किन्तु १९२१ के असहयोग आन्दोलन मे वह जेल चला गया और उसकी लॉड्री चौपट हो गयी । जेल मे उसने दो चीजे सीखी—एक शतरंज, दूसरे राष्ट्रीय कविता । भाई साहब को उसने अपने कई बैत सुनाये और यह भी बताया कि वह प्रसिद्ध

डायर और ड्राइक्लीनर[1] होने के साथ-साथ ही ख्याति प्राप्त राष्ट्रीय कवि भी है। फिरोज़पुर मे उसकी रँगाई-धुलायी के साथ उसके बैतों की भी धूम है। जब लाहौर कांग्रेस के लिए सरकार ने मिटो पार्क देना स्वीकार न किया था तो उसी ने यह प्रसिद्ध बैत लिखा था।

मिंटो पार्क नूँ ले जाओ वई लन्दन चुक्क के।
असाँ रावी ते झंडा झुलावांगे वई ॥[2]

कि एक बार लॉन्ड्री टूटने पर उसने कई बार पुनः लॉन्ड्री स्थापित करने का प्रयास किया, पर उसे सफलता नही मिली। अब फ़िरोजपुर छोड कर वह जालन्धर आया है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाय, जो थोड़ी बहुत पूँजी लगाने को तैयार हो तो साझे मे लॉन्ड्री खोले।

शतरंज के इस कुशल खिलाड़ी और राष्ट्रीय कवि के दुर्भाग्य से भाई साहब को बड़ी सहानुभूति हुई, किन्तु शतरंज और ताश की चैम्पियनशिप के अतिरिक्त उनके पास कुछ न था। फिर भी उन्होने उसे दूसरे दिन आने के लिए कहा और सान्त्वना दी कि वे उसके लिए कुछ-न-कुछ प्रबन्ध अवश्य करेंगे।

उस दिन दिये जले जब चेतन घर आया तो उसने देखा कि माँ बर्तन मल रही है और उसके पास ही एक औंधी बाल्टी पर बैठे हुए भाई साहब लॉन्ड्री के काम की प्रशंसा के पुल बाँध रहे है।

"हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा आये," वे कह रहे थे, "कपड़े लोगों के, और धो कर देने वाले धोबी, लॉन्ड्री वाले को तो मुफ़्त मे लाभ हो जाता है। कोई ही ऐसा बिजनेस होगा जो इतनी कम पूंजी से आरम्भ किया जा सके और जिसमे इतना अधिक लाभ हो।"

चेतन उस समय जल्दी मे था, इसलिए उसने भाई साहब की पूरी बात नही सुनी, किन्तु उस दिन के पश्चात् उसने देखा कि लॉन्ड्री के काम

१. रँगने और धोने वाला। २. मिंटो पार्क को लन्दन उठा कर ले जाओ, हम अपना झंडा रावी पर झुलायेंगे।

मे भाई साहब का उत्साह उत्तरोत्तर बढ रहा है। दिन का पर्याप्त समय वे घर ही मे रहने लगे है, ड्राई क्लीनिंग और डाइंग की कला मे उन्हे पर्याप्त दक्षता प्राप्त होती जा रही है और जितना समय वे घर पर रहते है, माँ को लॉन्ड्री के काम के लाभ समझाते रहते है....।

एक दिन उसने सुना भाई साहब कह रहे थे, "यदि मै ताश-शतरंज मे व्यर्थ समय नष्ट करता रहा तो इसमे मेरा क्या दोष है। मुझे किसी ने कोई कला-कौशल सिखाया ही नही। मै दिल्ली भाग गया था, यदि मुझे वहाँ से वापस न बुलाते तो मै अब तक वहाँ प्रसिद्ध पेंटर हो गया होता। अब भी अगर मैं लॉन्ड्री का काम सीख जाऊँ तो न सिर्फ़ अपना, बल्कि सारे परिवार का बोझ अपने कन्धो पर उठा लूँ।"

माँ बहुत प्रसन्न हुई कि अन्त मे सुबह का भूला शाम को घर आ गया है। उसी दिन से वह इस बात का जतन करने लगी कि अपने इस बेटे को किसी-न-किसी प्रकार लॉन्ड्री के लिए रुपये इकट्ठे कर दे। सुयोग भी आ उपस्थित हुआ। पंडित शादीराम को उन दिनो 'सट्टे' की नयी-नयी लत लगी थी। दुनिया भर के साधु-सन्तों, पीरो-फ़क़ीरों की सेवा-सुश्रूषा के पश्चात् वे इसी व्यसन के कारण खासे ऋणी भी हो गये थे। तभी उन्हे जालन्धर छावनी के एक पहुँचे हुए ज्योतिषी का पता चला। बस वे पन्द्रह दिन की छुट्टी ले कर जालन्धर आ पहुँचे। जालन्धर से छावनी और छावनी से जालन्धर, बीसियों चक्कर काटने और उन ज्योतिषी जी की चौखट पर निरन्तर माथा रगड़ने के बाद उन महाराज के दर से उन्हे 'दड़े'[१] का नम्बर मिला और इसे भाई साहब का भाग्य कहिए या उनके फिरोजपुरी मित्र का कि वह नम्बर आ गया और पंडित जी को साढ़े तीन हजार रुपये मिल गये।

यद्यपि उस समय पंडित जी के सिर पर लगभग उतना ही ऋण था और माँ की इच्छा थी कि परमात्मा ने जब उनको सुअवसर दिया है तो

१. दड़ा = सट्टा = एक तरह की लाटरी है जिसमें १०० तक नम्बर होते है। जिनका नम्बर आ जाता है उन्हें सौ गुना पैसे मिलते हैं।

उन्हें उसका पूरा लाभ उठा कर सट्टे को सदैव के लिए 'नमस्कार' कह देना चाहिए, किन्तु पंडित जी अपने भगवान् को इतना कृपण न समझते थे, पत्नी के उपदेश-भरे परामर्श के उत्तर में, "भगवान तेरी लीला अपरम्पार है?" का नारा बुलन्द करते हुए उन्होंने कहा, "जिस भगवान ने एक बार दिया है, वह फिर क्यों न देगा ?" और केवल डेढ़ हज़ार का ऋण उतारा; फल, मिठाई, कपड़ों और रुपयों का एक थाल ज्योतिषी जी के घर पहुँचाया और शेष रुपया अस्सी-नब्बे प्रतिदिन के हिसाब से सट्टे पर लगाते रहे, किन्तु जब माँ ही की बात पूरी हुई कि वह तो भगवान ने उन्हें सुधरने का एक अवसर दिया था, नहीं लक्ष्मी यों मारी-मारी नहीं फिरती तो सारा रुपया ठिकाने लगा कर, डेढ हज़ार का फिर साढ़े तीन हज़ार ऋण बना कर और माँ को 'काल जीभी'[१] की उपाधि से विभूषित करके वे पुनः अपने स्टेशन पर चले गये।

माँ ने भाई साहब की प्रेरणा और सहायता से जैसे-तैसे उस रुपये में से तीन-चार सौ बचा लिया था। दो-तीन सौ कहीं से उधार लिया और लॉन्ड्री खोलने की व्यवस्था कर दी।

उन दिनों भाई साहब का उत्साह अपने शिखर पर था। उनके पाँव धरती पर न पड़ते थे। बडे तमतराक से उन्होने अड्डा होशयारपुर पर एक तवेला किराये पर लिया, कपड़े धोने के लिए घाट बनवाये और बड़े-बड़े विज्ञापनों के साथ, जिनमें उनके मित्र फ़िरोजपुरी राष्ट्रीय कवि ने अपने बैंतों में लॉन्ड्री के गुणों का बखान करने में बड़ी उदारता से काम लिया था, 'भारत लॉन्ड्री वर्क्स' की घोषणा कर दी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस लॉन्ड्री में राष्ट्रीय कवि बराबर के साझीदार थे।

लॉन्ड्री खोलने में भाई साहब ने इतनी निष्ठा और लगन का परिचय दिया कि चेतन को आप-से-आप उनकी सहायता के लिए तैयार होना पड़ा। अपने कॉलेज के होस्टल, स्कूल के होस्टल, अपने कॉलेज और स्कूल ही के नहीं, वरन अपने मित्रों की सहायता से दूसरे स्कूलों के होस्टलो से भी

---

१. काली जीभ वाली।

और गालियाँ सुनते-सुनते उसके कान पक गये, किन्तु उसने अपने मित्रों से कह दिया कि भाई साहब लॉन्ड्री से अलग हो गये हैं और अब इस विषय में उनके फ़िरोज़पुरी मित्र ही से पूछ-ताछ की जाय।

भाई साहब ने जिस निष्ठा से लॉन्ड्री खोली थी, उससे कही अधिक निष्ठा से वे राष्ट्र-सेवा मे निमग्न हो गये। दिन रात वे काँग्रेस के काम मे व्यस्त रहते। कहीं चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं, कही झंडे को सलामी दे रहे हैं, कही जुलूस निकाल रहे हैं और कही सभा की व्यवस्था कर रहे हैं। घर वालों को उनके दर्शन भी दुर्लभ हो गये। अपने लम्बे छरहरे शरीर पर खादी की शेरवानी और खादी ही का चूड़ीदार पायजामा पहने, सिर पर तिरछी गाँधी टोपी रखे वे शुतर-बे-मुहार[1] की तरह घूमते और घर वालों को इस प्रकार देखते मानो वे किसी नाली में किल-बिलाने वाले अत्यन्त उपेक्षणीय, हेय, अन्धे, बुच्चे कीड़े हो।

चेतन के मन मे अपने भाई का सम्मान, घर मे नित्य नयी दी जाने वाली गालियो के बावजूद, बढने लगा कि उसे काँग्रेस की एक सभा देखने का सुयोग मिला और उसे ज्ञात हो गया कि भाई साहब के लिए काँग्रेस की डिक्टेटरी भी लॉन्ड्री से अधिक महत्त्व नहीं रखती।

०

उस दिन भाई साहब ने उससे अनुरोध किया था कि वह उस दिन की सभा देखने अवश्य आये और उन्होंने बताया था कि प्रेस के विषय मे सरकार ने जिस कठोरता की नीति से काम लिया है, उसके विरुद्ध प्रोटेस्ट के तौर पर समाचार-पत्र बन्द हो गये है। देश मे चारो ओर विरोध सभाएँ हो रही है। इसी सम्बन्ध में उन्होने भी सभा की व्यवस्था की हैं; जिसमे वे स्वयं एक बहुत ज़ोरदार भाषण देने जा रहे हैं। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उन्हें सभा मे गिरफ़्तार कर लिया जाये। उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि वह उनका भाषण सुनने अवश्य आये और चलते-चलते यह भी कहा कि यदि सम्भव हो तो एक-आध हार ज़रूर खरीद कर लेता आये।

---

१. शुतर-बे-मुहार : बेलगाम का ऊँट।

चेतन उस दिन एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास पढ़ रहा था। यद्यपि उपन्यास को बीच ही मे छोड़ कर जाना उसे बड़ा अप्रिय लगता था, तो भी भाई साहब का अनुरोध था और फिर इस बात की आशंका भी थी कि जाने वे उस दिन पकड़ लिये जायँ और जाने कितने वर्षो के लिए जेल की कोठरी मे ठूंस दिये जायँ, इसलिए पुस्तक को हाथ ही मे लिये वह चल पड़ा और भाई साहब की इच्छानुसार उसने रास्ते मे फूलों का एक हार भी खरीद लिया।

जब वह चौक इमाम-नासरुद्दीन मे पहुँचा तो सभा प्रारम्भ हो चुकी थी। वह एक ओर खडा हो गया। उसने देखा कि डाइंग और ड्राइक्लीनिंग के विशेषज्ञ, राष्ट्रीय-कवि, सभापति के आसन की शोभा बढा रहे है और भाई साहब एक समाचार-पत्र से किसी नेता का वक्तव्य पढ रहे है (इसी को शायद वे भाषण देना कहते थे) उनके हाथ काँप रहे है; उनकी टाँगें काँप रही है, यहाँ तक कि तख्त और उस पर रखी हुई मेज भी काँप रही है।

तभी एक ओर से जनता उठ खड़ी हुई और 'पोलीस,-पोलीस' का शोर मच गया। इस भगदड़ मे चेतन हाथ मे हार लिये हुए समीप ही खड़ी एक बैलगाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे क्षण उसे पता चला कि जिसे लोग पुलिस समझते थे, वह तो एक भयभीत साँड़ है। न जाने किस मसखरे ने उसे सभा की ओर भगा दिया था। कभी वह डर कर एक ओर जाता, कभी दूसरी ओर; किन्तु जब साँड़ भय की सीमा पार कर निर्भीक हो गया तो श्रोताओ ने, जो भाषण सुनने की अपेक्षा यह तमाशा देखने लगे थे, उसे रास्ता दे दिया। लोग फिर इकट्ठे होने लगे। चेतन भी बैलगाड़ी से उतर कर सभा के मध्य मे रखे हुए तख्त की ओर बढ़ा। उस समय उसने देखा कि वहाँ न सभापति महाशय है और न वक्ता महोदय और लोग मंच पर चढ कर हुल्लड़ मचा रहे है....

जब चेतन घर पहुँचा तो उसे पता चला कि वक्ता महोदय तो उससे कहीं पहले घर पहुँच गये है और बड़े आराम से खर्राटे भी ले रहे है।

सभापति महाराज उसके बाद महीनो जालन्धर में दिखायी नही दिये । वे दोआबा के गाँवों मे भागते, छिपते और अपनी राष्ट्रीय कविताएँ सुना कर देहातियों का आतिथ्य स्वीकार करते, यह कहते फिरे कि उनकी गिरफ्तारी के वारंट निकले हुए हैं और वे पुलिस को छकाते हुए अपने राजनीतिक कार्य को जारी रखे हुए हैं।

०   ।

एक लम्बी अवधि के पश्चात होश्यारपुर की एक नयी लॉन्ड्री का विज्ञापन चेतन के हाथ लगा जिसकी प्रशंसा मे वही बैत छपे थे, जो कभी राष्ट्रीय-कवि ने 'भारत लॉन्ड्री वर्क्स' की प्रशंसा मे लिखे थे।

दूसरे दिन जब भाई साहब उठे तो लॉन्ड्री की तरह कॉंग्रेस की डिक्टेटरी भी उनके मस्तिष्क से विलुप्त हो गयी थी और क्योकि ग्रीष्म ऋतु आ गयी थी, इसलिए भाई साहब ने सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान को अपना अड्डा बनाने का निश्चय कर लिया था।

छः

अपने बड़े भाई की प्रकृति के इस पक्ष पर विचार करता हुआ चेतन जब 'बाजियाँ वाला बाज़ार' मे पहुँचा तो उसने देखा कि उसके भाई पंडित बनारसीदास की दुकान पर चन्द बेफ़िक्रो के साथ ताश खेल रहे हैं। चेतन चुपचाप दुकान के तख्ते पर जा खड़ा हुआ। बाजी शुरू हो चुकी थी और वे बड़ी तन्मयता से पत्ते लगा रहे थे। उस समय उनकी आकृति पर कुछ ऐसी गम्भीरता विद्यमान थी जो अपनी सेना की व्यूह-रचना करते समय नायक की आकृति पर होती है। पत्ते लगाने के बाद उन्होंने कनखियों से अपने इर्द-गिर्द बैठे हुए खिलाड़ियों पर एक नज़र डाली, फिर दोपहर से उकड़ूँ बैठे रहने के कारण थकी हुई अपनी टाँगों को पसार कर ज़रा

सीधा किया और फिर पत्तों को छिपाते हुए उसी प्रकार जम कर बैठ गये।

तभी पंडित वनारसीदास ने एक थकी हुई हँसी के साथ कहा, "बस अब इस पर टिकट[1] लगा कर खतम करो।"

इशारा पत्ते बाँटने वाले की ओर था।

चेतन के बडे भाई ने कहा, "परमात्मा ने चाहा तो इस बार टिकट बस लग ही जायगी!" और फिर अपने पत्तों पर एक उल्लास-भरी दृष्टि डाल कर अपने बैठे हुए साथी को आदेश दिया, "माँगो भी अब जल्दी या सारी उम्र पत्ते ही लगाते रहोगे!"

धीमी आवाज मे साथी ने कहा, "सात!"

तब दूसरे ने कहा, "आठ!"

लेकिन उनसे भी बढ़ कर, जैसे उछल कर चेतन के भाई ने कहा, "ग्यारह!" और फिर इस बात की प्रतीक्षा किये बिना कि चौथे को भी कुछ बोलना है, उन्होंने कहा, "रंग पान!" और पत्ता फेंक दिया।

चुपचाप दुकान के तख्ते पर खड़ा चेतन सोचने लगा, 'ये लोग कैसे इस फिजूल के खेल मे समय नष्ट कर सकते है? कोई काम नहीं, काज नहीं, आशा नही, आकांक्षा नहीं। बस, किसी तरह वक्त को जिबह किये जाते हैं!' एक दया-भरी दृष्टि उसने उन सब पर डाली। चारों खिलाड़ी तन्मय हो कर भूत, भविष्य की चिन्ताओं को भुला कर खेल मे निमग्न थे। उनको भी चेतन ने देखा जो खेल को देख कर ही खेलने वालों से अधिक रस पा रहे थे। उन्ही मे सब से अधिक दिलचस्पी लेने वाले थे स्वयं दुकान के मालिक पंडित वनारसीदास!

०

---

१. जब एक व्यक्ति उस समय तक पत्ते बाँटता रहे जब कि उस पर सौ तक नम्बर हो जायँ, तब उस पर टिकट लग जाती है—पंजाब के ताश खेलने वालों की भाषा में! कहीं-कहीं उसे 'राय साहब' की उपाधि भी दे दी जाती है। टिकट लगने के बाद उसका दूसरा साथी ताश फेंटने लगता है।

वहीं खड़े-खड़े उस व्यक्ति का सारा जीवन चेतन के सामने घूम गया। उनके दादा का चित्र भी उसके सामने आया। पतला-दुबला शरीर, श्यामरत्न नाम। इसी दुकान में जहाँ तेल जमता है वे नोन-तेल बेचा करते थे। पर नोन-तेल बेचने से ज्यादा वे मुहल्ले के रोगियों का इलाज किया करते थे। उनके नुस्खे अचूक होते। प्रायः मरणासन्न रोगी भी एक बार उठ कर बैठ जाता। इसके अतिरिक्त वे मुहल्ले के बच्चों को गणित के प्रश्न भी समझाया करते थे। उन्हें आँख से कुछ अधिक दिखायी न देता था। चेतन को स्वयं उनका वह आँखों के पास स्लेट ले जा कर, एक आँख को प्रायः बन्द करके, गणित के प्रश्न समझाना याद था।

पंडित बनारसीदास के बचपन ही में उनके पिता परलोक सिधार गये थे। उनकी माँ को पंडित श्यामरत्न ने घर से निकाल दिया था।

हिन्दू विधवा का जीवन आज भी उतना सुगम नहीं, पर तब तो बाधों से घिरी असहाय मृगी के समान था। ससुराल में किसी प्रकार का स्थान न होने के कारण, प्रायः विधवा को किसी देवर, जेठ या ऐसे ही किसी रिश्तेदार के आश्रय में रहना पड़ता था। और इस आश्रय का मूल्य भी उसे भरपूर चुकाना पड़ता था। पंडित बनारसी दास की माँ के साथ वही हुआ जो दूसरी अनेक विधवाओं के साथ होता था। पर पंडित श्यामरत्न को जब मालूम हुआ कि उनकी बहू अपने सतीत्व को नहीं निभा सकी और पाप का भार उठाये हुए है तो एक रात जब मुहल्ले वाले सुख की नींद सो रहे थे, वे उसके मायके का किराया दे कर चुपचाप स्टेशन पर छोड़ आये।

मातृ-पितृ-स्नेह तथा भय-विहीन पंडित बनारसीदास जल्द ही उन सब गुणों से सम्पन्न हो गये, जिन्हें बे-माँ-बाप के बच्चे शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। यही कारण है कि दो-दो तीन-तीन वर्ष में दादा के यत्नों से छोटे दर्जे पास करके जब वे दसवें दर्जे तक पहुँचे तो उन्होंने वहीं डेरा डाल दिया।

पंडित श्यामरत्न ने भरसक प्रयत्न किया कि किसी तरह वे अपने इस 'योग्य' पोते को मैट्रिक पास करा के उसे कहीं खाते-कमाते देख कर मरें,

पर उनकी यह लालसा मन-ही-मन मे रही । चौथे वर्ष फिर मैट्रिक मे फ़ेल होने पर जब पंडित बनारसीदास अपने दादा की रही-सही पूंजी ले कर चम्पत हो गये तो उसी फिराक मे पंडित श्यामरत्न ने प्राण त्याग दिये ।

इसके बाद जब तक पूंजी रही पंडित बनारसीदास खूब घूमते रहे, पर जब वह सब खत्म हो गयी तो फिर वापस आ गये और अपने दादा की उस दुकान का जीर्णोद्धार करके उस पर जम कर बैठ गये । बुजुर्गों मे से किसी ने नौकरी जैसा निष्कृट काम न किया तो फिर वे ही क्यो करते ? दादा नोन-तेल बेचते थे, उन्होंने इन सब झंझटो से छुट्टी पा कर रुई और सूत का काम शुरू कर दिया । कौन दो-दो पैसे की चीजें तोलता फिरे । दो-एक देहाती फँस जाते तो उतनी बचत निकल आती, जितनी उनके दादा को दिन भर तराजू से जूझ कर प्राप्त न होती । फिर पंडित बनारसी दास दो दिन कमाते तो चार दिन बैठ कर खाते । जिस दिन चार मित्र न आते उस दिन खोये-खोये-से दुकान पर बैठे रहते, फिर स्वयं ही उठ कर उन्हे इकट्ठा कर लाते । शादी तो इस हालत मे क्या होती, रहा रोटी का प्रश्न तो उसके लिए यार-बाश मौजूद थे । कभी-कभी खुद भी दो रोटियाँ सेंक लेते । जब और कोई डौल न होता तो सेर-दो-सेर दूध पी कर पड़ रहते ।

'यह भी कोई जीवन है ।' और निमिष भर के लिए चेतन के सामने अपनी आकांक्षाएँ घूम गयी—'कीडे !'—उसने मन-ही-मन उपेक्षा से कहा, 'किसी दिन ऐसे ही मौत के मुँह मे जा पड़ेगे ।'

तभी उसने देखा, उसके बड़े भाई अपने एक प्रतिपक्षी के साथ गुत्थम-गुत्था हो रहे हैं । चेतन का ध्यान उधर नही था । बात यह हुई कि उनके एक प्रतिपक्षी ने रंग का पत्ता छिपा लिया । लेकिन चेतन के भाई को धोखा देना आसान न था, एक थप्पड़ उसके मुंह पर जमाते और गाली देते हुए उन्होंने कहा, "यह पत्ता कब का अपनी माँ के पास छिपा रखा था ?"

एक तो तीन-चार घंटे से पीसते रहने का दु.ख, दूसरे चालाकी के पकड़े जाने का गुस्सा, तीसरे थप्पड़ की चोट, चौथे गाली....उसने थप्पड़

के जवाब मे तान कर घूंसा दे मारा और दोनों गुत्थम-गुत्था हो गये। इससे पहले कोई दूसरा उनकी मदद करता, कई तोगने के बाटों से दोनो के सिर फट चुके थे। चेतन जब चौका तो उसने देखा कि एक को पंडित बनारसी दास ने पकड़ रखा है और दूसरे को दुर्गादास अपनी बांहो मे थांबे हुए है और दोनो पागल सिंहो की तरह एक दूसरे को ताक रहे है और दहाड़ो के नाम पर गालियां दे रहे है।

चेतन को तब याद आया कि वह अपने भाई को बुलाने आया था। वह आगे बढ़ा और श्री रामानन्द का हाथ थाम उन्हें घर की ओर ले चला।

सात

फटे हुए सिर से बहता हुआ रक्त लिये जब श्री रामानन्द घर पहुँचे तो अपने पुत्र को लोहू मे लथपथ देख मां के हाथ-पांव फूल गये। अपना सब गुस्सा उसे भूल गया और रोने की हद तक चीख कर उसने चेतन से कहा कि लपक कर वह पानी गर्म करे, इतने मे वह स्वयं अन्दर से कपड़ा लाती है—कपड़ा तो उस बदहवासी मे क्या मिलता, मां ने अभी-अभी धोबी के यहां से आयी हुई नयी धोती फाड़ कर पट्टी बनायी। इतने में चेतन पानी लाया और—'मै कहता हूं कुछ नही, मै कहता हूं कुछ नही,'—रामानन्द के यह कहते रहने के बावजूद मां ने इस प्रकार जैसे वह कोई दूध-पीता बच्चा हो, ताश और शतरंज के इस चैम्पियन का सिर अपनी गोद मे ले कर घाव धोया और पट्टी बांध दी। तब उलाहने के स्वर मे चढ़ी-उतरती आवाज मे उसने पूछा, "कहां से यह चोट खा आया रे ?"

चेतन ने बता दिया कि खेलते-खेलते झगड़ा हो गया था।

तब चेतन की भाभी श्रीमती चन्दावती (जो इस समय तक ऊपर

से उदासीन अपने कमरे मे बैठी ब्लाउज सी रही थी) वहाँ आ गयी और चीख कर बोली, "मै कहती हूँ आपको यही सब कुछ करना है तो मुझे मायके भेज दो।"

०

चेतन की भाभी चम्पावती आदमपुर दोआबा के स्टेशन मास्टर—पंडित गिरधारीलाल की लड़की और पटवारी पंडित गंगाराम की पोती थी—पंडित गंगाराम के दो लड़के थे—चम्पा के पिता पंडित गिरधारीलाल और चचा पंडित मुशीराम।

जब दोनो पुत्र काम पर जा लगे, तो पटवारगिरी छोड़ पिता ने सन्यास ले लिया। कौन ऐसी बात थी जिससे वे एकदम संसार से विरक्त हो बैठे, इसे तो भगवान् ही जाने, पर पत्नी की मृत्यु के बाद वे बहुत दिन तक नौकरी पर नही रहे। वे वन में जा बैठे हो, या ज्ञान-ध्यान मे उन्होने मन लगा लिया हो, यह बात नही। उनके विचार तथा भ्रम वैसे ही बने रहे और आत्मा और परमात्मा के झगड़ों से वे उतने ही दूर रहे, जितने पहले थे। हाँ उन्होंने जोगिया कपड़े अवश्य पहन लिये और जहाँ पहले अपना घर ही उनका घर था, वहाँ अब सब के घर उनके घर हो गये।

चम्पा के पिता आयु मे बडे थे, उन्होंने पदवी भी बड़ी पायी। अपने पिता पंडित गंगाराम की पटवारगिरी के जमाने ही मे वे तार बाबू हो गये थे, फिर बढते-बढते स्टेशन-मास्टर के पद तक जा पहुँचे। पंडित मुशीराम छोटे थे, इसलिए छोटे रहने ही मे उन्होने अपना गौरव जाना। वे क़स्बे की प्राइमरी पाठशाला मे अध्यापक हो गये और यह समझ कर कि विद्या-दान ही सब से उत्तम दान है, वे सहज सन्तुष्ट बने रहे।

किन्तु सम्पन्नता और विपन्नता मे कम ही बनती है और पंडित मुंशीराम और उनके भाई मे भी कभी नहीं बनी। एक को अपनी सम्पन्नता का गर्व था, दूसरे को अपनी विपन्नता का अभिमान। पंडित गिरधारीलाल की पत्नी मर गयी थी, इसलिए उनके लड़के-लड़कियो ने लड़ना-झगड़ना और अपने अहंकार में रत रहना खूब सीख लिया था। इन्ही पंडित

गिरधारीलाल की बड़ी लड़की चम्पावती से चेतन के बड़े भाई रामानन्द का विवाह हुआ तो उनके घर की कलह श्रीमती चम्पावती द्वारा इस घर में भी चली आयी। चम्पावती ने अपने घर में माँ और चची में, माँ और बड़ी भावज मे नित झगड़ा होते देखा था, और जब दोनो भाई अलग हो गये और माँ भी परलोक सिधार गयी तो उसके पद-चिन्हों पर चलने को अपना परम कर्तव्य मान कर श्रीमती चम्पावती ने अपनी बड़ी भावज को सास की अनुपस्थिति खटकने न दी थी। यह सब होते हुए यह कैसे सम्भव था कि वह अपनी ससुराल में शांति का अखण्ड राज्य रहने देती। वह तो आते ही अलग हो जाती, पर दुर्भाग्य से श्री रामानन्द काम के नाम पर सिर्फ़ ताश और शतरंज खेलना जानते थे और अपनी सुपत्नी की डाँट-डपट, रोने पीटने और रूठने का उस धीर-वीर युवक पर कुछ प्रभाव न पड़ता था।

०

जब चेतन की भाभी ने अपने पति के फटे हुए सिर और लोहू में शराबोर कपड़ों की ओर कोई ध्यान न दिया तो चेतन के भाई पहली बार कराहे। तब बीमार बनने ही में उन्होंने अपनी कुशल समझी। झगड़े का सिगनल होता देख चेतन ने माँ से कहा कि खाना परोस दो, मैं नीचे बैठक ही में जा कर खा लूँगा। और झटपट वह थाली ले कर वहाँ से खिसक गया।

नीचे अपने कमरे में जा कर खाना खाने के बाद चेतन ने पानी बाहर कुएँ ही से पी लिया। ऊपर जाना उसे उचित नहीं लगा। फिर जैसे निश्चिन्त हो कर वह माँ के आदेशानुसार बस्ती गज़ाँ के पंडित दीनबन्धु को चिट्ठी लिखने लगा। ऊपर होने वाले झगडे का स्वर उसकी तन्मयता को भंग न करे, इस विचार से उसने किवाड़ भी लगा लिये और कलम-दवात ले कर बड़े इत्मीनान के साथ बैठ गया।

तब ऊपर उठने वाले तूफ़ान ने कितना ज़ोर पकड़ा, कितने बादल गरजे, कितना पानी बरसा, यह सब उसे मालूम नही हुआ। कभी-कभी बन्द किवाड़ो को भेद कर आने वाले भावज के कर्कश स्वर से उसे तूफान

के पूरे ज़ोरों पर होने का आभास मिल जाता था ।

कलम-दवात ले बैठने पर भी वह चिट्ठी न लिख सका, क्योंकि चिट्ठी लिखना और खाना खाना दोनों एक-सी बातें न थी, और फिर उस समय जब कि ऊपर तूफ़ान उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था । तभी जब वह हैरान था कि क्या करे और क्या न करे, उसे बाहर किसी अपरिचित कंठ की आवाज़ सुनायी दी—"रामानन्द, रामानन्द !"

कोई आगन्तुक उसके भाई का नाम ले कर पुकार रहा था ।

वह एक क्षण रुका, किसी ने फिर बैठक के किवाड़ खटखटाये । उठ कर उसने दरवाजा खोला । देखा—पतले, छरहरे शरीर, लम्बी नाक, छोटी ठोड़ी और गोरे रंग का एक युवक नफ़ीस सूट पहने खड़ा है ।

"रामानन्द है ?" आगन्तक ने पूछा ।

"जी है ।"

"कहना हुनर आया है ।"

"हुनर साहब ?"

"हाँ ।"

और जैसे निमिष मात्र के लिए आगन्तुक को आँखों से पी कर चेतन भागता हुआ-सा ऊपर पहुँचा और जा कर भाई को बड़े उत्साह से उसने यह समाचार दिया कि हुनर साहब आये हैं ।

उस समय उसके भाई चुपचाप चारपाई पर लेटे थे, भावज शायद मायके का समान तैयार करके आँखों मे अंगारे लिये मेज़ के एक कोने पर बैठी थी और माँ एक पीढी पर बैठी रो रही थी ।

"हुनर !" चेतन के भाई उछल कर उठे । अपने उस मित्र के आगमन को जैसे दैवी सहायता जान कर उस झगड़े से अपना दामन बचा, वे सीढ़ियों की ओर लपके ।

माँ ने कहा, "खाना तो खाते जाओ ।"

"मैं आज खाना नहीं खाऊँगा ।" यह कहते हुए वे जल्दी-जल्दी सीढियाँ उतर गये ।

•

तब उनकी पत्नी ने चीख कर क्या कहा वह सब उन्होंने नही सुना।

आठ

उस लम्बे क़द के छरहरे-से युवक को चेतन मुग्ध-सा खड़ा देखता रह गया। उसके बड़े भाई ने कितनी बार उसे इस युवक की कवित्व-शक्ति को कहानियाँ सुनायी थी। किस प्रकार कॉलेज के दिनों ही मे वह आशु कविता कर लेता था :

लस्सी दही की आज पियेंगे दुकॉ पे वो
हम चूम लेंगे होंट उनके बन के बाटियॉ

या :

हलवाई ख़ुश कि दाम ज्यादा किये वसूल
मै ख़ुश कि रेवड़ियों में चवन्नी भी आ गयी

या :

तस्वीर मेरी देख कर कहने लगा वो शोख़
यह कारटून अच्छा है अख़बार के लिए

या :

तार इस मतलब का आया है मुझे भूपाल से
रात भर भैंसे की दुम हिलती रही भूचाल से

ये और ऐसे कितने ही उनके शेर चेतन ने अपने भाई से सुन कर याद कर रखे थे। तब उन्हे क्या मालूम था कि ये हुनर साहब के नही, बल्कि हास्य-रस के एक और प्रसिद्ध कवि के है।

०

लाहौर के एक ख्याति-प्राप्त दैनिक पत्र के सम्पादन-विभाग मे हुनर साहब काम करते थे। चेतन की बड़ी भारी आकांक्षा थी कि वह भी किसी

समाचार-पत्र का सम्पादक बने । कई बार सपनों मे अपने-आपको सम्पादक के रूप मे देख कर वह प्रसन्न हो चुका था । इसीलिए हुनर साहब के प्रति उसके मन में वही भाव था जो किसी महान् व्यक्ति के दर्शनार्थ आने वाले श्रद्धालु के मन मे होता है । हुनर साहब की बातें, उनकी आकृति, उनकी वेशभूषा, उनका सभी कुछ उसे साधारण लोगों ने कुछ भिन्न जान पड़ा ।

तीनों एम्प्रेस गार्डन की ओर जा रहे थे । हुनर साहब लाहौर की दिलचस्पियों का जिक्र कर रहे थे—वहाँ के मुशायरे, वहाँ की सम्पादक-मंडली, वहाँ की मजलिसें—और चेतन मुग्ध-सा सुन रहा था । उसके भाई साहब भी प्रभावित थे, किन्तु हुनर साहब ताश या शतरंज के तो चैम्पियन थे नही; इसलिए उनके भाग्य से चेतन के भाई साहब को कोई ईर्ष्या न थी, पर चेतन की श्रद्धा का तो जैसे वारपार न था । उसकी दृष्टि तो उनके मुख से हटती ही न थी । उस चेहरे की एक-एक भंगिमा उसके मन पर अंकित हो रही थी और हुनर साहब की बातें उसके कानों से हो कर सीधे उसके हृदय मे स्थान बना रही थी । उसके मस्तिष्क मे लाहौर का वातावरण अपनी समस्त विभिन्नता और मनोरंजकता के साथ घूम जाता और अपने सीमित क्षेत्र का विचार करके उसका दम घुटने-सा लगता ।

सम्पादक और अध्यापक मे कितना अंतर है ? वह सोचता—सम्पादक कलम का सम्राट् है । चाहे तो साम्राज्य बना दे, चाहे बिगाड़ दे । वह बड़े से बड़े व्यक्ति तक की आलोचना बड़ी निर्भीकता से कर सकता है (चेतन को तब यह मालूम न था कि पूंजीवादी युग मे समाचार-पत्र ही नहीं खरीदे जाते, उनके सम्पादक और कई बार मालिक तक भी खरीदे जा सकते है ।) और अध्यापक—चेतन के सामने घूम गया छुट्टी का दृश्य—लडके घंटी बजते ही घरों को भाग जाते और दिन भर माथा-पच्ची करने के बाद थके-हारे अध्यापक इस बात की प्रतीक्षा किया करते कि हेडमास्टर साहब आ जायें तो उन्हे नमस्कार करके तब चलने की सोचें । हेडमास्टर साहब कई बार अपनी क्लास को छुट्टी के बाद भी कितनी देर तक न छोड़ते थे—चेतन को भूख लग-लग कर मिट जाया करती थी । और किसी

प्राइवेट संस्था का अध्यापक तब चेतन की दृष्टि मे सब से बड़ा गुलाम था और सम्पादक सब से अधिक स्वच्छन्द और स्वतन्त्र !

तीनों जा कर एक लॉन मे बैठ गये । एक भिश्ती सामने टाउन हॉल की सीढ़ियो पर रखे हुए गमलो को पानी दे रहा था । लॉन में एक ओर कुछ छोटे बच्चे कबड्डी खेल रहे थे । दूसरी ओर कुछ मनचलों मे बैतबाजी हो रही थी । लॉन के साथ एक वीथी पर दो-तीन सुन्दर पढी-लिखी लड़कियाँ अपने परिवार के साथ चहल-क़दमी कर रही थी । उसी वीथी के बराबर एक बेन्च पर शलवार और कमीज पहने एक अत्यन्त सुन्दर-सम्पन्न, पर अशिक्षित युवक अपने कुत्ते को लिए, अपनी भाव-भंगिमा से अपने-आपको पूर्ण रूप से शिक्षित दर्शाने का उपक्रम कर रहा था । चेतन ने देखा कुत्ते को पुचकारते और उसकी गर्दन पर प्यार से हाथ फेरते हुए वह उन लड़कियों की ओर देख भी लेता है, किन्तु उसकी प्रत्येक भावभंगी, उसके गले का खुला बटन, उसके बालों की काट, उसकी शलवार का फ़ुलाव, उसके निपट निरक्षर होने का पता देता है ।

तब हुनर साहब ने धीमे स्वर मे गा कर शेर सुनाया :

फिर एक तक़सीर कर रहा हूँ, ख़िलाफ़े तक़दीर कर रहा हूँ
फिर एक तदबीर कर रहा हूँ, ख़ुदा अगर कामयाब कर दे

और कहने लगे, "यह हफ़ीज़ का शेर है—जालन्धर के मशहूर कवि हफीज का और उन्हे इसकी कला पर नाज है । शिमले के एक मुशायरे में हम सब को बुलाया गया था । 'रिज्ज' के ऊपर डेविको बॉलरूम में मुशायरा होने वाला था । मिडल बाज़ार के एक मुस्लिम होटल मे हम ठहरे थे । वही हफीज ने यह शेर लिख कर सुनाया । सब सिर धुनने लगे । तब मैने अपने एक शागिर्द 'साहिर' को एक शेर लिख कर दिया । इत्तफ़ाक देखिए, उसकी बारी पहले आ गयी । उसने वह शेर पढ़ा तो लोग कुर्सियों से उछल पड़े । वह दाद मिली कि हफीज साहब का मुँह जरा-सा निकल आया । जब उनकी बारी आयी तो उन्होंने अपना शेर पढा ही नहीं ।"

चेतन ने उत्सुकता से कहा, "कृपया अपना वह शेर सुनाइए ।"

गर्व के साथ सिर उठा कर हुनर साहब ने शेर पढ़ा :

मैं अपनी तक़दीर का हूँ क़ायल, हरीफ़ तदबीर पर है मायल
ख़ुदा के दर पर हैं दोनों सायल, जिसे ख़ुदा कामयाब कर दे

और लगभग उछल कर चेतन ने कहा, "वाह ! तक़दीर का क़ायल होना तो यही है कि जिसे ख़ुदा कामयाब कर दे ! 'जिसे' ने वह बात पैदा कर दी है कि वाह, क्या कहने है !"

उस समय चेतन को क्या मालूम था कि जिस शेर पर वह सिर धुन रहा है वह तो किसी दूसरे मस्तिष्क की उपज है और हुनर साहब को तो वह कहानी गढने की ही दाद दी जा सकती है । लेकिन तब चेतन के हृदय में श्रद्धा का अगाध समुद्र कहीं से उमड़ पड़ा और उसका जी चाहा कि हुनर साहब के चरण चूम ले ।

इसके बाद हुनर साहब ने 'जिगर मुरादाबादी' और 'फ़ानी बदायूनी' की पूरी-की-पूरी गज़लें अपने नाम से सुना डालीं । किन्तु इसे जालन्धर की सीमित दुनिया मे रहने वाला, आर्य-समाज कॉलेज मे बी० ए० तक हिन्दी पढ़ने वाला चेतन क्या जानता, विशेषकर उस समय, जब उसका उर्दू शायरी का ज्ञान केवल दो-चार स्थानीय मुशायरों में सुनी हुई ग़ज़लों तक ही सीमित था ।

रात को हुनर साहब के घर पर मजलिस जमी । वे अपने बहनोई ाहब के यहाँ ठहरे थे । शेर-पर-शेर, गज़ल-पर-गज़ल वे सुनाते जाते थे । ार उनकी जबान से ऐसे निकले पड़ते थे, जैसे वर्षा ऋतु में अनायास ही हाड़ पर झरने फूट पड़ते हैं । उनका मस्तिष्क काव्य का एक समुद्र था जसकी ऊर्मियाँ असंख्य और अगनित थीं ।

चेतन के मन मे कभी-कभी यह सन्देह अवश्य सिर उठाता कि इतनी-ी आयु मे उन्होने इतनी ग़ज़लें कैसे कह डालीं और इतना कुछ कहने र भी उनका कोई संग्रह क्यों नहीं छपा । लेकिन लगभग हर ग़ज़ल के साथ किसी-न-किसी कवि सम्मेलन की जो एक कहानी हुनर साहब सुनाते थे उसके कारण वह सन्देह ज़ोर न पकड़ पाता और संग्रह के बारे में जब

उसने झिझकते हुए प्रश्न किया तो उन्होने कहा कि प्रकाशक तो दयानतदार मिलते नही, फिर कोई संग्रह छपवाये भी तो कैसे और क्यों ?

अन्त मे एक बजे के लगभग हुनर साहब ने अपनी एक कहानी सुनानी शुरू की जो उन्होने हाल ही मे लिखी थी। तब चेतन के बड़े भाई जम्हाइयाँ लेने लगे। दिल-ही-दिल मे अपने इस असाहित्यिक भाई को उसकी अरसिकता पर कोसते हुए चेतन ने हुनर साहब से स्वयं अपनी आरम्भिक कोशिशों का जिक्र किया और सकुचाते हुए अपने दो-एक शेर भी सुनाये और कहा कि कहानी लिखने मे उसकी रुचि अधिक है।

"तुम कही लाहौर होते !" हुनर साहब ने चेतन का उत्साह बढाते हुए कहा, "ऐसी प्रतिभा है तुममे कि कुछ ही दिनों मे चमक उठते।"

भाई साहब की जम्हाइयाँ उत्तरोत्तर बढ रही थी, इसलिए चेतन ने छुट्टी ली और मन-ही-मन हुनर साहब को अपना गुरु मान लिया और निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो वह लाहौर जा कर ही दम लेगा। जालन्धर मे तो उसकी प्रतिभा का अंकुर सूख कर रह जायगा। लाहौर में यदि अनुकूल जलवायु मिल गया तो न जाने वह महान् विटप बन जाय।

घर आ कर उसने सब से पहले उन पण्डित दीनबन्धु को चिट्ठी लिखी कि वह लाहौर अवश्य जायगा। विवाह का जुआ वह अपने गले मे नही डालना चाहता। उसने लिखा कि वह उन्हे धोखा नही देना चाहता। उसकी आकांक्षाएँ बडी है। उसके रोजगार का भी कोई भरोसा नही। उनको या उनकी लड़की को व्यर्थ का कष्ट होगा। और उसने यह भी लिख दिया कि वे अब उसके पिता के पास 'जेजो' जाने का कष्ट न करे। मन-ही-मन उसने यह फ़ैसला भी कर लिया कि दूसरे दिन सुबह ही वह चिट्ठी डाल देगा।

नौ

दूसरे दिन चेतन अपने बडे भाई को बताये बिना हुनर साहब को स्टेशन पर छोड आया और उस प्रोत्साहन के बदले मे जो उसके इस नये गुरु ने उसे दिया था पाँच रुपये का एक अकिंचन नोट भी उन्हे भेंट कर आया।

बात यह थी कि स्टेशन पर जा कर हुनर साहब को अचानक मालूम हुआ कि उनका बटुआ घर ही पर रह गया है। वे वापस चलने को तैयार हो गये थे। पर चेतन की श्रद्धा को यह गवारा न हुआ कि वे पाँच रुपये के लिए वह गाड़ी छोड़ दें, जिस पर जाना उनके कथनानुसार उनके लिए अत्यन्त आवश्यक था।

जब वह स्टेशन से घर वापस आया तो घर के बाहर मुहल्ले ही में उस 'लेक्चर' को सुन कर, जो उसके भाई को ऊपर पिलाया जा रहा था; और उन 'मृदु वचनों' से, जो एक पुसत्व भरी आवाज मे उन पर निरन्तर बरसाये जा रहे थे, चेतन ने जान लिया कि उसके पिता आ गये है।

अपने पिता के प्रति चेतन के मन मे सदैव एक भय-सा विद्यमान रहता था। जब वे अपने जाने धीमे स्वर मे बात कर रहे होते तो दूर से ऐसा लगता जैसे लड़ रहे है—माँ-पेउ दिया गालाँ, दुद्ध-घेउ दियाँ नालाँ[१] —पंजाबी भाषा की इस कहावत को वे सर्वथा सत्य मानते थे। इसलिए पुत्रो से बातें करते समय वे उन्हे निरन्तर दूध-घी के ये घूंट पिलाते रहते थे।

हुनर साहब को गाड़ी पर सवार कराने मे चेतन को देर हो गयी थी। पिता की आवाज सुन कर चेतन का माथा ठनका। उसने कोशिश की कि चुपचाप नीचे अपने कमरे मे जा कर कपड़े बदल ले और स्कूल चला जाय। स्नान वह सुबह ही कर गया था। उसने सोचा कि खाना

---

१. माता-पिता की गालियाँ दूध-घी के घूंट होती हैं।

स्कूल जा कर खा लेगा और चुपचाप आँगन से हो कर वह अपने कमरे में चला गया। शलवार, कमीज़ और कोट पहन वह पगड़ी बाँधने ही लगा था कि जल्दी मे शीशा उसके हाथ से गिर पड़ा और उसे आया जान कर उसके पिता ने आवाज़ दे दी।

उनकी आवाज़ सुन कर चेतन बिना पगड़ी बाँधे ही ऊपर चला गया। आँगन मे दीवार के साथ लगी चारपाई पर चेतन के पिता बैठे थे। पीठ उनकी दीवार से लगी थी, पगड़ी उनकी बगल मे थी और कमीज़ के बटन खुले होने के कारण उनके विशाल सीने के कुछ सफ़ेद बाल दिखायी देते थे। चेतन ने देखा उनके सिर और मूँछो के सब बाल सफ़ेद हो गये है, किन्तु इससे उनके चेहरे का रोब और उन छोटी आँखों की कठोरता कुछ भी कम नहीं हुई और न उनकी आवाज़ के तीखेपन मे ही कोई कमी आयी है।

"कहाँ गये हुए थे ?"

उसके पिता ने इस प्रकार चेतन की ओर देखा जैसे वह पाँच-छः वर्ष का बच्चा हो जिसे झिड़कना और डाँटना अत्यन्त आवश्यक हो।

चेतन के कानो मे अपने पिता का यह प्रश्न गूँज गया। उससे तुरन्त उत्तर न बन पड़ा। बात यह है कि छात्र से अध्यापक हो जाने मे चेतन अपने बड़प्पन का जो गर्व अनुभव करता था, वह दो अवसरों पर उसका साथ छोड़ देता था—एक तो जब वह अपने किसी लाहौर से डिग्री पाये हुए मित्र से मिलता और दूसरे जब वह अपने-आपको अपने पिता के सामने पाता।

उसका गला सूखने-सा लगा। अपने उन मित्रों के प्रचुर ज्ञान के रोब को वह अपने कवि और कहानीकार होने के रोब से परास्त कर देता था। क्या हुआ यदि उसने लाहौर नही देखा ? क्या हुआ यदि उसे बहुत-सी बातों का ज्ञान नही, पर. सृजन की जो शक्ति उसमें है, उसके मित्रो मे कहाँ ? साहित्य के निर्माण का जो सलीका उसे है, वह उन्हे कहाँ ?—और जब उसकी कविताओं और कहानियों को सुन कर उसके

मित्र मान लेते थे कि उसका भविष्य उज्ज्वल है तो अपने अभाव को वह भूल जाता था। किन्तु उसका यह अस्त्र अपने पिता के सामने न चलता। वह तो उनके सम्मुख अपनी इस कवित्व शक्ति की बात तक प्रकट करने का साहस न कर सकता था। उसे यह भी डर था कि यदि उसने उन्हें यह बात बतायी भी तो सम्भव है कि उसके पिता उसे समझ ही न पाएँ। मुलतान डिवीज़न के सुदूर स्टेशनों पर दिन-रात टिकटों, मुसाफिरों और गाड़ियों से वास्ता रखने वाले पुराने ज़माने के मैट्रिक उसके पिता, अपने इस पुत्र की महत्वाकांक्षा को समझ सकेंगे, उसे इसमें संदेह था। उनसे यदि वह कहता—मैं लाहौर जा रहा हूँ, एम० ए० करने के बाद फ़ाइनान्स की परीक्षा मे बैठूंगा और ए० टी० एस० बनूंगा तो वे समझ जाते, क्योंकि ए० टी० एस० उनके टी० आई० का भी अफ़सर था। किन्तु चेतन एक महान् साहित्यिक बनने जा रहा है, यह बात शायद उनकी समझ से दूर थी। जहाँ तक कविता का सम्बन्ध है, वे कवि मिलखी राम के 'काठ का उल्लू' अथवा मोतीराम के बारहमासे से आगे न बढ़े थे।

इसलिए उसने थूक निगल कर सिर्फ़ इतना ही कहा, "अपने एक मित्र को गाड़ी पर चढ़ाने गया था।"

तब चेतन के बड़े भाई ने कुछ कहने के लिए कन्धे हिलाये। दरअसल वे हुनर साहब के बारे मे कुछ कहना चाहते थे, पर चेतन की आँखों मे अनुनय का जो भाव था, उसका और उन झिड़कियों का खयाल करके जो उन्हें अभी-अभी मिल रही थीं, वे कन्धे हिला कर ही चुप हो रहे।

वास्तव में चेतन और उसके बड़े भाई मे एक तरह का मौन समझौता था। वे दोनों भाई होने की अपेक्षा एक-दूसरे के मित्र अधिक थे। मानो अज्ञात-रूप से दोनों ने एक दूसरे के दोषों पर पर्दा डालना सीख लिया था। यह और बात है कि इस समझौते मे अधिक भाग चेतन ही को अदा करना पड़ा था। बचपन ही से नित्य अपने बड़े भाई के लिए उसे झूठ बोलना पड़ा था। माता-पिता और यहाँ तक कि दादा की गालियाँ सुननी पड़ी थीं। इसी स्वभाव के फलस्वरूप जब एक बार चेतन के बड़े

भाई उसके सिर पर ही बिस्तर उठवा कर स्टेशन पर पहुँच किसी अज्ञात स्थान को भाग गये थे (और कम-से-कम उसे रोज एक पत्र लिखने का वादा करके भी महीने भर मे उन्होंने एक पत्र न लिखा था), उसे कई बार चुपचाप एकान्त मे रोना भी पड़ा था। अपने इस बड़े भाई से उसे छोटे भाई जैसा स्नेह था। शायद चेतन के बड़े भाई भी इसे महसूस करते थे और इसीलिए वे चुप भी हो रहे थे।

"किस मित्र को छोड़ने गये थे ?" पिता ने पूछा।

"लाहौर के एक मित्र को !" फर्श मे आखें गाडे चेतन ने उत्तर दिया।

पर इससे पहले कि अपने कड़कते स्वर मे (जो साधारणतः मुहल्ले के सिरे पर पंसारी की दुकान तक जा पहुँचता था) चेतन के पिता उससे पूछते, 'किस मित्र को—मैं उसका नाम पूछता हूँ।' कि बाहर मुहल्ले में जैसे एकदम कोलाहल-सा उठ खड़ा हुआ और एक स्त्री के रोने की आवाज उच्च से उच्चतर होने लगी।

जालन्धर के उस कल्लोवानी मुहल्ले मे ऐसा कोलाहल और ऐसा क्रन्दन रोज की बात थी। कुएँ की चर्खियो से पानी भरने पर; एक ओर लगी हुई टोटियो से नहाने या दूसरी ओर लगी पत्थर की सिल पर कपड़े धोने या फिर मुहल्ले के चौक मे खूँटो से बँधी हुई गायो, भैसों या उन्हे छेड़ने वाले या उनके द्वारा उठा कर फेंक दिये जाने वाले बच्चों पर; दीवारों पर उपले पाथने या उन उपलों को चुरा ले जाने पर; किवाड़ो के आगे घर का कूड़ा-करकट फेंकने या उस कूड़े-करकट के फैलाये जाने पर; और यदि कुछ नहीं तो योंही बे-बात-की-बात पर प्रायः लडाई-झगड़ा हुआ करता था।

मुहल्ले मे सदियों से खत्री-ब्राह्मण बसते आये थे और जब से ब्राह्मणों को अपने आत्म-सम्मान का आभास होने लगा था (दूसरे शब्दो मे जब से कुछ ब्राह्मण युवक पढ-लिख कर अच्छे पदो पर नियुक्त हो गये थे और ब्राह्मण वृत्ति को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे) इन दोनों जातियो के मध्य एक प्रकार का वैमनस्य भी आरम्भ हो गया था। इसके अतिरिक्त मुहल्ले मे कुछ सुनार-कुटुम्ब भी आ कर बस गये थे। उनकी स्त्रियाँ लड़ाई

की कला मे विशेषतया निपुण थीं और 'कला कला के लिए है' इस सिद्धान्त में पूरा विश्वास रखती हुई कला की साधना मात्र के लिए लड़ा करती थी।

मुहल्ले मे जो घराना अधिक सम्पन्न हो जाता, वह लाहौर, अमृतसर अथवा किसी दूसरे बड़े शहर या जालन्धर ही के बाहर कोठियों मे चला जाता और शेष मुहल्ला अपने उसी लड़ाई-झगड़े, उसी संकुचित वातावरण को लिये हुए पडा रहता।

किन्तु रोज की बात होने पर भी लड़ाई मे कुछ ऐसा आकर्षण है कि आदमी अनायास ही अपना काम छोड़ कर उसे देखने लगता है। इस कोलाहल को सुन कर चेतन के पिता और उसके बड़े भाई अचानक उठ कर बैठक मे चले गये, और माँ रसोई-घर की खिडकी मे जा खड़ी हुई।

चेतन ने अवसर उपयुक्त समझा। स्कूल जाने मे पहले ही देर हो गयी थी और हेडमास्टर की झिड़कियों का भी उसे डर था, इसलिए वह नीचे को भागा। पगडी बाँधना भी उसने उचित न समझा। खूंटी से टोपी उतार कर सिर पर रखी और चल पड़ा।

बाहर मुहल्ले मे खूब लड़ाई हो रही थी। एक ओर अपने मकान की ऊँची खिड़की में बैठी, तीन सम्पन्न पति-विहीना बेटियो वाली धनी विधवा चौधरायन माथे से पसीने को पोंछती हुई नयी-नयी गालियों से मुहल्ले की स्त्रियो के कोश भर रही थी। दूसरी ओर ब्राह्मणी जीवी पल्ला पसार कर परमात्मा से, न जाने कैसे शब्दो मे, उसके कुटुम्ब की शेष सधवाओं के भी विधवा होने की भयंकर प्रार्थनाएँ कर रही थी। लोग पानी भरना भूल कर उन्हे देखने मे व्यस्त थे।

तभी ज्वाली महरी ने अपनी लड़की को कोसते हुए कहा कि वह उधर क्या तकने लगी है। "इनका तो काम ही दिन-रात लड़ना है," वह बोली, "घर मे आदमियों से लडती है, बाहर पड़ोसियों से।" और उसे डाँटा कि उसके साथ घडा जल्दी-जल्दी खिचवाये।

ज्वाली का यह कहना था कि ब्राह्मणी जीवी ने अपनी प्रार्थना के

क्षेत्र को विस्तार देने की ठान ली और उस महरी और उसके कुटुम्ब को भी दिल खोल कर 'मधुर-वचन' सुनाने मे संकोच नही किया। इस पर ज्वाली ने घड़े को वही छोड़, कृतज्ञता के रूप मे उसे कुछ नयी तरह के 'मीठे शब्द' सुनाना अपना कर्त्तव्य समझा। उसकी लड़की ने सुख की साँस ली और न केवल यह चाहा कि उसकी माँ ही इस वाक-युद्ध मे सफल हो, वल्कि उसने कई वार स्वयं भी इसमें पूरा योग देने की कोशिश की। पर हर वार उसकी माँ ने दायें हाथ से उसे अलग हटा दिया।

चेतन उपेक्षा की एक दृष्टि उन पशुओं की भाँति लड़ने वालियों पर डाल कर चुपचाप खिसकने लगा कि ऊपर बैठक के वरामदे से उसके पिता की कड़कती आवाज़ आयी।

"स्कूल से सीधे घर आना!"

चेतन ने पीछे मुड़ कर, "अच्छा जी।" कहा और भाग चला।

जव उसे ध्यान आया कि उसे तो वस्ती के पण्डित दीनवन्धु को चिट्ठी डालनी थी तो वह स्कूल के फाटक पर पहुँच चुका था और मन-ही-मन हेडमास्टर के प्रश्नों का उत्तर सोच रहा था।

दस

जव आशा के विपरीत हेडमास्टर साहव ने उसे ज़रा भी न डाँटा और सिर्फ़ इतना ही कहा कि इतनी देर उस जैसे ज़िम्मेदार आदमी को न करनी चाहिए तो चेतन को आश्चर्य हुआ। कारण यह कि डाँटने के वदले हेडमास्टर साहव ने एक तरह से उसकी प्रशंसा ही की थी। पर दूसरी साँस ही में जव उन्होंने कहा, "आज अंग्रेज़ी और इतिहास के अध्यापक नहीं आये हैं और आप ही उनके पीरियड पढ़ाने का कष्ट करें," तो चेतन इस विशेष अनुग्रह का कारण समझ गया। दूसरा अवसर होता तो शायद

वह पहले ही अपने अधिक व्यस्त होने का रोना ले बैठता; पर उस समय वह चुपचाप पढ़ाने चला गया।

वह भली-भाँति पढा सका या नही, इसे तो वे छात्र ही ठीक बता सकते है, जिन्हे वह रोज पढ़ाया करता था, लेकिन जिस समय चालीस-चालीस मिनट के पूरे चार घंटे पढ़ा कर वह स्टाफ़-रूम के एक कोने मे अपनी कुर्सी पर जा बैठा तो वह अत्यन्त शिथिल और क्लांत था।

वही बैठे-बैठे उसकी विचार-धारा अपने विवाह की समस्या की ओर बह गयी और उसके सामने कुन्ती का चित्र घूम गया—सौन्दर्य का प्रतीक लम्बा कद, तीखे नक्श, सुन्दर मुख, चंचल मुस्कराती आँखें, चौड़ा मस्तक और उस पर, उसे और भी सुन्दर बनाता हुआ एक बड़े से घाव का चिन्ह—और बरबस एक दीर्घ-निश्वास उसके मुख से निकल गया।

चेतन की कल्पना के सम्मुख गत दो वर्षो के स्वप्न फिर गये—वे स्वप्न जो कुन्ती के सान्निध्य से स्वर्णिम थे। यौवन के प्रभात मे चेतन ने कुन्ती को देखा था—उस सुनहरे प्रभात मे, जब युवक महसूस करता है कि उसे संसार मे शिक्षा-दीक्षा, धन-ऐश्वर्य, आकांक्षाओ और महत्वाकांक्षाओं के अतिरिक्त किसी ऐसी चीज़ की भी ज़रूरत है जिसका आकर्षण इन सब से अधिक है और जिसके सामीप्य के बिना ये सब चीज़ें रूखी-फीकी और सारहीन जान पड़ती है।

०

अपने मित्र अनन्त के साथ वह शीतला मन्दिर का मेला देखने गया था। तब जैसे पहली बार उसे अपर-सेक्स के विषय मे कुतूहल हुआ था। तभी उसके कलाकार मन को एक बात सूझी थी और हँस कर उसने अनन्त से कहा था—'अनन्त, आओ भला देखें, इस मेले की सौन्दर्य-साम्राज्ञी कौन है।'

शीतला माता के इस मन्दिर पर यो तो प्रति मंगल मेला लगता है, पर वर्ष मे दो मंगलवार ऐसे भी आते है जब माता के गुण गाते, मन्नतें मानते और मनाते सारे ज़िले के श्रद्धालु वहाँ इकट्ठे होते है। यद्यपि मेले

का जोर दिन के बारह बजे तक ही रहता है पर बाहर से आये हुए भक्त-जन प्रायः दुपहरी वहीं व्यतीत करते हैं।

अनन्त ने चेतन के इस प्रस्ताव का सहर्ष समर्थन किया था और दोनों मित्र इस निर्वाचन के लिए चल पड़े थे। शीतला मन्दिर के बाहर खुली जगह में वे दोनों घूमे। पहले उन्होंने उस छोटे-से बाजार को देखा जहाँ खोंचे वालों, मनिहारी का सामान बेचने वालों, हरे चने, मूलियाँ, गाजरें और दूसरी तरकारियाँ बेचने वालों की दुकानें लगी रहती थीं। हरे चनों और मूली-गाजरों की दुकानें इसलिए लगती थीं कि मेले से लौटते हुए लोग उन्हें खरीद कर ले जाना शुभ समझते थे। उधर से हट कर उन्होंने उस जगह को देखा जहाँ यौवन की प्रथम हिलोर में लड़के-लड़कियाँ झूले झूल रहे थे। फिर उन्होंने उस जबरदस्त भीड़ मे माता शीतला पर पैसे चढ़ा कर दूध की लस्सी के छींटे और बताशे भी पाये। भिंचे-भिंचे तीन बार मन्दिर की परिक्रमा भी की। अपने-अपने बालकों का हाथ थामे अगनित माताएँ और नन्हें-नन्हें भाइयों को उठाये तथा उनका हाथ अपने हाथ में लिये अगनित बहनें इस भीड़ मे दुकानों पर सामान खरीदतीं, झूले झूलतीं अथवा माता शीतला के दर्शन कर पुण्य लाभ कर रही थीं। किन्तु उन्हें कोई ऐसी शक्ल दिखायी न दी जिसे देख कर चेतन का कलाकार हृदय बस धक से रह जाता। अन्त में वे मन्दिर की चारदीवारी के अन्दर उस खुली जगह में चले गये जहाँ मेले में घूम-फिर कर थक जाने वाले प्रायः आराम करते हैं और पानी के बताशे अथवा चाट उड़ाते हैं और जहाँ बरगद के बड़े-बड़े पत्ते बताशों के पानी और लाल-मीठी चटनी या दही से लियड़े धरती पर इधर-उधर बिखरे रहते हैं।

अनन्त इतनी शिक्षा-दीक्षा के बावजूद इस मेले मे सबसे अधिक महत्व की चीज पानी के बताशों और चाट ही को समझता था। इसलिए वट के हरे पत्ते के दोने को हाथ मे ले कर वह तो कुएँ पर बैठे एक खोंचे वाले के सामने डट गया, पर चेतन अन्यमनस्क-सा एक ओर खड़ा इधर-उधर ताकता रहा।

तभी उसकी दृष्टि कुएँ के प्याऊ पर पानी पीने वाली एक लड़की पर गयी। पानी पी कर उसने सादे मलमल के रूमाल से हाथ और होट पोछे। चेतन अनिमेष दृगों से उसकी ओर देखता रह गया। लड़की ने औरों की तरह सुन्दर साड़ी अथवा गोटे-किनारी से झिलझिलाते कपड़े या दमकते हुए गहने न पहन रखे थे। एक सीधी-सी बैंगनी या शायद नीले किनारे की सरदई रंग की धोती उसने पहन रखी थी। ब्लाउज़ भी कोई हल्के ही रंग का था। उसका अपना रंग भी गेहुँआँ ही था। पर यौवन के सुप्रभात ने उसके अंगों को कुछ ऐसे सुगठित साँचे मे ढाल दिया था और उसके होंटों पर ऐसी स्वर्ण-स्मिति खेल रही थी कि चेतन मुग्ध-सा खड़ा रह गया। वह स्वयं भी अनन्त के साथ पानी के बताशे खाना चाहता था, लेकिन जब वह लड़की चलने लगी तो एक पैसा खोचे वाले की ओर फेंक कर प्रायः अनन्त को घसीटता हुआ-सा वह अपने साथ ले कर उसके पीछे-पीछे चल पड़ा।

फिर जहाँ-जहाँ वह लड़की गयी, वे दोनों भी गये।

०

तीन वर्ष पहले की उस बचकानी हरकत के याद आते ही चेतन को हँसी आ गयी। स्टाफ़-रूम के सामने मैदान मे बच्चे खेल रहे थे, लड़-झगड़ रहे थे और स्कूल की चारदीवारी के साथ लगे शीशम के वृक्ष अपनी घनी शाखाओ और पीली-हरी पत्तियो के साथ झूम रहे थे। उनमे भी उन वालकों-सी सरल चपलता भरी हुई थी। बचपन....चेतन ने एक लम्बी साँस ली....लेकिन आज भी क्या उसके जीवन मे वे ही क्षण सुन्दर और सुखद नही जब उसने मेले में कुन्ती को देखा था।

जलपान की छुट्टी खत्म होने की घंटी वजी और लड़के धडाधड़ दायें-वायें दर्जो मे जाने लगे। चेतन की विचार-धारा टूट गयी। वह उठा और उस दर्जे मे चला गया जहाँ उसे पढ़ाना था। उसका जी आज पढाने को विलकुल नही हो रहा था। कमरे मे जाते ही उसने देखा दो लड़के अपनी सीटो पर वैठने के वदले डेस्को पर वैठे है। वस इसी वात पर उसने उन्हे

पीट दिया। फिर मानीटर को बुला कर दो थप्पड़ उसके जमाये और डाँटा कि वह उन्हें चुप क्यों नहीं कराता। इसके बाद उसने उसे आदेश दिया कि गणित की पुस्तक में अगला परिच्छेद खोल कर प्रश्न लिखवाये और जिसका उत्तर ग़लत हो, उसके गिन कर दस थप्पड़ जमाये, क्योंकि इस परिच्छेद को पहले भी एक बार क्लास मे हल करवाया जा चुका है। यह भी उसे जता दिया कि अगर वह ठीक तरह न लगायेगा तो उसके मुँह पर दस थप्पड़ लगाये जायेंगे। इस तरह आतंक जमा कर वह कुर्सी में धँस गया।

०

तभी उसका मन जैसे कुलाँचें भरता हुआ अतीत के सीमाहीन और स्वच्छन्द क्षेत्र की ओर दौड़ चला।

०

उस मेले के दिन वह कॉलेज न गया था। जब वह लड़की घर जाने लगी तो वह भी अनन्त को साथ ले कर उसके पीछे-पीछे चल पड़ा था।

वह कभी-कभी घूम कर उनकी ओर देख लेती, पर उसकी आँखों में क्या था, चेतन ने उस समय इस बात का विश्लेषण नहीं किया। उस समय तो जैसे मन्त्र-मुग्ध वह उसके पीछे-पीछे चलता गया। जब पुरियाँ मुहल्ले के अपने घर में पहुँच कर वह डेवढ़ी मे दाखिल हुई और सीढ़ियाँ चढ़ने से पहले एक बार उसकी ओर देखती हुई मुस्करा कर अँधेरे मे विलीन हो गयी तो चेतन का दिल धक-धक करने लगा।

वह मुस्कान दोनों में से किसके लिए थी, इसमे चेतन को किसी प्रकार का सन्देह न रहा था, क्योंकि अनन्त उधर देख ही न रहा था और मेले से लौटते समय मार्ग मे भी जब-जब उस युवती ने मुड़ कर देखा, चेतन और केवल चेतन ही से उसकी आँखें चार हुईं। फिर यदि दूसरे दिन बिना अनन्त को बताये वह अकेला उधर गया और तीन साल तक निरन्तर जाता रहा तो इसमे कुछ आश्चर्य की बात नहीं।

और ये तीन वर्ष....जवानी की पहली शर्मीली मुहब्बत के तीन

वर्ष....

उसे याद आया किस प्रकार कॉलेज में जब दो घंटे एक साथ इकट्ठे खाली होते, वह किताब लेने के बहाने घर जाता। दरवाजा खाकरूबाँ और मुहल्ला मेहन्द्रुआँ में से जाने के बदले एक मील का चक्कर काट कर अड्डा होशयारपुर से होता हुआ, सीधी पहाड़ी की तरह ऊँची 'ढक्की'[1] चढ कर, उसके घर की खिड़की के नीचे से गुज़रता। किस प्रकार प्रायः वह उसकी खिड़की की ओर पूरी तरह देख भी न पाता, लेकिन फिर भी उसे आभास हो जाता कि वह अपनी स्वर्ण-स्मिति लिये वहाँ बैठी है, किस प्रकार समय पर कॉलेज पहुँचने के लिए उसे अंधाधुंध साइकिल चलानी पड़ती और क्लास में बैठ कर कितनी देर तक उसकी आँखों में उसका चित्र घूमा करता।

उसे याद आया किस प्रकार जब एक बार सात-आठ दिन तक बीमार रहने के कारण वह उसकी ओर जा न सका था, वह स्वयं उसके मुहल्ले में चली आयी थी। बीमारी के बाद स्वस्थ होने पर वह निचली बैठक मे बैठा एक उपन्यास में तन्मय था कि एक परिचित-सा मधुर स्वर सुन कर सहसा चौंक पड़ा। तब उसने देखा कि सामने मुहल्ले मे कुएँ के पास वह एक बच्चे को गोद मे लिए खड़ी है और उसके होटों पर चंचल चतुर मुस्कान खेल रही है।

बच्चे से उसी की-सी तोतली भाषा मे (चेतन को सुना कर) वह कह रही थी : 'तुशीं आउँदे नहीं, असीं उडीक-उड़ीक के थक जान्दे हाँ।'[2]

तब सामने से अनन्त को आते देख कर चेतन ने अचानक वहीं से ऊँचे स्वर मे कहा था—'तुम्हे क्या खबर अनन्त कि मै किस तरह बीमार रहा हूँ।'

अनन्त हैरान-सा उसकी ओर देखता रह गया था, क्योंकि बीमारी के दिनो में वह सारा दिन उसी की तो सेवा-सुश्रूषा किया करता था।

---

१. ढक्की—ढालुवीं जगह।

२. आप आते नहीं, हम प्रतीक्षा करके थक जाते हैं।

उस दिन की याद आने पर चेतन का शरीर गर्म हो गया। उसकी बात सुन कर और अनन्त की हैरानी देख कर कुन्ती (क्योंकि यही उसका नाम था) मुस्करा दी थी और एक अजीब-सी स्निग्ध पिघली हुई दृष्टि से उसने चेतन की ओर देखा था। उस क्षण की स्मृति-मात्र से चेतन के शरीर में एक मीठी-सी फुरफुरी दौड़ गयी और उसने एक अनिर्वचनीय आनन्द अपनी नस-नस में अनुभव किया।

चुस्त हो कर वह कुर्सी पर बैठ गया।

तब आज्ञाकारी मानीटर अपने सुयोग्य गुरु के आदेशानुसार दर्जे के प्रायः सभी लड़कों को बेन्चों पर खड़ा करके प्रत्येक को गिन-गिन कर दस थप्पड़ों का दान दे रहा था।

चेतन ने सब को बैठा दिया और स्वयं एक प्रश्न लिखाया।

शेष समय उसने कुन्ती और उससे सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की याद में बिता दिया।

यह एक अजीब बात थी कि तीन वर्ष तक प्रायः प्रतिदिन उसकी खिड़की के नीचे से गुज़रने पर भी उसका शर्मीला प्यार कुन्ती से बातचीत करने की कोई राह न निकाल सका था। इस बात का ख़याल आते ही उसका हृदय धक्-धक् करने लग जाता था। कुन्ती में साहस था। चेतन के मुहल्ले में उसकी एक सहेली रहती थी। उसी से मिलने के बहाने कुन्ती उस दिन चली आयी थी और एक दिन अपनी उसी सहेली के सम्बन्ध में प्रश्न करने के लिए उसने चेतन को ऐन अपनी खिड़की के नीचे रोक भी लिया था। 'ललिता आयी या नहीं', उसने पूछा।

चेतन का रंग उड़-सा गया था। खिड़की के जंगले पर दोनों हाथ रखे झुकी हुई वह खड़ी थी। चंचल, चतुर मुस्कान उसके होंटों पर खेल रही थी। उसका चेहरा गुलाब बन रहा था। आँखें नाच उठी थी और उसके मस्तक के घाव का चिह्न और भी साफ़ और चमकीला हो गया था।

किन्तु चेतन का कंठ सूख गया था। इस अप्रत्याशित प्रश्न से वह

कुछ बौखला-सा गया था और जाने क्या ऊल-जलूल उत्तर दे कर जल्दी-जल्दी चला आया था।

उसकी पहली मुहब्बत ऐसी ही मौन और लजीली थी। हाँ, अपनी कविताओं और कहानियों मे उसने कुन्ती से जी भर के बातें की थी।

०

चार बजे छुट्टी होने पर चेतन अपने घर की ओर चला तो उसने सोचा क्यो न वह अपने पिता से कहे कि वह कुन्ती से विवाह करना चाहता है। उसने मन मे सोच लिया कि यदि बस्ती वालो के यहाँ शादी करने के लिए उसके पिता ने कहा तो वह कह देगा कि वह तो कुन्ती से शादी करना चाहता है। इस बीच मे उसने कुन्ती के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जान लिया था। वह उनकी ही जाति की थी और हाल ही मे उसे यह भी पता चला था कि वह उसके पिता के अभिन्न मित्र पंडित पोल्होराम की नातिन है। यदि उसके पिता उसका विवाह करना चाहेगे तो आसानी से हो सकेगा।

इस विचार के आते ही वह पुलकित हो उठा और उसने फैसला कर लिया कि यदि विवाह की बात चली तो वह अवश्य यही बात कहेगा। तब मन-ही-मन उसने यह चाहा कि सुबह पिता ने उसे जो जल्दी आने के लिए कहा था उसका यही अभिप्राय हो।

क्षण भर के लिए वह अपनी महत्वाकाक्षा भूल गया और तेज चलने लगा।

ग्यारह

चेतन के पिता पं० शादीराम गठे हुए शरीर के पाँच फुट तीन इंच लम्बे रौबीले आदमी थे—गोल मुख, घुटा हुआ सिर और बड़ी-बड़ी ऐसी

मूँछें जिनकी नोकें कानों तक पहुँचती थीं । आँखों मे नशे के कारण लाल-लाल डोरे और कड़कती हुई कर्कश आवाज—लड़कपन ही के, न केवल परले दर्जे के उद्दंड थे वरन् पक्के शराबी भी ।

चेतन के दादा पण्डित रूपलाल पटवारी थे । चेतन की दादी उसी समय परलोक सिधार गयी थी जब चेतन के पिता केवल तीन वर्ष के थे । तब चेतन के पिता की देख-भाल का सब बोझ चेतन की परदादी गंगादेई के सिर आ पड़ा था ।

परदादी गंगादेई अत्यन्त पुराने और संकुचित विचारों की, सहस्रों देवी-देवताओं, पीरों-फकीरो मे विश्वास रखने वाली और पुरोहिताई को प्रत्येक ब्राह्मण का धर्म समझने वाली, उद्दंड और कर्कशा ब्राह्मणी थी । उसके समय का अधिक भाग अपनी पुरोहिताई और धर्म को बनाये रखने में लग जाता था, जो बचता था उसमे कुछ लडाई-झगड़े और शेष पीरों-फ़कीरों की भेंट हो जाता ।

कोई त्योहार हो, परदादी गंगादेई के लिए उसमे योग देना अनिवार्य था । ठंडड़ी, बाजडे, बाबा सोडल, दीवाली, विजय-दशमी, ईद, मुहर्रम बैसाखी, गुरुपर्व, होला-मुहल्ला—हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, किसी भी जाति का कोई त्योहार हो—वह उसमे अवश्य योग देती । मुहर्रम के दिनो में ताजियों के नीचे से गुजर कर उन पर कोडियाँ चढाती, मेंहदी और घोड़ी पर शक्कर के शर्बत की सबील लगाती और गुरुपर्व पर गुरुद्वारो मे जा कर प्रसाद लेना अपना परम कर्त्तव्य समझती । असाढ के एक बृहस्पति-वार को मीरासियो को बुला कर दलिया खिलाती; भादो मे गुग्गे नवमी के दिन कथा सुनती; वर्प मे एक बार पंडोरी जा कर बाबा मल्ल को नजर-न्याज़ देती; एक बार 'पट्टी पोसी' के झंडे वाले पीर के झंडा और 'घोबड़ी' के घडे वाले पीर के घड़े अवश्य चढाती । इसके अतिरिक्त नित्य चली आने वाली पूर्णिमाएँ अमावस्याएँ, एकादशियाँ द्वादशियाँ, तीजें, चौथें सप्तमियाँ, अष्टमियाँ, साल के सब दिन कोई-न-कोई त्योहार लगा ही रहता । और फिर चिन्तपुरनी, ज्वाला जी, चंडिका देवी, और न जाने किस-किस

देवी-देवता, पीर-फ़क़ीर के दर्शन करने जाती। इन सब झमेलों में अपने पोते की देख-भाल के लिए उसे जितना समय मिलता होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है।

रहे चेतन के दादा पण्डित रूपलाल, सो वे भला अपने लड़के की खबरगीरी करते या पटवारगीरी? अपने हलके के अतिरिक्त रियासत की लम्बाई-चौड़ाई मे उन्हे घूमना पड़ता था। फिर वे अपनी इस रस्मों, रिवाजों प्रथाओं और परम्पराओ को बेड़ियो से जकड़ी, धर्मपरायणा माँ के अन्ध-भक्त थे। जो त्योहार वह मनाती, वे भी मनाते। वह जिन पीरों-फ़क़ीरो की सेवा करती, वे भी करते। जब असाढ़ महीने के एक बृहस्पति-वार को मीरासियों का न्योता होता और अपने ढोल लिये हुए 'दानी जट्टी पीर मनाया' की सदा बुलन्द करते, लोरियाँ देते-दिलाते और कपड़े तथा अनाज बटोरते वे साँझ को परदादी गंगादेई की ड्योढ़ी मे पैर रखते तो पण्डित रूपलाल भी चौदह कोस की मंजिल मार कर, पीठ पर माता दुर्गा के स्तोत्र, नये वर्ष का पत्रा और अन्य आवश्यक कागज़-पत्रो की गाँठ के अतिरिक्त कभी गेहूँ और कभी पुरानी मकई की गठरी लादे हुए आ पहुँचते। यदि उनके आगमन से पहले ही कभी मीरासियों को दलिये की थाली परोस दी जाती तो उनके क्रोध का वारपार न रहता। कन्धे की गठरी धरती पर रखते ही वे आसमान सिर पर उठा लेते और उनकी क्रोध भरी आवाज़ दूसरे मुहल्ले तक सुनायी देती। वे चंडी के उपासक थे और (उनके अपने कथनानुसार) इसी के फल-स्वरूप उनके स्वर मे कर्कशता और स्वभाव में क्रोध की मात्रा कुछ अधिक थी, जो उनसे पण्डित शादी-राम और फिर चेतन और उसके भाइयों को पैतृक-सम्पत्ति के तौर पर मिली थी। किन्तु इस समस्त कर्त्तव्यपरायणता, धर्मनिष्ठा और कर्कशता के होते भी उनके पहलू मे ऐसा भोला-भाला दिल था जिसे संसार के तीन-पाँच की कुछ खबर न थी। उनकी माँ जो कुछ कह देती, उसे ही वेद-वाक्य समझ कर वे मन में रख लेते। इसलिए जब पाँचवें दर्जे ही मे पोते को बोर्डिंग हाऊस में दाखिल कराने के लिए परदादी गंगादेई ने अपने इस

आज्ञाकारी पुत्र को आदेश दिया तो किसी प्रकार की आनाकानी किये बिना पण्डित रूपलाल ने उसे मान लिया।

यों इस हालत में इसके सिवा चारा भी न था। कई बार पिता ने शादीराम को अपने साथ कपूरथला ले जा कर रखा। पर 'हुक्मे हाकिम मर्गे मफ़ाजात।'[1] तहसीलदार, कानूनगो तथा माल अफ़सर जब दौरे पर होते तो उन्हें भी अपने हाकिमों की सुविधा के विचार से उनके साथ-साथ भागना पड़ता। नहा कर वे साफ़ा निचोड़ रहे होते कि हुक्म आ जाता और बालक शादीराम को मुहर्रिर के सुपुर्द कर वे सारा दिन भागते फिरते। पूजा-पाठ करने का उन्हें अवसर न मिलता। इसलिए सारा दिन उपवास ही में गुज़र जाता। ऐसा भी कई बार हुआ कि नहा कर पाठ भी उन्होंने कर लिया, लेकिन खाना पकाने बैठे कि हुक्म आ गया। चकले की रोटी चकले पर और तवे-की-तवे पर रह गयी। इसलिए जब-जब अपने पुत्र को वे ले गये, एक महीना भी न गुज़रा कि वापस ले आये।

परदादी ने भी बालक शादीराम को अपने साथ यजमानों के यहाँ ले जाना शुरू किया था। किन्तु इतने यजमान थे और उनके यहाँ इतने-इतने दिन रहना पड़ता था कि उनके इस तजरुबे के फलस्वरूप पंडित शादीराम दो-तीन वर्ष एक ही श्रेणी में रहे।

एक तीसरी बात भी थी जिसने परदादी गंगादेई को यह प्रस्ताव करने पर विवश कर दिया और वह थी शादीराम की उच्छृंखलता! प्रायः जब परदादी बाहर जाती, अपने पोते को किसी पड़ोसिन के घर छोड़ जाती। माता-पिता तथा दादी के डर से मुक्त हो कर बालक मनमाना उत्पात मचाता। इस नन्ही-सी आयु ही में वह अखाड़े जाता, लड़ाइयाँ करता और सिर फोड़ता-फोड़वाता। कभी जब इस बीच में अचानक परदादी आ जाती और अपने पोते की दशा देखती तो फिर जब तक रहती अपने इस उद्दंड पोते के संगी-साथियों और उनके घर वालों को गालियाँ देती। यदि किसी लड़ाई में वह सिर फोड़वा आता तो मुहल्ले

1. हाकिम की आज्ञा आकस्मिक मृत्यु ही का दूसरा नाम है।

वालों का दिन का चैन और रात की नींद वह हराम कर देती। और यदि उसका पोता किसी दूसरे का सिर फोड़ आता तो वे लोग उसे चैन न लेने देते।

होस्टल में आ कर शादीराम और भी उद्दंड हो गये। परदादी जब भी यजमानों के यहाँ से आती, होस्टल में पहुँच कर अपने पोते को कुछ दिनों के लिए घर ले आती। शादीराम उससे यह कह कर कि होस्टल जा रहे हैं और होस्टल में यह बहाना बना कर कि घर जा रहा हूँ, जहाँ जी चाहता चले जाते। कई-कई दिन मित्रों के घर रहते। परदादी को तभी पता चलता जब वह फिर होस्टल पहुँचती और वहाँ शादीराम को न पाती। तब वह अपने इस पोते के मित्रों को गालियाँ देती, घर-घर छान डालती और उसे बिगाड़ने वालों के पुरखों की सात-सात पीढ़ियों को घोर नरक में भेजने तक की सिफारिश भी अपने समस्त देवी-देवताओं से करती।

लेकिन परदादी के कठिन शासन के बावजूद शादीराम दूसरे ही दिन भाग जाते। वास्तव में उन्हें इस लुका-छिपी में विशेष आनन्द आने लगा था। जितना ही वह उनके पीछे भागती, उतना ही वे उनके हाथ न आने की कोशिश करते। इसका एक कारण शायद यह भी था कि परदादी जब भी अपने इस पोते को पकड़ पाती उसे कुछ कहने के बदले उसके मित्रों और मित्रों के घर वालों ही को गालियाँ देती।

हार कर परदादी ने आठवें दर्जे ही में पण्डित शादीराम का विवाह कर दिया। इससे उनकी सरगर्मियों में तो क्या कमी आती, हाँ इस विवाह की खुशी में उन्होंने अपने घनिष्ठ मित्र देसराज के घर पहली बार मदिरा का भी रसास्वादन किया (सिगरेट आदि वे पाँचवी श्रेणी ही से पीते थे) और उनकी उद्दंडता, उच्छृंखलता, निर्भीकता और उदारता ने मिल कर उन्हें जीवन में उतनी हानि न पहुँचायी थी जितनी इस 'तरल आग' के रसास्वादन ने पहुँचा दी।

बात यह है कि पहले-पहल उन्होंने इसे 'दवा' समझा था। देसराज के पिता रिटायर्ड सब-जज थे। खाने-पीने वाले आदमी थे। लेकिन बाज़ार

शेखां में जाने के बदले घर में मँगा कर पीते थे । दोनों लड़के उन्हें रोज़ बोतल से शीशे के नन्हें-से गिलास में उँडेल कर कुछ पीते और फिर सरूर में आ कर कुछ मुखर होते देखते। देसराज के पिता हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ आदमी थे। उनके बीमार होने की कल्पना भी न की जा जा सकती थी। तब लड़कों ने समझा कि यह कोई स्वादिष्ट शक्ति-वर्द्धक औषधि है। उनकी उत्सुकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी। आखिर शादीराम के विवाह की खुशी मे उन्होंने इस शक्ति-वर्द्धक औषधि का रसास्वादन करने की ठान ली। देसराज बोतल ले आये । दोनों ने एक-एक घूंट पिया। अत्यन्त कड़वी लगी। उन्होने समझा कि दवा मज़ेदार नही है, शक्ति-वर्द्धक चाहे कितनी भी क्यो न हो। यह भी निश्चय उन्होने कर लिया कि फिर इसे न पियेंगे। देसराज उसे वही-की-वही रख भी आया था। पर दूसरे ही दिन जैसे किसी पूर्व-निश्चित निर्णय के अनुसार दोनों मित्र आधी-छुट्टी के समय घर आये और फिर वही एक-एक घूंट!

और जब तीन वर्ष मैट्रिक ही मे रह कर चौथे वर्ष शादीराम ने परीक्षा पास की तो वे पक्के शराबी बन चुके थे।

बारह

स्कूल से आते-आते मार्ग ही मे अपने मित्र अनन्त को कुन्ती के सम्बन्ध मे अपनी सारी स्कीम समझा कर जब चेतन घर आया तो उसे मालूम हुआ कि उसके स्कूल जाने के कुछ ही देर बाद देसराज आया था और उसके पिता तभी से उसके साथ गये हुए है और माँ प्रतीक्षा में बैठी है कि वे आयें तो उन्हे खिला कर स्वयं भी दो कौर खाये।

यह देसराज रिटायर्ड सब-जज का वही पुत्र और चेतन के पिता का वही अभिन्न-हृदय मित्र था, जिसने उन्हें उस 'तरल जीवन' का (चेतन के

पिता को शराव को यही नाम दिया करते थे) रसास्वादन करने मे सहायता दी थी और उसके बाद भी इस 'पुण्य-कार्य' मे उनका हाथ बटाते रहने के महान् कर्तव्य को, कभी-कभी 'केवल उनका मान रखने के हेतु' जिसे अपने ऊपर ले लिया था।

अपने सव-जज पिता की मृत्यु से पहले, उनकी ही कृपा से, देसराज एक वैंक मे मैनेजर हो गया था। उसके पिता काफी सम्पत्ति छोड़ गये थे इसलिए कोई आर्थिक चिन्ता उसे न थी, किन्तु उसके स्वभाव मे नीचता कदाचित जन्मजात ही थी। देसराज के पिता ने दयानतदारी से जजी करके ही इतना रुपया कमाया हो, यह बात न थी। उनके रिश्वती स्वभाव के सम्बन्ध मे वहुत-सी कहानियाँ प्रचलित थी। एक पागल विधवा जो उन्ही की कृपा से अपना दीवानी मुकदमा हार गयी थी, उन्हे प्रायः भरे वाजार मे गालियाँ दिया करती थी। उनके इस पुत्र मे यह नीच प्रकृति वहुरूपिनी हो कर प्रकट हुई थी। वह शराव जरूर पीता था, पर अपने पल्ले से नही। पण्डित शादीराम जैसे पिलाने वाले उसे प्रायः मिल जाया करते, अथवा यों कह लीजिए कि वह ऐसे घनिष्ठ मित्र पैदा कर लिया करता था। यह और वात है कि उसके इन्ही घनिष्ठ मित्रो पर उसके ऋण का वोझ चढा रहता था और उसने योही, केवल ज़ाब्ते के तौर पर, वाहर आने रुपया महीना के व्याज पर कुछ प्रोनोट लिखवा रखे थे—यद्यपि उस रकम का आधा भाग उसके अपने ही पेट मे शराव के रूप में पहुँच चुका था।

इसके वाद जव वैंक से एक भारी रक़म के ग़वन के अभियोग मे उसे वरवस त्याग-पत्र देना पडा, और वह घर आ वैठा तो सूद द्वारा या जुआ खिला कर अथवा ऐसे और कई संदिग्ध साधनो से वह रुपया पैदा करने लगा। इसमें दड़ा[१] भी एक था; यद्यपि यह व्यवसाय वह गुप्त रूप से करता था। इसके वाद एक दिन लोगो ने सुना कि वह अचानक कुटुम्व समेत गायव है।

---

१. वदनी।

नगर वालों को चाहे उसके इस आकस्मिक पलायन का पता न चला हो, किन्तु मुहल्ले मे यह वात रात के तीसरे पहर घटित होने के वावजूद सूर्य की प्रथम किरण के साथ घर-घर मे फैल गयी थी। उसकी कुंवारी लड़की को वच्चा हुआ था और न जाने उसके किस शत्रु ने जा कर पुलिस को सूचना दे दी थी। पुलिस आ भी गयी थी और लडकी ने अर्ध-चेतनावस्था मे कह भी दिया था कि वच्चा उसके पिता का है। लेकिन रुपये से पुलिस का मुँह वन्द करके सुवह होते-होते वह भाग गया था। पत्नी तो यह दिन देखने से वहुत पहले ही मर चुकी थी, हाँ, एक वृद्धा वुआ उसके दूसरे वच्चो को सम्हाले हुए साथ ही चली गयी थी।

फिर सुना कि उसने वाहर ही अपनी इस लड़की को किसी योग्य, लेकिन ज़रूरतमन्द वर के हाथों सौंप दिया है। फिर कुछ समय तक उसका पता नही चला। हाँ, उसके किसी-न किसी ऋणी को किसी-न-किसी तीर्थ से तगादे के पत्र वरावर आते रहे और लोगों की यह धारणा वनती गयी कि वह तीर्थ-यात्रा कर रहा है और अभी काफ़ी अर्से तक जालन्धर वापस न आयेगा। लेकिन मुहल्ले वालों के अचम्भे की कोई सीमा न रही जव उन्होंने देखा कि उस घटना के दो वर्ष वाद ही एक दिन वह अचानक अपने घर में आ गया और लोगों से वडे तपाक से मिला। किसी के सामने उसकी आँख नहीं झुकी, किसी से उसने मुँह नही छिपाया और गरीवी की विवशता से नेक वने रहने वाले ईर्ष्यालु लोगो ने यह भी देखा कि उसने कुछ ही दिनों मे पूर्ववत् मुहल्ले के चौधरी का स्थान सम्हाल लिया।

अपने पिता के इस घनिष्ठ मित्र के सम्वन्ध में ये सव वातें एकदम याद आ जाने से चेतन ने कहना चाहा—'न जाने यह कमीना देसराज कव हमारा पीछा छोड़ेगा?' पर शब्द उसके होंटो तक ही आ कर रुक गये, क्योंकि जहाँ तक उसके पिता या उनके मित्रों का सम्वन्ध था, उनके वारे मे किसी तरह की कटु वात सुनना भी चेतन की माँ पाप मानती थी।

तव मन-ही-मन देसराज को वीसियो गालियाँ दे कर चेतन ने अपने

दिल का सारा क्रोध निकाल लिया और अपनी माँ के अज्ञान, अन्ध-श्रद्धा तथा पातिव्रत-धर्म पर मन-ही-मन तिरस्कार पूर्वक हँस भी लिया।

तेरह

रही चेतन की माँ, सो वह उन पतिव्रता स्त्रियों मे से थी, जिनके मस्तिष्क धर्मशास्त्रों, पंडितो और पुरोहितो ने बुरी तरह जकड रखे है। स्वर्ग पाने के लिए ही वे पति को परमेश्वर समझती हों, यह बात नही। बचपन ही से उन्हें बताया जाता है कि पति अन्धा, काना, लूला, लँगड़ा, निर्धन, शराबी, जुआरी—कैसा भी क्यों न हो, पत्नी के लिए वह परमेश्वर है; उसकी अवज्ञा करना महापाप है। इसलिए पातिव्रत-धर्म उनके स्वभाव का एक अंग बन जाता है।

उसके पिता पण्डित शिवराम मिश्र होश्यारपुर मे पंडिताई करते थे। उनकी पहली पत्नी चेतन की माँ को छोड़ कर तब ही मर गयी थी जब वह केवल तीन वर्ष की थी। उसके पिता घर से अत्यन्त विपन्न थे, यजमान भी उनके इतने अधिक न थे। इसलिए दूसरी जगह उनका विवाह शीघ्र न हो सका था। बात तो कई जगह लगी, लेकिन हमारे इन प्राचीन मुहल्लों में जहाँ जोड़ने वाले दो है, वहाँ तोडने वाले चार। इसलिए बात लगने को हो कर भी कई बार टूट गयी। अन्त मे उसकी माँ की मृत्यु के पूरे सात वर्ष बाद जब उसके पिता एक दिन प्रकट किसी दूसरे की बारात मे शामिल होने के लिए गये थे और उसके ताऊ ने उसके लिए कई तरह की चीजें ला देने का वादा भी किया था तो आश्चर्य-चकित बालिका ने देखा था कि विवाह से मिलने वाली मिठाई आदि की गठरी के स्थान पर वे स्वयं बहू को ही ले आये थे।

उस समय हर्ष-उल्लास और कई हैरान कर देने वाली रस्मो और

बधाइयों के मध्य उसकी बुआ ने उसके बार-बार पूछने पर कहा था—
'यह तेरी नयी माँ है ।'

अपनी सगी माँ के सम्बन्ध में लाजवती को (यही चेतन की माँ का नाम था) कुछ अधिक ज्ञान न था । बहुत हल्का-सा, जैसे युगों पहले देखे स्वप्न-का-सा, अपनी माँ का चित्र उसकी आँखों के सामने आया करता था । शायद पिता के रूखे व्यवहार के कारण स्नेह-विहीना लड़की की कल्पना ने उसकी माता का चित्र उसके मानस-पट पर बना दिया था । उसे कुछ ऐसा आभास था जैसे उनके अँधेरे आँगन में, जहाँ सील का सदैव राज्य रहता था और ऊपर से खुला रहने पर भी जहाँ प्रकाश कम ही आ पाता था, एक खाट पर मैली-सी, कही धर्मशांति अथवा शुद्धि में आयी हुई रजाई में लिपटी उसकी माँ पड़ी है—पीला जर्द चेहरा, पिचके कल्ले, पपड़ियों-जमे होंट, बन्द होती-सी आकांक्षा और ज्वर के खुमार से भरी आँखें और काँपता-सा हाथ जो उसने उसके सिर पर रखा था । उसके सिर पर प्यार का हाथ रखते हुए अपने सूखे होंटों से उसने कुछ कहा भी था । पर वह सब उसे याद नहीं । यह चित्र कई बार चेतन की माँ ने देखा था । उसने यह भी देखा था कि जब उसकी माँ ऐसे पड़ी थी और उसके सिर पर हाथ रखे अस्फुट स्वर में कुछ कह रही थी तो उस अँधेरे आँगन के साथ लगी, धुएँ भरी कोठरी में उसके ताऊ चाय आदि पी कर बैठे हुए अपनी कभी न दम लेने वाली गुड़गुड़ी से मन बहला रहे थे ।

जब-जब कष्ट, उपेक्षा, निरादर, स्नेहाभाव के कारण चेतन की माँ विह्वल हुई, अपनी माँ की यही मूर्ति उसके सामने आती रही और उसके हृदय को शांति मिलती रही ।

लेकिन उसकी यह नयी माँ तो उसकी समवयस्क ही थी, बहुत होगा दो-एक वर्ष बड़ी होगी । देहात की होने के कारण कुछ बड़ी-बड़ी लगती थी । चौड़े-चौड़े हाथ-पाँव, खुले-खुले बेडौल अंग, लम्बी-मोटी नाक, स्वस्थ शरीर और साँवला रंग ! एकदम असभ्य और गँवार थी । न उसे बाल बाँधने का सहूर था न कपड़े पहनने की तमीज़ ! नाम था मालाँ (मालिन

का संक्षिप्त) और वह प्रयत्न करने पर भी इस नाम के अतिरिक्त 'माँ' या 'भाभी' या 'बीबी' कह कर उसे न बुला सकी थी।

दबे-दबे, घुटे-घुटे माँ-बाप के स्नेह से वंचित बच्चों की बुद्धि या तो बिलकुल जड़ हो जाती है या फिर उसमें एक असाधारण प्रखरता आ जाती है। बचपन में चेतन की माँ की बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, अल्प वयस ही मे वह बहुत कुछ समझने-सोचने लगी थी। उसकी सहेलियाँ पास के मुहल्ले की पाठशाला मे जाती, पर उसे स्कूल जाने की मनाही थी। आज-कल की भाँति शिक्षा व्यापक न हुई थी और पुराने विचारों के उसके पिता और ताऊ इतनी बड़ी लड़की का घर से बाहर निकलना बुरा मानते थे। लेकिन चेतन की माँ ने अपनी सहेलियों की पुस्तको ही से उनका पढा हुआ पाठ पूछ-पूछ कर बहुत कुछ सीख लिया था, यहाँ तक कि एक दिन उसने जगदीश के सारे किस्से उससे ले कर पढ डाले थे।

जगदीश उसके फूफा का लड़का था। वही रहा करता था। पढता-पढाता तो कुछ न था, पर किस्सा जो भी नया छपता खरीद कर घर ले आता। एक दिन इन्ही किस्सो मे से एक को पण्डित शिवराम ने अपनी लड़की के हाथ मे देख लिया। तब ढूँढ-ढूंढ़ कर सब क़िस्सों को तो उन्होने आग लगा दी और साथ ही लड़के को भी पिता के घर भेज दिया, और चेतन की माँ को इतना फटकारा कि वह रो दी थी। उन किस्सो मे क्या बुराई है, यह तब उस सरल, निरीह, भोली-भाली बालिका को मालूम न था।

अपने लड़के का यह अपमान देख कर बुआ ने पहले तो ताने दिये कि अब जब नयी बहू आ गयी है तो उसकी क्या आवश्यकता है, फिर अभिशाप दिया कि इस गँवार बहू के हाथो उसका घर चौपट हो जायगा, फिर रोयी और अपने घर चली गयी।

तब पढाई छोड कर चेतन की माँ ने अपना ध्यान सीने-पिरोने और कशीदे की ओर लगाया था। अपनी सहेलियों ही से पूछ-पूछ कर उसने बहुत कुछ सीख लिया था। यह बुद्धि और यह सब सलीक़ा उसने अपनी

इस समवयस्क विमाता को सुसंस्कृत बनाने में खर्च करना शुरू कर दिया था। उसके बाल वही गूँथती, उसे कपड़े वही पहनाती, उसे सीना-पिरोना वही सिखाती और इस तरह अपनी 'माँ' को योग्य बनाने का प्रयास करती। लेकिन न पिता ने इस काम के लिए उसकी प्रशंसा की और न माता बन कर आने वाली इस समवयस्क लड़की ने। पिता कठोर थे और उस माता को प्रशंसा करने की तमीज ही न थी।

लेकिन चेतन की माँ इतने ही से प्रसन्न थी, कि एक दिन पंडित शादीराम से उसका विवाह हो गया।

यह ठीक है कि विवाह के बाद तत्काल वह ससुराल न गयी, और पुरानी प्रथा के अनुसार तीन वर्ष और अपने मायके में रही। किन्तु इन तीन वर्षों मे लड़की से बधू बन जाने पर भी उसके दैनिक जीवन मे कोई अंतर नही आया। हुआ केवल इतना कि घर मे उसका जो थोड़ा-बहुत मान था, वह भी कम हो गया।

बात यह हुई कि उसके चाचा का विवाह भी इस बीच अमृतसर में हो गया और उसकी चतुर चाची ने आते ही उसकी विमाता को अपने वश में कर लिया। इसलिए जब तीन वर्ष बाद एक दिन अचानक पण्डित शादीराम उसे लेने पहुँचे तो उसे दुःख नहीं हुआ। उसकी आँखें भर आयी थीं, और चलते समय वह रोयी भी खूब थी। पर यह रोना उस खुशी के लिए न था जो मायके में लड़कियों को प्राप्त होती है, वल्कि उस खुशी के अभाव के लिए था।

तभी जब वह ताँगे मे बैठी थी और पिता ने ठंडे प्यार का हाथ उसके सिर पर फेरा था तो चेतन की माँ के सामने सोलदार आँगन के अँधेरे में पड़ी अपनी उस रोगिणी माँ का चित्र घूम गया था और उसने दुपट्टे से मुँह ढाँप लिया था।

०

जिस मकान मे ला कर पण्डित शादीराम ने उसे ठहराया था वह उनका अपना मकान न था। सहज-ज्ञान ही से चेतन की माँ ने यह जान लिया

था । क्योकि मायके मे अपनी ससुराल के पुराने जीर्ण-शीर्ण घर के सम्बन्ध मे कुछ-न-कुछ भनक उसके कान मे पड़ चुकी थी और मन-ही-मन उसने निश्चय भी कर लिया था कि बुरा तो, भला तो, जो भी हो, वह उसे ही स्वर्ग समझेगी । इसलिए उसने अपने पति से इच्छा प्रकट की थी कि जैसा भी हो, वह अपने ही घर जायगी । जब सदा दूसरे के घर नही रहा जा सकता और एक दिन अपने घर जाना ही है तो क्यो न अभी से वहाँ रहने का स्वभाव डाला जाय ।

और जब जीर्ण-शीर्ण ड्योढी से गुजर कर (पैरों की आहट ही से जिसकी छत और दीवारो की मिट्टी गिरती थी) वह आँगन मे गयी तो कुछ क्षण मूक मर्माहत-सी खडी रह गयी थी । मायके मे उसके पिता का घर भी पुराना ही था, अँधेरा भी था और सील-भरा भी । सुन्दर वह कभी भी न था । लेकिन वह घर तो था । यह—यह तो खँडहर था !

आँगन कूडे-करकट से अटा पड़ा था । कही कोयले बिखरे थे, और कही-कही कौवो तथा चीलो द्वारा आकाश से फेंकी हुई हड्डियाँ । सामने के दालान की दीवार मे छोटी-छोटी ईंटें साफ़ दिखायी दे रही थी—मिट्टी शायद वर्षा से धुल गयी थी । रसोई-घर के किवाड़ जर्जर थे और कुंडी लगी रहने पर भी दोनो किवाडो के बीच इतनी जगह बन जाती थी कि पूरी-की-पूरी बाँह अन्दर बड़ी सुगमता से जा सकती थी । चूहे तो क्या, बिल्ली भी चाहे तो तनिक सिकुड़ कर घुस सकती थी । इसी दरवाजे से निकल कर धुएँ ने रसोई-घर के बाहर की दीवार को बिलकुल काला कर दिया था । बायी ओर का दालान काला पड़ा था और गिरी हुई छत का मलवा और कोयले दरवाजे से बाहर तक आ गये थे । इसके साथ ही ड्योढी की ओर को एक बिना किवाडों का खुला रसोई-घर और था । आँगन की मुंडेर निरन्तर वर्षा और लिपायी-पुतायी के अभाव के कारण नंगी हो गयी थी और सामने दालान की मुंडेर पर एक बिलकुल नंग-धड़ंग व्यक्ति एक टांग इधर और एक टांग उधर किये बैठा शून्य ही से बातें कर रहा था । हाथों को एक-दूसरे के पास ला कर उनसे हवा मे आदमी बनाता

हुआ दाँत किटकिटा कर 'लोहे का आदमी, लकड़ी का आदमी, जा !' कहता हुआ वह शून्य में बने हुए उन आदमियों को न जाने किधर उड़ा रहा था।

क्षण भर के लिए चेतन की माँ उस मिट्टी-सने, जैसे वर्षों से स्नान-वंचित उस व्यक्ति को देखती रही। उसने पति के यह शब्द, 'चुन्नी है पागल' नही सुने। तभी उस पागल ने उनकी ओर देखा और दाँत किटकिटा कर लोहे तथा लकड़ी के दो आदमी बना कर उनकी ओर छोड़ दिये। चौड़ा मस्तक, चपटी मोटी नाक, होंट कटे होने के कारण बाहर दिखायी देते दाँत, खड़े-खड़े रूखे बाल, काली नंगी स्वस्थ देह ! —डर कर चेतन की माँ दो क़दम पीछे हट गयी थी।

तब उसके पति ने छत पर जा कर उस पागल को भगा दिया और आ कर तनिक उल्लास से बताया कि वह उनका पागल चचा है और यह जला दालान और खुला रसोई-घर भी उसी का है, और उसी ने पागलपन की झोंक में इस दालान को आग लगा दी थी। फिर कुछ गर्व के साथ उसके पति ने कहा था—'बस डरता है तो मुझी से। यह नाक इसकी मैंने ही तोड़ी है। एक दिन यह घर से जाता न था, दादी को तंग करता था। मैंने जाने को कहा तो मुझ पर भी झपटा। पटक कर मैंने इसे उस किवाड़ की चौखट पर दे मारा। मेरा बायाँ हाथ इसके हाथ मे आ गया। किचकिचा कर दाँतो मे इसने पकड़ लिया। मैंने कहा—'छोड़ !' इसने और भी दाँत गड़ा दिये। तब पूरे जोर से तान कर दो घूँसे मैंने इसके रसीद किये। नाक की कोठी टूट गयी और होट फट गये। दादी को सब से अधिक इसी पागल से प्यार है। वह बहुत रोयी-पीटी, किंतु जो भी हो, फिर यह कभी मेरे सामने नही हुआ।'

और यह कह कर प्रशंसा पाने की इच्छा से पण्डित शादीराम ने अपनी इस नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा। लेकिन चेतन की माँ का मुख पीला पड़ गया और वह सहमी हुई-सी अपने इस क्रूर पति को देखती रह गयी थी।

तब कुछ अप्रतिभ-से हो कर पण्डित शादीराम ने कन्धे झाड़े थे और चारों ओर निगाह दौड़ा कर कहा था, "मैंने तुम्हे बताया था न कि घर तो बस खँडहर ही है।"

और वे खिसियानी-सी हँसी हँसे थे।

चेतन की माँ के चेहरे का रंग वापस आ गया था, और अपना निश्चय भी उसे स्मरण हो आया था—'मेरे लिए यही स्वर्ग है।' यह कह कर वह आगे बढ़ी थी।

और फिर कपड़े बदल कर आँगन को झाड़-बुहार, कोयलो, हड्डियों और कूड़े-करकट का अम्बार उसने एक कोने मे लगा दिया था, और दालान मे भी सफाई करके एक चारपाई के लिए थोड़ी-सी जगह बना ली थी।

यही उसकी सुहागरात बीती थी।

०

इसके बाद अब तक उसके दिन कैसे गुज़रे थे? इस प्रश्न के उत्तर मे केवल इतना कहना पर्याप्त है कि पहले दिनो से वे कुछ भिन्न न थे। और पहले दिनो का विवरण कुछ यों है :

आठवी श्रेणी मे ही शराब पीना शुरू करके उसके पति ने अपने विवाह तक सब तरह के काम कर देखे थे। और उन लोगों मे, जो स्वयं उतने शुद्ध-चरित्र नहीं होते दूसरो के चरित्र के प्रति जो एक तरह का सन्देह-सा होता है, वह पंडित शादीराम के मन मे भी था। दसवी कक्षा तक वे पढ़े थे। वास्तव मे उन दिनों बी० ए० तक कोई विरला ही युवक जाता था। साहित्य के नाम पर भी (अपने समय के अधिकांश युवको की तरह) उन्होने 'अलिफ़ लैला', 'किस्सा तूती-मैना', 'इसरारे दरबारे हरामपुर' के ढंग के उपन्यास पढ़े थे, जिनमे तिरिया-चरित्र के विशद वर्णन और काम को उद्दीप्त करने वाले किस्सो के सिवा कुछ न था। इसलिए नारी के प्रति उनका सन्देह और भी गहरा था। चेतन की परदादी उन दिनो यजमानों के यहाँ दौरे पर गयी हुई थी, और स्वयं उन्हें स्कूल जाना

होता था, जहाँ मैट्रिक की परीक्षा पास करते ही वे अध्यापक हो गये थे। इसलिए वे उसे उस खँडहर मे बन्द करके बाहर से ताला लगा जाया करते थे।

उस खँडहर-से मकान मे उसका दिन कैसे कटता था। इसके सम्बन्ध मे जिज्ञासु को इतना बता देना यथेष्ट ही है कि वह किसी भारी बेचैनी अथवा उद्विग्नता से न गुजरता था। अपने पति के इस क्रूर-व्यवहार के प्रति भी उसके मन मे किसी प्रकार का असन्तोष न था। अपने कर्मफल को (क्योंकि वह इस जन्म के दु:खों तथा कष्टों को पूर्व-जन्म के कर्मो का फल ही समझती थी।) उसने सन्तोष के साथ भोगना बहुत पहले सीख लिया था। अपनी ददिया सास (परदादी गंगादेई) के हाथों दालान के एक कोने मे जमायी हुई चक्की को उसने अपने इस एकान्त की संगिनी बना लिया था। सुबह खाना बना कर अपने पति को खिला-पिला कर उन्हे काम पर भेज कर, (बाहर से उनके ताला लगा देने पर भी) अन्दर से कुण्डी लगा कर, वह चक्की के पास आ बैठती और दूसरे दिन के लिए आटा पीसती। कभी दायें, कभी बाये और कभी दोनों हाथों से चक्की के दस्ते को घुमाते हुए वह मीठे, तरल, लगभग आर्द्र-स्वर से गाया भी करती थी। मायके मे अपने उसी फूफा के लड़के से उसने एक बार ब्रह्मानन्द के बिसुनपदों की पुस्तक मँगायी थी। बार-बार उसे पढने से बहुत-से भजन उसे कंठस्थ हो गये थे। उन्हे गाते-गाते वह भक्तिरस मे विभोर हो जाती और भूल जाती कि वह एकाकिनी है, उसके पति बाहर से ताला लगा गये है, उसका घर खँडहर है, उसका वर्तमान दु:खद है और भविष्य भी उज्ज्वल नही। एक अनिर्वचनीय सन्तोष से उसके मन-प्राण प्लावित हो जाते थे। ब्रह्मानन्द के भजनों के अतिरिक्त वह दूसरे भी भजन गाया करती थी। जैसे :

कहो जी कैसे तारोगे ?
रंका तारी बंका तारी तार्‌यो सदन कसाई।
सुआ पढ़ावत गनिका तारी, तारी मीराबाई !
प्रभु जी कैसे तारोगे ?

भजन गाते-गाते वह तन्मय हो जाती और प्रायः उसका स्वर भी सानुनासिक हो जाता (जैसे तारोगे को तारोंगे) किन्तु यह उस आदर का सूचक होता जिससे वह सर्वशक्तिमान को सम्बोधित करती।

कर्म गति टारे नाहिं टरे।

दूसरा गीत था जो वह चक्की पर गाया करती थी।

चक्की के बाद प्रायः वह चर्खा ले बैठती और अपने समस्त एकान्त को, अभाव को, दुःख को कात-कात कर टोकरी में बन्द कर देती। 'हीर राँझा' या 'माही' अथवा 'ढोल' का कोई गीत गाने के बदले चर्खा कातते समय भी वह ऐसे ही गीत गाती जैसे :

हरी जी जो गुजरे सहिए।
छोड़ खुदी की राह राजा जी
जो गुजरे सहिए!

अपनी सहेलियों से पूछ-पूछ कर उसने जो थोड़ा-बहुत पढ़ना सीख लिया था, इस एकान्त मे वह भी उसके कम काम नही आया। कभी जब घर मे रुई अथवा लोगड़[1] कुछ भी न होता, वह भगवद्गीता ले बैठती। उसके दर्शन को वह ठीक तरह समझ पाती हो, यह बात नही, उन श्लोकों को वह ठीक तरह पढ पाती हो, यह भी नही, वह तो पाठ के तौर पर उसे पढ़ा करती। इस पुस्तक के श्लोक तोते के मुँह से सुनने पर जब गणिका तर गयी तो वह पापिन क्यों न तर जायगी। उसने वास्तव मे कोई पाप किया हो, यह बात न थी। किन्तु उसने सीखा था कि न जाने दिन मे मनुष्य से कितने पाप बन आते है, इसलिए जहाँ तक हो डर कर रहना चाहिए।

इसी तरह उसका दिन बीत जाता था और कभी वह खाना पका रही होती और कभी खाना पक चुका होता, जब पण्डित शादीराम आते। उनका समय पर आ जाना कुछ निश्चित न था। उसके इस आरम्भिक जीवन मे (और बदली हुई पार्श्वभूमि के साथ बाद मे भी) ऐसे बहुत-से

१. रूहड़ = लिहाफ़ की पुरानी रुई।

दिन आये जब वह खाना पका कर अपने पति की प्रतीक्षा में भूखी-प्यासी बैठी रही और वे रात-रात भर नहीं आये ।

अभी उसे इस कैदखाने मे वन्दी हुए अधिक दिन नहीं बीते थे कि संकट चौथ का व्रत आ गया । चेतन की माँ के लिए यह बड़ा महत्वपूर्ण व्रत था । जब संध्या को आ कर पण्डित शादीराम ने किवाड़ खोले तो दिन भर की भूखी-प्यासी लाजवती ने अपने पति से कहा कि वह व्रत से है और वे तिल और गुड ला दें ताकि वह भुग्गा (गजक) बना कर गणेश की पूजा करके व्रत उपार ले और फिर उसने यह भी प्रार्थना की कि संध्या को कम-से-कम आज वे कहीं न जायँ ।

पण्डित शादीराम ने उसे विश्वास दिलाया कि वे ऐसा ही करेंगे और जल्दी ही आने का वादा करके प्रकट उसके लिए तिल लेने गये । लाजवती ने उनके लिए खाना आदि पका लिया और फिर वह वहीं रसोई-घर के बाहर आँगन मे बैठी उनकी प्रतीक्षा करने लगी । धीरे-धीरे संध्या का अँधेरा आँगन मे छा गया । सामने के मकान की ऊँची और निरन्तर वर्षा के कारण काली पड जाने वाली दीवार संध्या के अँधेरे मे और भी काली दिखाई देने लगी और उस दीवार की छत पर लगी हुई कौवों की सभा भी विसर्जित हो गयी । ऊपर निरभ्र आकाश पर एक-दो तारे निकल आये । लाजवती ने उठ कर सरसों के तेल का दिया जलाया और उसे रसोई-घर मे रख कर नमस्कार किया । फिर वह प्रतीक्षा मे मोढ़े पर बैठ गयी ।

वहीं बैठे-बैठे तब उसने संकटमोचन दुखहरन श्री गणेश की आराधना आरम्भ कर दी और अगणित बार

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

का पाठ भी कर लिया । जब फिर भी पण्डित जी न आये तो वह मन-ही-मन उस कहानी[१] को दुहराने लगी जो संकट चौथ के दिन ब्राह्मणी सुनाया

१. एक बार भगवती पार्वती नहाने गयी । भगवान् शंकर कहीं गये थे । देवी पार्वती ने अपने पुत्र को स्नानगृह के दरवाज़े पर खड़ा

करती थी । वहाँ ब्राह्मणी तो क्या आती, मन-ही-मन स्वयं उसने वह कहानी दुहरायी ।

मन-ही-मन में इस कहानी को दुहराते हुए, अन्त पर पहुँच कर चेतन की माँ ने श्रद्धा से गणेश भगवान् का ध्यान कर सिर झुकाया और एक चित्त हो कर प्रार्थना की कि उसके समस्त संकट दूर हो जायँ ।

वहीं बैठे-बैठे उसने व्रत के माहात्म्य के सम्बन्ध में भी सब कहानियाँ मन में दुहरा डालीं । किन्तु पण्डित शादीराम न आये । उधर अर्घ्य का समय हो गया । अब घर में स्वच्छ पवित्र जल नहीं था, जिससे चन्द्रमा को अर्घ्य

किया और कहा कि किसी को आने न देना । तब ऐसा हुआ कि भगवान् शिव बाहर से आये । पुत्र ने पिता को रोक दिया । भगवान् ने समझाया कि बेटा मैं तेरा पिता हूँ, तेरी माता का पति हूँ, मेरे जाने से कुछ हानि नहीं, पति-पत्नी में कोई पर्दा नहीं होता आदि-आदि, पर पुत्र न माना । इस पर भगवान् शिव ने क्रोध में आ कर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया । जब देवी पार्वती बाहर आयीं तो अपने प्रिय पुत्र को मृत देख कर विलाप करने लगी । उन्हें इस तरह कातर होते देख कर भगवान् शिव को उन पर दया आयी और उन्होंने वचन दिया कि अच्छा हम इसे जीवित कर देंगे । पार्वती को यों ढाढ़स बँधा । भगवान् ने अनुचरों को आज्ञा दी कि रात के समय जिस पुत्र की माँ उसकी ओर पीठ करके सोयी हुई हो, उसका सिर काट लायें । अनुचर समस्त मर्त्यलोक में घूमे, पर कोई भी ऐसी माता न मिली जो अपने पुत्र की ओर पीठ करके लेटी हो । अन्त में उन्हें एक ऐसी हथिनी मिल गयी, जिसकी पीठ अपने शिशु की ओर थी । अनुचर उसके बच्चे का सिर काट लाये । भगवान् शिव ने अपने मृत पुत्र के धड़ पर वह सिर लगा कर मन्त्र पढ़ा और उसमें जान पड़ गयी ।

पार्वती जी ने इस लम्बी सूँड़ वाले गजानन को देखा तो वे और भी दुखी हुईं । तब फिर भगवान् शिव ने उन्हें सान्त्वना दी और वर दिया कि जो इस दिन गणेश-पूजा करेगा उसके सब संकट दूर हो जायेंगे ।

दिया जाय । डरते-डरते वह ड्योढी मे गयी कि दरवाज़े में खड़ी हो कर सामने के मकान मे रहने वाली ब्राह्मणी मलावी को आवाज़ दे । अन्दर से कुण्डी खोल कर वह दरवाजें से सिर लगाये कितनी देर तक खड़ी रही किन्तु उसे आवाज देने का साहस न हुआ । आखिर उसने सिर हटाया, किवाड़ अन्दर को खुल गया, क्योंकि पण्डित जी का खयाल था कि वे शीघ्र आ जायेंगे, इसलिए वे ताला लगा कर न गये थे ।

सामने के मकान का दरवाजा बन्द था । मुहल्ले के सिरे पर म्यूनिसि-पैलिटी का जो लैम्प जलता था, उसका प्रकाश उनके दरवाजे तक न पहुँचता था । उस अँधेरे मे खड़े-खड़े उसने कई स्त्रियो को आते-जाते देखा, पर जान-पहचान न होने कारण वह किसी को बुलाने का साहस न कर सकी—सूखे होंट, सूखा कंठ और थका शरीर लिये हुए वह वही खड़ी रही । तभी मलावी अपने घर आयी, किवाड़ खोल कर उसने दिया जलाया और बहू को अपने घर की चौखट से लगी खड़ी देखा । पास आ कर उसने कहा :

"शादी की बहू है, क्या बात है बच्ची, तू ऐसे क्यों खड़ी है ?"

चेतन की माँ पहले कुछ न कह सकी । पुनः पूछने पर रुँधे गले से उसने कहा कि उसे कुछ जल चाहिए ताकि वह व्रत उपार सके ।

मलावी ने उसे सहर्ष पानी ला दिया था और यह भी बता दिया था कि वह (पण्डित शादीराम) तो देशराज के यहाँ बेहोश पड़ा है । उसके आने की बाट वह कब तक जोहेगी ? अपनी ओर से उसने यह प्रस्ताव भी किया था कि यदि भुग्गा न बना हो तो वह बाजार से उसे दूध ही ला देती है । पर चेतन की माँ का मन ऐसा खिन्न था कि चन्द्रमा को अर्घ्य दे कर पानी के दो घूंट पी कर ही उसने व्रत उपार लिया, मलावी को विदा दी और ड्योढ़ी का दरवाजा लगा कर रसोई-घर मे आ बैठी । समय काटने के लिए उसने संकटमोचन दुःखहरन कुम्भोदर भगवान् गजानन का जाप आरम्भ कर दिया था :

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

न जाने कब वहीं बैठे-बैठे, जाप करते-करते वह ऊँघ गयी थी। आधी रात के लगभग पण्डित शादीराम ने नशे में चूर थरथराती आवाज़ में पुकारा था—'दरवाजा !'

चौंक कर चेतन की माँ ने लपक कर दरवाजा खोला था, और उनके अन्दर आने पर बन्द कर दिया था। तब वे उसे बगल मे लिये नशे से लड़खडाते, अन्दर अँधेरे दालान में आये थे। सरसों के तेल का एक दिया ताक़ मे पड़ा टिमटिमा रहा था। कच्ची मिट्टी और सील की बू आ रही थी। उसी दिये के प्रकाश मे जब उसने अपने पति की आँखों मे वासना और मद की झलक देखी तो उपवास, भूख और उनीदे से थकी उसकी आत्मा काँप उठी थी।

लेकिन दूसरी सुबह जब उसने शिकायत के स्वर में पण्डित जी से कहा कि वे उसे अकेली छोड़ कर तिल लेने का बहाना करके चले गये और वह बैठी प्रतीक्षा करती रही और उसे मलावी की सहायता लेनी पड़ी.... तो वह बात पूरी भी न कर पायी थी कि उसके पति ने सहसा उसके मुँह पर एक थप्पड़ जमा दिया था। ऐसी गालियाँ देते हुए, जो उसने पहली बार ही सुनी थीं, उसे डाँटा कि यदि वह एक दिन भूखी रह लेती तो मर न जाती, उनके आने की प्रतीक्षा उसने क्यो न की ? और क्यों उसने मलावी को बुलाया ? तब चेतन की माँ ने अपने पति के पाँवों पर झुक कर क्षमा माँग ली थी और वचन दिया था कि वह भविष्य में कभी ऐसा अपराध न करेगी।

लेकिन उसके इस अपराध का दंड यहीं समाप्त न हो गया था। परदादी गंगादेई जब आयी और उसे मालूम हुआ कि उसकी अनुपस्थिति मे मलावी उसके घर आयी थी तो वह बहू को दिन भर डाँटने-डपटने के बाद उसने मलावी और उसके घर वालों की सात पुश्तों का नाम ले कर अत्यन्त 'मीठे वचन' की वर्षा की थी—और सहमी हुई बहू ने देखा था कि उसकी ददिया सास जब नहाने लगती है तो मलावी और उसके मृत पति का नाम लेकर दुराशीषें देती है—चेतन की परदादी गंगादेई का

विश्वास था कि नहाते समय की दुराशीश ऐन निशाने पर बैठती है ।

अपनी ददिया सास से लाजवती की यह पहली भेंट थी ।

बाद के इन लम्बे तीस वर्षो मे पहले परदादी गंगादेई और फिर चेतन के पिता के हाथों चेतन की माँ ने अगणित ऐसी ही यातनाएँ सहीं। इच्छा न होने पर भी वह अपनी ददिया सास के समस्त पूजा-पाठ, व्रत-नियम, पीर-फ़कीर, रस्म-रिवाज मानती रही, उनकी डाँट-फटकार सुनती रही, मानसिक और शारीरिक यातनाएँ सहती रही, और यह सिलसिला तब तक जारी रहा जब तक इस क्रूर ददिया सास की मृत्यु ने चेतन की माँ को इन सब यातनाओं से मुक्त न कर दिया ।

रहे उसके पति तो बचपन मे अपनी माँ की त्यु पर उन्होंने अपनी इसी दादी का दूध पिया था (कम-से-कम परदादी गंगादेई यही कहा करती थी कि उसके स्तनों मे तब दूध उतर आया था) फिर यह कब सम्भव था कि स्वभाव की क्रूरता उनमे न होती । इसके अतिरिक्त कोई ऐसा व्यसन न था जो उन्होने न लगा रखा हो । शराब वे रोज़ पीते, दीवाली के दिनों मे जुआ खेलते (और शराब पी कर खेलने के कारण सदैव हारते), सट्टा वे लगाते, और दूसरे बीसियों तरीकों से रुपया लुटाते । फिर ऐसे अवसरों की कमी न थी जब वे दूसरी स्त्रियों को घर ले आये और उनके सामने (उनके कहने पर अथवा उन्हे प्रसन्न करने के हेतु) उन्होंने चेतन की माँ को निर्दयता से पीटा । आयु भर (स्कूल की मास्टरी छोड़, रेलवे मे तार बाबू, असिस्टेंट और फिर स्टेशन मास्टर बनने पर भी) कभी उसे भड़कीला कपड़ा नही पहनने दिया । कभी भूल से वह छत पर चली गयी तो चरित्रहीनता के बीस ताने उसे दिये, कभी घूँघट ऊँचा किया तो बीस गालियाँ दीं और एक बार उसे गली मे देख लिया तो वहीं से घसीटते हुए अन्दर ले गये ।

लेकिन इतने पर भी चेतन की माँ ने अपने इस निर्दय पति को अपनी समस्त आस्था, समस्त श्रद्धा, समस्त प्यार, समस्त आदर-सत्कार दिया । स्वप्न में भी उनका बुरा न सोचा (यह अत्युक्ति नहीं, धर्म और कर्म को

जंजीरों मे जकड़ी ऐसी अनेक स्त्रियाँ पुण्य-भूमि भारत मे मिल जायँगी।) सदैव उनकी समृद्धि और उन्नति के लिए अनुष्ठान कराये, प्रति वर्ष जालन्धर के प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित आत्माराम से वर्षफल बनवा कर जप करवाये, सत्यनारायण की कथाएँ करायीं, पति की दीर्घायु की कामना से सब व्रत रखे, समय-कुसमय आत्माभिमान को तज उनकी सहायता की, उनके कारण चौदह वर्ष अपने पिता का मुँह न देखा (जिसने एक बार उनकी निन्दा की थी) और अन्य लोग तो दूर रहे, कभी अपने बच्चों से भी अपने पति की बुराई नहीं सुनी।

चौदह

संध्या को मुहल्ले मे अभी म्यूनिसिपैलिटी का आदमी लैम्प में तेल डाल कर गया ही था (सारे जालन्धर मे बिजली का प्रकाश हो जाने पर भी कल्लोवानी मे १६४० तक मिट्टी के तेल का लैम्प ही धुँधला प्रकाश देता था) कि चेतन ने थक कर कलम-दवात और कापी अलमारी मे रख कर किवाड़ लगाये। दिन भर वह कविता लिखने का प्रयास करता रहा था और जब असफल रहा था तो उसने एक कहानी भी लिखनी शुरू की थी, पर कभी बस्ती वाली उस चन्दा का और कभी पुरियाँ मुहल्ले वाली उस कुन्ती का ध्यान आ जाने से उसकी विचार-धारा टूट-टूट गयी थी। इसलिए कविता तथा कहानी लिखने मे उसे जो सफलता मिली थी, उसकी गवाही कापी के कटे-फटे पृष्ठ देते थे।

ज्योंही कापी, कलम और दवात आलमारी मे बन्द करके वह ऊपर पहुँचा और उसने देखा कि सारा दिन प्रतीक्षा करके अब दो कौर खा कर माँ बर्तन मल रही है कि उसी समय बाहर से उसके पिता की कड़कती आवाज़ आयी, "चेतन!"

आँगन के एक ओर जो थोड़ी-सी जगह छती हुई थी वहाँ चिड़ियों ने एक घोंसला बनाया था और बच्चे भी दिये थे। उस कर्कश आवाज को सुन कर वे फुर से उड़ गयी और घोंसले मे बच्चे 'ची-चीं' करने लगे। माँ के हाथ से बर्तन छूट गया और उसने (हाथ राख से सने होने के कारण) अँगुलियों के जोड़ों से धोती घुटनो पर कर ली और चेतन ने समझ लिया कि आज बाजार शेखाँ के ठेकेदार की जेब खूब गर्म हुई है।

तभी फिर आवाज आयी—"चेतन!"

नशे के कारण कुछ काँपती हुई, पर खूब ऊँची, कडी, घरघराती आवाज! चेतन नीचे भागा और माँ जल्दी से उठ कर लैम्प जलाने लगी।

ऐसे अवसरों पर सदैव माँ के हाथ-पाँव फूल जाते थे और पास पडी हुई चीज भी उसे दिखायी न देती थी। उस समय भी माँ को दियासलाई की डिबिया न मिल रही थी। आखिर जब वही ताक मे पड़ी वह मिल गयी और उसने लैम्प जलाना आरम्भ किया तो सीढ़ियों पर भारी-भारी क़दम रखते हुए पण्डित शादीराम ऊपर आ पहुँचे। शलवार जो सुबह ही पहनी थी, बेढंगी और मैली-कुचैली हो गयी थी। कमीज के बटन खुले थे। छाती के दो-चार श्वेत बाल दिखायी दे रहे थे और पगडी बग़ल मे दबी थी।

मूछों को तनिक ऊपर चढाते हुए उन्होंने स्निग्ध-कोमल-दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखा।

"ऐ जी ...!"

पत्नी वहीं लैम्प छोड़ कर उठ खड़ी हुई।

"ज़रा चारपाई बिछा दो!"

चेतन की माँ का दिल और भी धक-धक करने लगा। पण्डित शादीराम जितने दिन घर आ कर व्यतीत करते थे, माँ का दिल धड़कता रहता था। नशे मे उनके चित्त की अस्थिरता की हद न रहती—अभी हँस रहे होते कि अभी सिर फोड़ने-फोड़वाने पर तुल जाते। वह डर रही थी और मन-ही-मन मे संकटमोचन, दुःखहरण भगवान् गजानन से प्रार्थना कर रही थी

कि रात कुशलपूर्वक बीत जाय। लेकिन जब उन्होंने अपेक्षाकृत कोमल स्वर मे चारपाई बिछाने को कहा तब डर तथा आशंका से माँ का दिल धक-धक करने लगा।

कारण यह कि साधारणतया जब वे बाजार शेखाँ से हो कर घर आते तो सीढियो ही से उनकी गालियों की बौछार शुरू हो जाती—यह दिया क्यों नहीं जलाया ?....बीस बार कहा है सीढियों मे दिया जलाया करो ! ....मेरी टाँग की हड्डी टूट गयी....चारपाई कहाँ है ?....मै क्या तुम्हारे सिर पर बैठूं ?....इन वाक्यों मे अर्ध विरामों के स्थान पर गालियाँ होती थीं। इस प्रकार धीरज से वे तभी बात करते थे, जब वे खुश होते या उन्हे जुए के लिए, किसो को देने के लिए या किसी और काम के लिए रुपये की जरूरत होती।

जब चारपाई बिछा दी गयी और पगडी को दीवार के साथ सिर के नीचे रख कर वे लेट गये और माँ ने लैम्प जला कर खूंटी पर टाँग दी तो उन्होंने चेतन की माँ से कहा कि जरा उनकी बात सुने।

जब वह सहमी हुई-सी पायँते के पास आ कर धरती पर बैठ गयी तो उन्होंने कहा कि नीचे बस्ती से पण्डित वेणीप्रसाद अपने भाई पण्डित दीनबन्धु के साथ आये हुए हैं। मुझे सूदाँ के चौक मे मिल गये थे, मैंने तो 'हाँ' कर दी है।

माँ के दिल की धडकन कुछ कम हुई और उसने कुछ और आगे खिसक कर कहा, "ज्वाली महरी की लड़की तो कहती थी कि लड़की सुन्दर है, पर चेतन को पसन्द नहीं।"

तब पण्डित जी ने पूरे जोर से अपने लड़के को आवाज दी।

चेतन पण्डित दीनबन्धु और पक्षाघात के रोगी उनके भाई को नीचे बैठक मे बैठा कर साहस बटोरता और मन-ही-मन बीसियों तरह के प्रश्नोत्तर दोहराता आ रहा था।

पण्डित जी ने कहा, "इधर बैठो।"

सहमा हुआ वह पायँते पर बैठ गया।

"तुमने लड़की देखी है ?"

"जी हाँ !"

"उसमें क्या दोष है ?"

चेतन अब क्या उत्तर दे—पिता के सामने वह कभी न हुआ था। किसी लड़की के गुण-दोषों की विवेचना करना तो दूर रहा, उसने तो कभी उनके सामने खुल कर बात तक न की थी। उसके मुँह से केवल इतना निकला, "मोटी है।"

"तो क्या सब तुम्हारे जैसे पतले-दुबले हो जायँ ?"

चेतन चुप।

"कल अपनी माँ के साथ जा कर लड़की को देख आओ।"

चेतन ने जैसे रोते हुए कहा, "देख कर मैं क्या करूँगा ?"

"मैं जो कहता हूँ देख आओ।" पण्डित शादीराम गरजे।

फिर कुछ क्षण ठहर कर उन्होंने तनिक गम्भीर हो कर कहा, "देखो, मैं उन भले आदमियों को वचन दे आया हूँ, यदि लड़की में कोई दोष न हो तो साड़ी देते आना। सगुन का रुपया मैंने ले लिया है।"

फिर अचानक अपने इस इक्कीस-बाईस वर्ष के 'बच्चे' को गोद में ले कर और उसका मुँह चूम कर पिता ने सहसा विनीत स्वर में कहा, "देखो बेटा, मैंने सदा तुम्हें आदेश दिया है, आज मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, यदि उस लड़की में कोई दोष न हो तो तुम मान लेना।"

इसके बाद उसे अपनी बाहों में कस कर और फिर एक बार चूम कर मुक्त करते हुए उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "मैं इसे डाँटता हूँ, लेकिन इसकी इज्जत भी करता हूँ।"

शराब की बदबूदार साँस को जैसे रूमाल से पोंछने का प्रयास करते हुए चेतन ने 'जिन्दा शहीदों' के-से भाव में कहा, "जब आपने सगुन ले लिया तो ठीक है। मैं देखने क्या जाऊँगा ?"

"मैं जो कहता हूँ। मेरी खुशी है !" चेतन के पिता ने फिर कड़क कर कहा, "तुम कल देख आओ।"

"अच्छा जी !" भरे हुए गले से केवल इतना कह कर चेतन नीचे उतर आया। ऐसे समय मे तनिक-सा इन्कार भी प्रलय मचा सकता था, इस बात से वह भली-भाँति परिचित था।

सीढ़ियाँ उतरते-उतरते एक दीर्घ-निश्वास उसके हृदय से निकल गया। उसका वह निश्चय, बस्ती मे विवाह न करने की उसकी प्रतिज्ञा, उसके बार-बार दोहराये हुए प्रश्नोत्तर....कुन्ती....

पन्द्रह

इस घटना के तीन दिन बाद जब चेतन का अभिन्न-हृदय मित्र अनन्त सुबह आँखे मलता हुआ उठा (उठने का मतलब यह कि बिस्तर से उठ कर चारपाई के नीचे पाँव रखने के बदले वह रजाई को अपने इर्द-गिर्द लपेट कर बिस्तर ही पर पाँव सिकोड़ कर बैठ गया, क्योंकि इसी को वह सुबह उठना कहा करता था और इसी प्रकार एक-दो घटे बैठे रहना सभ्यता का पहला लक्षण मानता था) तो उसकी माँ ने आ कर उसके हाथ मे एक चिट्ठी रखी और कहा, "संध्या को चेतन आ कर दे गया था। तुम तो आये रात के ग्यारह बजे, इस बीच मे वह तीन बार आया, पहली दो बार केवल पूछ गया, तीसरी बार यह चिट्ठी दे गया।"

बडी मुश्किल से रजाई से पाँव निकाल उसे कन्धों पर ही लिये हुए अनन्त उठ कर दरवाजे तक आया और पत्र खोल कर सुबह के शीतल निर्मल प्रकाश मे पढने लगा।

ऊपर आकाश मे 'बालकुटारें' उड़ानें भर रहे थे। एक गौरैया दायी ओर की मुँडेर पर बैठी 'ची-ची' करती फुदक रही थी और उषा की लाली का प्रतिबिम्ब सामने के मकान की छत को हल्की-सी ललाई प्रदान कर रहा था।

अनन्त ने देखा—जल्दी-जल्दी लिखे टेढ़े-मेढ़े अक्षरों से तीन-चार पृष्ठ रँगे हुए हैं :

'अनन्त मैं लाहौर जा रहा हूँ। मेरी सगाई आज हो गयी। उन्ही दीनबन्धु की लड़की चन्दा से। उस पहले दिन, जब बस्ती से वापस आ कर मैंने 'ना' कर दी थी, माँ ने एक सपना देखा था। एक सुन्दर लक्ष्मी-सी लड़की वस्त्राभूषणों से आवृत उसके चरण छूने आ रही थी कि रास्ते ही से मुड़ गयी। अब माँ के सपने वैसे नही होंगे, पर मेरे सपने....?

रात भर मैं सो नहीं सका। यहाँ मेरी आत्मा घुटी जा रही है। कुन्ती के सम्बन्ध मे मैंने जो प्रोग्राम बनाये थे वे मेरे मन ही मे रह गये। पिता जी जब बाजार शेखाँ से होते हुए घर आयें तो फिर उनके सामने बैठ कर ऐसी बात करना मेरे तो बस मे नहीं। उसी शाम जब मैं तुमसे मिल कर घर पहुँचा तो दुर्भाग्य से पिता जी भी आ गये थे। उनके साथ पण्डित दीनबन्धु और लकवे की बीमारी मे ग्रसित उनके बड़े भाई भी थे। उनको पिता जी ने वचन दे दिया और उनसे सगुन का एक रुपया भी ले लिया। फिर पिता जी का वचन, विशेषकर बाहर वालों को दिया हुआ, कभी किसी ने टूटते नही देखा। बहरहाल सगाई तो हो गयी। विडम्बना देखो कि उसी एक बार देखी हुई लड़की को फिर देखने गया। वहाँ क्या हुआ, यह सब तुम्हें बाद मे मालूम होता रहेगा।....'

वहाँ जो कुछ हुआ, उसका विवरण यद्यपि चेतन ने उस पत्र मे नहीं दिया पर वह कुछ यों है :

उस रात जब चेतन के पिता ने उसे डाँट कर कहा था कि सुबह वह माँ को ले कर लडकी देखने जाय, उसने सोचा था कि सुबह जब उसके पिता शान्त होंगे और शराब का असर भी उन पर न होगा तो वह उन्हे समझा-बुझा कर सब बात कहेगा और यदि हो सका तो कुन्ती की चर्चा

भी चलायेगा।

लेकिन दूसरे दिन उसके पिता रात को अधिक पी जाने के कारण नशे की खुमारी ही मे पड़े रहे और उसकी माँ ने इस बीच मे सेर-सेर गरी, छुहारे, बादाम, किशमिश, तालमखाने डाल कर दन्दासा (रंगीन दातुन) मेहदी और मंगल-सूत्र के साथ सवा छः सेर की गुथली तैयार कर ली। बनारसी साडी और जम्पर और उसी रंग की जुराबें और रूमाल उसने पहले से मँगवा रखे थे। अपनी दो सुनहली अँगूठियाँ तुड़वा कर बहू के सिर की सूई भी तैयार करा रखी थी। गुथली सी-सिला कर वह हर तरह से तैयार हो गयी। फल और मिठाई भी उसने मँगा ली। जब चेतन के पिता दोपहर के लगभग उठे तो उनका मुँह-हाथ धुलवाते समय उसने उन्हे अपनी सब कारगुजारी सुना दी। तब चेतन के पिता ने आवाज दे कर चेतन को आदेश दिया कि वह खाना खा कर अपनी माँ के साथ बस्ती जाय, अपने स्कूल के अध्यापक नन्दलाल से मिले और जा कर लड़की देख आये। (वे सगुन वहीं दे देंगे) और इधर से साड़ी और गुथली दे कर सगाई पक्की कर आये। विवाह के बारे मे पूछें तो कह दे कि दो वर्ष बाद होगा। यह कह कर वे पगड़ी बगल मे दबाये हुए सीढ़ियाँ उतर गये थे। चेतन की माँ से उन्होंने इतना कहा कि खाना वे देसराज के यहाँ खायेंगे।

ये अध्यापक नन्दलाल चेतन के स्कूल ही में छठी श्रेणी को पढाते थे। विचारो से आर्य-समाजी थे। उनके घर ही चेतन की भावी पत्नी को देखने का प्रबन्ध किया गया था।

बस्ती पहुँच कर चेतन ने अपनी माँ और अध्यापक नन्दलाल दोनों से फिर एक बार कहा कि मै लड़की देख चुका हूँ, आप गुथली दे दीजिए, मैं अब फिर देख कर क्या करूँगा? लेकिन एक तो माँ अपनी इस लक्ष्मी बहू का मुँह देखने को आतुर थीं, दूसरे वे आर्य-समाजी अध्यापक, लगे हाथों सुधार का यह शुभ काम करके बस्ती भर मे अपने सुधार-कार्य का डंका बजा देना चाहते थे। लड़की को भली-भाँति देखने की खूबियाँ उन्होंने

बड़े उत्साह के साथ चेतन को समझायीं। बताया कि समस्त रिश्तेदारों की नाराज़गी के बावजूद उन्होंने लड़की को देख कर विवाह किया था। इसके बाद उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि अब जब वह आ ही गया है तो शर्म छोड़ कर एक बार फिर अच्छी तरह लड़की को देख ले।

अब चेतन के लिए कोई चारा न रहा। विवश हो कर उसने इस प्रहसन में भाग लेना स्वीकार कर लिया।

०

उन्हें बस्ती में उन अध्यापक महोदय के मकान के समीप ही एक जगह ठहराया गया। चेतन की माँ अध्यापक साहब की लड़की के साथ उनके घर चली गयीं। चेतन इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब उसे बुलाया जाता है और कब उसके सिर से यह मुसीबत टलती है। उसका दिल प्रति-क्षण तीव्रतर गति से धड़क रहा था और उसके चेहरे का रंग भी कुछ फीका-सा पड़ता जा रहा था। तभी अध्यापक महोदय उसे लेने आ गये।

एक तंग-सी ड्योढ़ी से गुज़र कर आँगन तक जाते-जाते चेतन का गला सूख गया। रंग शायद और भी फीका पड़ गया। आँगन में पहुँच कर उसने देखा कि सामने (उन अध्यापक की उपस्थिति के कारण) डेढ़ बालिश्त का घूँघट निकाले उसकी माँ बैठी है। पास ही तन कर (मुबारक की पत्नी होने के गर्व से या इसलिए कि पर्दे की रस्म उसने छोड़ रखी थी और बस्ती में शायद वही पहली स्त्री थी जिसने इतना साहस किया था) उन अध्यापक महोदय की पत्नी बैठी थी। तब चेतन को कुछ ऐसा आभास हुआ कि दायीं ओर एक चटाई पर वह मोटी-मुटल्ली लड़की बैठी है। अपनी झुकी हुई निगाहें उठा कर उसने अपनी इस भावी मँगेतर को देखने का प्रयास भी किया पर चेतन उसे आँख भर के न देख सका। उसकी आँखों के आगे जैसे अँधेरा-सा छा गया। उसकी दृष्टि इस बरबस गले मढ़ी जाने वाली मँगेतर पर से फिसलती हुई उनके बराबर ही बैठी हुई एक दूसरी लड़की पर गयी। क्षण भर के लिए जैसे वह अँधेरा मिट गया।

उसका हृदय और भी ज़ोर से धड़क उठा। उसे लगा जैसे इस लड़की को उसने पहले भी कभी देखा है। उसे याद आ गया कि जब वह बस्ती के अड्डे पर अपनी इस भावी पत्नी को देखने आया था तो माप-माप कर पग रखने वाली जिस सुन्दर लड़की को देख कर वह चौंका था, वह यही तो थी। उस निमिष-मात्र की झलक मे चेतन को उस किशोरी के मुख का एक भाग, उस भाग को ज्योतिर्मय-सा करता हुआ मोतियों का कर्णफूल और उसकी चंचल आँखों की एक रसीली चितवन ही दिखायी दी। इसके बाद जैसे अँधेरा फिर छा गया और उसकी घबराहट बौखलाहट की हद को पहुँच गयी।

०

यह सब कुछ पलक झपकते हो गया था। अध्यापक महोदय ने अपनी पत्नी से कहा कि चेतन जी आये है और चेतन ने शायद यह कहा था कि उसे प्यास लगी है और फिर शायद पानी पी कर या बिना पानी पिये ही वह वहाँ से चला आया था।

०

यही वह भेंट थी जिसकी ओर अपने उस पत्र में चेतन ने इशारा किया था। आगे उसने लिखा था :

> 'अभी तो मैं जा रहा हूँ—लाहौर ! फिर कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। 'देश सेवक' लाहौर के संपादक पण्डित दीनानाथ स्थानीय हिन्दू सभा'के दफ़्तर मे आये थे। मैंने उसने अपनी साहित्यिक आकांक्षाओं का जिक्र किया और बताया कि मैं अपनी वर्तमान नौकरी से ऊब गया हूँ। बस, उन्होने वादा किया और कहा कि मेरे साथ लाहौर चलो और कोई प्रबन्ध कर दिया जायगा।
>
> दैनिक पत्र मे अनुवाद का काम अधिक होता है, मुझे वह आता नहीं। लेकिन उन्होंने साहस दिलाया है और ज़रा-सा परिश्रम करने से मैं शीघ्र ही अच्छा अनुवादक बन सकता हूँ।

जब तक मैं काम न सीख जाऊं, समाचार-पत्र के साप्ताहिक संस्करण के लिए हर सप्ताह एक कहानी लिख दिया करूँ। उस समय तक मेरे खाने-पहनने का प्रबन्ध वे कर देंगे और यदि मैं अच्छी तरह काम सीख गया तो कुछ वेतन भी मिलने लगेगा। और फिर हुनर साहब तो वहाँ हैं ही....

तुम्हारा

चेतन'

और 'पुनश्च' लिख कर नीचे एक पंक्ति उसने लिखी थी कि लाहौर जा कर वह अपनी सरगर्मियों से अनन्त को अवश्य परिचित रक्खेगा।

पत्र को पढ़ कर कुछ क्षण के लिए अनन्त चुपचाप खड़ा रह गया। उसकी समझ में कुछ भी न आया। पहले उसके मन मे आया कि उसी समय चेतन के घर जा कर उसकी माँ से सब कुछ पूछे। फिर उसने चुपचाप जा कर चारपाई पर उसी तरह रजाई ओढ़ कर बैठ जाना ही श्रेयस्कर समझा।

तब अनन्त की माँ ने (जो कमर पर दोनों हाथ रखे इस प्रतीक्षा में खड़ी थी कि अनन्त पत्र समाप्त कर ले तो पूछे कि चेतन ने क्या लिखा है) अपना मन्तव्य प्रकट किया।

उत्तर मे अपने इर्द-गिर्द अच्छी तरह रजाई लपेटते हुए अनन्त ने कहा, "चेतन कल रात लाहौर चला गया है।"

"किस काम के लिए?"

"यह तो मुझे मालूम नहीं, लेकिन वहाँ नौकरी करेगा।"

"लेकिन यहाँ जो नौकर था!"

"था तो!"

"फिर क्या बात हुई?"

"यह तो मुझे मालूम नहीं।"

और उसी प्रकार कमर पर हाथ रखे, मुँह फुलाये, माँ रसोई-घर की ओर चल दी और अनन्त ने रजाई को अच्छी तरह अपने इर्द-गिर्द लपेट

लिया ।

इसके चार महीने बाद एक दिन अनन्त जालन्धर के प्लेटफॉर्म पर कपूरथला जाने वाली ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहा था कि उसे ऐसा आभास हुआ जैसे उसने चेतन को देखा है।

भागता-भागता और पुल की दो-दो, तीन-तीन सीढ़ियाँ एक ही बार चढता हुआ वह नम्बर एक के प्लेटफ़ॉर्म पर पहुँचा और इससे पहले कि चेतन गेट पर टिकट दे कर बाहर निकल जाता, उसने उसे जा लिया।

"चेतन !" पीछे से उसके कन्धे पर उसने थपकी दी ।

चेतन मुड़ा—"ओह अनन्त !" और दोनों मित्र एक-दूसरे से लिपट गये ! अनन्त उसे गेट मे से वापस खीच लाया ।

अभी कपूरथला जाने वाली गाडी का इंजन भी नहीं लगा था, इसलिए दोनों मित्र उसी प्लेटफॉर्म पर घूमने लगे ।

"तुमने तो यार एक पंक्ति तक नही लिखी, ऐसे लाहौर गये तुम !" अनन्त ने बात शुरू करते हुए कहा, "कौन-सी गुफा मे समा गये वहाँ ?"

चेतन ने बताया कि वे सम्पादक महोदय जिनके साथ वह लाहौर गया था, अजीब शिकारी आदमी थे। सब्ज़ीमंडी के पास एक सस्ते-से होटल में उन्होंने उसके भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दिया; दूध वाले से कह दिया कि वह डेढ़ पाव दूध उसे रोज दे दिया करे; नाई को हजामत के लिए कह दिया और धोबी को कपड़ो के लिए। चेतन को आश्वासन दिलाया कि वे स्वयं इन सब का बिल दे देंगे और इस प्रकार कुल मिला कर बाईस रुपये पर उन्होंने उसे अपने समाचार-पत्र में अनुवादक रख लिया।

इस विचित्र व्यवस्था पर अनन्त जोर से हँसा और उसने पूछा, "वे बिल उन्होंने चुकाये भी ?"

"अरे, राम का नाम लो !" चेतन ने कहा, "यह सोच कर कि समाचार-पत्र में नौकरी लग गयी है और उन्नति का भी चांस है, मैंने अपनी साइकिल और कुछ सामान लाहौर मँगा लिया। लेकिन दो महीने

के बाद जब उन सम्पादक महोदय के चंगुल से मैंने मुक्ति पायी तो बिल न चुका सकने के कारण होटल के मैनेजर ने मेरी साइकिल ही रख ली। बाद में दूसरी जगह नौकरी करके पहले महीने का वेतन उन मैनेजर साहब की भेंट चढ़ा कर बड़ी कठिनाई से मैं उसे लाया।"

अनन्त फिर जोर से हँसा। तब चेतन ने अपने उन अनुभवों का जिक्र किया जो उसे पहले-पहल समाचार-पत्र के दफ्तर मे प्राप्त हुए थे।

वे सम्पादक महोदय जो उसे ले गये थे, सारा दिन हुक्के की नली मुँह से लगाये रखते थे। कुछ सुन्दर, कोमल, किशोर नवयुवक उन्होंने अपने समाचार-पत्र मे भरती कर रखे थे, जिन्हे जरा-सी भी ग़लती हो जाने पर, अपने कमरे मे बुला कर वे 'क्यो बे गूँगे' कहते हुए उनके मुँह पर प्यार की चपते लगाया करते थे।

उन्ही मे से एक का नाम उन्होंने 'महात्मा' रख छोडा था। शायद इसलिए कि वह 'गूँगा' न रहा था। वह समाचार-पत्र का सम्पादक था।

"आज-कल," चेतन ने कहा, "जब लाहौर मे सख्त गर्मी पड़ती है, ये महात्मा रात के समय कमीज और बनियाइन आदि उतार कर पंखे के नीचे बैठ जाते है और सम्पादकी करते है और कभी अपने कमरे से वे सम्पादक महोदय (जो समाचार-पत्र के मालिक भी है) उधर आ निकलते है और 'क्यो बे महात्मा' कहते हुए उसकी पीठ ही को थपथपा देते है।"

"गूँगे और महात्मा!" अनन्त फिर हँसा और उसने पूछा "लेकिन उन दोनों मे सम्पादक कौन है?"

"नाम उनका जाता है और काम 'महात्मा' करते है।" चेतन ने उत्तर दिया।

फिर उसने बताया कि वहीं पहले-पहल उसे इस बात का पता चला कि जिस सम्पादकी के स्वप्न वह देखा करता था, वह वास्तव मे कितनी नारकीय है। दिन को बारह से छः बजे तक और रात को नौ बजे से दो बजे तक दैनिक पत्रो के सम्पादक कोल्हू के बैल की तरह जुटे रहते है। जब थक जाते है तो आपस मे बेहद अश्लील और गन्दे मजाक करते है।

चरित्रहीन, विवर्ण मुख, उनीदी खुमार-भरी आँखें, या अत्यधिक मोटे या बिलकुल मरियल और हर तरह से भूखे—लाहौर के उर्दू पत्रों में काम करने वालों मे से अधिकांश को उसने ऐसा ही पाया ।

उस दैनिक मे वह अनुवादक के साथ-साथ उस पत्र का 'अपना कहानी लेखक' भी था । बात यह थी कि अनुवाद करना उसे आता न था, इसलिए वह पत्र के साप्ताहिक संस्करण मे एक कहानी दिया करता था । इन्हीं कहानियों के बल पर उसे एक दूसरे दैनिक पत्र मे जगह मिल गयी । एक की देखा-देखी लाहौर के सब दैनिकों ने साप्ताहिक संस्करण निकालने आरम्भ कर दिये थे । इस दूसरे पत्र में एक अनुवादक का स्थान खाली था । वहाँ वह ले लिया गया, इस शर्त पर कि वह प्रति सप्ताह पत्र मे एक कहानी लिखेगा और अनुवाद शीघ्रातिशीघ्र सीख लेगा ।

और चेतन ने बताया कि अब वह उस पत्र मे सहकारी सम्पादक है, चालीस रुपये पाता है और चंगड़ मुहल्ले मे रहता है ।

"वे हुनर साहब कभी मिले ?" अनन्त ने पूछा ।

चेतन ने जोरदार ठहाका मारा । लेकिन इससे पहले कि वह कुछ बताता अनन्त को भाग कर पुल पर से जाने की अपेक्षा लाइनें पार करके अपने डिब्बे मे सवार होना पड़ा, क्योंकि इस बीच मे इंजन भी आ लगा था, लाइन-क्लियर भी मिल चुका था, गार्ड ने सीटी भी दे दी थी और गाड़ी चलने भी लगी थी ।

सोलह

कुछ महीने बाद अनन्त को चेतन का एक पत्र मिला :

'...यह भी कोई जीवन है ? मै सोचता हूँ, क्या मै इसीलिए घर से भागा था ? मैने अनुवाद सीख लिया है और आठ घंटे

'तुम्हें एक दिलचस्प बात सुनाता हूँ । मेरे मकान के सामने एक ताँगे वाला रहता है । जिस मकान मे वह रहता है, वह यद्यपि दोमंजिला है तो भी उसे मकान का नाम देते हुए संकोच होता है। ऊपर की मंजिल मे एक कोठरी है और एक छोटा (ऊपर से खुला) आँगन, और निचली मंजिल मे सिर्फ दो कोठरियाँ है । ऊपर की मंजिल मे ताँगे वाले का परिवार रहता है और निचली मंजिल मे रहीम चंगड़ । इस चंगड की बीवी फ़ाताँ सुबह से ले कर शाम तक ऐसी-ऐसी अश्लील गालियाँ बकती है कि सुन कर रूह काँप जाती है । कमबख्त ने गज़ब का दिमाग़ पाया है—एक गाली दूसरी से बेजोड़ होती है ।

ताँगे वाले के एक माँ है, बहन है और छोटे-छोटे भाई है । उसकी यह बहन, मैं देख रहा हूँ, कुछ दिनों से मुझमें दिलचस्पी लेने लगी है । जब मै अपने कमरे मे बैठा लिखा करता हूँ तो वह खिड़की मे आ जाती है। यह खिड़की एक खुला-सा बड़ा झरोखा है । इसमे न किवाड है न सीखचे । धूप तेज़ होने पर भी वह उसी मे बैठी रहती है ।

मोटी, कुरूप और फूहड़ ! इसे प्रेम करने को भी कोई और नहीं मिला, लेकिन अनन्त, दिल ही तो है....

और फिर दफ़्तर से जब प्रधान सम्पादक की घुड़कियाँ सुन कर आता हूँ और उसी झरोखे मे बैठी अपने मोटे-मोटे ओठों पर मीठी मधुर मुस्कान ला कर, वह मेरा स्वागत करती है तो अनन्त, मन हरा-सा हो जाता है और सम्पादक महोदय की तीखी बातो से दिल पर पड़े घाव कुछ भर-से जाते है ।'

०

इस पत्र के बाद इसी प्रकाशो के सम्बन्ध मे चेतन ने कुछ ऐसी बातें लिखीं कि जब अनन्त एक बार अपने बहनोई के पास पिन्डो गया तो वापस आता लाहौर उतर गया । ढूंढता-ढूंढ़ता वह बंगाली गली में चेतन के दफ़्तर

पहुँचा । इतवार होने के कारण दफ़्तर बन्द था । तब वह 'पीपल वेहड़ा' चंगड़ मुहल्ला का पता पूछता-पूछता चल पड़ा ।

सुबह का वक्त था, और चाहे म्यूनिसिपल कमेटी के भंगी और भिश्ती अपना काम पूरा कर गये थे, किन्तु गन्दगी की गाड़ियाँ भी अपना कर्तव्य पालन कर रही थी । वास्तव मे घोड़ो के अस्तबलो, गन्दी गाडियों के अहातों और गूजरों, चंगड़ो, भंगी तथा चमारो के घरों का सामीप्य होने के कारण भिश्ती चाहे लाख छिड़काव कर जायँ, और भंगी चाहे लाख सफाई कर जायँ, चंगड़ मुहल्ले की दशा में कभी कोई अंतर नही आता । अनार-कली के समीप ही इतना बेरौनक़, गन्दा और गरीब इलाका हो सकता है, अनन्त ने इसकी कल्पना भी न की थी । इधर चंगड़ मुहल्ले में कुछ नयी दुकानें बन गयी है । पर तब तो सारे बाजार मे दो-तीन लॉन्ड्रियों एक मैले-कुचैले बनिये और दो-एक हलवाइयो की दुकानों के अतिरिक्त कुछ भी न था । मोहनलाल रोड की ओर से प्रवेश करके किसी-न-किसी तरह नाक पर रूमाल रखे अनन्त 'पीपल वेहड़ा' को जाने वाली गली के सिरे तक पहुँचा । पक्की ईंटों की दो सीढियों के साथ बाजार से तनिक ऊँची, पक्की ईंटो ही की गली बनी थी । सामने एक ऊँचा पक्का मकान था, जिसकी खिडकियों पर गहरे सरदई रंग का वार्निश भी था । अनन्त ने सुख की साँस ली कि आखिर वह साफ़ स्वच्छ जगह पहुँच गया है । किन्तु जब लाला भगवानदास का मकान पूछता हुआ, वह चंद क़दम चल कर, उस नये मकान के पास से दायी ओर की गली मे मुड़ा तो सहसा उसे नाक पर रूमाल रखना पड़ा । गोबर की एक तीखी बू उसकी नाक मे घुस गयी और इसके साथ ही किसी नारी का कर्कश स्वर उसके कान मे पड़ा जिसके एक वाक्य मे लगभग सब-की-सब गालियाँ ही थीं । एक-दो पक्के मकानो के अतिरिक्त इस गली में सब कच्चे मकान थे । इनमें चंगड़ रहते थे । इसी गली का नाम वास्तव में 'पीपल वेहड़ा' था । लाला भगवानदास ने अपनी वैश्यवृत्ति के कारण असल और सूद मिला कर इन्हीं चंगड़ों में से कुछ की झोपड़ियाँ हथिया ली थी और दो-तीन पक्के मकान

खड़े कर लिये थे।

गली के सिरे पर ही अपने कच्चे मकान की देहली पर एक काला भुजंग चंगड़ नंगे बदन तहमद लगाये मजे से बैठा हुक्का गुडगुड़ा रहा था। उसी से अनन्त ने लाला भगवानदास का पता पूछा और जब उसने पास ही के पक्के तिमंजिले मकान की ओर इशारा कर दिया तो मकान के पास आ कर अनन्त ने चेतन का नाम ले कर आवाज दी।

किसी जमाने मे शायद यहाँ खुली जगह होगी और यह स्थान वेहड़ा अर्थात आँगन कहलाता होगा। हो सकता है पीपल का कोई पेड़ भी यहीं कही हो, किन्तु उस समय तो दोनो मे से एक चीज भी वहाँ न थी। मकान के साथ छ:-सात फुट खाली जगह थी जिसे पक्की, कन्धों तक ऊँची दीवार गली से अलग कर रही थी। यह जगह पक्की बनी हुई थी। इसके बीचो-बीच एक बड़ी नाली थी जो सारे मकान का गन्दा पानी ला कर गली की नाली मे मिला देती थी। नाली की जो दशा थी उसे देख कर अनन्त ने मकान के निवासियों के रहन-सहन का अनुमान लगा लिया।

रहा मकान, सो तीन मंजिलों मे से निचली मंज़िल मे एक बड़ी तंग ड्योढ़ी थी, जिसके परे तंग अँधेरे आँगन का कुछ आभास मिलता था। इस ड्योढी के दोनों ओर सीढ़ियाँ चढ़ती थी, जिनसे मालूम होता था कि मकान दो भागो मे विभक्त है। वास्तव मे यह तीन मे विभक्त था और उन तीन भागो मे (इस बात का अनन्त को बाद मे पता लगा) नौ या दस किरायेदार रहते थे। निचली मंजिल मे ड्योढ़ी की ओर दो-दो दरवाजो वाले दो कमरे थे। उनके ऊपर दो और कमरे थे, जिनकी मैली खिडकियाँ अपनी दुर्दशा पर मूक आर्तनाद कर रही थी। तीसरी मंजिल पर अनन्त को ईंटों के पर्दे ही दिखायी दिये। लाला भागवानदास का मकान उन सहस्रो मकानो मे से एक था जो लाहौर मे सिर्फ़ किरायेदारो के लिए बनवाये जाते है।

अनन्त की आवाज सुन कर ड्योढ़ी के दायी ओर के निचले कमरे से (जिसके दोनों किवाड़ों पर नीली नयी चिकें लटक रही थी) चेतन निकला।

कमर तक बदन नंगा था और कमर के नीचे तहमद लटक रहा था। अनन्त को देख कर खुशी की एक 'ओह'! करके हाथ मिलाता हुआ वह उसे अपने कमरे के अन्दर ले गया।

अँधेरा सील-भरा कमरा, दीवारों पर पलस्तर ऐसा लगता था कि गिरा ही चाहता है। खिडकी अथवा रोशनदान एक भी न था। बस एक दरवाजा उस अँधेरे-से आँगन में खुलता था। इस दरवाज़े को चेतन प्रायः बन्द ही रखता था और बन्द सील-भरे कमरों से जैसी बू-सी आने लगती है, वैसी ही दम घोंटने वाली बू कमरे से आ रही थी। कमरे में आलमारी भी कोई न थी। योंही दीवार में दो जगह ताक़ बना कर तख्ते लगा दिये गये थे। छत काली स्याह थी, जिससे मालूम होता था कि पहला किरायेदार वहाँ अवश्य ही रसोई भी बनाता रहा होगा। नीचे सीमेंट का फर्श था, जिसमे पैवन्द लगे थे। लेकिन कमरा साफ था और चेतन के शरीर की गर्द बता रही थी कि उसने अभी-अभी उसे साफ किया है। फ़र्नीचर के नाम एक कोने मे स्याह मेज पडी थी। उसके पास बिना बाजुओं की एक काली गद्देदार कुर्सी थी। रोशनी के लिए दीवार में कील गाड़ कर एक बिजली का बल्ब लटकाया गया था।

"यह मेज कहाँ से लाये हो?" अनन्त ने कहा, "बना तो खूब है और है भी आबनूस की लकड़ी का, लेकिन लगता तो सेकेंड-हैंड है।"

"शायद थर्ड-हैंड!" हँसते हुए चेतन ने कहा, "मैं तो एक कबाडी की दुकान से दोनों चीजें खरीद लाया हूँ।" फिर तनिक गम्भीर हो कर वह बोला, "हम सब एक-दूसरे पर निर्भर हैं—हमारा उतरन गरीब बड़े हर्ष से स्वीकार करते हैं और अमीरों का उतरन हम।" और वह एक खोखली-सी हँसी हँसा।

अनन्त ने तनिक और समीप हो कर देखा तो गाढे काले रोगन और पीटीन की सहायता से कई जोड़ ढँके हुए दिखायी दिये। न जाने यह मेज कितनी बार मरम्मत होने के बाद इस महत्वाकांक्षी लेखक के यहाँ आया था।

"अन्दर ही आ जाओ !"

अनन्त ने ध्यान ही न दिया था कि अन्दर भी कोई कमरा है । अनगढ़-से किवाड़ों को खोल कर चेतन अन्दर गया । उसने बिजली का बटन दबाया । अनन्त ने देखा कि अँधेरी कोठरी है, जिसकी दीवारों मे बाहर के कमरे जैसे ही ताक़ है । एक सस्ती-सी चारपाई बिछी है । सील की बू यहाँ पहले कमरे से भी तेज़ है । रोशनदान तो दूर, एक झरोखा तक भी कही नही है और दीवारों पर पलस्तर बहुत जगहों से गिर चुका है । हाँ, ठंडक इस कोठरी मे बाहर से ज़्यादा है । अनन्त चुपचाप चारपाई पर लेट गया ।

लेकिन वह अधिक देर तक वहाँ लेट न सका । कमरा दोपहर को ठंडा हो जाता होगा, पर सुबह उसमे उमस की मात्रा अधिक थी । वह उठ कर बाहर आया । दीवार के साथ लगी एक ईज़ो-चेयर चेतन ने बिछा दी । तभी सामने के मकान की खिड़की मे एक लड़की आ खड़ी हुई ।

चेतन ने धीरे से कहा, "प्रकाशो !"

लेकिन शायद चेतन के पास किसी अन्य व्यक्ति को बैठे देख कर वह चली गयी ।

स्नानादि से निवृत्त हो कर जब गरणपत रोड के एक होटलनुमा तंदूर पर चेतन अपने इस बचपन के मित्र को खाना खिला लाया तो दोनों अन्दर की चारपाई को बाहर निकाल कर उस पर लेट गये । वही लेटे-लेटे चेतन ने अनन्त को अपने इस निवास-स्थान का परिचय दिया ।

पाँच-छः भागों मे बने हुए उस तिमंज़िले मकान मे दस किरायेदार रहते थे । आँगन मे एक हैंड-पम्प था । नल या कोई स्नानघर उस मकान मे नहीं था । इसलिए वह हैंड-पम्प ही स्नानघर का काम भी देता था, यद्यपि चेतन वहाँ से बाल्टी भर कर अपने इस रसोई-घर-नुमा ड्राइंग-रूम मे ही नहाता था । इस हैंड-पम्प के दायी ओर दो कोठरियों मे रंग-साज़ लड़के रहते थे, जो दिन भर काम करते और सोने के लिए वहाँ आ जाते थे । नल के दूसरी ओर—चेतन के कमरे के सामने—एक हलवाई

रहता था जिसकी पत्नी ने अपने इस कमरे को छोटा-मोटा मन्दिर बना रखा था। गरीब चंगड़ों के गाढे पसीने की कमायी सूद-दर-सूद के रूप मे उनके घर आ रही थी, फिर चंगडों की एक-दो झोंपडियों के स्थान पर उनका जो मकान बन गया था, उसमे संदिग्ध किस्म के लोग रहते थे। एक स्त्री थी जिसके पास कुछ जवान लडकियाँ थी और नये-नये लोग रात के समय वहाँ आया करते थे। इसके अतिरिक्त उस हलवाई के घर इस बढ़ती हुई जायदाद को सम्हालने वाला कोई पैदा न हुआ था। इन्हीं सब कारणों से सुबह-शाम वहाँ भगवान की आराधना में घंटे-घड़ियाल बजा करते थे।

दूसरी मंजिल मे चेतन के ऊपर वाले दो कमरे इन्श्योरेन्स मे काम करने वाले एक क्लर्क और उसके साथी ने ले रखे थे। साथी की माँ भी वहीं रहती थी। रसोई-घर कोई था नही, इसलिए वे ऊपर के कमरे ही मे रोटी पकाते थे। जिस दिन कभी बादल होते और हवा तेज चलती तो उनके रसोई-घर-नुमा कमरे का धुआँ चेतन के इस स्नानघर-रूपी ड्राइंग-रूम मे आ जाया करता। ड्योढी के ऊपर अधछते आँगन और पिछली दो कोठरियों मे एक कम्पोज़ीटर और उसकी विधवा भावज तथा उसके दो बच्चे (दस-बारह वर्ष की एक लडकी और सात-आठ साल का एक काना लड़का) किसी-न-किसी तरह जीवन के दिन व्यतीत कर रहे थे।

हलवाई के ऊपर प्राइमरी स्कूल का एक अध्यापक रहता था।

तीसरी मंजिल पर तीनों हिस्सों पर तीन बरसातियाँ थी, जिनमें क्रमशः एक खोंचे वाला, एक डाकिया और एक पनवाडी सपरिवार रहते थे। जलती धूप हो अथवा चुभती सर्दी, खाना उन्हे बरसाती के आगे खुली छत पर पर्दा-सा लगा कर पकाना पड़ता था।

इन सब नौ-दस किरायेदारो के लिए तीन शौचालय थे और बाकी बैठक, गुसलखाने, सोने के कमरे और रसोई-घर आदि का काम वे सब अपने उन्हीं दो कमरों से लेते थे।

गर्मियों मे सोने का प्रबन्ध यों होता : निचली मंजिल वाले नीचे

मकान के बाहर नाली पर चारपाइयाँ बिछा कर सोते । बीच की मंजिल मे रहने वाले बरसातियों के ऊपर सोते, बरसातियों वाले अपनी बरसातियों के सामने ।

इस मकान और उसके किरायेदारों का परिचय दे कर चेतन ने कहा, "तुम्हे यह सुन कर हैरानी होगी कि ये दो कमरे मुझे बड़ी दिक्कत से मिले, लाहौर के गली-मुहल्ले मे किसी अविवाहित युवक के लिए किसी कमरे का ले लेना आसान बात नही । साथ मे कोई स्त्री होनी चाहिए, चाहे वह माँ, बहन, चाची, ताई, भावज, बुआ, यहाँ तक कि कहीं से भगायी हुई ही क्यों न हो ।"

यहाँ चेतन ने ठहाका लगाया और फिर बोला, "लेकिन मैंने भी इन लोगों को खूब बनाया । तुम्हे हुनर साहब की तो याद होगी ? अरे वही, जो जालन्धर मे दुनिया भर के शायरों की चीज़ें अपने नाम से सुना कर मुझ पर रोब जमा आये थे, जिन्हें मन-ही-मन मैंने अपना गुरु भी मान लिया था और इसी श्रद्धा के फल-स्वरूप मैंने पाँच रुपये भी जिनको भेंट किये थे । सब्जोमंडी के उस होटल को छोड़ने के बाद मैं उन्ही के यहाँ मजंग मे कुछ दिन रहा । दूसरा कोई परिचित था नहीं, क्या करता ? लेकिन अभी महीना खत्म भी न हुआ था कि हुनर साहब ने, यह बता कर कि सोलह रुपया मकान का किराया उन्हे देना पड़ता है, आठ मुझसे माँग लिए ।"

अनन्त हँसा ।

"उन्होने यह प्रस्ताव भी किया," चेतन ने बात को जारी रखते हुए कहा, "कि मै रोटी भी वही से खाऊँ और वे इस सब के बीस रुपये मुझसे ले लिया करेंगे । कहने लगे, 'अपना आदमी साथ हो तो बिमारी-उमारी मे तो मदद मिल जाती है ।" और तनिक हँसते हुए चेतन बोला, "बस उसी दिन शाम को मै मकान की तलाश मे निकल पडा। यह भी इच्छा थी कि दफ़्तर के पास कही मिल जाय तो रात को उनीदी आँखें लिये मील-डेढ़-मील चल कर मजंग पहुँचने की मुसीबत से छुट्टी मिले, लेकिन

पाँच-छः जगह पूछने पर ही पता चल गया कि कुँवारे के लिए किसी सभ्य इलाके मे कोई कमरा किराये पर ले लेना कुछ आसान बात नही ।"

"इस चंगड मुहल्ले में भी," चेतन ने हँस कर कहा, "ड्योढी के ऊपर दरम्याने मे रहने वाली विधवा ने पूछा कि मै अकेला ही आऊंगा या सपत्नीक ? तब मैने कह दिया कि पत्नी तो मेरे है, पर अभी उसे परीक्षा देनी है, इसलिए वह साथ न आयेगी ।"

अनन्त ने हँस कर कहा, "लेकिन परीक्षाएँ तो हो चुकी ।"

चेतन बोला, "पूछती थी, पर मैंने कह दिया कि मेरी पत्नी प्रान्त भर मे सर्व-प्रथम रही हैं, इसलिए वही स्कूल मे उसे अध्यापिका की जगह मिल गयी है, अब मै कोशिश करूँगा कि उसकी बदली यहाँ लाहौर हो जाय ।"

इस पर दोनो खूब हँसे । तभी अनन्त ने देखा कि वह लड़की—वह प्रकाशो, चुपचाप उस झरोखे मे आ कर खडी हो गयी है । वास्तव में एक किवाड की चिक कुछ नीची लगी थी (अचानक ही लग गयी थी, या शायद चेतन ने उसे जान-बूझ कर ही इस तरह लगाया था, यह नही कहा जा सकता) । उसके ऊपर से सामने के झरोखे मे बैठा व्यक्ति भली-भाँति दिखायी दे जाता था ।

वहाँ लेटे-लेटे अनन्त ने चेतन का कन्धा हिला कर उसका ध्यान लड़की की ओर आकर्षित किया ।

धीरे से चेतन ने कहा, "तुम चुपचाप यहीं लेटे रहो, वह शायद तुम्हें नहीं देख रही ।"

इसके बाद जो कुछ हुआ, उसके फलस्वरूप अनन्त ने फ़तवा दे दिया कि लडकी को चेतन से अपार प्रेम है और जब चेतन ने उसे बताया कि इधर कुछ दिनों से प्रकाशो दूसरे नलों को छोड़ कर उसके पम्प पर ही आने लगी है, और घर वालो को उसने विश्वास दिला दिया है कि म्यूनिसिपैलिटी के नलों की अपेक्षा पम्प का पानी कहीं अधिक ठंडा होता है तो अनन्त ने यह नेक सलाह दी कि आज जब वह पम्प पर पानी लेने

आये तो उसे पकड़ कर तत्काल अन्दर ले आना चाहिए। अपनी और अपने एक-दो मित्रों की मिसालें दे कर अनन्त ने कहा, "वह तो तुम्हारे आलिंगन मे बद्ध होने के लिए छटपटा रही है। तुम साहस से काम न लोगे तो यह मामला बस इससे आगे न बढेगा।"

लेकिन चेतन का दिल वेतरह धड़क रहा था। तब अनन्त ने पूरे डेढ घंटे तक प्रेम के सम्बन्ध मे अपने साहस और दिलेरी की जो कहानियाँ सुनायी, उनका परिणाम यह हुआ कि धड़कते हुए दिल के साथ चेतन दुस्साहस का यह काम करने को तैयार हो गया।

साधारणतया प्रकाशो संध्या से बहुत पहले ही आती, जब आम तौर पर ऊपर रहने वाली विधवा अपने बच्चों के साथ सो रही होती और आँगन में सन्नाटा होता। उसके आने से पहले अनन्त ने चेतन को इस तरह तैयार कर दिया कि वह आँगन मे खुलने वाले दरवाज़े मे खड़ा रहे, अनन्त दरवाज़े की ओट मे बैठा रहेगा और अगर कोई ऐसी-वैसी बात हो गयी तो वह उसे सँभाल लेगा।

जब प्रकाशो समय पर पानी लेने आयी और बाल्टी भर चुकी तो अनन्त ने कुहनी के ठेके से चेतन को जाने के लिए कहा। किन्तु अनन्त ने यद्यपि तीन-चार बार उसके कुहनो गड़ायी तो भी वह टस-से-मस न हुआ और प्रकाशो वाल्टी उठा कर अपने मोटे-मोटे होटों से मुस्कराती और अपने भारी कूल्हे मटकाती हुई चली गयी।

तब अनन्त ने दोआबा की विशुद्ध भाषा मे चेतन पर 'मधुर वचनों' की झड़ी लगा दी और फ़तवा दिया कि वह एकदम नपुसक है।

कदाचित यह उपाधि पाना चेतन के पुसत्व को गवारा न था, इसलिए जब प्रकाशो दूसरी बार बाल्टी लेने आयी और बाल्टी पम्प के नीचे रखते और अपने मोटे होंटों से मुस्कराते हुए उसने दो-एक बार हैंडल घुमाया तो चेतन ने एक कुलाँच भरी।

"हाय मैं मर गयी।" कहती हुई प्रकाशो वहीं धम से बैठ गयी। चेतन के चेहरे पर स्याही पुत गयी और उसकी बाँहे खुली-की-खुली रह

गयीं ।

कमरे में वापस आ कर वीस गालियाँ तो चेतन ने अनन्त को सुनायीं और कहा कि अगर किसी ने देख-सुन लिया हो या प्रकाशो ने जा कर घर कह दिया तो क्या होगा ?

उसका चेहरा कपास के फूल की तरह सफ़ेद हो गया था। वह सोच रहा था कि यदि प्रकाशो ने घर जा कर कह दिया तो सँभाल कर रखी हुई इज्जत पर पानी फिर जायगा, अपमानित हो कर मुहल्ले से निकलना पड़ेगा और दफ़्तर के इतने समीप मकान भी फिर मुश्किल ही से मिल सकेगा ।

पर अनन्त ने कहीं से केले का छिलका ला कर आँगन मे रख दिया और उसे इस तरह पाँव से मसल दिया जैसे उस पर कोई फ़िसल गया हो। फिर उसने चेतन को सान्त्वना दी कि अव्वल तो प्रकाशो घर जा कर कहेगी नहीं और यदि उसने यह हिमाक़त की भी और तुमसे किसी ने पूछा तो कह देना कि मैं वाहर जाने लगा था, केले के छिलके पर फिसल गया। बाँहें मैंने जरूर फैलायी थी और पकड़ना भी चाहा था, लेकिन वह तो गिरते हुए की वेवसी थी।

चेतन को अनन्त की इस बात से कुछ अधिक सान्त्वना न मिली, किन्तु प्रकाशो ने, जैसा कि अनन्त का खयाल था, घर जा कर नहीं कहा।

सत्राह

शाम को जब अनन्त को गाड़ी पर चढ़ा कर चेतन प्लेटफ़ॉर्म से वाहर निकला तो आज की इस घटना पर उसे जो ग्लानि हुई थी, और जो अनन्त की लच्छेदार वातो से अब तक दबी रही थी, वह फिर उभर आयी। अपना यह कृत्य भयावह रूप धारण कर उसके सामने आने लगा। उन सम्भाव-

नाओं ने, जो घटित हो सकती थीं पर न हुईं, उसके मन को उद्विग्न कर दिया—यदि ऊपर से कोई उसका यह कृत्य देख लेता, यदि कोई उस समय पानी भरने आ जाता, यदि प्रकाशो अपने उस बर्बर ताँगे वाले भाई से कह देती....तो ! और परिणाम की कल्पना-मात्र ही से उसके रोंगटे खड़े हो जाते ।

उसे पता भी न चला कि वह कब ताँगे पर सवार हुआ और कब घासमंडी के पास आ कर उतर गया । उसके मस्तिष्क में तो इस बीच में निरन्तर हलचल मची रही थी । उसकी सगाई हो चुकी है, लड़की वाले शादी के लिए जोर भी दे चुके हैं तो क्यों न वह शादी कर ले ? जब वासना उसके मन में कहीं दबी पड़ी है, जब उसमें संयम का अभाव है तो क्यों न समाज के बने विधान के अनुसार वह खूँटे से बँध जाय ? अनन्त !....उसका तो मस्तिष्क विकृत है ।

पश्चात्ताप से भरे हुए स्वर में चेतन ने कहा था, "मैं शादी कर लूँगा ।"

बिना किसी प्रकार की लज्जा के अनन्त ने ठहाका लगाया था ।

भारी गम्भीरता के साथ चेतन बोला था, "इधर-उधर खेतों में मुँह मारना, उगती-बढ़ती पौध को दूषित करना, पकड़े जाने पर दंड पाना, अपमानित होना—क्या सभ्य, सुशिक्षित, सुसंस्कृत मानव के लिए यही उचित है ?

अनन्त बेपरवाही से हँसा था । "इसके लिए दिल और जिगर की जरूरत है ।" उसने कहा था, "तुम जैसे डरपोक के लिए घोंसला बनाना, बच्चे पैदा करना और उनके पालने में जीवन बिता देना ही बेहतर है । आकाशगामी उकाब की तरह स्वच्छन्द विहार करना, घर बनाने का रोग न पालना और अपने शिकार को बरबस झपट लेना क्या हर एक पक्षी के वश की बात है ? संसार में कौवे और गिद्ध तो अनेक हैं, उक़ाब नहीं ।"

"लेकिन सभ्यता....?"

"कायरों के दिमाग़ की उपज है ।"

"पर शादी....?"

"निर्बलों ने अपनी रक्षा के लिए इसका विधान बनाया है।"

"किन्तु नारी....?"

"वह तो उसी तरह पीड़ित है, विवाह के बन्धन से मुक्त हो कर वह कम प्रसन्न न होगी। सभ्यता के विधान ने उसका कम गला नहीं घोंटा।"

०

चेतन के समस्त शरीर में एक झुरझुरी-सी उठी। स्टेशन जाते समय मार्ग में अनन्त के साथ उसकी जो बहस हुई थी उसका एक-एक शब्द उसके कानों में गूँज रहा था। तर्क पर अनन्त की बातें चाहे कितनी भी पूरी क्यों न उतरती हों, पर मन में वह उनसे कभी सहमत न हो पाता था।

यह ठीक है कि उसका वेतन अधिक नहीं। वह पत्नी को साथ रख कर लाहौर का खर्च सहन न कर सकेगा, लेकिन उससे उक़ाब भी तो न बना जायेगा। यह उक़ाब-वृत्ति अनन्त ही को मुबारक रहे। उसके लिए तो ग़रीब पर संयत और सुव्यवस्थित जीवन निन्दा, तिरस्कार, जुगुप्सा, भर्त्सना के उस असंयत, अव्यवस्थित जीवन से कहीं अच्छा है।

चेतन उन सरल निरीह युवकों में से था, जिन्हें लाहौर की मिट्टी ने पका कर चालाक और चतुर न बनाया था। प्रत्येक बुरी-से-बुरी घटना को हँसी में उड़ा देने, उस पर दार्शनिक ढंग से तर्क-वितर्क कर सकने, प्रतिदिन कुकर्म करते हुए उसे बीसियों भले लोगों के सत्कर्मों से अच्छा साबित करने की क्षमता उसने अभी प्राप्त न की थी। उसकी आत्मा सरल, भोली, पवित्र और नेक थी। नगर के नये सिद्धान्तों का पानी उस पर न चढ़ा था। अनन्त के लिए जो घटना प्रतिदिन होने वाली साधारण घटनाओं में से एक थी, जिसका ज़िक्र वह बड़ी बेपरवाही से कर दिया करता था, वही चेतन के लिए असाधारण और चरित्र के पौधे को जड़ों तक झुलसा देने वाली थी।

घासमंडी से घर तक वह इन्हीं उलझनों को सुलझाता चला आ रहा था कि घर के समीप उसे चिर-परिचित कंठ की आवाज़ सुनायी दी। उसने

आँखें उठायी तो देखा कि उसके बड़े भाई उसके पड़ोसी चंगड़ से उसका पता पूछ रहे हैं। वे सूट पहने हुए थे और उनके हाथ मे एक गठरी थी। चेतन ने उनको प्रणाम किया और दरवाज़ा खोल कर उन्हे अन्दर ले आया।

बाहर यद्यपि काफी प्रकाश था पर चेतन के कमरे में अँधेरा छा रहा था। बिजली का बटन दबा कर चेतन ने भाई से आराम-कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। तब उस पन्द्रह कैंडल पावर के बल्ब की रोशनी मे चेतन ने अपने भाई को आज की समस्त घटना सुना दी।

अठारह

पण्डित बनारसीदास की दुकान पर सारा दिन ताश खेलने वाले, माँ के द्वारा 'बुढ़ऊ' पुकारे जाने वाले, सदैव मैले तहमद और कुर्ते मे मस्त चेतन के बड़े भाई रामानन्द और इन साफ (यद्यपि पुराने) सूट मे आवृत्त, सिर पर मोतिया रंग की पगड़ी सजाये, सस्ती लेकिन सुन्दर टाई बाँधे अपने इस छोटे भाई के घर अचानक आ धमकने वाले डॉक्टर रामानन्द मे आकाश-पाताल का अंतर था।

इस डेढ वर्ष के अर्से मे आवारा, निकम्मा और नालायक युवक किस प्रकार डॉक्टर कहलाने योग्य हो गया, यह एक लम्बी कहानी है। संक्षेप मे इतना कहना पर्याप्त है कि कराची से एल० डी० एस-सी० की डिग्री ले कर आने वाले एक दाँतों के डॉक्टर से चेतन की मित्रता थी। जब चेतन के इन भाई साहब को बेकारी और उस पर उनकी पत्नी की कर्कशता ने माँ का जीवन दूभर कर दिया और लगे हाथो बड़े पैमाने पर एक लॉन्ड्री खोल कर इन भाई साहब ने लगभग एक हज़ार रुपये पर पानी फेर दिया और तीन-चार सौ का कर्ज़ चेतन को माँ के सिर चढ़

गया तो चेतन की माँ ने, जब चेतन एक बार जालन्धर गया था, उस पर जोर दिया कि वह अपने भाई को भी किसी-न-किसी तरह कहीं काम से लगाये। उसी दिन हँसी-हँसी में चेतन ने अपने उस डॉक्टर मित्र से पूछा कि वह उसके भाई को अपना शिष्य क्यों नहीं बना लेता। उसने हाँ कर दी। चेतन ने भाई के सामने प्रस्ताव रक्खा और डॉक्टर बनने के लाभ पर एक छोटा-मोटा लेक्चर भी दिया। चेतन के बड़ें भाई स्वयं घर में प्रति क्षण होने वाली इस कलह से ऊब चुके थे, उससे पिंड छुडाना चाहते थे और घर के बाहर नरक तक में भी जाने को तैयार थे, इसलिए उन्होंने झट चेतन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर उस काम में उनका मन इतना लगा कि उन्होंने परिश्रम करके उसे सीख लिया और उन्हीं डॉक्टर साहब की सहायता से कराची के डेंटल कालेज से एल० डी० एस-सी० का डिप्लोमा भी ले लिया।

माँ हैरान थी कि उसका यह पुत्र जो कभी किसी काम मे जी न लगाता था, जिसे ताश और शतरंज से दिन भर काम रहता था, किस प्रकार इतना परिश्रमी हो गया। चेतन के भाई उन डॉक्टर साहब के यहाँ सुबह जाते और संध्या को सूरज छिपे वापस आते। उनकी वे आवारों की आदतें भी जाती रही। तहमद छोड़, सूट पहनना और चीखने के स्थान पर धीरे बोलना भी उन्होने सीख लिया था। यद्यपि नये सूट के पैसो को ले कर घर मे काफी चख-चख हुई थी और आखिर चेतन के भाई ने अपने पिता की मोटी जीन की पुरानी वर्दी को ठीक कराके सूट की शकल दे दी थी और इस तरह वे रेलवे-गार्ड-से लगने लगे थे, लेकिन डॉक्टर बनने के खयाल ही से उनके रहन-सहन मे एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया था।

वास्तव में पण्डित शादीराम ने अपने बच्चों की प्रवृत्तियों की ओर कभी ध्यान न दिया था। यो तो वे चाहते थे कि उनके लड़के ई० ए० सी० और आई० सी० एस० से कम न बनें पर इन शब्दों के अर्थ तक अपने बच्चों को समझाने की चेष्टा उन्होने कभी न की थी। कभी-कभी 'रिलीविंग'

के अपने दौरों से अथवा किसी दूरस्थ स्टेशन से आना और मार-पीट, झिड़क-कोस जाना—बस इस पर ही उनका वह जोश समाप्त हो जाता था।

चेतन के इस बडे भाई की रुचि बचपन ही से ऐसे कामों की ओर थी जिनमे दिमाग से अधिक हाथों का दख़ल हो। बचपन में वे खिलौने बनाया करते थे। स्कूल में शेष सब विषयो मे चाहे फ़ेल हो जायँ पर ड्राइंग मे बडे अच्छे नम्बर पाते थे। स्वयं ही कई चित्र भी उन्होने बनाये थे। फिर जब कॉलेज के दिनों मे चेतन के सिर पर बिस्तर उठवा कर घर से भागे थे तो दिल्ली जा कर एक आर्टिस्ट के शागिर्द हो गये थे।

वहाँ से सौभाग्यवश पण्डित शादीराम के एक मित्र उन्हे ले आये। तब पण्डित जी ने वापसी पर अपने इस सुपुत्र की खूब गत बनायी थी। जो भी मित्र आता उसके सामने वे उन्हे कान पकड़ कर ले आते और—'यही मेरा सुपुत्र है जो दिल्ली भाग गया था'—इन शब्दों मे उनका परिचय कराते और दो-चार 'मधुर वचनो' के चाँटे लगा कर वापस भेज देते।

इस पर तुर्रा यह कि उन्हे फिर कॉलेज मे दाखिल कर दिया गया। वे माँ के सामने कितना ही रोये, किन्तु न माँ को अपने पति और न पुत्र को अपने पिता के सामने इन्कार करने का साहस हुआ। लेकिन जब परीक्षा के लिए फॉर्म भेजे जाने लगे तो प्रिन्सिपल ने उनका फ़ॉर्म रोक लिया, क्योंकि उनके लेक्चर बहुत कम थे। तब मन-ही-मन चेतन के भाई ने सन्तोष की साँस ली थी।

पिता तो चाहते थे कि उनका पुत्र फिर से कॉलेज मे दाखिल हो, पर पुत्र ने इस बीच मे कुछ साहस बटोर लिया था। इसलिए बात जब चली तो उसने आगे पढने से साफ़ इन्कार कर दिया।

पिता ने समझा लड़का जवान हो गया है, कहीं बिगड़ न जाय इसलिए उसकी शादी कर दी। लड़का तो क्या सुधरता, हाँ एक लड़ाकी बहू और दो बच्चो का बोझ उनके सिर पर और लद गया।

०

अपनी इसी दशा की आलोचना करते हुए चेतन के भाई ने एक दिन उससे कहा था :

"अब तुम ही बताओ यदि मैं नालायक रहा तो इसमें मेरा क्या दोष है? गूदड़ की तरह पीटने से लड़का गूदड़ ही तो बन सकता है। जितना उन्होंने मुझे पीटा है उतना कभी किसी पिता ने अपने पुत्र को न पीटा होगा?" और उनका गला भर आया था।

संयत हो कर उन्होंने फिर कहा था :

"और फिर व्यक्तिगत रुचि-अरुचि का भी तो कुछ प्रश्न है। मुझे पुस्तकें कभी अपनी ओर नहीं खींच सकीं। यदि मैं किसी कला-कौशल की ओर ध्यान देता तो अब तक कुछ-का-कुछ बन जाता।

"फिर पिता जी कहते हैं कि मैं कॉलेज से इसलिए भागा था कि मैं शादी करना चाहता था (यहाँ वे तनिक हँसे थे।) पर वास्तव में बात यह थी कि संस्कृत के प्रोफ़ेसर ने पाँच रुपये जुर्माना कर दिया था और मैं किसी तरह भी फ़ीस से अधिक रुपये न पा सका था।"

और फिर चेतन के भाई ने कुछ ज़ोर दे कर कहा था, "मुझे यदि मेरे हाल पर छोड़ दिया जाता तो मैं बेकार न फिरता। दिल्ली में अब तक मैं बहुत बड़ा आर्टिस्ट बन चुका होता।"

चेतन के बड़े भाई आर्टिस्ट अथवा पेंटर तो न बन सके थे, हाँ डेंटिस्ट ज़रूर बन गये थे।

चेतन उन दिनों मोहन लाल रोड के एक तंदूर से रोटी खाता था। पर भविष्य में डॉक्टर कहलाने वाले उसके ये बड़े भाई वहाँ कैसे खाना खाते और चेतन ही उन्हें तंदूर पर कैसे ले जाता? इसलिए जब वह उन्हें गणपत रोड के उसी होटल-नुमा तंदूर से खाना खिला लाया और चार-पाइयों को बाहर नाली के ऊपर बिछा कर दोनों भाई बैठ गये तो डॉक्टर रामानन्द ने अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया।

"निरी इस डिग्री को ले कर मैं क्या करूँ," उन्होंने कहा, "डिग्री पा

लेना ही तो सफल हो जाना नही। सफलता की होड़ तो डिग्री लेने के बाद शुरू होती है। अच्छी जगह दुकान चाहिए, दुकान मे अपटूडेट सामान चाहिए और फिर नये ढंग से विज्ञापन हो तब कहीं अपना कौशल दिखाने का अवसर डेंटिस्ट को मिलता है। इस सब के बाद यदि उसके हाथों मे सिद्धि है तो वह चल निकलेगा, नही तो...."

यहाँ डॉक्टर साहब ने अँग्रेज़ी की एक लोकोक्ति का जिक्र किया, जिसका तात्पर्य यह था कि डॉक्टर की गलती धरती मे गाड़ दी जाती है, डेंटिस्ट की मुँह बाये उसके सामने आ खड़ी होती है।

उस आर्थिक समस्या की गम्भीरता के बावजूद जिसे ले कर वे उसके पास आये थे, चेतन यह सुन कर हँस पड़ा।

"जहाँ तक गलती करने का सम्बन्ध है," डॉक्टर साहब ने कहा था, "इस ओर से मुझे कोई डर नही। जालन्धर मे डॉक्टर चोपड़ा का सब काम मैं ही कर रहा हूँ। लेकिन सवाल तो यह है कि यह सब निपुणता दिखाने का अवसर मुझे कैसे मिलेगा ?"

और उन्होने बताया था कि माँ ने किसी प्रकार की भी सहायता देने से साफ इन्कार कर दिया है। "जब मैंने कही दुकान खोलने का प्रस्ताव किया और दबी ज़बान से उसके लिए कुछ रुपये की माँग की तो माँ ने लॉन्ड्री के दिनो के वे गडे मुर्दे उखाड़े कि मुझे वहाँ से भागते ही बना।"

तब, आश्चर्य है कि उनकी उसी लड़ाकी कर्कशा पत्नी ने (जिसने एक बार घर मे आटा खत्म होने पर दो रुपये देने से इन्कार कर दिया था।) अपने दो गहने ला कर उन्हें बेचने को दे दिये थे और न जाने किस तरह पैसा-पैसा जोड़ कर इकट्ठे किये हुए नब्बे रुपये भी उनके सामने ला रखे थे।

चेतन के भाई ने बताया कि इनसे वे किसी-न-किसी तरह सस्ता सामान खरीद कर फिरोजपुर में दुकान खोल लेंगे। वहाँ कम्पीटीशन कम है। इसलिए चेतन से वे इतना कहने आये थे कि कम-से-कम एक वर्ष के लिए वह कुछ रुपये मासिक से उनकी सहायता करे, क्योकि खोलते ही तो दुकान चल न निकलेगी।

इस पर चेतन ने वहीं लेटे-लेटे प्रकाशो के सम्बन्ध में कुछ ही घण्टे पहले घटित होने वाली सब घटना अपने भाई से कह सुनायी और अपने मनोभावों को भी बिना छिपाये उनके सामने रख दिया।

"इस तरह भटकने से मैंने सोचा है," उसने कहा, "मुझे विवाह कर लेना चाहिए। सगाई अब छोड़ी नहीं जा सकती और लड़की जैसी भी है, काफ़ी बड़ी है और आज-कल बड़ी लड़कियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। बस्ती के लड़के भी (उसने हँसते हुए कहा) आख़िर हम जैसे ही हैं। मैं सब को जानता हूँ और मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि शादी वहीं करनी है तो दो साल तक रुकने की ज़रूरत नहीं।"

और फिर उसने उन्हीं से पूछा था कि पत्नी के साथ लाहौर में रहता हुआ वह किस तरह चालीस रुपयों में से उनको कुछ भेज सकेगा?

चेतन के भाई कुछ क्षण के लिए निराश हो गये। वे कहना चाहते थे कि विवाह के सम्बन्ध में उसे कम-से-कम एक वर्ष के लिए रुक जाना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी भावनाओं को संयत नहीं रख सकता, वह संसार में कर ही क्या सकता है? उसका वेतन कुछ बढ़ जाय, तब शादी करे। विवाह काफ़ी ज़िम्मेदारी का काम है और इस ज़िम्मेदारी को निभाने लिए सब से ज़रूरी वस्तु रुपया है जो अभी उसके पास नहीं....।

लेकिन उन्होंने यह सब कुछ नहीं कहा। वे स्वयं कुछ रुपयों की माँग कर चुके थे और इस सब लेक्चर मे उनकी स्वार्थपरता साफ दिखायी देती, यह बात वे अच्छी तरह जानते थे।

तब चेतन ने धीरे से, स्वयं ही जैसे उन्हें सान्त्वना देते हुए, कहा था कि यदि वे लाहौर में प्रैक्टिस करें तो जो भी उससे हो सकेगा वह अवश्य देगा।

"आपने स्वयं कहा है कि आज-कल प्रैक्टिस प्रोपेगैंडे के बिना नहीं चलती," वह बोला, "फिरोज़पुर में आप प्रोपेगैंडा करेंगे या प्रैक्टिस? लाहौर में यदि आप रहेंगे तो पास रहने के कारण मैं ज़रूर ही कुछ-न-कुछ आपकी सहायता कर सकूँगा। और नहीं तो रोटी की फ़िक्र आपको

न रहेगी। फिर जब भी बन पड़ा धन से भी सहायता करने का प्रयास करूँगा। इन सब बातों के अतिरिक्त मैं कई तरह से प्रचार कर सकता हूँ और प्रचार की सहायता धन की सहायता से कम नहीं।"

वहीं लेटे-लेटे उसने प्रचार के कई तरीके गिना दिये।

—वह समाचार-पत्रों में उनके प्रैक्टिस आरम्भ करने की सूचना छपवा देगा।

—स्वयं कॉलेजों, होस्टलों, दफ़्तरों और सिनेमा-घरों में उनके कार्ड विज्ञापन के रूप में बाँट आयेगा।

—अपने मित्रों में प्रचार करेगा और यद्यपि उसके मित्र इतने धनी-मानी नहीं, लेकिन उनका सम्पर्क और मेल-जोल धनी-मानी व्यक्तियों से है।

चेतन ने ये सब बातें कुछ इस ढंग से सुनायी कि मन-ही-मन भाई साहब ने फ़िरोज़पुर में प्रैक्टिस करने का विचार तत्काल छोड़ दिया, पर प्रकट उन्होंने इतना ही कहा, "तुम्हे मदद करना हो तो वहाँ भी कर सकते हो। वहाँ दाँतों के डॉक्टर कम हैं, प्रैक्टिस का क्षेत्र बहुत है। यहाँ ईंट उठाओ तो डेंटिस्ट निकल आता है और मुकाबिला बेहद ज्यादा है।"

चेतन ने तनिक जोश से कहा, "मुकाबिले से डरना, भाई साहब, कायरों का काम है। प्रतिद्वन्द्विता ही मनुष्य की प्रतिभा की कसौटी है। अव्वल तो फ़िरोज़पुर में आप चार दिन में तंग आ जायेंगे, (मन-ही-मन उसने कहा—मैं आपके स्वभाव को जानता हूँ, माफ़ कीजिएगा, लॉन्ड्री की बात अभी पुरानी नहीं हुई—किन्तु प्रकट बोला) फिर यदि वहाँ आपकी प्रैक्टिस चल भी निकली तो आप अधिक-से-अधिक सौ-डेढ़-सौ-रुपया महीना कमा सकेंगे। लाहौर में यदि प्रैक्टिस चल जाय तो हज़ार रुपया मासिक भी आ जाना बड़ी बात नही।"

"हज़ार!" और उस तंग सील-भरी, दुर्गन्ध-युक्त, गर्म जगह में भैंसों और बैलों के समीप ही लेटे हुए डॉक्टर रामानन्द के सामने माल रोड की विशालता और उस विशालता का दिग्दर्शन कराती हुई एक सर्जरी

घूम गयी जैसे चेतन पर एहसान का बोझ लादते हुए वे मान गये ।

लाहौर जैसे बड़े नगर में थोड़ी-सी पूँजी के साथ कैसे काम चलेगा, चेतन के भाई साहब ने इस बात की चिन्ता नही की । ये सब बातें उन्होंने अपने छोटे भाई की कार्यपटुता पर छोड़ दीं । हाँ, उसका विवाह जल्दी-से-जल्दी करा देने का बोझ उन्होंने अपने कन्धों पर ले लिया और यद्यपि विवाह की बात चलने पर चेतन की दिलचस्पी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी और वह बड़े ज़ोरो से अपने सिद्धान्तों की व्याख्या कर रहा था, पर उसके इस उत्साह की तनिक भी परवाह न करके चेतन के भाई वहीं चारपाई पर पड़े-पड़े मज़े से खुर्राटे लेने लगे ।

उन्नीस

दूसरे ही दिन से चेतन ने अपने भाई साहब को लाहौर में जमाने का प्रयत्न शुरू कर दिया ।

"इससे पहले कि आपके लिए कही दुकान ढूँढ़ी जाय ।" चेतन ने दूसरे दिन ही उनसे कहा, "आपको व्यवहार-कुशल होना चाहिए ।"

भाई साहब कुछ कहना चाहते थे, पर अपनी धुन मे उन्हें कुछ कहने का अवसर दिये बिना चेतन ने अपनी बात जारी रखी । "आपकी दुकान चेम्बरलेन रोड, निस्बत रोड, बीडन रोड, माल रोड या अनारकली में होनी चाहिए । माल या अनारकली मे दुकान जमाना हमारे बूते से बाहर है । इतना किराया हम नहीं दे सकते । और फिर वहाँ दुकान जमायें तो उतनी ही तड़क-भड़क और उतने ही बड़े ।खर्च का भी प्रबन्ध करें । यह सब इस समय दुष्कर ही नही, असम्भव है । रही शेष जगहें तो वहाँ उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने मे कुछ समय लग जायगा । इस बीच मे आप मरीज़ों से पेश आने का, उनसे बात-चीत करने का कुछ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त

कर लें।"

भाई साहब नहीं समझे। "क्या मतलब है तुम्हारा ?" उन्होने कहा "क्या मै रोगियो से बात-चीत करना भी नही जानता। जालन्धर मे...."

"जालन्धर और लाहौर के रोगियो मे अंतर है।" चेतन ने उनकी बात काट कर कहा, "और फिर जालन्धर मे आपको स्वतंत्र रूप से प्रैक्टिस करने का अवसर ही कब मिला ? मै जानता हूँ कि जहाँ तक काम का सम्बन्ध है आपका हाथ खुल गया है। लेकिन शुरू-शुरू मे हाथ का खुलना उतना लाभदायक सिद्ध नही होता जितना जबान का खुलना। रोगी आपके पास फँसेगा तो आपको अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलेगा, पर यदि रोगी पर आपका प्रभाव ही न पड़ा तो...."

चेतन के भाई समझ गये और उसी दिन चेतन ने कोशिश करके उन्हें रेलवे रोड के एक सफल और पुराने डेंटिस्ट के यहाँ कुछ दिन अवैतनिक सहायक के रूप मे काम करने का अवसर जुटा दिया।

०

लेकिन भाई साहब वहाँ अधिक दिन नही रह सके और शीघ्र ही उन्हे अपनी व्यवहार-कुशल बनाने की ट्रेनिंग समाप्त कर देनी पड़ी, क्योकि चेतन एक और तूफान मे घिर गया।

०

आँगन की पिछली दो कोठरियों मे जो पहाड़ी युवक रहते थे, उन्ही दिनों उनके यहाँ एक लड़की कही से आ गयी। कहने को तो उन युवको मे से एक उसका चचा कहलाता था और दूसरा भाई, पर पूछने पर चेतन को मालूम हुआ कि वास्तव मे वह उनके गाँव ही की है। उसकी माँ सौतेली है, पिता गरीब है और वे दोनों स्वयं आ कर इस इच्छा से लडकी को उसके चचा और भाई के पास छोड गये है कि कही किसी गरजमंद के हाथ पाँच-सात सौ ले कर उसे बेच दिया जाय। चेतन जब रात को दफ्तर से आता तो उस अँधेरी कोठरी मे रोशनी होती और वह आँगन के दरवाज़े में खडा उनकी बात-चीत सुना करता। खड़े-खड़े जब वह थक जाता

ही था कि यही आवाज और इसके साथ ही मुहल्ले भर के लड़कों का एकत्र होता हुआ शोर सुन कर उठा और अपने कमरे के दरवाजे मे चिक के पीछे इस तरह खड़ा हो गया कि उसका शरीर चिक के अन्दर था और हाथ चिलमन से बाहर दीवार पर। उसके देखते-देखते वहाँ केसर आ गयी। बच्चे चूरन ले रहे थे। चूरन वाला उन्हें चूरन बना कर देता, चूरन मे आग की लपट उठा कर तमाशा दिखाता और निरन्तर अपने चूरन का क़सीदा पढता जा रहा था। सहसा चेतन के सारे शरीर मे सनसनी-सी दौड़ गयी। केसर दीवार का सहारा ले कर खड़ी हो गयी थी और चेतन के उल्टे हाथ पर उसने अपना गाल रख दिया था। चेतन ने चाहा हाथ खीच ले, पर उसके गाल को चोट न लग जाय, इस विचार से उसने अपना हाथ वहीं रहने दिया। दूसरे क्षण उसने बाहर दृष्टि डाली। बच्चे चूरन की पुडियाँ लिये हुए लौट रहे थे और चूरन वाला खोचा उठाये जाने की तैयारी कर रहा था। चूरन को देख कर चेतन के मुँह मे पानी भर आया था और वह उससे दो पैसे का चूरन माँगने ही वाला था कि चुप हो रहा। उसका दिल धक-धक कर रहा था, शरीर गर्म हो रहा था। चूरन वाला चला गया तो केसर ने चिक मे से देखा। "तुमने नही लिया चूरन बाबू जी ?" और वह हँसी।

चेतन ने उसका हाथ पकड़ कर उसे अन्दर खीच लिया। वह अनजान-सी ताक मे रखे हुए चेतन के चित्र को देखने लगी जो उसने अस्पताल रोड के एक सफ़री फोटोग्राफर से छः आने मे खिचवाया था। चित्र मे वह मानो पुकार कर कह रहा था, 'हट जाओ हम फ़ोटो खिचवा रहे है।'

चेतन ने जल्दी से किवाड़ लगा लिये और केसर के पीछे जा खड़ा हुआ।

"यह आप का फोटू है," केसर ने बड़ी भोली-सी निगाहों से मुड़ कर उसकी ओर देखते हुए कहा।

पर चेतन की नसो मे रक्त उबल रहा था, उसका कंठ सूखा जा रहा

था और एक मीठा-सा कम्पन रह-रह कर उसके शरीर मे दौड़ रहा था। केसर के शरीर का अल्हड़पन उसके मन पर पूरा असर कर रहा था और उसके प्रश्न का उत्तर उससे न बन रहा था। निमिष मात्र के लिए उनकी आँखें मिलीं....चेतन ने एक बार एक बिल्ली पाली थी। जब वह उसकी गोद मे आना चाहती तो ऐसी ही आँखो से उसकी ओर देखती थी और वह उसे उठा कर अपनी गोद मे धर लेता। केसर की उन आँखों को देख कर न जाने क्यो चेतन को उस बिल्ली की याद हो आयी और उसी की तरह उसने केसर को बाँहों मे भर लिया। बिल्ली की ही भाँति दुबक कर वह उसके सीने से आ लगी। उसने केसर के उभरे हुए गालों को चूम लिया। एक लिजलिजी-सी ठंडक उसके शरीर मे दौड़ गयी जैसे उसने मेढक के शरीर को चूम लिया हो। पर उसके शरीर का तनाव कम न हुआ और वह तनाव प्रतिक्षण बढ़ता गया। वह उसे अन्दर कोठरी मे ले गया। उसे चारपाई पर डाल कर उसने कोठरी का दरवाजा बन्द कर दिया और बत्ती जलायी और उसके पास जा बैठा। केसर चौंकी, पर उठी नही।

किन्तु उसे तो नारी के अंगों का भी ज्ञान न था। और उसके शरीर की आग जैसे धधक उठने को आतुर थी....

कुछ क्षण बाद केसर चली गयी। वह खिन्न मलीन वहीं खड़ा रहा।

उसने चारपाई की ओर देखा। साफ बिछी हुई चादर पर कुछ सिलवटे पड़ गयी थी और केसर के मिट्टी सने पैरों के दो निशान बने हुए थे....

o

चेतन को लगा जैसे वे दो हथौड़े थे जो उसके सिर को निरन्तर चोटें लगा रहे है—काश अनन्त वहाँ होता!

o

अनन्त का ध्यान आते ही उसका अट्टहास उसके कानों मे गूंज गया—'तुम तो नपुसक हो!' तो कही सचमुच वह नपुंसक ही तो नही! और

उसकी आँखों के सामने पत्र-पत्रिकाओं में नित्य छपने वाले विज्ञापन फिर गये। ज़रूर ही उसे कोई गुप्त रोग है। और उसने विवशता से कमरे मे चारो ओर देखा। वह अवश्य किसी औषधि का सेवन करेगा। औषधि का ध्यान आते ही उसे मुन्शी गिरिजाशंकर का स्मरण हो आया। कुछ देर ठहर, उसने फिर एक बार नहा-धो कर कपड़े बदले और मुन्शी गिरिजा-शंकर के पास जा पहुँचा।

यह मुन्शी गिरिजाशंकर भी विचित्र आदमी थे। पीपल वेहड़ा ही मे रहते थे, लेकिन उनकी दुकान (फारमेसी) पीपल वेहडा के वाहर वाज़ार में डाकखाने के वरावर थी। पोपला मुँह, वडी-वड़ी मूँछें, मूँछों मे से झाँकते हुए पान और तमाखू की कालिमा से स्याह पड जाने वाले दाँत और थलथल-पिलपिल शरीर! धोती और मखमल का कुर्ता पहना करते, माप-माप कर चलते, जांच-तोल कर वात करते। उनके चलने और वातें करने से ऐसा लगता कि जीवन मे यह व्यक्ति बड़ा सतर्क है। कई वार तो ऐसा भी आभास मिलता कि उनकी यह सतर्कता नीचता की ओर झुकी हुई है।

अपनी फ़ारमेसी से मुन्शी जी अपने ही नाम की एक मासिक पत्रिका भी निकालते थे। देखने मे उनकी मासिक पत्रिका यद्यपि साहित्यिक थी, किन्तु उसमे किसी वड़े लेखक के लेख अथवा किसी बड़े कवि की रचनाएँ न होती। 'गिरिजा' के ग्राहक ही प्राय: उसके लेखक थे। इन लेखो के सुधार में मुन्शी साहव को जो परिश्रम करना पड़ता उसकी दाद वे प्राय: अपने मित्रो से माँगा करते थे। इसके अलावा (साहित्य के नाम पर) 'गिरिजा' के वार्षिक चंदे के लिए वे अपने ग्राहकों को वेहद गिड़गिड़ा कर चिट्ठियाँ लिखा करते थे। ऐसी कुछ चिट्ठियों का अनुभव स्वयं चेतन को भी प्राप्त था।

एक वार हुनर साहव के अनुरोध पर उसने तीन रुपये 'गिरिजा' के वार्षिक चंदे के रूप मे भेज दिये थे और इसके वदले मे हुनर साहव ने उसको एक कहानी 'गिरिजा' मे छपवा दी थी। जव वर्ष समाप्त होने

पर चेतन ने पुनः चंदा न भेजा तो उसके दो-तीन महीने बाद तक मुन्शी गिरिजाशंकर की चिट्ठियाँ उसे मिलती रही थीं। चेतन को महसूस होने लगा था कि यदि सचमुच उसने चंदा न भेजा तो साहित्य मे. नये लेखकों के रूप मे नवजीवन का संचार करने वाली (इसीलिए साहित्य को नया मार्ग दिखाने वाली) पत्रिका का सदैव के लिए अन्त हो जायगा और इस पथ-प्रदर्शन के बिना साहित्य बेचारा ऊबड़-खाबड़ मार्गो मे भटकता, गहन अँधेरी गुफाओं मे जा गिरेगा। वह पत्रिका का चंदा भेज देता, पर वह किसी तरह भी उतने पैसे न जुटा सका था।

साहित्यिक वेष-भूषा के पीछे 'गिरिजा' एक विज्ञापन से अधिक महत्व न रखती थी। यह विज्ञापन था 'गिरिजा फ़ारमेसी' की दवाइयों का। मुन्शी गिरिजाशंकर साहित्यिक होने के साथ-साथ वैद्य भी थे और 'गिरिजा' को उन्होंने अपनी औषधियो के प्रचार का साधन बना रखा था। इन औषधियों से वे देश के पीत-वर्ण युवकों को गिरिजा-पति-सा सशक्त और तेजवान बना देंगे—इस बात का प्रचार वे निरन्तर किया करते थे। उनके इन्ही विज्ञापनों के कारण इस विपत्ति मे चेतन उनके यहाँ पहुँचा था।

०

जब वह मुन्शी जी के दफ़्तर (फारमेसी या दुकान जो कुछ भी कहिए, वही एक कमरा था) पहुँचा, तो पहले-पहल शर्म के मारे उसके मुँह से बात न निकली। फिर कुछ देर बैठ कर इधर-उधर की बातें करके, साहस बटोर, उसने कहा, "मेरा दिमाग कुछ कमजोर है, मुझे कोई शक्ति-वर्धक दवाई दीजिए।"

मुन्शी गिरिजाशंकर अपनी घनी मूँछों मे इस तरह मुस्कराये जैसे सब कुछ समझते हों, उन्होने उसे लाल रंग की रत्ती भर दवा दी—"उबला अंडा अथवा मक्खन की टिकिया ले कर उसमे एक तिनका भर यह दवा डाल देना," उन्होने मूँछो मे मुस्कराते हुए कहा "सात दिन के सेवन से तुममे वह शक्ति भर जायगी कि बस....!"

और दो दिन ही वह दवा खाने से चेतन की नींद हराम हो गयी। उसे ऐसे स्वप्न आते, उसका शरीर ऐसा तन जाता कि उसे रात को एक न एक बार उठना पडता। सात दिन लगातार ऐसा ही होता रहा। आखिर उसने भाई साहब को बता दिया। "मुझे कोई कमज़ोरी महसूस होती हो," उसने कहा, "यह बात नही, पर मेरे मन-मस्तिष्क पर बोझ-सा पड़ता जाता है।" और उसने भाई साहब को यह भी बता दिया था कि उसने एक दवाई की दो-तीन खुराकें खायी है।

तब भाई साहब ने दवाई की पुड़िया और एक-दो उबले अंडे (जो चेतन अपने होटल-नुमा तंदूर से ले आया था) उठा कर बाहर फेंक दिये और फिर उसे डाँटा कि तुम स्वस्थ हो, अविवाहित हो, तुम्हे दवाइयाँ न खानी चाहिएँ।

चेतन ने संशय प्रकट करते हुए कहा था, "शायद मैं कमजोर हूँ।"

हँस कर भाई साहब ने कहा था, "तुम्हे कहाँ से कमजोरी आ गयी।" और फिर उन्होने उसे समझाया था, "आज-कल जो इतनी वासना से लपलपाती रद्दी कोकशास्त्र-रूपी पुस्तकें छपती है, उन्हे पढ कर ९५ प्रतिशत युवको को इस बात का संशय हो जाता है कि वे किसी गुप्त रोग से ग्रसित है और फिर आये दिन क्या दैनिक, क्या साप्ताहिक और क्या मासिक, समस्त पत्र-पत्रिकाओं मे 'इसके पढने से बहुतों का भला होगा,' 'संन्यासी जी की करामात'; 'नामर्द मर्द, मर्द जवाँमर्द हो गया'—की क़िस्म के जो विज्ञापन छपते है, यह उस संशय को पक्का कर देते है। और बेचारे युवक उन हकीमो, वैद्यों और संन्यासियो के चक्कर में पड़ कर सचमुच ये बीमारियाँ मोल ले लेते है। दोष तुम्हारा नही," उन्होने कुछ रुक कर कहा, "हम लोगों मे यह खराबी है कि जिन विषयों के सम्बन्ध मे युवक लड़के-लड़कियो को वय-सन्धि के अवसर पर ही पूरा ज्ञान देना चाहिए, उनकी ओर संकेत करना भी पाप समझा जाता है।"

अपनी धुन में भाई साहब ने चेतन को यौन-सम्बन्ध के बारे मे कुछ आवश्यक बातें (जितनी कुछ उन्हे मालूम थी और उन्हे विवाहित होने

के बावजूद कुछ अधिक मालूम न था) चेतन को बतायीं । उसे समझाया कि वह बिना उनसे पूछे किसी वैद्य, हकीम या डाक्टर से कोई दवा मत खाये । फिर वे उसे डॉक्टर के यहाँ ले गये जिसकी दवा से चेतन की बेचैनी कुछ कम हुई ।

यह तूफ़ान तो गुज़र गया, पर इसका परिणाम यह हुआ कि भाई साहब को व्यवहार-कुशलता की अपनी ट्रेनिंग बीच ही में छोड़ देनी पड़ी और दूसरे ही दिन चेतन की शादी के सिलसिले में अपना प्रण शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने के लिए जालन्धर जाना पड़ा । चेतन ने उनको विश्वास दिला दिया कि इस बीच में वह उनके काम की ओर से ग़ाफ़िल न होगा ।

बीस

चेतन के भाई ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी, विवाह की तिथि वे अत्यन्त निकट ले आये ।

इस सम्बन्ध में माँ को मनाने की तो कोई आवश्यकता ही न थी । वे तो इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा कर ही रही थीं और कई बार इस कर्कशा बड़ी बहू से अपनी भावी छोटी बहू के शील स्वभाव की तुलना करके कल्पना-ही-कल्पना में सुख का अनुभव कर चुकी थीं ।....आशाओं के सहारे मनुष्य जीता चला जाता है । एक टूटती है दूसरी का सहारा लेता है, दूसरी टूटती है तीसरी को पकड़ता है, फिर चौथी और पाँचवीं को.... किन्तु पिता अपने इस पुत्र को विवाहित देखने के लिए कुछ इतने उत्सुक न थे । वे तो उसे पूरा ब्रह्मचारी बना देखना चाहते थे । "पुराने आदर्शों और पुराने सिद्धान्तों को छोड़ने ही से देश और जाति की यह दुर्गति हो रही है," वे मूँछों पर ताव देते हुए कहते, "चारों ओर साहस-हीन, बलहीन, पीत-वर्ण युवक-युवतियाँ दिखायी देते हैं, जो न ठीक तरह हँस

सकते है, न खेल सकते हैं और न जीवन के दूसरे आनन्द लूट सकते हैं।" और फिर वे ठहाका मार कर हँसते और ऊँचे स्वर से कुश्ती लड़ने और कबड्डी तथा गदका खेलने और राष्ट्र के निर्माण मे इन खेलो के महत्व पर उपदेश देने लगते।

लेकिन इस सब आदर्शवाद की तह में जो बात थी, उसे चेतन के बड़े भाई भली-भाँति समझते थे। जी भर पीने और जी भर उड़ाने और उस पीने और उडाने के लिए जी भर क़र्ज लेने के कारण पण्डित शादीराम ने कभी इतना धन-संचय न किया था कि वे विवाह ऐसी 'व्यर्थ की रस्मों' पर खर्च कर सकते—विशेषतया उस समय जब लडका ब्रह्मचर्य-आश्रम को भी न पार कर पाया हो। इसलिए आदर्शों की बात छोड कर चेतन के भाई ने इसी आर्थिक कठिनाई का हल उन्हे सुझाया था :

"विवाह तो बस्ती ही मे होने वाला है," उन्होंने कहा था, "खर्च अधिक न होगा। फिर इतनी रस्मों की भी क्या आवश्यकता है ? बस आर्य-समाजी रीति से विवाह हो जाय। गहने-कपडे कुछ माँ ने बनवा ही रखे है, अपने लिए कपड़ों की कोई ऐसी जरूरत नही, यही पहन कर चले जायँगे। फिर छुट्टी भी आपको ज्यादा न लेनी पडेगी। और उन्होंने क्षण भर रुक कर कहा था—"आखिर जब शादी करनी ही है तो समय पर क्यो न कर दी जाय।"

यह कह कर चेतन के भाई ने उसके ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में भी सांकेतिक रूप से एक-दो बातें कह दी थी।

"चेतन अब लाहौर मे है," उन्होंने कहा था, "वहाँ प्रलोभन के साधनों की कमी नही। कौन जाने किस समय ब्रह्मचर्य को सम्हालता-सम्हालता युवक उसे लुटा बैठे। फिर गुनाह मे भी एक तरह की लज्जत होती है और युवक यह जानता हुआ भी कि वह गुनाह कर रहा है उसे बार-बार करता है....।"

चेतन के पिता मान गये थे। तय यह हुआ कि प्रॉविडेंट फंड से साढे पाँच सौ रुपया निकाल लिया जाय (पिछला कर्ज उसी महीने पूरा जो हो

रहा था), गहने कुछ-न-कुछ बने हुए हैं और सुधार की शादियों में दिखावे की भी कोई वैसी आवश्यकता नहीं।

पण्डित शादीराम ने अपनी ओर से स्वीकृति देते हुए इतना और कहा था कि देसराज के होते हुए किस बात की चिन्ता है? वह सब प्रबन्ध बड़ी आसानी से कर देगा।

देसराज जिस तरह का प्रबन्ध कर सकता था, इसका पता बारात जाने के दो दिन पहले बखूबी चल गया।

थका-हारा चेतन लाहौर से आया था। आँगन में कड़ाही रख दी गयी थी और शीरनी और शकरपारे तैयार हो रहे थे। माँ ऊपर व्यस्त थी। बड़े भाई दर्ज़ी से अपना सूट सिलवाने बाज़ार गये हुए थे। छोटे भाई परसराम को नया-नया अखाड़े जाने का शौक लगा था। आखिर पण्डित शादीराम के उपदेश व्यर्थ न गये थे और वह देश के पुनर्निर्माण में पूरी तरह संलग्न था। विवाह हो अथवा मृत्यु—उसके लिए अखाड़े जाने के नियम को तोड़ना कठिन था। छुट्टियों के दिन थे। चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र, विवाह का अर्थ वह अधिक न समझता था, और प्रातः का गया हुआ दस बजे से पहले अखाड़े से कभी न लौटता था। चेतन ने नीचे ही से माँ को प्रणाम किया और पूछा पिता जी किधर हैं?

मालूम हुआ कि देसराज के यहाँ गये हुए हैं।

पूछा, "वहाँ क्यों गये हैं?"

पता लगा, "साड़ी पर कुछ सलमे का काम कराना था, इसलिए वहाँ गये हैं।"

देसराज का घर क़िले मुहल्ले मे था और क़िले मुहल्ले से तनिक दूर पुरियाँ मुहल्ला है....और वहीं कुन्ती का घर है....और अपने इस विवाह से पहले, वय-सन्धि के अपने शर्मीले प्यार की उस मूर्ति को देखने की आकांक्षा चेतन के मन में उत्पन्न हो उठी।

यह ठीक है कि इस बीच में कुन्ती का विवाह हो गया था, व एक

बच्चे की माँ भी बन चुकी थी (और शायद दूसरे की माँ बनने की तैयारी कर रही थी) किन्तु चेतन जब भी लाहौर से आता, पुरियाँ मुहल्ले की ओर एक बार ज़रूर जाता।

शायद वर्तमान की कुन्ती का नहीं, अतीत की कुन्ती का आकर्षण उसे सदैव उधर ले जाया करता था। वह न होती तो उसके घर की ओर एक नज़र देख कर ही उसे सन्तोष हो जाता।

नीचे आँगन ही से उसने आवाज़ दी, "मैं पिता जी को देसराज के यहाँ देखने जा रहा हूँ।"

माँ ने बहुतेरा कहा कि अभी तू आया है, कुछ पानी-वानी पी, ऊपर आ....पर चेतन नहीं रुका।

०

कुन्ती! अपने विवाह के बाद वह उससे मीलों दूर चली गयी थी, किन्तु चेतन की अपनी शादी के बाद तो शायद वह स्मृति से भी परे चली जायगी। जब उसके सम्बन्ध में सोचना भी दूसरे से बेवफ़ाई करने के बराबर होगा, तो क्यों न सदैव के लिए बिछुड़ने से पहले उसे एक नज़र देख लिया जाय....। यही सोच कर, माँ के अनुरोध की उपेक्षा करके चेतन अपने पिता को देखने के बहाने उधर चल पड़ा था।

सुन्दर तीखा चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, अरुणिमा का जैसे उपहास-सा करते हुए मुस्कराते होंट, लाल साड़ी, यौवन-भार को सँभाल सकने में जैसे असमर्थ शरीर, लाल चूड़ा जिसकी चूड़ियों की सुनायी न देने वाली झंकार ने उसके मन-प्राण को झंकृत कर दिया था—विवाह के बाद यह था कुन्ती का चित्र। उसके मस्तक के घाव का निशान जो द्वितीया के चन्द्र की भाँति माथे पर सुशोभित था, और भी साफ़ हो आया था और यह सब चेतन के हृदय-पट पर अमिट रूप से अंकित था।

उन दिनों वह लाहौर से एक दिन के लिए जालन्धर आया था और किसी अज्ञात प्रेरणा से अनन्त को साथ लिये इधर जा निकला था। अनन्त ही ने उसे बताया कि 'उसकी' कुन्ती का विवाह हो गया है—'भोगपुर

सोरवाल' के एक मोटे-से पंडित के साथ, जिसने वहीं पुरियाँ मुहल्ले के पास ही, होश्यारपुर के अड्डे पर एक प्रेस खोल लिया है।

लेकिन कुन्ती अपनी इस होश्यारपुर के अड्डे वाली ससुराल में न थी। अपने मायके ही में कुएँ पर वह अपनी एक सहेली के साथ चर्खी पर पानी भर रही थी। दूर ही से अनन्त और चेतन ने उसे देखा और फिर, जैसा वे पहले कई बार किया करते थे, अनन्त आगे-आगे भागा और चेतन पीछे-पीछे—जैसे अनन्त ने उसकी कोई वस्तु छीन ली हो और चेतन उसे पकड़ना चाहता हो। ऐन कुएँ के पास जा कर चेतन जैसे थक कर रुक गया और उसने अनन्त को पुकार कर कहा, "तुममें नयी शादी का जोश है भाई, अब मैं तुम्हें काहे को पकड़ सकूँगा ?"

तब जिसकी नयी शादी हुई थी उससे उसकी आँखें चार हुईं। कुन्ती के होंटों की मुस्कान और फैल गयी। चर्खी उसके हाथ से छूट गयी और घर्र-घर्र करती हुई बाल्टी धम मे नीचे पानी में जा गिरी। वह स्वयं एक ओर कूद गयी और हँसते-हँसते उसके पेट मे बल पड़ गये। तब कुएँ की जगत पर खड़ी सहेली ने दूसरी भरी बाल्टी से चन्द छींटे उस पर उड़ा दिये और चेतन की ओर देखती हुई कुन्ती भागी। कुएँ की जगत से कूद कर उ। भागते हुए सहेली और वह दोनों चेतन के पास से गुज़र गयीं। पर सहेली न पा सकी उसे। हार कर उसने कहा, "मैं कहाँ पकड़ सकूँगी, तुम्हें वही पकड़ेंगे।"

एक बार कुन्ती की आँखें चेतन की आँखों से चार हुईं थीं। वहाँ पहले से अधिक उल्लास, पहले से अधिक चमक और शायद पहले से अधिक निमन्त्रण था।

चेतन अनन्त से जा मिला। वह जानता था कि पानी भरते-भरते एकदम जो कुन्ती मे इतनी स्फूर्ति आ गयी, यह सब उसी के कारण थी। लेकिन वह सहसा गम्भीर हो गया था। सहेली की बात ने जैसे दहकता हुआ हथौड़ा उसके हृदय पर दे मारा था। वह अब उसे कहाँ पकड़ पायेगा। वह ज्यों-ज्यों उसके पीछे भागेगा मरीचिका-सी वह दूर होती जायगी।

उसे पकड़ पाने वाला कहीं प्रेस के कम्पॉज़िटरों के साथ माथा-पच्ची कर रहा होगा और रह-रह कर अपनी लम्बी चोटी और घुटे हुए सिर पर हाथ फेर रहा होगा ।

०

इस सुख भरे दिन की मधुर स्मृति में खोया चेतन क़िले मुहल्ले के पास पहुँच गया । उसने देसराज के घर में अपने पिता के विषय में पूछा । मालूम हुआ कि आये तो थे पर कर्त्तार सिंह थानेदार के साथ चले गये हैं और जाते-जाते देसराज को भी ले गये हैं ।

यह कर्त्तार सिंह पण्डित शादीराम के लँगोटिया यारों में से थे और उनके आने का एक ही अभिप्राय हुआ करता था । बाज़ार शेख़ाँ और उसमें उस 'तरल आग' का व्यवसाय करने वाले अथवा करने वाली के यहाँ बैठक ! तब चेतन ने निर्णय किया कि वह अपने पिता से अवश्य पूछेगा कि उन्होंने उसे क्या वचन दिया था । उसने तीन पत्रों में लिखा था कि कम-से-कम विवाह के चार दिन वे कृपा कर मदिरा से परहेज़ रखें; फिर चाहे प्रलय पर्यन्त बाज़ार शेख़ाँ में पड़े रहें और उसके पिता ने विश्वास दिलाया था कि उन्हें स्वयं इस बात का ध्यान है, बस्ती में शादी है और उन्हें अपनी इज्ज़त कम प्यारी नहीं है । वे शराब को हाथ तक न लगायेंगे ।

लेकिन वह पुरियाँ मुहल्ले की ओर बढ़ चला । इस दुखद प्रसंग को उसने अपने मन से हटा दिया और अनायास ही एक दूसरा चित्र वहाँ बनने लगा—वह एक बार फिर जालन्धर आया था । कुन्ती इस बीच में एक बच्चे की माँ बन चुकी थी । उसे ख़याल तो न था कि वह उससे मिल सकेगा, किन्तु संयोग-वश उस दिन वह अपने पुरियाँ मुहल्ले वाले मकान की खिड़की ही में बैठी थी । सुबह का समय था । शायद स्नान करके सफ़ेद धोती उसने पहन रखी थी, जिसमें से उसके काले खुले लम्बे सुकोमल केश साफ़ दिखायी दे रहे थे । उसकी गोद में उसका बच्चा था । चेतन को देख कर वह मुस्करा दी थी । धोती का छोर उसके सिर से खिसक गया था और चेतन का हृदय धक से रह गया था । ओह ! वह पहले से

कही अधिक सुन्दर दिखायी देती थी । उसकी आँखों मे वही चमक थी वही दमक और वही आमंत्रण....

और बच्चे से कुन्ती ने धीरे से कहा था—ऐसे कि गली से गुजरता हुआ चेतन सुन ले—"गुड्डू जाओ अपने मामा के पास ।" और वह हँस दी थी....

०

चेतन पुरियाँ मुहल्ले के पास पहुँच गया । गली के मोड़ से उसने खिड़कियों की ओर देखा । बन्द थीं । वह आगे बढ़ा । कुछ उदासी-सी उसे हर तरफ़ छायी हुई दिखायी दी ।

दो स्त्रियाँ जल्दी-जल्दी बातें करती हुई उसके पास से गुजर गयीं ।

"रामो बेचारी...."

"यह धन ही ऐसा है, यह सम्पत्ति किसी को न फलेगी ।"

और आह भर कर पहली ने कहा, "लेकिन जवानी का रँडापा, इससे तो मौत अच्छी है ।"

होश्यारपुर के अड्डे की ओर जाने वाली ढालुवीं गली मे वह उतर रहा था कि उसे दो और वृद्धाएँ मिली ।

"अभी उमर ही क्या है ?" एक कह रही थी, "न कुछ खाया न पहना !" और दूसरी ने दीर्घ-निश्वास छोड़ा ।

चेतन अपने विचारों मे मग्न जा रहा था कि गली की नुक्कड़ के पास उसे उसका पुराना मित्र गच्चो लकडी के टाल पर बैठा हुआ मिल गया ।

"बड़ा बुरा हुआ," जैसे उसने चेतन से शोक प्रकट करते हुए कहा ।

चेतन ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा ।

"कुन्ती का पति मर गया ।

"कुन्ती का पति !" चेतन अवाक खड़ा रह गया, "पर वह बीमार तो न था ।"

"नही, कोई ज़्यादा बीमार नही हुआ," गुरबचन ने कहा, "टायफ़ाइड था । बस आठ दिन मे खत्म हो गया ।"

चेतन वहीं उसके साथ तख्त पर बैठ गया ।

"साथ तो चलोगे ।"

"हाँ चलूँगा !"

ग्रौर पहली वार चेतन को ऐसा लगा जैसे उसके किसी ग्रात्मीय की मृत्यु हो गयी हो । उस मोटे थलथल-पिलपिल पंडित के प्रति उसके हृदय मे कुछ ऐसा स्नेह उमड़ ग्राया जैसे वह उसका ही कोई भाई था । मन-ही-मन उसने ग्रपने-ग्रापको समझा लिया । कुन्ती पण्डित पोल्होराम की नातिन थी ग्रौर पण्डित पोल्होराम उसके पिता के ग्रभिन्न मित्र थे । तो फिर ग्रर्थी के साथ उसे जाना ही चाहिए । किन्तु ग्रपने पिता की ग्रोर से मित्रता निभाने के विचार की तह मे कहीं ग्रज्ञात-रूप से ग्रपने पिता के मित्र की इस नातिन को एक नजर देखने की इच्छा भी उसके मन में दबी पड़ी थी ।

चेतन एक-डेढ घंटा वहीं तख्त पर बैठा रहा । दोपहर होने को ग्रा गयी थी । धूप तेज हो चली थी, लेकिन ग्रर्थी का कहीं निशान तक न था । चेतन ने एक-दो वार सोचा भी कि चला जाय, पर इतना समय गँवा कर निराश लौट जाना उसे स्वीकार न हुग्रा । ग्राखिर जब दो बजे के लगभग कहीं ग्रर्थी निकली तो वह भी उसके साथ हो लिया ।

श्मशान भूमि मे उसने पहली वार कुन्ती को देखा । पुरुष वहाँ किसी दानी द्वारा बनवाये गये पक्के बरामदे मे खड़े थे ग्रौर स्त्रियाँ सामने श्मशान के ऊँचे दरवाजे की छाया मे खडी रो-पीट रही थी कि ग्राग देने से पहले शव को लकड़ियो पर रख कर एक वृद्ध ने कहा, "बेटी को ले ग्राग्रो; मुँह देख जाय ।"

तब उसने देखा कि तपती धूप में नंगे पाँव, सफेद धोती पहने, मूक मर्माहत-सी कुन्ती धीरे-धीरे ग्रागे बढी । इन सात-ग्राठ दिनो ही मे वह ग्रत्यन्त दुबली हो गयी थी । हिम ऐसे श्वेत चेहरे पर सिर्फ लम्बी नाक ही दिखायी देती थी ग्रौर ग्राँखे जैसे शून्य मे खोयी-खोयी भटक रही थी । वह न रो रही थी, न ग्रपनी बड़ी बहन रामो की तरह छाती पीट रही

थी। वह चुप थी । जैसे उसकी चेतना को भी मृत्यु सूंघ गयी हो।

धीरे-धीरे वह चिता के पास आयी। वृद्ध सज्जन ने शव के मुंह से कपड़ा हटाया और उसके एक नज़र देख लेने के बाद फिर ढँक दिया। कुन्ती ने पीछे हट कर शव के चरणों को छुआ और जैसे आयी थी वैसे ही निस्पन्द और निष्प्राण-सी चली गयी।

चेतन ने चाहा वह उन सुकोमल तलवों के नीचे उस जलती तपती धरती पर लेट जाय!....वह सशरीर चाहे न लेट सका हो पर उसकी निगाहें उस समय तक धरती पर लोटती रहीं जब तक कि जा कर वह श्मशान के दरवाज़े पर खड़ी स्त्रियों में शामिल न हो गयी।

०

वापसी पर चेतन का मन भारी रहा। कुन्ती की वही, म्लान, विवर्ण मूर्ति उसके सामने रही। ब्रह्मकुण्ड के रहँट पर उसने जल्दी-जल्दी स्नान किया और फिर वह उसके गेट पर आ कर इस प्रतीक्षा में खड़ा हो गया कि स्त्रियाँ गुफा से स्नान करके आयें तो वह उनमें उस म्लान मुख को एक नज़र और देख ले। कौन जाने फिर वह मुख उसे कभी देखना नसीब होगा या नहीं। कुन्ती की इस आकृति में कुछ ऐसी बात थी, कुछ ऐसी दबी-घुटी, सहमी-डरी वेदना, कुछ ऐसी करुणा और अवसाद था कि वह प्रयास करने पर भी उसे भूल न पा रहा था।

कुछ देर बाद गुफा की बावली से नहा कर आने वाली स्त्रियाँ ब्रह्मकुण्ड के सामने से गुज़रने लगीं। कुछ अपने जीवन में कई शादियाँ और मौतें देख कर अब स्वयं धीरे-धीरे मृत्यु की ओर सरकने वाली वृद्धाएँ थीं—झुकी कमरें, हिलता-डोलता लहँगा पहने, गीली धोतियाँ हाथों में लिए गीला दुपट्टा नंगे बदन पर लपेटे, अपनी ढीली, रक्त-माँस-हीन लटकती छातियाँ लिये, अपने बे-दाँत के पोपले मसूढ़ों को चबाती, मृत्यु के सम्बन्ध में अपनी अनुभूतियों का विनिमय करती चली आ रही थीं। कुछ अधेड़ स्त्रियाँ भी घाघरे अथवा धोतियाँ पहने गले में गीली क़मीज़ें और सिर पर गीले दुपट्टे ओढ़े इन सब मौतों के मध्य भविष्य की आशाओं के सहारे

सीधी चलती, बातें करती, न जाने कौन-सी बात पर नाक-भौं चढ़ाती चली आ रही थी । बीच मे दो स्त्रियो के सहारे जैसे हर कदम पर बेहोश होने को होती हुई पीटने के कारण लाल नंगी छाती को धोती के छोर से ढके रामो थी । उसके पीछे चेतन ने देखा कुन्ती चुपचाप, नंगे पाँव वैसे ही खोयी-खोयी-सी चली आ रही है । गीली धोती उसके शरीर से चिपटी हुई थी और उसके मुख पर वही वेदना थी, आँखों मे वही अवसाद....!

एक बार दरवाजे पर खड़े चेतन की ओर उसने देखा । उसके मुख पर वही शून्यता, वही ठंडक, वही मृत्यु की-सी सफेदी थी, और फिर निमिपमात्र मे उसने वह अनुरागहीन, भावनाहीन, चेतनाहीन दृष्टि भी फेर ली ।

किन्तु चेतन के हृदय मे दूर तक वह दृष्टि धँसती चली गयी और उसने जैसे सुना वह दृष्टि कह रही थी—'बस अब विदा ! अब मैं तुम्हारी ओर देख भी न सकूँगी । पति की छत्र-छाया मे रहने वाली स्त्री हँस-बोल सकती है, चाहे तो प्रेम कर सकती है, और यदि चाहे (पति दुर्बल हो, नारी चलती हुई हो) तो सन्तान तक पैदा कर सकती है । समाज उसे कुछ न कहेगा, लेकिन विधवा !....और उसने सोचा कही वह स्वतन्त्र होता और कही वह भी स्वतन्त्र होती—और जैसे स्वतन्त्र देशों के पुरुष-स्त्रियाँ....लेकिन फिर उसे खयाल आया कि वह तो शादी करने आया है और उसने चाहा कि सब कुछ छोड कर कही भाग जाय—कही ऐसी दुनिया मे जहाँ कोई न हो—न इंसान, न समाज और वह पंछी बन जाय—स्वतन्त्र, स्वच्छन्द और आकाश की गहराइयों मे उड़ानें भरता फिरे !...

०

लेकिन न वह भागा, न पंछी बना । शाम होते-होते घर वापस आ गया । थका, ऊबा और चिढा हुआ । उसकी रूह पर जैसे अगणित शताब्दियों से होने वाली मौतों का भार था, अगणित युवतियो के मूक क्रन्दन जैसे उसके कानों मे गूँज रहे थे और बेड़ियों मे जकडे हुए युवा हृदय जैसे उसकी आँखो

के सामने सिसक कर, घुट कर दम तोड़ रहे थे।

इक्कीस

माँ ने कहा, "बेटा बडी देर लगा दी, मिले नहीं ?"

"मिलते कहाँ ?" चेतन ने चिढ कर कहा, "देसराज और थानेदार कर्तार सिंह के साथ कही बाजार शेखाँ मे बैठे होंगे।" और वह चुपचाप नीचे बैठक के पास वाले कमरे मे जा बैठा।

इस अपने चिर परिचित कमरे मे बैठे-बैठे कई घटनाएँ मूर्तिमान हो कर उसके सामने आयी। वह कुन्ती से पहली भेंट, वय-सन्धि का वह लजाया-शर्माया प्यार, मुहल्ले वालो से डरी-सहमी दृष्टियों का वह विनिमय, प्रेम....लेकिन फिर वह हँसा....रस्म-रिवाज की बेड़ियों, जाति-पाँति के झमेलो, चरित्र-निर्माण के कठोर नियमो, बिरादरी और समाज के प्रतिबन्धों में ग्रसा और मानव के रूप मे एक-दूसरे को निगल जाने के लिए तत्पर दानवो मे घिरा हुआ कोई व्यक्ति किस तरह प्रेम का नाम ले सकता है ? अपने निरीह भोले अरमान को भी कोई इससे अधिक क्या पूरा कर सकता है कि घुट-घुट कर मर जाय।

और उसके सामने एक घटना घूम गयी :

०

कन्या महाविद्यालय का वार्षिकोत्सव था। धूप तेज़ थी और वह घूम-फिर कर एक दुकान पर सोडा-वाटर की बोतल पीने जा खडा हुआ था। जब गिलास उसने मुँह से लगाया तो पास ही किसी कल-कंठ से निकला मादक स्वर उसने सुना था। मुड़ कर देखा तो उसका दिल धक से रह गया था। होठो पर एक चचल चतुर मुस्कान और गोद मे किसी सहेली के वच्चे को लिये कुन्ती खडी थी।

उसने न पानी पिया था, न शर्बत, न सोडा । वह खड़ी थी और आकांक्षा-भरी निगाहों से चेतन को देख रही थी । ज्योंही चेतन ने उसे देखा, वह चल पड़ी । बच्चे को उछालते-उछालते, कभी मुड़-मुड़ कर उनकी ओर देखते-देखते, वह सामने फाटक के पास अपनी सहेलियों मे जा मिली थी ।

तब सोडे का तीखा पानी एक ही घूंट मे गले से उतार कर (यद्यपि उसकी आँखो मे पानी आ गया) वह साइकिल उठा, उनके पीछे चल पडा । वे शायद जा रही थीं । शायद उनमे से किसी ने ताँगे वाले को आवाज भी दे दी थी, क्योंकि ज्योंही फाटक के पास पहुँचा, वे ताँगे मे बैठ गयी । कुन्ती पिछली सीट पर बैठी और बैठते-बैठते उसने फिर एक बार चेतन की ओर देखा ।

जब ताँगा कुछ दूर चला गया तो उसने पैडल पर पाँव रखा और स्वयं भी तेजी से उसके पीछे चला । लेकिन जब दोआबा हाई स्कूल के समीप उसकी साइकिल ताँगे के पास पहुँचने लगी और कुन्ती ने ओर उसकी एक सहेली ने उचक कर उसकी ओर देखा तो उसने साइकिल स्कूल की ओर फेर ली । उसकी सहेलियो पर प्रकट होने देना कि वह उसी के पीछे आया है, उसे स्वीकार न हुआ । अपने से अधिक उसे कुन्ती का ध्यान हो आया । उसने सोचा कि देवी तालाब के ऊपर से हो कर वह सडक पर उन्हे फिर जा मिलेगा और किसी को सन्देह भी न होगा कि वह उनके पीछे आ रहा है । इसे दुर्भाग्य कहिए कि सड़क से स्कूल के मैदान को जाने वाला मार्ग इतना ढलुवाँ था कि एक धचके से उसकी साइकिल की काठी टूट गयी । ऊपर सडक पर जाते हुए ताँगे की ओर उसने एक विषाद-भरी दृष्टि डाली और खिन्न मन से पैदल चल पडा । होश्यारपुर के अड्डे पर पहुँचा तो वहाँ न ताँगे का निशान था, न कुन्ती का और न उसकी किसी सहेली का ! वह एक घंटे तब पुरियाँ मुहल्ले की गलियो मे चक्कर काटता रहा । अपने-आप पर क्रुद्ध होता रहा और फल-स्वरूप और भी खिन्न होता रहा, किन्तु कुन्ती की शक्ल उसे फिर नहीं दिखायी दी । उसी शाम

वह अपनी ससुराल चली गयी थी।

०

वही बैठे-बैठे चेतन को उस घटना पर हँसी आ गयी।

धीरे-धीरे बाहर संध्या दढ आयी और अन्दर कमरे मे अँधेरा छाने लगा। मुहल्ले मे चिल्ल-पो शुरू हो गयी। कुएँ के गहरे पानी मे गागरो, घड़ो और बाल्टियो के डूबने की आवाजें आने लगी। चेतन मन-ही-मन पहचानता रहा—यह घडा डूबा है, गहरे-गम्भीर स्वर से, यह गागर, यह बाल्टी। फिर उन आवाजों के साथ-साथ लोहे की चर्खियो की चीं-चीं, पानी भरने वालों की 'तू-तू' 'मैं-मैं' और फिर साँझ के साथ ही मुहल्ले मे जागने वाले उलाहने, कोसने और गाली-गलौज उसके कानो में गूंजने लगा :

"हाय-हाय मेरा घुटना टूट गया, कहाँ गाड़ा है खूँटा रास्ते मे। ईश्वर करे सब कुछ गर्क हो जाय उनका जो हमे यों तग करते है!"

"क्यो तेरे ग़र्क होने वाला कोई नही—बहू, पोते, पोतियाँ"

"यह क्यो बाँधी भैस मेरे दरवाजे के आगे? खोल दो लाली इसे!"

"अच्छा बड़ी आयी खोलने वाली, खोल तो....!"

"दीसो की माँ देख तेरे दीसो ने मेरे गुल्लू का कैसा बुरा हाल किया है?"

"दीसो बेचारा तो आप सिर दर्द से पड़ा है, वह तो घर से निकला ही नही।"

"हाय रे लोगो दौड़ियो, मार डाला मुझे इस बहू डायन ने। नीचे कोठरी मे रहती हूँ वहाँ भी यह साँस नही लेने देती। मार डाला, मार डाला रे।"

०

लेकिन इस समस्त कोलाहल मे चेतन मौन, स्थिर, निस्पन्द दीवार के साथ पीठ लगाये बैठा रहा और फिर मुहल्ले वालो के चित्रो के ऊपर उसके सामने कई श्रान्त-क्लान्त युवतियाँ तपती रेत पर नंगे पाँव चलती रही और

वह उनके पाँवों में बिछ जाने को तड़पता रहा और मोटी-मुटल्ली फूहड़-सी लड़की उसका दामन खींचती रही ।

छोटा भाई कमरे में लैम्प रख गया । बड़ा भाई भी आ गया । छोटा भाई ताश ले आया । दो चार बाज़ियाँ भी खेली गयीं और बे-मन-सा वह खेल में योग भी देता रहा, उनसे बातें भी करता रहा और हँसता भी रहा ।

तभी उसने सुना—हरलाल पंसारी की दूकान पर नशे में चूर उसके पिता ऊँचे स्वर में किसी की 'श्रेष्ठता' पर मुग्ध हो कर उसे अपने कोष की श्रेष्ठतम गालियाँ प्रदान कर रहे हैं ।

ताश का खेल बन्द हो गया ।

छोटे भाई ने माँ से जा कर कहा कि पिता जी आ गये हैं । चेतन जैसे उठ कर दीवार के साथ पीठ लगा कर बैठ गया और बड़े भाई लेट गये ।

कोने में मकड़ी के एक नये-नये जाले में एक मक्खी कहीं से आ फँसी और उस भिनभिनाती मक्खी पर मकड़ी तेज़ी से अपना फंदा कसने लगी ।

दूसरे क्षण पण्डित शादीराम मुहल्ले में खड़े अपने अभिन्न-हृदय मित्र लाला रामध्यान की माँ-बहन का नाम ले कर उन पर 'मधुर वचनों' की वर्षा कर रहे थे । उधर से हट कर उन्होंने चेतन के भाई को आवाज़ दी—"रामानन्द !" और साथ ही पूछा कि चेतन आया है या नहीं ।

जब चेतन के बड़े भाई ने बढ़ कर बैठक का दरवाज़ा खोला और कहा कि चेतन सुबह का आया हुआ है तो पगड़ी बगल में दबाये लड़खड़ाते हुए पण्डित शादीराम अन्दर आये ।

पुत्र ने पिता को प्रणाम जैसा कुछ किया और फिर ज़रा तेज़ी से कहा कि वह सुबह से उनकी तलाश कर रहा है और उसने लिखा था कि तीन दिन....

पिता ने कड़क कर कहा, "तुम सुनो तो सही ! कर्तार सिंह थानेदार आ गया था, उसके साथ आवश्यक काम से...."

पुत्र ने कहा "मै सब जानता हूँ, मै नही सुनता ।" और उसने मुँह फेर लिया ।

पिता की आँखों मे अंगारे जल उठे। शराब के नशे मे उन्हे लगा कि उस जरा-से चिबिल्ले ने उनका अपमान कर दिया है—उनका, जिन्होने अपने अँग्रेज इन्स्पेक्टर तक के मुँह पर थप्पड़ जमा दिया था। और भी कड़क कर उन्होने कहा, "नही सुनता, न सुन, साला, हरामी, ऐडीटर बना फिरता है।"

"गालियाँ न दीजिए !" पुत्र चारपाई पर खड़ा हो गया ।

पिता पगडी फेक कर और भी मन-मन भर की गालियाँ देते हुए उसकी ओर लपके कि छोटे भाई ने उन्हे रोक दिया ।

चेतन उछला—उसने सिर्फ़ इतना देखा कि—"आ पहले तेरी ही पहलवानी देखूँ—" कहते हुए एक बार चेतन के पिता ने छोटे भाई को चारपाई पर गिरा दिया और एक बार छोटे भाई ने पिता को ।

०

सिर का पसीना गले से बहता हुआ पाँवों की ओर चला जा रहा था। स्टेशन पर खडी किसी गाड़ी के इंजन का धुआँ वातावरण को और भी गर्म, और भी 'गल-घोटू' बना रहा था। उनीदी आँखें लिये, पसीने से तर, सफ़ेद जीन के सूट पहने कुछ बाबू थकी हुई चाल से इधर-उधर दिखाई देते थे। बाहर अंधकार किसी भयानक प्रेतात्मा की तरह नन्ही-नन्ही रोशनियों का गला दबा रहा था और दरमियाने दर्जे के मुसाफिर-खाने मे अगनित परवाने, न जाने कब से, गैस के हंडे से टक्करें मार रहे थे और नीचे फ़र्श पर बेगिनती पंख टूटे पडे थे ।

चेतन लकड़ी के खम्भे से पीठ लगाये, सूटकेस को पास रखे, छोटे-से बिस्तर पर बैठा था ।

किसी डरावने सपने की तरह अभी कुछ देर पहले की घटनाएँ उसके सामने घूम रही थी। उसके भाइयों और उसके पिता मे मल्लयुद्ध हुआ था। उसके छोटे भाई ने पिता पर आक्रमण किया हो, यह बात न थी।

उसने तो उन्हे सिर्फ़ चेतन को पीटने से रोका था और फिर वह किसी प्रकार का प्रहार किये बिना अपने-आपको बचाता ही रहा था। लेकिन इतने मे ऊपर से कही आ गयी माँ। बड़े भाई ने उसे दरवाजे ही मे रोका था। लेकिन पति और पुत्र मे मल्लयुद्ध हो और वह खड़ी देखती रहे! डरती, काँपती वह आगे बढी थी। तब—"तेरी ही कोख से ऐसे हराम-जादे पैदा हुए हैं"—यह कहते हुए और गालियाँ देते हुए एक लात पण्डित जी ने अपनी पत्नी के जमा दी। दुर्बल, क्षीण काया, हड्डियो का ढाँचा-सा शरीर, वह सीधी मेज के कोने मे जा लगी।

उस समय भाई साहब ने नशे मे मस्त, झूमते और अपनी छोटी-छोटी आँखो से इस दृश्य का रसास्वादन करते देसराज, तथा इकट्ठे होते मुहल्ले वालों को आग्नेय नेत्रों से देखा, फिर अचेत होती माँ को सम्हाल, उसे ऊपर लिटा कर वे लाठी उठा लाये और सब से पहले देसराज की ओर लपकी और फिर तमाशाइयो की ओर। उधर से पलट कर उन्होने छोटे भाई को पिता के निर्दयी पंजो से बचाया।

"तेरी यह हिम्मत!" पण्डित शादीराम ने लाठी उठा ली।

तब चेतन फ़र्श पर अपने पिता के सामने बैठ गया कि जो कुछ कहना है उसे कह लिया जाय। किन्तु पॉव की ठोकर से उसे ठेल कर पण्डित जी अपने उस बड़े पुत्र की ओर बढ़े। उनका वार बचा कर बड़े भाई ने उन्हे एक ही दाँव मे नीचे घर लिया और छोटे-बडे दोनों भाइयों ने उन्हे उनकी ही पगड़ी के साथ कस कर चरपाई से बाँध दिया।

कुछ क्षण के लिए स्तब्ध-सा बैठा चेतन यह सब दृश्य देखता रहा। फिर उसने अपना छोटा-सा बिस्तर—जो अभी तक बैठक के कोने मे पड़ा था—उठाया, सूटकेस हाथ मे लिया और स्टेशन ओर चल दिया। किधर जायगा, कौन-सी गाड़ी पर जायगा, उसने कुछ भी तय न किया। वह चाहता था कि बर्बरता के इस तांडव को और न देखे, उन कँपा देने वाली गालियो को और न सुने और मुहल्ले मे घर-घर होने वाली चर्चा से दूर भाग जाय।

०

पास ही फ़र्श पर सोये हुए किसी व्यक्ति ने शायद किसी मच्छर के काट खाने से अपनी जाँघ पर एक थप्पड़ जमाया और करवट बदल ली।

फिर किसी गाड़ी के आने की घण्टी बजी और अपनी उनींदी अलसायी आँखों के साथ एक बाबू गेट पर आ खड़ा हुआ। प्लेटफॉर्म के अन्दर से एक मुसाफिर हाथ मे गिलास लिये हुए घबराया हुआ-सा बाहर निकला और कुएँ की ओर चला गया।

चेतन ने बटन खोल कर अपनी छाती का पसीना पोंछा। परसों उसका विवाह है। वह मन-ही-मन हँसा। किन्तु इस हँसी के बावजूद उसकी आँखें आर्द्र हो गयी।

तभी उसकी कल्पना के सम्मुख दो और गीली आँखें घूम गयी। जिन्हे उसने आज ही सुबह देखा था। क्या दोनों की गीली आँखें मिल कर सुख का एक संसार न बना सकती थी!

और उस सुख के संसार का एक दृश्य उसकी आँखों मे बस गया—दो भूखी आत्माओ का मिलन, अभावों की पूर्ति, समाज से दूर, जाति-उपजाति के भेदो से दूर....लेकिन गड़बड़ करती हुई गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ गयी और खोचे वालों की तन्द्रिल भारी आवाजो, यात्रियो की निद्रालस चिल्ल-पो और ताँगे वालो के कर्कश स्वरों ने उसके उस संसार को छिन्न-भिन्न कर दिया। वह उठा, चुपचाप जंगले के पास जा खड़ा हुआ और टकटकी बाँध सामने के डिब्बे मे बैठे यात्रियो को देखने लगा। निमिष मात्र के लिए उसने सोचा—क्यों न वह इसी गाडी मे चढ़ बैठे। लाहौर को जाने वाली गाड़ी—वह तो साढे पाँच बजे आयगी और अभी सिर्फ एक बजा है।

"हलो, चेतन!"

हडबड़ा कर वह मुडा और उसने हाथ भी बढा दिया।

"लेकिन यह तुम किस तकल्लुफ मे पड़ गये, गाड़ी पर मुझे लेने आ गये और फिर इस समय! इस कष्ट की क्या जरूरत थी।"

मन से खिन्न होने पर भी चेतन ने अनन्त को देख कर एक जोर का

ठहाका उसकी इस बात पर लगाया ।

"कौन कम्बख्त तुम्हे लेने आया है ? मैं तो स्वयं लाहौर जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।"

"लाहौर को जाने वाली गाड़ी की ? पागल हो गये हो, उसमे तो अभी साढ़े पाँच घण्टे है और फिर विवाह....?"

अनन्त को उस दम घोटने वाले वातावरण से निकाल कर चेतन सीढियों पर ले आया और वही खडे-खड़े शाम की सारी घटना उसने अपने इस मित्र को सुना दी । अन्त मे उसने कहा, "मै पक्का निश्चय कर चुका हूँ कि अब मै विवाह नहीं करूँगा, चाहे पिता जी आ कर मेरे पाँव भी क्यो न पड़ें ।"

"जैसे वे तुम्हारे पाँव पड़ने ही के लिए तो छटपटा रहे है !"

अब ठहाका लगाने की उसकी बारी थी ।

कुछ खिन्न हो कर चेतन ने कहा, "मैंने निश्चय कर लिया है कि...."

बात काट कर अनन्त ने कहा, "तुम तो पागल हो !" और उसने ताँगे वाले को आवाज दी । ताँगा आ जाने पर चेतन के मना करने पर भी उसने उसका सूटकेस उठा कर उसमे रख दिया ।

"बाबू जी किधर जाना है आपको ?" ताँगे वाले ने पूछा ।

"चौरस्ती अटारी ।" चेतन को बरबस बैठाते हुए अनन्त ने कहा और ताँगा चल पड़ा ।

"लेकिन मै घर नही जाऊँगा !" चेतन ने बैठे-बैठे रुँधे कंठ से कहा ।

"कौन साला तुम्हे वहाँ जाने के लिए कह रहा है ।" अनन्त हँसते हुए बोला ।

"लेकिन...."

"एक शराबी की बात पर गुस्सा हो कर तुम इतना बड़ा अन्याय करने जा रहे हो । तुम्हें शर्म आनी चाहिए ।"

"मै यह विवाह बिलकुल नही चाहता, कभी नहीं चाहता ।" चेतन ने बच्चो की तरह कहा ।

"तुम्हारे भाई से भी मैंने बात की थी," अनन्त ने कहा, "और स्वयं तुमने मुझे क्या लिखा था ? कायर !"

परास्त हो कर भी चेतन ने कहा, "वह तो क्षणिक आवेश था। चन्दा को पसन्द तो मैंने कभी नही किया ।"

"लेकिन अब इस बकवाद से लाभ ?" अनन्त कुछ क्रोध से बोला, "लड़की के मनोभावो का भी खयाल किया तुमने ? वह आत्महत्या कर सकती है। उसके माता-पिता है, नाते-रिश्तेदार हैं । तुम उन सब का इतना बड़ा अपमान कैसे कर सकते हो ?"

एक हाथ मे बिस्तर और दूसरे मे सूटकेस लिये जब दोनों हरलाल पंसारी की दुकान के सामने से हो कर अनन्त के घर की ओर को मुड़े तो पण्डित शादीराम अपने घर में अब भी ऊँचे स्वर से गालियाँ दे रहे थे। उनका गला बैठ गया था, आवाज भारी हो गयी थी, किन्तु गालियों में वही तीखापन था और शायद वे अब भी चारपाई से बँधे थे ।

बाईस

यद्यपि चेतन के पिता ने पहाड़ जैसी कसमे खा कर इस बात की घोषणा की थी कि वे उस कपूत की बारात में शामिल न होंगे और यद्यपि सारी रात अनन्त के समझाते रहने पर भी चेतन यही कहता रहा था कि वह शादी न करेगा, किन्तु इस बात का श्रेय अनन्त की कार्यपटुता और पण्डित वेणी प्रसाद की विनयशीलता को है कि नियत समय पर चेतन की बारात कल्लोवानी से चल पड़ी । चेतन दूल्हा बना और पण्डित शादीराम ने पिता के सारे कर्तव्य पूरे किये ।

रात भर पण्डित जी चारपाई से बँधे पड़े रहे थे । गालियों की अवि-रल धारा उनकी वाणी मे बहती रही, यहाँ तक कि बोलते-बोलते उनका

गला सूख गया और बँधे-बँधे उनके बाजू ऐंठ गये और उनका नशा भी लगभग सारे-का-सारा उतर गया था ।

तब उन्होंने थक-हार कर, पर और भी भद्दी गालियाँ देते हुए कहा कि उन्हें खोल दिया जाय और वे कुछ न कहेंगे ।

उन्हें खोल दिया गया था । वे सीधे देसराज के यहाँ गये । वहाँ से कुछ और पी आये । देसराज को भी उन्होंने साथ लाना चाहा, किन्तु उसने न आने ही में अपनी कुशल समझी ।

घर आ कर पण्डित जी ने थर्राती हुई आवाज़ मे पूछा, "कहाँ है वह हरामज़ादा ?"

मतलब चेतन से था । बड़े भाई ने दरवाजे पर बैठे-बैठे कहा, "वह चला गया है ।"

पण्डित जी तनिक चौंके, किन्तु पूर्ववत गालियाँ देते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें इसकी जरा भी परवाह नही, उनकी तरफ़ से चाहे शादी हो या न हो और चाहे सब मर जायँ—खत्म हो जायँ ।

और फिर उलाहने के स्वर मे लेकिन उसी कड़कड़ाती आवाज से उन्होंने कहा कि जिस पुत्र को अपने पिता का इतना भी खयाल नहीं और जो नशे में कही गयी उनकी बात पर इतना गुस्सा हो सकता है, वे उसकी ज़रा भी परवाह नही करते । और उस अपने नालायक लड़के को गालियाँ देते हुए उन्होने घोषित किया कि वे स्वयं सुबह चले जायँगे ।

लेकिन जितनी अधिक वे गालियाँ देते थे, जितने अधिक वे कड़कते थे, उतना ही अधिक उनके हृदय की दुर्बलता का पता चलता था ।

चेतन पर गालियों के द्वारा अपना क्रोध उतार कर वे अपने दूसरे पुत्रों की ओर फिरे ।

किन्तु भाई साहब शायद उनके हृदय की दुर्बलता को भाँप गये थे । घर वालों की परवाह पण्डित जी ने कभी न की थी । दुनिया की भी उन्हे कुछ परवाह न थी । लेकिन उन्हें अपनी बात का सदैव ध्यान रहता था । और चेतन के चले जाने पर पण्डित वेणी प्रसाद के सामने उन्हें

शर्मिन्दा होना पड़ेगा, यही डर उनके मन में किसी अज्ञात स्तर के नीचे दबा बैठा था, यद्यपि गालियो के आधिक्य और आवाज की कड़क में वे उसे दबा देना चाहते थे । इसलिए ज्योंही उन्होने कहा, "आओ अब जिस-जिस मे बल हो मुझसे कुश्ती लड़ देखे ।" तो भाई साहब अवसर उपयुक्त जान कर उनके पाँव पड़ गये, माफी माँग ली और कहा कि उन्होंने तो सिर्फ उन्हे चेतन को मारने से रोका था । और भावावेश मे वे रोने लगे ।

अपने बड़े भाई का अनुसरण करते हुए छोटे भाई ने भी पहले पाँव पड़ कर माफी माँग ली और फिर वह भी रोने लगा ।

पण्डित शादीराम स्वभाव से क्रूर थे, कठोर थे और अत्याचारी भी उन्हे कहा जा सकता है । पर इसके साथ ही उनके हृदय में कही-न-कहीं उदारता और कोमलता भी यथेष्ट मात्रा मे दबी पडी थी । इसी कोमलता के कारण वे अपने शत्रु को माफ़ कर देते थे और इसी कोमलता के कारण जब किसी मित्र अथवा निकट सम्बन्धी की बेवफाई उनके मर्मस्थल पर चोट पहुँचाती थी तो वे बच्चो की तरह फूट-फूट कर रो पड़ते थे ।

पुत्रों के इस व्यवहार ने शायद उनके मर्मस्थल पर चोट की थी । उनका गला भर आया और वे भी रोने लगे । माँ तो पहले ही से रो रही थी ।

मिट्टी के तेल का लैम्प, जिसने संध्या के बाद बहुत कुछ देखा था, अब भी धीमे प्रकाश से जल रहा था । चिमनी कुछ काली हो गयी थी और उसके धीमे प्रकाश मे ये चारों व्यक्ति चार पीड़ित आत्माओ की तरह दिखायी देते थे ।

पिता ने पुत्रो को गले से लगाया । रोते-रोते चेतन को गालियाँ दीं और फिर भारी गले से पत्नी से कहा कि चारपाई बिछा दे ।

एक घण्टे के बाद सभी थके-हारे सो रहे थे । पण्डित जी के खर्राटों की आवाज भी आने लगी थी । केवल माँ जागती थी और भगवान गजानन से प्रार्थना कर रही थी कि चेतन आ जाय और विवाह का काम कुशलतापूर्वक समाप्त हो जाय ।

सुबह जब अनन्त चेतन के घर गया तो उसने माँ को चुपचाप आँगन में सिर झुकाये माला फेरते पाया।

माँ पूजा कर चुकी तो उसकी सलाह से अनन्त बस्ती से पण्डित बेणी प्रसाद को बुला लाया। दोपहर के लगभग पण्डित शादीराम जागे और भारी थके गले से उन्होंने पानी माँगा। माँ ने पानी का गिलास उन्हें देते हुए बताया कि बस्ती से पण्डित बेणी प्रसाद आये हैं। तब करवट ले कर भरे गले से पण्डित जी ने कह दिया कि रामानन्द उनसे बात कर ले, मैं किसी काम में दखल न दूँगा और मुझे कोई न बुलाये।

चेतन की माँ से उनका यह निश्चय सुन कर अनन्त ऊपर आया। हैट उतार कर उसने पण्डित जी को साष्टांग प्रणाम किया और फिर पास बैठ कर उसने चेतन की मूर्खता पर खेद प्रकट किया :

"वह एकदम मूर्ख है। दुनिया का उसने अभी कुछ नहीं देखा, दुनियादारी उसे आती नहीं...." अनन्त ने कहना शुरू किया।

"वह हरामजादा समझता है कि वह अब स्वतन्त्र है, कमाता है और उसे किसी की परवाह नहीं," पण्डित जी ने रात के थके हुए भारी गले से कहा, "लेकिन मैं ही उसकी क्या परवाह करता हूँ। मेरे नाम कौन-सी वह जायदाद लिखा देगा ?"

"नही, नहीं, नहीं," अनन्त ने कहा, "उसे वैसा कोई भरम नहीं। वह केवल भावुक, स्वाभिमानी, कवि-हृदय युवक है और बस ! और कवि—उसने तनिक हँस कर कहा—आधे पागल होते हैं। आप भला किस तरह बच्चे के साथ बच्चा बन सकते हैं। उसका क्या है, वह तो मूर्ख है लेकिन आप....लोग तो आपको ही...."

"मैं किसी साले की परवाह नहीं करता।" उसी स्वर में पण्डित जी ने कहा।

"वह तो ठीक है, हिं हिं, हिं हिं...." और खिसियानी-सी हँसी हँसते हुए अनन्त ने जेब से कसूर की खालिस देसी शराब की बोतल निकाली और जेब ही से एक नन्हा-सा शीशे का गिलास निकालते हुए

उसने कहा :

"आता हुआ मै 'कसूर' उतरा था और वहाँ से मै सिर्फ आपके लिए देसी शराब लेता आया हूँ। मुझे क्या मालूम था"—यहाँ अनन्त तनिक हँसा—"कि यहाँ...."

"मेरा जी नही चाहता," और पण्डित जी ने करवट बदल ली। लेकिन करवट उन्होंने इसलिए बदली थी कि बोतल को देख कर उनके मन मे सहसा प्रबल लालसा जाग उठी थी।

"वाह !" अनन्त ने उस खालिस देसी शराब से (जो अपने कथनानुसार वह खास तौर पर पण्डित जी के लिए लाया था, लेकिन जो वास्तव मे गत वर्ष उसके कानूनगो पिता को किसी देहाती ने भेंट की थी और उनकी अकाल-मृत्यु के कारण वही ताक मे रखी पड़ी थी) कुछ गिलास में उँडेलते हुए कहा, "आप थके हुए हैं, एक पैग ले लीजिए; तबीयत ताजी हो जायगी।"

"लेकिन मैने तो अभी कुल्ला भी नही किया," पण्डित जी ने वैसे ही लेटे-लेटे कहा, पर उनके मुंह मे राल टपक चली थी।

अनन्त दौड़ कर पानी ले आया और कुल्ला कराते हुए उसने कहा, "यों ऐसे पीने से क्या आनन्द आयगा ? खालिस देहाती भट्टी की बेहद पुरानी शराब है, मै लाला देसराज को बुला लाऊँगा और पण्डित बनारसी दास भी आ जायँगे, इकट्ठे बैठेंगे और पियें-पिलायँगे।"

इसके बाद अनन्त ने चेतन और उसके दोनो भाइयों की वज्र-मूर्खता का जिक्र करते हुए कहा, "मैने सुना है चेतन ने आपको लिखा था कि तीन दिनों के लिए...." और उसने एक ठहाका मारा—"भला आदमी अगर शादी-ब्याह के अवसर पर नहीं तो क्या मौत और गमी के मौके पर पिये-पिलायेगा।"

उसने एक पैग और पण्डित जी को दिया और कहा कि शाम को महफिल जमेगी।

शराब देसी थी, पुरानी थी और तेज थी। पण्डित जी एक पैग ही

से सरूर में आ गये । अनन्त उठने लगा था कि आस्तीन पकड कर उन्होंने उसे बैठा लिया । रात की दुखद घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने चेतन की उद्दंडता का जिक्र किया । उसे गालियाँ दी । फिर वे रोने लगे । भरे हुए गले से उन्होंने कहा, "देखो बेटा, जिसने आज तक कभी अपने अफ़सर की भी बात न सुनी, उसके पुत्रों ने उसे चारपाई से बाँध दिया !" फिर अचानक रक्त-वर्ण आँखें करके उन्होंने कहा कि वे अब भी अपने इन तीनों पुत्रों का मुकाबिला कर सकते है और उन तीनों हरामजादों को सबक सिखा सकते है । फिर अचानक आँसू बहाते हुए वे उस प्रेम का जिक्र करने लगे] जो उन्हे अपने पुत्रों से था । "पूत कपूत होते है, पर पिता कुपिता नहीं होते !" उन्होंने आर्द्र कंठ से कहा और आँखें पोंछने लगे । अन्त मे जब अनन्त ने बताया कि चेतन स्वयं लज्जित है तो उन्होने उसे दिल से माफ़ कर दिया और चादर ओढ़ कर लेट गये ।

दो मिनट बाद वे खर्राटे ले रहे थे ।

०

उधर पण्डित वेणी प्रसाद ने चेतन को समझाया और वही चेतन जो अनन्त के सारी रात समझाते रहने पर भी तुला हुआ था, कि विवाह न करेगा, इस बीमार और लगभग अपाहिज बुजुर्ग के सम्मुख एक शब्द भी न कह सका ।

पण्डित वेणी प्रसाद ने अपने हिलते हुए अंगों को कठिनाई से सम्हालते हुए कहा था, "बेटा, लडकपन न करो ! इस बूढी देह का खयाल करो, इस बूढे की इज्जत का खयाल करो और उस निरीह बालिका का खयाल करो । पिता की बातों पर कैसा गुस्सा ? उनकी तो वैसी आदत ही है । इस क्रोध से उनकी आदत तो हटेगी नहीं, दो-चार आदमियों की जान भले ही चली जाय ।"

और चेतन ने कहा था कि वह स्वयं यही सब सोच रहा था और जैसा वे उससे कहेंगे, वह करेगा । उसकी केवल एक प्रार्थना है कि विवाह को रस्म जितनी जल्दी हो पूरी कर दी जाय और शेष सब व्यर्थ के रिवाज,

जहाँ तक हो सके, हटा दिये जायें और दावतें भी दो-तीन ही दी जायें ।

पण्डित वेणी प्रसाद ने कहा था, 'बेटा जैसा तू कहता है वैसा ही होगा । मैं तो स्वयं आर्य-समाजी प्रणाली का समर्थक हूँ । इन व्यर्थ की रस्मों मे क्या रखा है ?"

०

इस तरह अपनी क़समों के बावजूद पुत्र और पिता दोनों बारात मे शामिल हुए । हँसे भी, बधाइयाँ भी उन्होंने स्वीकार की और रस्मे भी सब अदा की । फिर बाजे भी बजे, गाने भी गाये गये और शोर भी खूब हुआ । यह और बात है कि इस समस्त हर्षोल्लास, गाने-बजाने और शोर-शराबे के अन्तर मे व्यथा भी कही दबी बैठी रही ।

माफ़ कर देने के बावजूद भी पिता ने पुत्र को नहीं बुलाया और पुत्र ने एक रस्मी, ठंडे प्रणाम के अतिरिक्त और कोई बात नहीं की । पण्डित जी ने पिता के अपने अधिकारों का प्रदर्शन करने के लिए और भी पी—देसराज और पण्डित बनारसी दास को बैठा कर पी—और चलते समय अपनी पत्नी को एक-दो थप्पड़ भी रसीद किये । माँ की आँखे अन्त तक आँसुओं से भरी रही । चेतन का रक्त खौल उठा और उसके जी मे कई बार आया कि अनन्त के दबाव से छूट कर एकदम भाग जाय । जहाँ उसके पिता उसे चिढा कर उन्ही कमीनों के साथ शराब पी कर अपने अधिकारो का डंका पीट रहे है, वहाँ दो बिरादरियों के बीच उनकी नाक काट कर वह पुत्र के अधिकारों को भली-भाँति जता दे ।

लेकिन जब बारात बस्ती पहुँची और धर्मशाला मे उतरने, सेहरा बाँधने और दूसरी रस्मों के बीच चेतन बराबर इन बातों पर विचार करता हुआ अन्त मे साढ़े आठ बजे के लगभग विवाह-मंडप मे आसन पर जा बैठा तो सहसा उसके मन से समस्त बातें, सारी चिन्ताएँ, सब क्लेश अनायास दूर हो गये । उसका मन हल्का हो गया । मंडप के तनिक परे, सामने बरामदे मे बैठी हुई लड़कियों मे उसकी निगाहे एक किशोरी से चार हुईं जिसे वह पहचानता था ।

यह किशोरी वही थी जिसे बस्ती के अड्डे पर देख कर वह चौंका था और फिर एक बार अपनी पत्नी के पास जिसे बैठी हुई देख कर वह कुछ बौखला-सा गया था ।

गैस के प्रकाश मे चेतन ने देखा—इस एक-डेढ वर्ष मे ही उसका यौवन जैसे चौकड़ियाँ भरता हुआ बढ़ आया है । चेतन को लगा जैसे वह एक महान् सागर मे हल्की-सी तरंग बन कर बहा जा रहा है । अभी कुछ देर पहले जब आँगन के दरवाज़े मे प्रवेश करने के समय उसकी पत्नी ने उसके गले मे हार डाला था तो उसके मोटे-से शरीर और सीधी-सीधी-सी आकृति को देख कर वह बेहद निराश हुआ था । फिर आँगन मे आने पर जब उसे पता चला कि कन्या-महाविद्यालय से जो लड़कियाँ इस 'समाजी रीति' से होने वाले विवाह की शोभा को अपने कल-कंठों से बढ़ाने के लिए आने वाली थी, वे नही आयी तो उसकी निराशा पर विषाद की एक गहरी परत चढ़ गयी थी । लेकिन उस सुन्दर मनोमुग्धकारी छवि को देख कर उसकी वह निराशा, वह अवसाद क्षण भर में उड़ गया । तभी पुरोहित ने मन्त्र पढ़ने शुरू किये और स्त्रियाँ गा उठी :

घर साजन आयो रे
सलोयाँ दे नैन भरे

चेतन ने अनुभव किया जैसे उस लडकी का स्वर सब स्वरों के ऊपर से होता हुआ उसके कानो मे अनवरत अमृत ढाल रहा है । वह पुरोहित के मन्त्र न सुन रहा था । वह सुन रहा था नव-वय की उस युवती का मीठा मादक स्वर और जैसे उसके शरीर का अणु-अणु पिघल कर उस तरल संगीत में घुला जा रहा था ।

'हाय ! इन लग्नो से पहले कितनी रस्में होती थी,' उसने वही बैठे-बैठे सोचा, 'उनमे उससे बातें करने के लिए कितने अवसर मिलते ?' और वह अपनी मूर्खता पर पछताने लगा कि उसने क्यो पण्डित बेणी प्रसाद से खामखाह सब रस्में हटा देने के लिए कह दिया !....लेकिन उस समय हवन-कुण्ड का धुआँ उसकी आँखों मे कड़वाहट भर रहा था और

लड़कियाँ गा रही थीं :

घर साजन आयो रे
सलोयाँ दे नैन भरे

तेईस

दूसरे दिन जब बारात खाना खाने मे व्यस्त थी, चेतन की चंचल, उद्विग्न दृष्टि रह-रह कर छत पर जाती थी और कल्पना-ही-कल्पना मे वह विवाह के गाने सुनता था—मीठे मद भरे गाने—जिनकी तानो में किसी परिचित कल-कठ से निकलती हुई तन और मन को गर्मा देने वाली मादक ध्वनि भी थी। पर छत की सूनी मुंडेरों पर गाने वालियाँ तो दूर एक कौवा तक भी न था। हाँ, किसी पास के वृक्ष पर बैठी हुई एक चील अपनी कर्कश ध्वनि से बार-बार चिल्ला उठती थी। वहाँ से हट कर चेतन की दृष्टि सामने बरामदे मे जाती, जहाँ रात को भाँवरो के समय स्त्रियो के गाने गूँजे थे।। पर वहाँ भी उनकी रसीली तानो के स्थान पर बस्ती के एक-मात्र सुधारक मास्टर नन्दलाल का ग्रामोफ़ोन अपनी भोंडी आवाज मे चिल्ला रहा था :

है प्रभो अब हम सबों को शुद्धताई दीजिए
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिए

दूसरी कुप्रथाओं के साथ-साथ विवाह-शादी के अवसर पर स्त्रियों का छतो पर चढ़ कर सिट्ठिनियाँ देना और गन्दे गीत गाना भी सुधारक मास्टर नन्दलाल को नापसन्द था। उनके विचार मे ऐसे अवसर सुधार कार्य ही के लिए उपयुक्त थे।

"रबिश (वाहियात) !" चेतन ने रिकार्ड के समाप्त होने पर कहा।

पर इसमे दोष किसका था ? उसी ने तो पण्डित वेणी प्रसाद से कहा

था कि कोई रस्म अदा न की जाय। सुधार सम्बन्धी अपनी स्कीम को इस घर मे पूर्ण-रूप से फलीभूत होते देख, इधर-उधर बडे चाव और व्यस्तता से फिरते हुए मास्टर नन्दलाल की ओर देख कर चेतन मन-ही-मन हँसा। फिर एक ठंडी साँस उसके हृदय की गहराइयों को चीर कर निकल गयी। बुभुक्षित, विपन्न और साधनहीन हिन्दोस्तान के लिए शादी विवाह तथा तीज-त्यौहार की चन्द घड़ियाँ ही तो थी जिनमे लोग कुछ हँस-हँसा लेते थे। दूल्हा-दुलहन की अपेक्षा विवाह के उल्लास का अधिक भाग तो दूल्हा के मित्रों तथा दुलहन की सखियों के हिस्से मे आता था। महीना-महीना पहले नये वस्त्र सिलवाये जाते, नये जूते बनवाये जाते और विवाह वाले घरो में ढोलक रख दी जाती। बारातियों का स्वागत मीठे गानों से होता, वर-वधू को कँगना मीठे गानों में खेलाया जाता, मादक मीठे गानों में भाँवरों की रस्म सम्पन्न होती और मीठे गानों का मधुर रस पीती हुई बारात खाना खाती। वधू की सहेलियाँ और बहनें सिट्ठिनियों में बडी भेद भरी बातें कह जाती। चेतन का हृदय उन मीठी सिट्ठिनियों को सुनने के लिए आतुर हो उठा, किन्तु उधर बरामदे मे ग्रामोफोन पूर्व-वत् गा रहा था।

हे प्रभो, अब हम सबों को शुद्धताई दीजिए।

सुधार सम्बन्धी कोई दूसरा रिकार्ड न होने से मास्टर नन्दलाल ने पुन: उसी को लगा दिया था।

चेतन के सामने विवाह की देवी का वह चित्र घूम गया, जिस आततायी सुधारक ने अलकार-विहीन कर दिया था। चेतन ने देखा—उसकी निरीह चमक-दमक इस कट्टर अत्याचारी ने छीन ली है, उसके कल-कंठ से निकलने वाली मादक तानो का इसने गला घोंट दिया है और उसके समस्त अलंकारो से उसे वंचित कर दिया है। चेतन की आँखें फिर उसी पुराने जमाने की भरी-पूरी रमणी को देखने के लिए आतुर हो उठी।

कम्पनी बाग मे एक अत्यन्त पुराना कुज था जिस पर इश्कपेचा की बेलें चढी हुई थी। कुज के बाहर एक वड़ा सीधा-सादा विश्राम-स्थल बना

हुआ था। वास्तव में यह स्थल एक अत्यन्त पुरानी, सदैव हरी रहने वाली बेल के कारण बन गया था। यह बेल धीरे-धीरे बढ़ कर इर्द-गिर्द के कई पेड़ों पर छा गयी थी। कहीं-कहीं यह इतनी मोटी थी कि बचपन में चेतन अपने संगियों के साथ उस पर बैठ कर झूला झूला करता था। इस स्थल के पास से गुज़रने पर ही मन की समस्त थकान दूर हो जाती थी। किन्तु सुधार....! उस बेल के नीचे इकट्ठी होने वाली गंदगी को, सूखे-सड़े पत्तों के ढेरों को, कूड़े-करकट को साफ़ करके उस स्थान को और भी सुरम्य, शीतल और मन का ताप हरने वाला बनाने की अपेक्षा उस बेल ही को काट दिया गया। अब वहाँ घास के एक-दो प्लाट हैं, जिनमें छोटे-छोटे पौधे लगे रहते हैं जो तीन-चार महीनों से अधिक जीवित नहीं रहते और ऐसे फूल लाते हैं जिनमें न रंग होता है, न रस, न गन्ध!

वह सारे-का-सारा दृश्य चेतन के सामने घूम गया।

"जीजा जी खाना खाइए!" एक पतले-दुबले-से लम्बी नाक वाले लड़के ने उससे कहा। चेतन ने सहसा चौंक कर थाली की ओर हाथ बढ़ाया।

बारात तब तक खाना खा चुकी थी। पुराने ढंग की शादी होती तो कोई चंचल-चपल बालक अथवा बालिका उसका कोट दरी से सी देती अथवा उसका जूता छिपा देती और इस सरल से मजाक और दूल्हे की कृत्रिम परेशानी पर खूब ठहाके लगते, खूब फबतियाँ उड़तीं। चेतन की बड़ी इच्छा थी कि कोई बालक अथवा बालिका उसका भी कोट सी दे, उसका भी जूता छिपा दे, लेकिन उसने खाना खा लिया, हाथ पोंछ लिये। बारात के आधे लोग आँगन के बाहर चले गये, लेकिन उसके साथ किसी ने मजाक नहीं किया। वह अन्यमनस्कता से उठा और जीवन में पहली बार खरीदा हुआ पेटेंट लेदर का शू पहनने लगा। उसी समय अपनी लठिया लिये हुए काँपते-झूलते पण्डित वेणी प्रसाद आये और हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा, "आप महाराज अभी कुछ देर बैठिए।"

चेतन चुपचाप दरी पर बैठ गया। तभी बरामदे की एक चिक उठा

कर वही लड़की जैसे हर्ष और उल्लास से नाचती-सी निकली । उसके पीछे उसकी सहेलियाँ थी—'जीजा जी छन्द[1] सुनाओ ! जीजा जी छन्द सुनाओ !' कहती हुई वह धम से उसके पास बैठ गयी । शेष सहेलियो ने झुरमुट बना लिया ।

चेतन का मुख कानों तक लाल हो गया । इस बीच में दो-चार बड़ी-बूढ़ियाँ भी आ गयीं और एक ने एक दूसरी स्त्री की ओर संकेत करते हुए चेतन से कहा, "यह तुम्हारी सास है ।"

चेतन को अपना उमड़ता हुआ उल्लास सिकुड़ता-सा महसूस हुआ—काला झुर्रियो वाला चेहरा, अन्दर को धँसे हुए कल्ले, बेढंगे दाँत और एक ओर को दबी हुई आँख । 'इस माँ की लड़की कैसे 'रूपवती' न होती ?' वह व्यंग्य से मुस्कराया; 'और फिर आप घूंघट निकाले हुए है,' उसने मन-ही-मन हँस कर कहा, लेकिन तभी उसे खयाल आया कि वह तो उसकी सास है और माँ के बराबर है और उसने उसे एक खिसियाना-सा प्रणाम किया । इसके बाद कुटुम्ब की अन्य स्त्रियों और वधू की सहेलियों से उसका परिचय कराया गया और उसे पता चला कि वह सुन्दर लडकी उसकी साली है—नाम है नीला—पण्डित वेणी प्रसाद की तीन लड़कियों में से मँझली, और चेतन ने एक बार दबी आँखों से उसकी ओर देख कर मन-ही-मन एक लम्बी साँस भर ली । उसे यह बात पहले क्यों न मालूम हुई ?

"छन्द सुनाइए जीजा जी छन्द !" और लड़कियों ने उसका कोट खींचा । एक निमिष के लिए चेतन की आँखें नीला से चार हुई । उसकी

---

१. छन्द एक प्रकार का पंजाबी दोहा होता है जिसकी पहली पंक्ति का कोई अर्थ नहीं होता, वह केवल तुक मिलाने के लिए होता हैं । दूसरी पंक्ति में सास-ससुर और ससुराल के अन्य रिश्तेदारों की प्रशंसा होती है । यह छन्द विवाह में लड़कियाँ वर के मुँह से सुनती हैं, ऐसा रिवाज है । पुराने समय में शायद इसका उद्देश्य यह मालूम करना रहा होगा कि वर गूँगा तो नहीं है ।

आँखों मे एक चतुर स्निग्ध मुस्कान थो, जिसका प्रतिबिम्ब उसके होंटों पर हल्की-सी मुस्कान के रूप मे फैलने को आतुर था।

चेतन बैठ गया।

लेकिन उसी समय पण्डित वेणी प्रसाद अपने हिलते हुए शरीर के साथ आये और हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा, "अब महाराज उठिए।"

चेतन अनिच्छापूर्वक उठने लगा था कि नीला ने उसके कोट का दामन पकड़ लिया। वह फिर बैठ गया।

पण्डित जी ने फिर हाथ जोड़े। वह फिर उठने लगा। नीला ने फिर दामन खीचा, वह फिर वैठ गया।

और हँसते हुए उसने कहा, "यदि आप कह दें तो योंही दस-पन्द्रह बैठक लगा डालूं?"

तब नीला ने तनिक रोष भरे स्वर मे कहा, "पिता जी आप बैठने भी दीजिए जीजा जी को, अभी एक भी छन्द नहीं सुना हमने।"

"अच्छा, अच्छा बेटी!....आप वैठिए अभी महाराज!" और वृद्ध सरल-सी हँसी होंटों पर लिये हुए जैसे आये थे वैसे ही चले गये।

चेतन का हृदय धक-धक करने लगा। तभी उसकी दृष्टि सामने बरामदे के एक कोने मे गयी। चिक उठा दी गयी थी। विवाह के लाल जोडे मे आवृत उसकी दुलहन जरा-सा घूंघट निकाले बैठी थी और विवाह के उल्लास मे उसका गेहुँआँ रंग दमक रहा था। चेतन के सामने उसकी सास की सूरत आ गयी और उसने निगाहे हटा ली।

नीला ने हँस कर कहा, "छन्द सुनाइए जीजा जी! आप ही के घर तो जायगी, जी भर वहाँ देख लेना।"

और अप्रतिभ-सा हो कर चेतन ने एक छन्द सुनाया:

छन्द परागे आइए, जाइए छन्द परागे तीला
छन्द गया मैं भुल्ल सभे, जद सामने आयी नीला।[१]

नीला का मुख कानों तक सुर्ख़ हो गया। फिर वह एक बार ही सखियों के साथ ठहाका मार कर हँस दी।

चेतन इस ठहाके मे बह गया और इसके साथ ही बह गया वह थोड़ा बहुत गाम्भीर्य जो गत दो-तीन दिनों से उसके अन्दर इकट्ठा हो गया था और जिसका प्रतिबिम्ब उसकी आकृति पर विषाद के हल्के-से बादल ले आया था।

एक युवती जैसे उल्लास की ताल पर नाचती-सी आयी। उसकी कलाइयों का लाल चूड़ा साची था कि उसका विवाह हाल ही मे हुआ है। टेसू के रंग की लाल साड़ी उसने पहन रखी थी और वह रंग उसके सुन्दर कपोलों को भी लाल बना रहा था। चेतन की चंचलता को निशाना बना कर उसने तीर छोड़ा:

पुत आया नी नटनी दा[२]

चेतन खिसियाना-सा हो गया। किन्तु उसी क्षण इस सिट्‌टिनी की दूसरी पंक्ति कहने का अवसर उस युवती को दिये बिना उसकी नकल उतारते हुए उसने कुछ इस तरह मटक कर यही शब्द दुहराये कि वह युवती शरमा कर उल्टे पाँव वापस भाग गयी।

उसी समय पण्डित वेणी प्रसाद एक बार फिर हाथ जोड़े हुए चेतन को उठने के लिए कहने के अभिप्राय से आये, किन्तु अपने इस असहाय पिता पर नीला को कुछ ऐसा अधिकार प्राप्त था कि उसने चेतन को वहीं बैठाये रखा। वास्तव मे मास्टर नन्दलाल तथा उनके आर्य-समाजी मित्र

---

१. पहली पंक्ति का कोई अर्थ नहीं। दूसरी का अर्थ यह है कि मैं उस समय सभी छन्द भूल गया जब मेरे सामने नीला आ गयी।

२. नटनी का पुत्र आया है। इसकी दूसरी पंक्ति है—'नटनी कोठे टप्पनी दा'—अर्थात् उस नटनी (चंचल नारी) का जो छतें कूदती है अर्थात् छतें कूद कर अपने प्रेमियों से मिलने जाती है।

विवाह-शादी की इस हँसी-खुशी के भी विरुद्ध थे । वे न चाहते थे कि दुल्हन की सब-की-सब सहेलियाँ एकदम दूल्हा से सालियो का नाता स्थापित करके हर तरह के हँसी-मजाक की छुट्टी पा लें । इसीलिए वे पण्डित वेणी प्रसाद को अन्दर भेजते थे, लेकिन अपनी लड़की नीला से उस वृद्ध को कुछ ऐसा प्रेम था कि वे उसका कहा न टालते ।

इस बीच मे चेतन को अपनी पत्नी की सब सुन्दर और असुन्दर सहेलियो के नाम याद हो गये । सोहनी तो सचमुच सोहनी थी, जिसके सम्बन्ध मे उसे मालूम हुआ कि वही उसकी मँगेतर होने वाली थी, किन्तु पण्डित वेणी प्रसाद पहले पहुँच गये थे । केसरी, जिसकी आँखों मे एक अज्ञात-सी आकाक्षा दबी रहती थी, जो चेतन को कुछ ऐसी भूखी निगाहों से देखती थी जैसे उसे आँखो-ही-आँखो मे निगल लेगी और जिसने चेतन की दिलचस्प बातो, उसकी खुली हँसी और चंचलता को देख कर एक लम्बी साँस को बरबस दबा कर केवल इतना कहा था—'जीजा जी, तुसी ताँ तिन्नाँ लोकाँ तो न्यारे ओ ।' और लक्ष्मो जो अपने छोटे भाई को गोद मे लिये हुए थी, जिसे लक्ष्मी की आयु को देखते हुए उसने उसका बच्चा समझा था और जो अपनी इस बड़ी आयु के बावजूद अविवाहित थी । उसके माता-पिता जब बच्चे पैदा कर रहे है तो उनकी यह अशिक्षित, युवा बेटी क्या सोचती होगी ? दिन कैसे काटती होगी ? पर पैसे... खर्च....दहेज और बस्ती के 'जेरथो' मे लड़की को बेचना गुनाह नहीं खयाल किया जाता । फिर पारो, सरला, रानी, शीला, कर्तारी....

चेतन का समय खूब बीता और जब वहाँ से छुट्टी पा कर वह डेरे वापस जा रहा था तो उसकी कल्पना के सम्मुख इन सब की आकृतियों के ऊपर से नीला की सुन्दर मूर्ति जैसे उभर-उभर कर झाँकती रही । उसकी वह सुनहरी स्मिति, मादक दृष्टि और मदिर स्वर-लहरी ।.... नीला....नीला !

चौवीस

लेकिन गौने से भी पहले अपने विवाह के प्रथम दिवस ही चेतन को मालूम हो गया कि चन्दा—वह उसकी मोटी-मुटल्ली पत्नी—अपनी उस साधारण दिखायी देने वाली सूरत-शक्ल के अन्दर एक अत्यन्त कोमल और भावुक हृदय रखती है ।

दूसरे दिन नव-परिणीता वधू के साथ जव वह ताँगे मे वैठ कर बाजे के पीछे-पीछे बस्ती गजाँ से चला था तो उसके मन-मस्तिष्क पर नीला का चित्र अंकित हो चुका था और उसके हृदय मे कही ज्वाला-सी धधक रही थी । वह सोच रहा था, क्यों नीला से उसका विवाह न हुआ ? उसे पहले ही क्यों न पता चल गया कि वही लड़की, जिसे बस्ती के अड्डे पर जाते देख कर उसके हृदय मे अँधेरी रात के दूरस्थ प्रदीप की भाँति एक ज्योति-किरण जगमगा उठी थी, उसकी भावी पत्नी के ताऊ की मँझली लड़की है । यदि वह मुल्कराज से उसके सम्वन्ध मे पूछ लेता ? यदि उसे वाद में भी किसी तरह मालूम हो जाता ? यदि....तो जीवन के दुख-भरे सागर मे सुख की उद्दाम तरंगें उठ आती । उनके सहारे वह कहाँ-कहाँ न पहुँच जाता ।

नारी ही गति है और नारी ही अगति । जीवन भी यही है और मृत्यु भी यही—केवल संगिनी के उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त होने का प्रश्न है । इन्ही दो सीमाओ मे पुरुष के जीवन का क्रम चलता रहता है । उपयुक्त संगिनी मिल गयी तो उसके जीवन का सागर आनन्द से हिलोरें ले उठता है और यदि अनुपयुक्त तो....चेतन की कल्पना के सम्मुख क्षण भर के लिए हिलोरे लेता हुआ सागर आया और फिर उसके स्थान पर प्रतिक्षण सूखता-सा एक पोखर—गँदला, गतिहीन, तरंग-रहित—और उसने अपने साथ ताँगे मे बैठी हुई अपनी नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा और अपने जीवन का सागर उसे जैसे उत्साह-हीन-सा हो कर उतरता हुआ दिखायी

दिया।

सहसा उसे इला-ह्वीलर विलकॉक्स की एक कविता स्मरण हो आयी, जिसका भावानुवाद उसने कभी किया था :

मैं अगर सागर, सुमुखि, तू चांद है मेरे लिए !
देखते जब नयन तेरे मुदित मेरी ओर,
तब उमड़ता ज्वार आशा का, न दिखते छोर,
और ये काली चट्टानें—
पंक्तियाँ मेरी निराशाओं, बलाओं की भयावह—
ज्वार में चुपचाप जातीं डूब !

और आशा की लहरियाँ मन्द उठतीं खेल
लहलहा उठती मरी-सी कामना की बेल

किन्तु जब फिर रूठ कर, हो कर विमुख—तू
छीन लेती ज्योत्स्ना-सा तरल मेरा सुख !
अँधेरा—
घोंट देता है गला
उन वीचियों के लहलहाते खेल का;
उस महमहाती कामना की बेल का;
औ' उभर आती चट्टाने—
पंक्तियाँ मेरी निराशाओं, बलाओं की भयावह—
और लगता है, अँधेरा
चीर उर मेरा, निकल बाहर
बना घेरा
मुझे ही लीलने को
सरकता है प्राण, मेरी ओर !
मैं अगर सागर, सुमुखि, तू चाँद है मेरे लिए !

कहीं यदि नीला से उसका विवाह हो जाता तो उसके चाँद-से मुख

को—उन घने काले बालों में छिपे; चाँद-से मुख को—तनिक-सा ऊपर उठा कर वह कहता :

'मै अगर सागर हूँ, तू सखि चाँद है मेरे लिए।'

लेकिन अब....और निराशातिरेक से उसका गला भर-सा आया और सचमुच अपने घर की देहरी पार करके चन्द रस्मों को जल्द-जल्द पूरा करने के बाद वह अन्दर कोठरी मे जा कर रोने लगा।

उसकी माँ—दु:खो और गमो की मारी उसकी माँ—इस नयी विपत्ति को देख कर पहले तो घबरा गयी, किन्तु विपत्तियों का पहला आक्रमण जहाँ मानव के पाँव ज्वार के पहले रेले की तरह डगमगा देता है, वहाँ उनका आधिक्य उसे स्थिर भी कर देता है और माँ विपत्तियों के निरन्तर प्रहारो के कारण तूफान के मध्य भी स्थिर खड़े हो कर सोचने की शक्ति पा गयी थी।

सोच-सोच कर वह पहले बहू के पास स्वयं गयी और बहू का घूंघट हटा कर उसने क्षण भर के लिए निर्निमेष उसकी आँखों मे देखा। अनुभव किया कि उनमे अपार कोमलता और अपार सहृदयता है। तब क्षणिक आवेश के वश उसने उसे अपने आलिगन मे भीच लिया और आर्द्र कंठ से बोली :

"वह कुछ बेचैन-सा है मेरी बेटी-। फूल-फूल पर बैठने वाला, आकाश के विस्तार मे स्वच्छन्द उड़ने वाला पक्षी। उसे बाँधना है। वह भाग जाना चाहता है। सब बन्धन तोड़ कर ! लेकिन बेटी तू जरा सतर्क रहेगी तो वह भाग न पायेगा। मै उसे अभी भेजूंगी। बहुत संकोच से काम न लेना, समझी....तू छोटी नही, सयानी है, व्यर्थ की लज्जा न करना।"

और वह चली आयी थी। फिर बहाने से महरी को बस्ती भेज कर उसने चेतन को अन्दर भेजा था।

चेतन का मन खिन्न था। वह अपनी इस दुलहन से बिलकुल साक्षात न करना चाहता था, किन्तु एक तरह का कुतूहल अवश्य उसके मन मे था। जिन युवकों को लड़कियों का साहचर्य प्राप्त नहीं होता अथवा जो

लड़कियों की उपस्थिति में संकोच से अभिभूत हो जाते हैं, नारी के शरीर को सर्वथा अपने अधिकार मे पा कर जैसा कुछ कुतूहल उनके मन मे पैदा हो जाता है, वही चेतन के मन मे भी था ।

कमरे मे जा कर उसने अत्यन्त हास्यास्पद हरकतें की थीं । पहले तो उसने माँ से लगभग आदेशपूर्ण स्वर मे कहा था कि उसके लिए खाना वहीं भेज दिया जाय और फिर जब बहू भी माँ के साथ बाहर उठ कर जाने लगी थी तो उसने तनिक कडे स्वर मे कहा था, 'बैठो !' और उसके बैठने पर उसने उठ कर कुण्डी लगा ली थी (और भूल गया था कि उसने खाना वहाँ लाने का आदेश दिया है ।) फिर उसने पत्नी को हुक्म दिया था कि घूँघट उठा दे ।

चन्दा ने धीरे-से घूँघट उठा दिया था और एक बार लज्जा-भार से दबी बड़ी-बडी अलसायी-सी पलको को उठा कर उसकी ओर देखा था ।

इस एक दृष्टि से ही चेतन के स्वर की कर्कशता कोमलता में बदल गयी थी । वह गम्भीर, गहरी, सहृदय, तरल-दृष्टि !....चेतन जैसे शान्ति के सागर मे डूबा जा रहा था । उसने कुछ नर्मी से पूछा, "तुम हिन्दी पढ़ सकती हो या नही ?" चन्दा ने धीरे से, 'जी हाँ !' कहा और इस शब्द की मिठास चेतन की श्रवण-शक्ति पर छा कर रह गयी । तभी अचानक उसे लगा कि बस्ती के अड्डे पर पहले-पहल उसने जिस चन्दा को देखा था, उसमें और आज की नव-विवाहिता चन्दा में महान अन्तर है । उसका रंग निखर आया है, अंग अधिक सुगठित हो गये है और आँखें पहले से कहीं अधिक फैल गयी है । माँ ने उबटन मल कर शायद उसका रंग चमका दिया था या जवानी ने अपनी भट्टी मे तपा कर उस गेहुएँ रंग को कुन्दन बना दिया था ! और फिर यौवन की गरिमा उस रंग मे अकथनीय मादकता ले आयी थी ।

"तुम तो पहले से सुन्दर हो गयी हो चन्दी !"

वह मुस्करायी और फिर तनिक हँसी—मीठी मुस्कान और मादक हँसी ! और चेतन ने देखा उन लाल-लाल होटों के नीचे दूध-से सफ़ेद,

साथ-साथ जुड़े हुए मोतियों की बत्तीसी है जो उस हँसी को एक अनोखी चमक प्रदान कर रही है ।

और वह मुग्ध-सा, साधारण होते हुए भी असाधारण-सी अपनी इस पत्नी की ओर देखने लगा । फिर वह उठ कर एक पुस्तक ले आया ।

चन्दा ने उसे फ़र-फ़र पढ़ डाला ।

तब किताब को परे फेंक कर चेतन ने उसे अपने आलिंगन मे ले लिया ।

चन्दा ने एक बार अपनी अर्द्ध-निमीलित, अलस, लजीली आँखों से उसकी ओर देखा और उस आलिंगन मे चेतन ने ऐसा महसूस किया जैसे मीलो चल कर वह किसी भरे-पूरे सरोवर के किनारे घने वृक्षो की छाया में आ बैठा है ।

और तब धीरे-धीरे उसके मांसल गदराये शरीर से प्यार करते-करते उसने मीठे स्वर मे कई तरह की बातें उससे पूछीं—बस्ती के लड़कों की, बस्ती की लड़कियो की, चन्दा की बहनों की, उसकी सहेलियों की । फिर स्नेहातिरेक मे उसने कहा, "तुम आज एक वचन मुझसे ले सकती हो, जो भी चाहो !" और अत्यन्त सरल और भोले-भाले अन्दाज मे चन्दा ने कहा था, "यदि आप माँस खाते हों तो छोड़ दें ।"

लेकिन चेतन ने उन्हीं दिनों माँस खाना आरम्भ किया था । एक अत्यन्त ऊँचे ठहाके में उसकी इस बात को उड़ाते हुए वह बोला, "तुम भी कितनी भोली हो चन्दी !" और यह कह कर उसे अपने आलिंगन में भींच कर वह उसके गोल-गोल गुलगोथने कपोलों पर अपने प्यार की मोहर लगाना ही चाहता था कि बाहर से अनन्त ने ज़ोर से किवाड़ खटखटाये ।

चन्दा उसके बाहुपाश से मुक्त होने लगी थी कि उसे बरबस भुजाओं में भींच कर अनन्त के निरन्तर किवाड़ खटखटाने के बावजूद उसने वह मोहर लगा दी । साथ ही उसने अनन्त से हँस कर कहा, "क्या गधे हो, कोई वैसी बात नही, सिर्फ़ 'बिज़नेस टॉक' हो रही है ।"

और बाहर अनन्त और अन्दर वह इस बेतुकी बात पर ठहाका मार कर हँस पड़े।

पच्चीस

किन्तु नीला आग थी। स्नेह जल का परस पा कर जम जाता है, पर आग का सामीप्य उसे पिघला देता है। फिर वासना....जिसे 'लव ऐट फ़र्स्ट साइट' कहा जाता है, वह वासना-जनित नहीं होता क्या ? हम नहीं जानते कि जिसे हमने देखा है वह स्वभाव की कैसी है ? उसकी आदतें कैसी है ? उसके गुण-अवगुण क्या है ? बस उसे पाने के लिए आतुर हो जाते है। वह नहीं मिलती तो उदास हो जाते हैं। जीवन को जीना छोड़ देते है और उस अतृप्ति को हम प्रेम समझते है—उस अतृप्ति को जो तृप्त होने पर प्रायः उस प्रेम का गला घोंट देती है !....और यह वासना आग का सामीप्य पा कर स्नेह की भाँति केवल पिघलती नहीं—भड़क उठती है !

०

दूसरे दिन वह गौने के लिए बस्ती गया। अगस्त का आरम्भ था। आकाश पर गहरी काली घटा छायी हुई थी। ठंडी हवा हिलोरें ले रही थी। बाहर पड़ोस के एक घर मे चौखट से झूला डाल कर पेंग बढ़ाती हुई लड़कियाँ उस चौखट ही को मानो नीम समझ कर गा रही थी :

इक झूला डाला मैंने नीम की डाल में,
नीम की डाल में,
नन्हीं-नन्हीं बूंदियां रे सावन का मोरा झूलना।
सावन का मोरा झूलना।

अपनी ससुराल मे, अथवा यों कहिए कि अपने ससुर के बड़े भाई के

यहाँ (क्योंकि उसके ससुर का अपना कोई घर नहीं था) चेतन ऊपर चौवारे मे निवाड के पलंग पर लेटा हुआ था। वह दरवाजे से चुपचाप आकाश मे उमड़ती हुई घटाओ को देख रहा था और गली की लड़कियों का गाना अनवरत उसके कानों मे मधु-रस उँडेल रहा था।

पास ही उसकी पत्नी की सहेली केसरी अपनी आकांक्षा भरी आँखें लिये हुए बैठी कुछ बातें कर रही थी। चेतन अन्यमनस्क-सा उसकी बातों का उत्तर देता जा रहा था और उसके उत्तर को सुन कर हँसती हुई वह हर दस मिनट बाद कहती थी, 'जीजा जी, तुसी ताँ तिन्नाँ लोकाँ तो न्यारे ओ।'

चेतन के कानो को, लडकियो के गाने की भाँति, केसरी की बातों का स्वर भी किसी स्वप्न-संसार के स्वर ही-सा लग रहा था। उसकी आँखो मे कुछ हल्का-सा खुमार छाया जा रहा था। विवाह के दिनों की समस्त थकन, सब रतजगे जैसे अपने सारे भार से उसकी आँखो को बन्द किये देते थे। वही लेटा वह अपनी अर्ध-निमीलित, तन्द्रालस आँखों से छत पर नीला का चित्र बना रहा था और वह चाहता था कि केसरी चली जाय। किन्तु वह अपने इन जीजा जी को देखने मे और उनकी बातें सुनने मे कुछ ऐसा आनन्द पा रही थी कि उठने का नाम ही न लेती थी।

हार कर चेतन ने अपनी पत्नी का नाम ले कर आवाज दी।

नीचे आँगन मे एक अट्टहास गूँज उठा जिसमे से नीला का गूँजता, झनझनाता स्वर उसने दूसरों से अलग कर लिया। उसकी पत्नी ने उत्तर नही दिया, किन्तु छत से परे सीढ़ियों पर उसे नीला चढती दिखायी दी। चेतन को लगा जैसे वह चढ़ती नहीं, हवा मे अदृश्य हल्के परों के सहारे फुदक रही है। लेकिन वह जल्दी से उठ कर उसे छत पर ही मिला।

"आपको लाज नही आती ?" नीला की मुस्कराती हुई आँखें नाच रही थी और वह निर्निमेष उनकी ओर देख रहा था। "बहन का नाम ले कर आप पुकार रहे हैं। वह तो लाज से मरी जा रही है।"

चेतन ने जोर से ठहाका लगाया।

दो स्त्रियाँ दूर एक मकान की छत पर धूप मे सूखने के लिए डाले हुए कपडे वर्षा के भय से समेट रही थी । वे पलट कर उधर देखने लगीं ।

चेतन फिर हँसा और उसने बहुत धीरे से कहा, "तुम किसी बहाने अपनी बहन की इस तीन लोक से न्यारी सहेली को ले जाओ ।"

"तीन लोक....

"यह केसरी मुझे कहती है कि मै तीन लोक से न्यारा हूँ । असल मे वह स्वयं तीन लोक से न्यारी है । उसकी बातें अजीब है, मुझे नीद-सी लाये देती है और तुम तो इतनी व्यस्त हो कि...."

और अपनी ख़ुमार भरी मस्त आँखों को उसकी चंचल, चतुर मुस्कराती हुई आँखों मे डालता हुआ वह हँस दिया ।

नीला एक बल खाती उसके पास से गुजर गयी । वह जाने क्या कह कर केसरी को ले गयी और चेतन वही खडा उन सीढियों को देखता रहा जहाँ वह अभी-अभी ग़ायब हुई थी और फिर वह चुपचाप चारपाई पर जा लेटा ।

वही लेटे-लेटे उसके सामने कल दिन की समस्त घटनाएँ घूम गयीं और उसके मन की आग जो नीला को देखते ही भड़क उठी थी चन्दा का ध्यान आने से ठंडी पडती हुई महसूस हुई ।

उसने अपने-आपको कोसा । वह अब विवाहित है । किसी के प्रति वफ़ा का बोझ उसके कन्धों पर आ रहा है और यही सोचते-सोचते उसे ऊँघी आ गयी । उसने देखा कि वह एक सीमाहीन मरुस्थल मे खड़ा है । दूर-दूर तक झाड़ियाँ है और पलाश तथा बबूल के सूखे टेढे-मेढे वृत्त । तनिक और ध्यानपूर्वक अपने इर्द-गिर्द देखने से उसे समझ आ जाती है कि वह तो बहावल नगर के उसी मरुस्थल मे खड़ा है जो उसने गाड़ी से देखा था । तब उसे आभास होता है कि वह किसी की खोज में, किसी के पीछे भागता हुआ यहाँ आया है। एक झाड़ी से एक खरगोश निकलता है । वह उसके पीछे भागता है । तभी वह देखता है कि एक लोमड़ी उसके पीछे-पीछे चली आ रही है ।

चेतन ने करवट बदली।

स्वप्न फिर चलने लगा। इस बार उसने देखा कि वह एक बड़ा-सा पतंगा बन गया है और एक बड़े-से हंडे के इर्द-गिर्द घूम रहा है। घूम रहा है, पर शीशा उसे लौ तक नही पहुँचने देता। वह उससे टक्करें मारता है और लौ उसकी इस मूर्खता पर अट्टहास कर उठती है।

वह उठ बैठा। उसने आँखें मली। देखा कि नीला उसके सिरहाने खड़ी हँस रही है।

"वाह! आप क्या देख रहे थे?"....और अपना वाक्य समाप्त किये बिना वह उसके सामने बैठ गयी और उसकी गोद मे उसने एक पत्रिका रख दी।

"यह पढ़िए, यह।"

उसने उँगली एक पंक्ति पर रख दी।

चेतन ने अपनी अधखुली उनीदी आँखों से देखा—किसी कहानी के सम्भाषण का एक वाक्य था।

'मै कैसे कहूँ कि मै तुमसे प्रेम नही करती।'

मन-ही-मन उसने यह वाक्य पढ़ा। नीला ने उसकी ओर कुछ विचित्र हृदय की गहराइयो मे डूब जाने वाली, मुस्कराती हुई दृष्टि से देखा और इससे पहले कि चेतन कुछ समझ पाता वह पत्रिका बन्द करके उठ खड़ी हुई।

वह कहता ही रह गया, "लाओ दिखाओ तो सही, देखें कौन-सी पत्रिका है? लाओ!...."

लेकिन वह पत्रिका को वक्ष से लगाये, एक बार मुड़ कर उसकी ओर देखती हुई, भाग गयी।

चेतन को ऐसा लगा जैसे उसने स्वप्न देखा हो। लेकिन नही, वह बिस्तर पर बैठा था और नीला की खुली केश-राशि की मादक सुगन्ध कमरे में बसी हुई थी। नील....नीला....!

छब्बीस

विवाह के तत्काल बाद चेतन अपनी पत्नी को लाहौर नही ले गया। कारण कई थे।

—उसकी माँ चाहती थी कि अपनी इस नयी बहू को कुछ दिन अपने पास रखे और समस्त गृह-कार्यो मे उसे निपुण कर दे।

—भाई साहब चाहते थे कि अब जब उन्होने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी है तो चेतन भी अपना वचन पूरा करे और लाहौर मे दुकान खोलने मे उन्हे सहायता दे।

भाई साहब की श्रीमती जी इस बात पर तुली हुई थी कि वे जालन्धर रहते-रहते ऊब गयी है, इसलिए लाहौर जायेंगी। गर्मियों का मौसम था, बादल हो तो कुछ ठंड हो जाती, नही तो गजब की गर्मी पडती और चंगड़ मुहल्ले के उन दो कमरों मे चार-छै व्यक्तियों के एक साथ रहने की बात स्वयं एक समस्या थी।

—फिर चेतन (मन की किन्हीं अज्ञात गहराइयों मे) न चाहता था कि वह नीला से एकदम इतनी दूर चला जाय। उसके अर्ध-चेतन मे कही यह बात भी छिपी थी कि चन्दा जालन्धर अथवा बस्ती रहेगी तो वह नीला से मिलने के अधिक अवसर पा सकेगा।

इन सब कारणों से अपनी नव-पत्नी को अपनी माँ की देख-रेख मे छोड, अपने भाई साहब को, कुछ थोडा-बहुत प्रबन्ध करके, अपने पीछे आने के लिए कह और अपनी भावज को सान्त्वना दे कर कि उसे शीघ्र ही बुला लिया जायगा, चेतन अतीव दुख और अतीव सुख के इन कुछ दिनो के बाद अपने उसी समाचार-पत्र की चक्की मे जुटने के लिए लाहौर वापस चला गया।

सुख की अपेक्षा जीवन मे दुख की मात्रा कही अधिक है। पर इन दोनों को एक-दूसरे से पृथक् करके नही रखा जा सकता है। सुख के क्षण

दुःख को लिये हुए आते हैं और दुःख के, सुख को; और मानव इन्हीं मधु-विष मिश्रित-प्यालों को पीता चला जाता है।

०

माँ के दिल में बहू को घर के काम-काज में दक्ष करने का जो शौक था, वह शीघ्र ही पूरा हो गया, और दो महीने बाद माँ ने फ़तवा दे दिया कि यह नयी बहू बड़ी बहू से भी गयी-गुज़री है। वह ज़बान की कड़वी हो, लड़ती-झगड़ती हो, पर काम तो करती थी। यह तो बस गुम-सुम पत्थर! अजगर की तरह खाना और सोना जानती है। काम के नाम पर सिफ़र है। यह कहते-कहते माँ पंजाबी भाषा की एक लोकोक्ति भी सुनाती :

बहू कम्म करन नूँ कही
बहू मुँह भड़ोला जही
बहू खान नूँ कही
दो सज्जरियाँ दो बही[1]

और माँ उन दिनों की बातें सुनाती जब वह स्वयं ब्याही आयी थी और परदादी गंगादेई के कठिन शासन के नीचे उसे अथक काम करना पड़ता था।

इस बीच में चेतन दो बार जालन्धर आया था। वर्ष भर में एक महीना और महीने भर में अढ़ाई दिनों की छुट्टी उसे मिलती थी। इन अढ़ाई दिनों को इतवार से मिला कर दोनों बार वह साढ़े तीन-तीन दिनों के लिए जालन्धर आया था। तब माँ के कठिन संयम से हारी-थकी उसकी पत्नी ने बस्ती चलने की इच्छा प्रकट की थी। यों भी कहा जा सकता है कि चेतन ने स्वयं उसके मन में बस्ती चलने की आकांक्षा जगा दी थी।

---

१. बहू से काम करने को कहा, बहू का मुँह भड़ोला (डहरा) बन गया। बहू से खाने को कहा, बहू ने दो ताज़ा और दो बासी रोटियाँ सामने रख लीं। हिन्दी में भी एक लोकोक्ति है जिसका यही अर्थ है—काम की न काज की, अढ़ाई सेर नाज की।

बड़े प्यार से उसे अपने अंक मे ले कर उसने उससे कहा था :

"मै तुम्हे आज ले चलूँ लाहौर, पर अभी भाभी गयी है । वह दो-चार महीने रह ले, तब तुम्हे ले चलूँ । इतनी जगह तो है नहीं कि तुम दोनों रह सको । अब माँ से मै क्या कहूँ ? उन्हे न नीद आती है, न भूख लगती है । दूसरों को भी वे ऐसा ही समझती है । जब तक यहाँ रहना है, यह सब कुछ सहन करते हुए ही रहना है । प्रातः उठने की और तनिक देर से खाने की आदत डालनी होगी । पुरुषों के खाने से पहले खा लेना माँ के धर्म मे पाप है । मै कह जाऊँगा । तुम न हो कुछ बासी-ऊसी खा लिया करना ।" और फिर उसने वाणी मे भी स्निग्धता भर कर कहा था, "कहो तो दो-एक दिन के लिए तुम्हे बस्ती छोड़ आऊँ, ज़रा तबीयत बहल जायगी तुम्हारी ।"

चन्दा मन-ही-मन अपने इस सहृदय पति के चरणों मे झुक गयी थी और इसी बहाने चेतन दोनों बार बस्ती हो आया था ।

o

चाँदनी रात थी और दिन भर बरसने के बाद तीतर के पंखों-सी बदली आकाश पर छायी हुई थी, जिसके सम्बन्ध मे पुराने लोगों का विचार है कि वह वर्षा के पुनरागमन की सूचना देती है । उमस नहीं थी और ठंडी-ठंडी बयार चल रही थी । चाँद के इर्द-गिर्द एक नन्ही-सी बदली साँप की भाँति कुडली मार कर बैठी थी और आकाश पर फैली हुई बदलियो मे कही-कही कोई तारा झाँक उठता था । अपनी ससुराल मे छत पर चेतन लेटा हुआ था । पास ही नीला बैठी थी और वह मन्त्रमुग्ध-सा उसकी ओर देख रहा था ।

दोनो चुप थे । नीचे बर्तनो के मले जाने की आवाज आ रही थी, कभी-कभी हैंड-पम्प का कर्कश स्वर भी आ जाता था या फिर चन्दा कभी-कभी (ऊपर अपने पति की उपस्थिति के कारण) सरगोशियो मे बातें करती थी—'भाभी आटा देख लो काफ़ी है या नहीं ?'....'अम्बो, थाली कहाँ रख दी तैने ?'....चावल तो गल गये भाभी....'

उस दिन के बाद चेतन को आज नीला से दो बातें करने का अवसर मिला था। किन्तु उसे बातें सूझ ही नहीं रही थी और वह निर्निमेष उसके सुन्दर मुख को देख रहा था। नीला का क़द लम्बा न था, किन्तु ऐसा भी नही जिसे मझोला कहा जा सके ? वह पतली न थी, लेकिन मोटी भी न थी—सुडौल, सुगठित अंग, तीखा लम्बा चेहरा, भरे गाल, जिनमे हँसते समय गढ़े पड़ जाते थे; बड़ी-बड़ी मुस्कराती आँखें और वय-सन्धि को पार करता और रेखाओं को उभारता शरीर। और चेतन बस उसे मोहित-सा देख रहा था।

सोचने पर भी उसे कोई बात न सूझ पड़ी। नीला के सामीप्य और उस चाँदनी रात की तरल मादकता से मस्त वह लेटा रहा। कोने मे कोई टिड्डी अनवरत ची-ची करती रही और चेतन जैसे स्वप्न के संसार मे खोया-सा उसकी आवाज सुनता रहा।

नीला चेतन के बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी। अपनी कोमल अँगुलियों से उन्हे प्यार के साथ सुलझाते हुए उसने अनायास कहा, "जीजा जी तुम्हारे बाल कितने कोमल है, कितने लम्बे और कितने कुडल बन जाते है इनमे !"

चेतन को फिर भी कोई उत्तर न सूझा। उसने केवल नीला का एक हाथ अपने हाथ मे ले लिया और कुछ क्षण आँखें बन्द करके चुपचाप पड़ा रहा। उसके समस्त शरीर मे जैसे एक हल्की-सी मीठी सनसनी दौड़ रही थी और वह चुप लेटा उसका आनन्द ले रहा था। फिर उसने उस कोमल हाथ को अपने दूसरे हाथ मे ले कर दबाया और फिर अपने धड़कते हुए वक्ष पर रख दिया।

नीला चुप रही। उसके बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेरती रही, उसके कुंडलों को सुलझाती रही।

कुछ क्षण बाद चेतन ने कहा, "मै सोचा करता हूँ नीला मै, दो बार चन्दा को देखने आया और दोनों बार ही तुम्हे देखा।"

"मैने भी आपको दोनों बार देखा और मै यह भी बता सकती हूँ कि

पहले दिन जब आप बस्ती के अड्डे पर खड़े थे, आप ने कौन-सा सूट पहन रखा था।"

एक हल्की-सी लहर चेतन के शरीर मे दौड़ गयी। नीला के हाथ को प्यार से सहलाते हुए उसने कहा, "यदि उस दिन पता चल जाता कि तुम चन्दा की ही बहन हो तो...."

"तो जीजा जी...." नीला ने उत्सुकता से पूछा।

लेकिन चेतन चुप रहा। उसने सिर्फ़ एक गहरा निश्वास छोड़ा और जैसे अपने प्रेम के समस्त मीठे भार से उसके हाथ को दबाया।

नीला ने कहा, "आपका दिल बुरी तरह धडक रहा है।"

चेतन का दिल वास्तव मे ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था, उसका गला सूखा जा रहा था और शरीर गर्म हो रहा था।

नीला के हाथ को इधर-उधर फिराता वह अपने कंठ और फिर वहाँ से अपने गालों पर ले गया। अपने ठडे दायें गाल पर वह गर्म हाथ रख कर उसने उसे दबाया। उसके मन को कुछ अपूर्व-सी शांति मिली। उसकी नस-नस ने एक विचित्र सुख का अनुभव किया। लेकिन साथ ही एक अज्ञात आकांक्षा से उसके हृदय की गति तीव्रतर हो गयी, उसका शरीर गर्म होने लगा। वह हल्का-हल्का कम्पन महसूस करने लगा। वह कबूतरी के पंखो-से उस मुलायम और श्वेत हाथ को अपने होंटों के पास ले जाने लगा था कि नीला ने हाथ खीच लिया।

"बहन ने शायद मुझे आवाज़ दी है।"

और वह भाग गयी।

०

दूसरी सुबह जब चेतन जाने लगा तो नीला अपनी नाचती मुस्कराती आँखें लिये आयी। और उसने उससे लाहौर से फिर आते समय रिबन और क्लिप लेते आने की फ़रमाइश की।

०

दूसरी बार जब चेतन आया था तो वह न केवल क्लिप और रिबन

बल्कि लिपस्टिक, क्रीम और पाउडर का डिब्बा भी लाया था। और बड़ी सफ़ाई से अपने इस कृत्य की दाद उसने अपनी पत्नी से ले ली थी।

आते ही उसने चन्दा से कहा था कि रिबन और क्लिप वह नीला के लिए लाया है और लिपस्टिक, क्रीम और पाउडर उसके लिए। फिर कुछ क्षण ठहर कर दो-चार इधर-उधर की बातें करके उसने कहा था, "मुझे तो जरा-जरा-सी ये दो चीजें तुम्हारी बहन को देते शर्म आती है। वह तुम्हारी वहन ठहरी, ये जरा-जरा-सी चीजें उसे क्या दूँगा?" और फिर जैसे उसे उसी समय ख़याल आया हो, उसने कहा, "तुम यह लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर भी उसे दे देना। उसे कुछ तसल्ली तो हो। तुम्हारे लिए मैं अगली बार आता हुआ और ले आऊँगा। वह तुम्हारी वहन है और पहली बार उसने कुछ फ़रमाइश की है..."

और भोली चन्दा मान गयी थी। लेकिन जब बस्ती जाने पर उसने नीला को वह कुछ दिया जो उसके जीजा उसके लिए लाहौर से लाये थे तो वह हँस दी थी। क्लिप और रिबन उसने रख लिए थे किन्तु शेष चीजें उसने चन्दा को वापस दे दी। इस पर चन्दा ने उससे कहा था, "इन्हें तुम स्वयं ही अपने जीजा को वापस देना।"

तब पाउडर का डिब्बा और क्रीम तथा लिपस्टिक की शीशियाँ उठा कर नीला ऊपर गयी थी और तीनों चीजें उसने चेतन के सामने रख दी थीं।

"इन्हें आप बहन को दे दें।" उसने कहा था।

"लेकिन मैं तो सिर्फ़ तुम्हारे लिए लाया हूँ।"

"मैं कैसे इनका प्रयोग कर सकती हूँ?"

"क्यों?"

"आप भी भोले हैं जीजा जी! किसी कुंवारी लड़की बस्ती में आपने सुर्ख़ी या पाउडर लगाये देखा है?"

इतने ही से उसके गाल सुर्ख़ हो गये और इससे पहले कि न कुछ कहता वह भाग गयी।

पीछे चलने लगी।

"तुम मेरे बराबर क्यों नहीं चलतीं ?"

"मै आपके पीछे ही अच्छी हूँ !"

"पागल हो, मेरे साथ-साथ चलो !"

वह तनिक आगे आ गयी । लेकिन अब भी वह उसके बिलकुल बराबर न थी । बात करने के लिए चेतन को अपना सिर तनिक मोड़ना पड़ता था ।

ठंडी हवा चलने लगी थी । लॉ कॉलेज रोड की धूल-भरी सड़क से बचने के लिए (जो तब म्यूनिसिपेलिटी के अधीन न आयी थी और जहाँ पाँव टखनो तक धूल से धँस जाते थे) वे लॉ कॉलेज होस्टल की दीवार के साथ-साथ जा रहे थे। होस्टल के अन्दर बरामदे मे घूमता हुआ कोई बेफिक्रा छात्र अलाप रहा था :

तेरे सोहनयाँ बालाँ दी छाँ हेठाँ
मेरे दिल ने आहलना पा लिया नी ।[1]

चेतन को कोई बात न सूझ रही थी । अपने कोट को सीने पर और भी कसते हुए उसने कहा, "सर्दी खूब उतर आयी है ।"

"मुझे तो इन कपड़ो मे भी गर्मी लगती है ।"

"तुम्हारे शरीर मे अभी गर्मी है । मेरी गर्मी तो अखबार के दफ़्तर में निकल गयी ।" और चेतन हँसा ।

फिर दोनों चुपचाप चलने लगे ।

· कचहरी रोड के मोड़ पर अँधेरे मे दो-तीन सिपाही छिपे खड़े थे । ज्योंही एक व्यक्ति (इस खयाल से कि चौरस्ते के समीप जा कर वह उतर जायगा) बत्ती और ब्रेकों के बिना साइकिल पर गुनगुनाता हुआ गुजरा कि उन्होंने सीटी दी । उसकी गुनगुनाहट सहसा वायुमण्डल मे विलीन हो गयी, रंग फक हो गया और पाँव भी सड़क से घिसटने लगे ।

"अपना नाम बताओ !" सिपाही ने अपनी नोट बुक और पेंसिल

---

१. तेरी सुन्दर केशराशि की छाया में मेरे दिल ने नीड़ बना लिया है ।

निकाल कर विजली की रोशनी मे हो कर कहा ।

"ग़लती हो गयी सरदार जी, गुनाह माफ़....।"

चेतन हँसा । ग़लती और गुनाह—कितनी आपेक्षिक बातें हैं । वह रोज़ इसी तरह विना वत्ती और ब्रेकों के साइकिल चलाता होगा और अपने मित्रों मे अपनी इस चालाकी और चाबुकदस्ती की डींग मारता होगा। लेकिन अब वह पकड़ा गया है तो वही उसका चातुर्य उसकी ग़लती बन गया है, गुनाह वन गया है । सोसाइटी की दृष्टि मे गुनाह प्रकट ग़लती का नाम है । बड़े-से-बड़ा गुनहगार यदि अपने गुनाहों को समाज की दृष्टि से बचा सकता है तो वह पुण्यात्मा है और फिर दंड, क्षमा, कर्तव्य, क्या सापेक्ष नही ? इस गुनहगार को माफ़ करके सिपाही अपने-आपको दया का अवतार समझ कर सीना फुला सकता है । किन्तु यदि कोई बड़ा अफ़सर पास हो तो ऐसे व्यक्ति को जिसकी साइकिल की वत्ती तेल समाप्त होने के कारण बुझ गयी हो और जो सचमुच माफ़ी का अधिकारी हो, पकड़ कर चालान करके अपनी कर्तव्यपरायणता की दाद ले सकता है ।

और चेतन के होंटों पर एक मुस्कान फैल गयी ।

'नीला गुम्बद' पार करके दोनों माल रोड पर हो लिए । चेतन बहुतेरा चाह रहा था कि अपनी इस नयी पत्नी को अपने हँसमुख स्वभाव का कुछ परिचय दे—और कुछ नही तो दो एक ठहाके ही लगाये । लेकिन वह कुछ खिन्न-सा हो रहा था । शायद उसके अर्द्ध-चेतन में कहीं से हीन-भाव आ बैठा था, जो शायद श्रीमती राधारानी के ड्राइंग-रूम को देख कर पैदा हो गया था, या उसके कपड़ों की कमी ही अज्ञात रूप से उसके मन-प्राण पर छा गयी थी ।

तंग आ कर उसने अपनी पत्नी को उन नेत्री महोदया की बात सुनानी शुरू कर दी । लेकिन बहुत समझाने पर भी, ह्वाइट पेपर क्या बला है, चन्दा भली-भाँति यह बात न समझ सकी....'हुँ....हुँ' ! वह ज़रूर करती रही, किन्तु वक्तव्य लिखाने-लिखवाने के सम्बन्ध मे श्रीमती राधारानी की परेशानी और उनके स्थान पर स्वयं ही वक्तव्य लिखने की बात कह कर

चेतन अपनी पत्नी के होंटों से जिस हँसी की आशा रखता था, उसका वहाँ कोई आभास उसे न मिला ! तब और भी खिन्न हो कर उसने अपनी पत्नी को बताया कि उसे अवश्य ही शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। स्त्रियो के लिए, विशेषतया लेखकों के साथ विवाह की गाडी मे जुतने वालियों के लिए और उनमे भी उसकी अपनी पत्नी के लिए ज्ञानार्जन की महत्ता उसका प्रिय विषय था। इसलिए इस सम्बन्ध मे उसने एक छोटा-मोटा भाषण देना शुरू कर दिया। लेकिन तभी दयाल सिह मैन्शन पर उसकी दृष्टि पड़ी और उसे याद आया कि उसे तो लाला गणेश दास से इन्टरव्यू लेना है।

दयाल सिंह मैन्शन की शक्ल आधे कटे हुए अंडे की-सी है। जहाँ से दुकानों की पाँत गोल होने लगती है वहीं प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता लाला गणेश दास एडवोकेट का बोर्ड लगा था। काफी चौड़ी सीढियाँ उनके फ़्लैट को जाती थी। अपनी पत्नी को साथ ले जाने मे उसे कुछ संकोच हुआ। उसे सीढ़ियो ही मे खड़ी करके वह ऊपर गया घंटी का बटन दबाया। नौकर ने उसे आफिस मे बैठाया और बताया कि वकील साहब अभी आते हैं।

चेतन पाँच मिनट तक बैठा रहा, लेकिन वे नही आये। तब भाग कर और चंद सीढियाँ उतर कर उसने अपनी पत्नी से कहा, "घबराना नही मैं अभी आया !" और वह भाग कर फिर कमरे मे अपनी जगह पर जा बैठा।

वहीं बैठे-बैठे उसे पाँच मिनट और बीत गये तब उसने नौकर से फिर पूछा और उसे मालूम हुआ कि वे बस खाना खत्म ही कर रहे हैं, अभी पाँच मिनट मे आ जायेंगे।

तब फिर चेतन भाग कर सीढियों पर गया। अपनी पत्नी के कन्धे को थपथपाते हुए उसने कहा, "देखो घबराना नहीं, सकुचाना नहीं। अव्वल तो यह माल रोड है, यहाँ भले आदमी बसते हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि एक भला आदमी कब भलाई छोड़ दे और बुराई शुरू कर दे। इसलिए यदि कोई सीढ़ियों से गुजरने वाला व्यक्ति किसी तरह की

शैतानी करना चाहे तो बेधड़क हो कर उसे डाँट देना या मुझे बुला लेना। सीढ़ियाँ चढते ही सब से पहले कमरे मे हूँ !"

उसे यो आश्वासन दे कर और स्वयं आश्वस्त हो कर वह फिर कमरे मे जा बैठा।

तभी नेता महोदय धोती बाँधते-बाँधते आ गये। एक निमिष के लिए चेतन ने उन्हें देखा। काला रंग, मोटा थल-थल पिल-पिल शरीर, मँझला क़द, छोटी कन्धों मे धँसी हुई गर्दन, उस पर बड़ा चौड़े मस्तक वाला सिर और उस पर बिना क्रीज़ की गोल-सी बनी गाँधी टोपी। और चेतन सोचने लगा कि किस प्रकार ऐसे भद्दे शरीर को ऐसा प्रखर मस्तिष्क प्राप्त है ?

आ कर लाला जी ने एक लम्बा वक्तव्य लिखवाया—ह्वाइट पेपर तो बस ह्वाइट पेपर (कोरा कागज) ही है। जो अधिकार एक हाथ से दिये गये है, उन्हें दूसरे हाथ से छीन लिया गया है। न केवल यह, बल्कि जो अधिकार पहले प्राप्त थे उन पर भी हस्तक्षेप किया गया है। आदि-आदि....

जब चेतन वह महत्वपूर्ण इन्टरव्यू ले कर वापस आया तो उसकी पत्नी खड़े-खड़े थक कर और लगभग रुआँसी हो कर वहीं सीढ़ियों पर बैठ गयी थी।

लेकिन इस इन्टरव्यू के कारण चेतन की खिन्नता कुछ दूर हो गयी थी, इसलिए उसने अपनी पत्नी को तनिक गुदगुदा कर हँसा दिया।

सीढ़ियों से उतर कर चेतन ने सोचा कि अब क्या किया जाय ? अभी सवा दस बजे थे। चेतन के मन मे आया कि वापस जाये और अपनी कारगुजारी दिखा कर प्रशंसा पाये। लेकिन उसे मालूम था कि प्रशंसा तो सम्पादक महोदय को मिलेगी और उसे और कई घन्टे काम करना पड़ेगा। किसी भव्य भवन के निर्माण का श्रेय तो इंजीनियरों ही को मिलता है, राज मजदूर तो बस दिन-रात काम करते है। उसने निश्चय किया कि आज जब इतने दिनों के बाद कुछ अवसर मिला है तो कहीं घंटे डेढ़ घंटे की

सैर कर ली जाय।

पत्नी ने कहा, "देर हो गयी है, माँ प्रतीक्षा करती होगी, इसलिए घर चलना चाहिए।" लेकिन चेतन का मन कुछ उमंग पर था। उसने कहा, "अब तक तो इन्टरव्यू सिर पर सवार था, सैर का आनन्द तो अब आयेगा।"

और वे दोनों लारेंस की ओर चल पड़े। चेतन ने प्रकाशो से अपने रोमांस का किस्सा छेड़ दिया।

विक्टोरिया गेट के पास पहुँच कर चेतन ने कहा, "आओ तुम्हें लारेंस दिखा लायें।"

"वह क्या है?"

"यहाँ का प्रसिद्ध बाग है!"

"लेकिन रात बहुत बीत गयी है।"

"तो क्या हुआ?"

और वे विक्टोरिया गेट में से हो कर चले। चिड़िया घर की ओर इशारा करके उसने बताया कि यह चिड़िया घर है और वे जलचरों के तालाब के पास से हो कर गुज़र रहे हैं। दूसरी ओर बारासिंघे और मृग हैं जिनको बाहर जाने से रोकने के लिए बड़े-बड़े ऊँचे लोहे के जँगले लगे हुए हैं।

चन्दा ने उत्सुकता से इधर-उधर देखा, किन्तु सड़क की बिजली के मद्धिम उजाले मे जँगले के एक हिस्से के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखायी न दिया। हाँ, सड़े पानी की गन्ध उसके मस्तिष्क मे बस गयी और उसका दम घुटने-सा लगा।

लारेंस बाग़ बोटैनिकल गार्डन्स के नाम से भी प्रसिद्ध है। तरह-तरह के देशी-विदेशी पेड़-पौधे वहाँ लगे रहते है। चिड़िया घर के तालाब से ज़रा आगे, न जाने किस नाम के देशी या विदेशी दो बड़े-बड़े घने विशालकाय पेड़ हैं, जिन पर चमगादड़ विचित्र डरावने स्वर मे चीखते रहते हैं। वहाँ पहुँच कर चेतन की पत्नी डर गयी—अँधेरी रात, सर्दी,

ग्यारह का समय और सन्नाटा ! चेतन का हृदय भी धक-धक करने लगा ....यदि कोई गुंडा इधर निकल आये और उन्हे तंग करे तो वह क्या कर सकता है ? उसकी तो आवाज़ भी सुनायी न देगी....दो-चार गुडे तो बड़ी आसानी से उसकी पत्नी तक को छीन कर ले जा सकते है....

तभी उसकी पत्नी ने उसका दामन पकड़ कर खीचा, "मै कहती हूँ चलिए, वापस चले चलिए ।" उसकी आवाज़ रोने की हद को पहुँच रही थी, "मुझे डर लग रहा है ।"

उस समय चेतन के अन्तर का पुरुष जाग उठा । डर ! वह तो पुरुष है । डर उसके सामने क्या वस्तु है ? और उसने साहस के साथ कहा, "नही नही, अब इतनी दूर आ कर वापस क्या जायँगे । यहाँ बड़ी रौनक़ हुआ करती है ।" और मन मे उसने सोचा—म्यूनिसिपेलिटी ने ऐसी अँधेरी जगह बिजली का बल्ब क्यों नही लगवाया ।

लगभग सौ गज़ चल कर वृक्षों मे से छनती हुई मिंटगुमरी हाल के बल्ब की रोशनी सामने दिखायी दी ।

चेतन का खयाल था कि लॉन मे कुछ रौनक़ होगी । अभी महीना डेढ महीना पहले, जब एक दिन उसे इधर आने का अवसर मिला था, उसने बारह बजे रात तक लारेंस मे रौनक़ देखी थी । लेकिन वह भूल गया कि सर्दी उतर आयी थी और लारेंस मे आने वालो के पास सर्दियों, मे अपने-आपको व्यस्त रखने के लिए सैर के अतिरिक्त दूसरे भी कई साधन थे ।

यद्यपि उस रोशनी से उसे कुछ तसल्ली हुई थी और वह रात के उस सन्नाटे मे अपनी पत्नी को लारेंस का परिचय देता रहा था, लेकिन उसका रोमांस ठंडा पड चुका था और उस समय तक नहीं जागा जब तक सड़क छोड़ महारानी विक्टोरिया की मूर्ति नही आ गयी ।

०

घर पहुँचा तो माँ ने रो कर कहा कि उसे दूसरे दिन गाड़ी पर चढा दिया जाय ।

उस समय तो चेतन बे-सिर-पैर के बहाने बना कर और एक दो बार खिसियाने-सी हँसी हँस कर सोने चला गया। लेकिन दूसरे दिन उसने माँ से माफी माँगी और कहा कि उसे एक जगह दफ़्तर का काम पड गया, जिससे देर हो गयी। उसने अपनी पत्नी से भी कहा कि वह माँ के चरणों पर गिर कर माफी माँगे। किसी तरह के अपराध के बिना वह अपनी सास के कदमों पर झुकी भी, लेकिन माँ नही मानी। वह सुबह ही जाने को तैयार हो गयी। वह कुछ बोली नही, गुस्सा नही हुई, जाते समय हँसी भी, उसने आशीर्वाद भी दिया, किन्तु नये जमाने के यह लच्छन देख सकने की शक्ति न रखने के कारण उसने वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

तीस

माँ के चले जाने पर एक और समस्या चेतन के सामने आयी। उसे तो इसका पता ही न चलता यदि भाई साहब बातों-बातों मे स्वयं ही इसकी ओर इशारा न कर देते।

बात यह थी कि चन्दा भाई साहब से आध बालिश्त का घूंघट निकालती थी। दोपहर के समय चेतन तो बारह बजे दफ़्तर चला जाता और भाई साहब काम से फ़ारिग़ हो कर एक डेढ़ बजे आते। तब चन्दा भाग कर पिछले कमरे मे जा छिपती। भाई साहब किसी पडोसिन को बुलाते। उससे कहते कि तनिक चन्दा से खाना देने के लिए कह दे। वह खाना ला कर दे देती और तब तक बैठी रहती जब तक भाई साहब खाना समाप्त न कर चुकते। इस तरह भाई साहब को अपनी इस छोटी भावज से यदि कोई बात कहनी होती तो पहले वे उस पड़ोसिन से कहते, फिर वह चन्दा से कहती। इसी प्रकार चन्दा का उत्तर भी उसी के द्वारा भाई साहब तक पहुँचता।

"अब घर की अपनी कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जो किसी पड़ोसिन के सामने नही भी कही जा सकतीं ?" भाई साहब ने कहा था । "तुमने अच्छा आर्य-समाजी घर में विवाह किया ! मैंने कभी नही देखा कि छोटी भावज जेठ की छाया तक से दूर भाग जाय ।"

उसी दिन चेतन ने अपनी पत्नी से कहा, "यह तुम्हारी कैसी मूर्खता है ? विवाह के अवसर पर तो तुमने घूँघट निकाला नहीं, ससुर छोड ससुर के पिता तक उपस्थित थे । और अब जेठ ही से डेढ गज लम्बा घूंघट निकाले फिरती हो ।"

उसकी पत्नी हँसी—अपनी मोतियों-सी उज्ज्वल हँसी । "मैं तो माँ जी के डर से निकालती हूँ," उसने कहा, "कहिए अभी हटा दूँ ?"

"लेकिन माँ यहाँ कहाँ बैठी है ।"

"यदि उन्हें पता चल जाय ?"

"तो फिर कौन-सा प्रलय आ जायगा । उनका और परदादी गंगादेई का जमाना अब लद गया !"

चन्दा ने उस दिन अपने पति को वचन दिया कि वह निश्चय ही घूंघट हटा देगी, किन्तु इस पर भी अपने जेठ के सामने घूंघट उठाने मे उसे झिझक ही रही । जब भी वे बाजार में सामान खरीदने के लिए जाते तो यों होता कि एक ओर भाई साहब होते और दूसरी ओर चेतन और दोनों के मध्य घूंघट निकाले चन्दा चलती । पर्दे के कारण उसे जो कष्ट होता उसके विचार से भाई साहब आगे बढ जाते अथवा पीछे रह जाते और यदि कोई ऐसी चीज़ मोल लेनी होती जिसमें उनके परामर्श की आवश्यकता न होती तो वे कोई-न-कोई बहाना करके चले जाते ।

०

दिवाली का दिन था । चेतन अपने बडे भाई और अपनी पत्नी के साथ साँझ समय अनारकली की सैर को निकला । यद्यपि दीवाली के दिन अनारकली की सैर का आनन्द रात ही को आता है, लेकिन चेतन और उसके बड़े भाई का यही विचार था कि दिये जलने से पहले-पहले अनारकली की सैर

कर ली जाय और जो मिठाई आदि लेनी है, ले ली जाय। कारण यह था कि दिये जलते ही अनारकली मे बेपनाह भीड़ हो जाती है और उस भीड़ मे गुडो का इतना आधिक्य होता था कि किसी शरीफ़ आदमी के लिए अपनी बीवी या बहन को साथ ले कर निकलना और बेइज्ज़ती से बचना लगभग असम्भव था। उससे पिछले वर्ष दीवाली के अवसर पर अनारकली मे जो हुआ था, उसके किस्से चेतन ने समाचार पत्रों मे पढ़े थे। अपने एक मित्र की पत्नी के मुँह से सुने भी थे और उसका खून खौल-खौल उठा था—उसका मित्र अपनी पत्नी और लड़कों के साथ दीवाली की रात अनारकली की बहार देखने घर से निकला था। अभी वे 'पैसा अखबार स्ट्रीट' ही मे थे कि उन्होने देखा कि स्वयं-सेवकों और सिपाहियों द्वारा सुरक्षित रस्सियों को तोड़ कर गुडो का बेपनाह हुजूम बाढ़ पर आयी हुई नदी की तरह बह रहा है—उनके देखते-देखते एक लड़का उछल कर एक ताँगे मे पिछली सीट पर बैठी हुई स्त्री के बराबर जा बैठा। इससे पहले कि अगली सीट पर बैठा हुआ पुरुष उससे कुछ कहता, उसके गाल की चुटकी भर, फिर उछल कर भीड़ मे जा मिला। एक चलती मोटर के साथ लटकते हुए दो-तीन युवकों को उन्होंने देखा जो अन्दर बैठी लडकियों से मजाक कर रहे थे—चलते-चलते स्त्रियो को चुटकी काटना उन्हे धक्का देना और फ़िकरे और फब्तियाँ कसना आम बात थी—और चेतन के मित्र पैसा अखबार स्ट्रीट से वापस चले आये थे।

अभी सूरज डूबा न था जब चेतन, उसकी पत्नी और भाई साहब 'नीला गुम्बद' की ओर से अनारकली मे दाखिल हुए। पिछले वर्ष दीवाली के दिन जो गुडागर्दी हुई थी, उसके विरुद्ध समाचार-पत्रो मे बड़ा हो-हल्ला मचा था। यही कारण था कि इस वर्ष महावीरदल, सेवा समिति, आर्य-समाज, स्काउट्स—सभी मिल कर अनारकली के प्रबन्ध मे व्यस्त थे।

"ये सब प्रबन्ध धरे के धरे रह जायँगे," भाई साहब ने दार्शनिकों के से अन्दाज मे कहा, "मुझे तो उन स्त्रियो पर हँसी आती है जो यह सब जानते हुए भी तमाशा बनने चली आती है।"

"और मुझे कॉलेज के लड़कों पर गुस्सा आता है," चेतन बोला, जो ऐसी अनुचित और भोंडी हरकतें करते हैं। उनके घर माँ-बहनें नहीं क्या ?"

"माँ बहनें !" भाई साहब हँसे, "मुझे बाबूराम की याद आ जाती है।"

"बाबूराम ?"

"हमारे साथ पढ़ता था," भाई साहब ने कहना शुरू किया। "लफ़ंगा नम्बर वन था। कोई लड़की जाती (सूरत-शक्ल कैसी भी क्यों न हो) वह छेड़खानी करने से बाज न आता था। एक दिन कॉलेज से छुट्टी हुई। हम लोग साइकिलों पर चले जा रहे थे कि दूर एक स्त्री एक युवती को साथ लिये हुए जाते दिखायी दी।....'सन्दूक !' बाबूराम ज़ोर से चिल्लाया। सन्दूक का मतलब माशूक से था," भाई साहब ने समझाया, "'आशिक जालन्धरी' ने उन्हीं दिनों एक मुशायरे में एक शेर पढ़ा :

हो जो सन्दूक तो ईंधन ही बना ले उसका
काम आता नहीं माशूक़ पुराना हो कर।

और उसी दिन से हमारे कॉलेज के लड़कों ने माशूक़ के बदले सन्दूक पुकारने लगे थे,...."

"सन्दूक," और विषय के गाम्भीर्य को भूल कर अचानक चेतन ने वहीं बाजार में रुक कर जोर का ठहाका लगाया और चन्दा ने घूंघट तनिक और खींच लिया।

"उस लड़की को देखते ही," भाई साहब ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "बाबू राम सन्दूक—सन्दूक चिल्लाता हुआ उसके पीछे भागा। उसके साथियों ने उससे बाजी मारने की कोशिश की। पैडलों पर जोर बढ गया। साइकिलें हवा से होड़ ले चली। लेकिन ज्यों ही बाबू राम ने उस लड़की के पास पहुँच कर फब्ती कसी और लड़की ने मुँह घुमाया कि बाबूराम के होंटों से एक हल्की-सी चीख़ निकल गयी।

" 'क्या माल है !' लड़की की सुन्दरता देख कर एक ने आह भरी।

" 'बाबूराम को तो गश आने लगा है,' दूसरा हँसा, 'साले की आँखो मे उकाब बैठे है जो इतनी दूर से माल पहचान लेते है।'

"किसी ऐसे व्यक्ति की तरह जिसे शिकंजे मे कसा जा रहा हो, बाबूराम फुसफुसाया, 'मेरी बहन है, जरा साइकिल तेज़ चलाओ।' "

चेतन ने फिर बीच बाज़ार रुक कर ठहाका लगाया।

भाई साहब ने अपने विचारो की रौ मे तनिक उत्तेजित हो कर कहा, "ये कॉलेज के लड़के जो आती-जाती लड़कियो को छेड़ते है, उन्हे देख कर अत्यन्त अश्लील मजाक करते है, यह कभी नहीं सोचते कि उन्ही के मित्र उनकी बहनो को देख कर भी ऐसे ही अश्लील मजाक करते होगे।"

"हमारे पाठ्य-क्रम मे चरित्र और नागरिकता की शिक्षा को कोई महत्व प्राप्त नही।" चेतन को जैसे भाई साहब की उत्तेजना छू गयी, "आर्य-समाजी स्कूलो-कॉलेजों मे 'संध्या' के श्लोक याद कर लेना (या अधिक हुआ तो प्रातः सायं संध्या कर लेना;) सनातन धर्मी संस्थाओं मे 'ओम् जय जगदीश हरे, भगत जनन के संकट छिन मे दूर करे' का जाप अथवा सिर हिला-हिला कर और खड़तालें बजा-बजा कर 'राधेकृष्ण' या 'रघुप ति राघव राजा राम' का संकीर्तन; इस्लामी स्कूलो मे पाँच वक्त की नमाज या क़ुरान की तलावत और मिशन स्कूलो मे बाइबल का पाठ ही धर्म-शिक्षा का चरम ध्येय समझ लिया जाता है। अव्वल तो इन साम्प्रदायिक संस्थाओ के छात्र, धर्म के नाम पर एक दूसरे का ख़ून करने के लिए तैयार रहने के बावजूद, उस धार्मिक पाठ-पूजा की ओर ध्यान नही देते और जो देते है, वे बिना उसके महत्व को समझे, अध्यापको के कृपाभाजन बनने के हेतु अंधाधुन्ध संध्या-वन्दन किये जाते है। रहे सरकारी स्कूल और कॉलेज—वहाँ अपने धर्म के प्रति आस्था ही मिट जाती है और लड़के माँ-बाप का रुपया उड़ाने और औबाशी सीखने के अतिरिक्त कुछ नही सीखते। मेरा बस चले तो सारी-की-सारी यूनीवर्सिटी को ढा कर....।"

चेतन भाषण देने के अन्दाज़ मे बड़े ज़ोर से हाथ को हवा मे घुमा

रहा था कि अचानक उसकी पत्नी उसे धरती मे धँसती हुई दिखायी दी—पलक झपकते एक बाँह से चेतन और दूसरी बाँह से भाई साहब ने उसे थामा, नही वह धरती मे समा गयी होती अथवा औंधे मुँह गिर पड़ती।

बात यह थी कि जब दोनों भाई कॉलेज के लड़कों की इस उच्छृंखलता का आधारभूत कारण जाने बिना उनकी बदचलनी को कोसने में एक दूसरे से बाजी ले जाने में निमग्न थे, चन्दा पूर्ववत घूँघट निकाले दोनों के मध्य चली जा रही थी। बेली राम ड्रगिस्ट की दुकान के पास से हो कर लोहारी के चौक तक धरती के अन्दर-ही-अन्दर जो नाली जाती है, उसमें कभी-कभी कुछ जगह खुली पडी रहती है और म्युनिसिपेल कमेटी उसे कई-कई दिन तक ढकने का नाम नही लेती। वही नाली एक दो जगह से उस दिन खुली पडी थी। चन्दा ने घूँघट तो निकाल ही रखा था। वह गढा न देख पायी। उसका पाँव उसमें फँस गया। यदि दोनों भाई अचानक दोनो ओर से उसे थाम न लेते तो वह औंधे मुँह गिर पड़ती, रेशमी साड़ी जो ख़राब होती सो-होती, टाँग अलग टूट जाती।

जब तनिक स्वस्थ हो कर चन्दा फिर चलने लगी तो उसने पूर्ववत घूँघट निकाल लिया, बल्कि लज्जा के कारण लाल हो जाने वाले मुख को छिपाने के लिए और भी लम्बा कर लिया। लेकिन साड़ी को ठीक कर जब वह चलने लगी तो चेतन ने क्रोध के साथ पीछे से घूँघट खीच लिया।

चन्दा ने फिर घूँघट नहीं निकाला, किन्तु सारा मार्ग उसने जेठ की ओर आँख उठा कर भी नही देखा, निगाहे नीची किये वह चलती गयी?

लेकिन दो महीने के बाद जब भाभी फिर लाहौर आयी और उसने अपनी देवरानी को निर्लज्जों की तरह अपने जेठ के सामने हँसते और ठहाके लगाते देखा तो उसके आग-सी लग गयी।

चेतन की ससुराल मे किसी लड़की की शादी थी और इस बात की

सम्भावना थी कि शायद दोनों को वहाँ जान प ड़े। इसलिए भाई साहब ने अपनी पत्नी को बुला लिया था। उसके पत्र पर पत्र आते थे और फिर चेतन भी इसे ज़्यादती समझता था कि वह तो अपनी पत्नी के साथ लाहौर का आनन्द लूटे और उसके भाई साहब दुकान की उस परछत्ती पर पड़े सड़ते रहें।

लाहौर पहुँच कर श्रीमती चम्पावती देवी ने देखा कि जब उसके पति दुकान से आये तो उसकी देवरानी ने न तो घूँघट निकाला—घूँघट निकालना तो दूर रहा, सिर पर कपड़ा तक नहीं लिया—न अपना स्वर ही धीमा किया और न आँखें ही झुकायीं। उसी तरह ठहाके लगाती रही। और तो और अपने आदर-योग्य जेठ से भी एक दो मजाक करने से नहीं हिचकिचायी।

उसका देवर उस समय घर पर न था, नहीं वह अवश्य ही उनसे इस निर्लज्जता का कारण पूछती।

इसके बाद एक दिन जब फिर चन्दा अपने जेठ की उपस्थिति में जोर से हँसी तो चेतन की भाभी उसे रोक दिया, "ससुर-जेठ की कुछ तो शर्म होनी चाहिए बहन, आँखों का पानी क्या बिलकुल ही मर गया।"

चन्दा जब हँसती थी तो सुन्दर लगती थी। उसका मौन चेतन को खलता था, इसलिए वह सदैव हँसाता रहता था और चन्दा को हँसने की आदत भी पड़ गयी थी। जेठानी की इस डाँट से उसकी हँसी सहसा रुक गयी और ग्लानि से उसके मुख का रंग पीला पड़ गया।

०

उसी शाम आँगन के ऊपर रहने वाली विधवा चेतन की भावज को यह सदुपदेश दे रही थी :

"तुम हँसने और घूँघट उठाने की बात कह रही हो, मैं कहती हूँ, वह सिनेमा और सैर-तमाशे अपने जेठ के साथ जाती है। देखो बहन जमाने की आँख में शर्म नहीं, अपने पति को सम्हाल कर अपने बस में रखो।"

चम्पावती ने रुद्धकंठ से कहा, "और मैं अपने देवर तक से घूँघट

निकालती हूँ, ऊँचे स्वर से बात नही करती !"

"मुझे तो उस पर हँसी आती है जिसने अपनी पत्नी को इतनी आजादी दे रखी है !"

०

लेकिन चम्पावती को न अपनी देवरानी पर गुस्सा था, न अपने देवर पर उसे तो अपने पति पर क्रोध आता था ।

जब रात को उसके पति खाना खाने आये तो उसने कहा :

"भला वह तो बच्ची है, आपको तो शर्म आनी चाहिए जो इस तरह उसके हँसी-मज़ाक में योग देते हो ।"

भाई साहब पूरे तितिक्षावादी थे—मीठी, कड़वी, तीखी, चुभती किसी बात का भी उन पर कुछ प्रभाव न पड़ता था। वे चुपचाप खाना खाते रहे ।

"जब वह आपके सामने बैठी 'हि, हिं', करती है तो आप से रोका नही जाता उसे ?" भाभी ने मुँह बिचका कर कहा था ।

"मै उससे कह दूँगा," यह कह कर हाथ-मुँह धो, छड़ी उठा वे सैर को चले गये थे ।

लेकिन अपने पति के इस वाक्य से चम्पावती की तुष्टि न हुई थी और जब उसकी देवरानी उसके संग खाना खाने बैठी तो उसने अपने-आप पर बडा संयम रख कर उसे समझाया कि बड़ो के प्रति छोटों का क्या कर्तव्य होना चाहिए, छोटों को बड़ों से कितना विनम्र व्यवहार करना चाहिए, किस प्रकार ससुर और जेठ से पर्दा करना चाहिए और किस तरह उनके सामने बोलना तक न चाहिए ।

"पुरुष तो ऐसे ही होते है", चेतन की भाभी ने कहा था, "उन्हे तो लोकाचार का ज्ञान नही होता । इन सब बातों का ध्यान तो स्त्रियो ही को रखना पड़ता है । तुम्हारे जेठ ने बहुतेरा कहा, पर जब देवर सयाने हुए तो मैने उनसे पर्दा करना शुरू कर दिया !"

चन्दा ने उस समय तो अपनी जेठानी को कोई उत्तर नही दिया, पर

चेतन ने महसूस किया जैसे चिरकाल से बनाया हुआ उसका स्वप्न-संसार छिन्न-भिन्न हो गया हो।

०

लेकिन उसी शाम को दोनों चीजें अपनी पत्नी को वापस देते हुए उसने कहा, "अच्छा हुआ नीला ने इन्हे नही लिया।"

चन्दा ने चुपचाप चीजे ले ली।

"मुझे सिर्फ तुम्हारा खयाल था," चेतन ने एक खिसियानी-सी हँसी के साथ कहा, तुम्हारी बहन कही यह न कहे कि उसका जीजा महाकंजूस है, नही मै सोच रहा था कि यह चीजें नीला को देने के लिए कह तो दिया, पर तुम्हारे लिए कहाँ से लाऊँगा। इस महीने तो कुछ बचा नहीं पाया।"

चन्दा चुपचाप सुनती रही।

और ब्योरा देते हुए चेतन ने कहा, "तुम्हे मैंने लिखा था न कि इस महीने का लगभग सारा वेतन मैंने भाई साहब को दे दिया है। उन्होने नीला गुम्बद के पास बाइबल सोसाइटी से सामने दुकान खोल ली है। चल निकलने की पूरी आशा है। पहले ही महीने तीस रुपये आये है। लेकिन रुपये तो आते है दो-दो चार-चार करके, पर किराया देना पड़ता है इकट्ठा सो तीस तो उन्हे दे दिये। शेष दस से ये चीज़ें लाया और यहाँ भी आया। मकान का किराया अभी देना बाकी है। खाने का तो खैर भाई साहब प्रबन्ध कर देंगे, पर मै सोच रहा था....लेकिन यह अच्छा ही, हुआ तुम यह रखो! अगले महीने टिकुली और तेल आदि भी तुम्हे ला दूँगा।"

०

किन्तु उसी रात वह नीला से कह रहा था :

"नीला तुमने वह सब वापस कर दिया, यह न देखा कि लाने वाले के हृदय को कितनी ठेस पहुँचेगी?"

रात के अँधेरे मे नीला ने अपने इन जीजा की आँखो मे देखने का

प्रयास किया ।

वह मुँडेर पर बैठी थी । तनिक अंतर से चेतन चारपाई पर लेटा हुआ था । ऊपर आकाश मे तारे टिमटिमा रहे थे । चौथ का चाँद किसी कुवडे की तरह लेटा हुआ था । एक नन्हा-सा चमगादड़ इधर-से-उधर और उधर-से-इधर अतीव विह्वलता से उड रहा था । नीला को लगा जैसे निमिप मात्र के लिए चेतन का गला भर आया हो ।

उसने हँस कर कहा, "जीजा जी ! मै ले कर क्या करती, जव मै उन्हे काम मे न ला सकती थी । आप कोई चीज लायें जो मैं काम में ला सकूँ फिर मै उसे न लूँ तो...."

चेतन को सान्त्वना मिली और फिर उसने नीला का हाथ खीच कर अपने हाथ मे ले लिया ।

नीला चुप वैठी रही ।

उसके हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए उसने वताया कि वह चन्दा को कुछ दिनो के लिए वस्ती ही छोड़ जाना चाहता है ।

उसने कहा, "मेरी माँ देवी है । उसने हमारी खातिर अनेक कष्ट सहे है । दुखों के कारण उसमे जान तक भी नही रही । उसने हमें कभी गाली नही दी, झिड़का नही, वुरा-भला नही कहा । मेरी सदा यह अभिलापा रही कि मै उसे प्रसन्न कर सकूँ । उसके आँसू मै सहन नही कर सकता । इसीलिए मै चाहता हूँ कि उससे कुछ न कह कर चन्दा ही को कुछ दिन के लिए वस्ती छोड़ दूँ ।"

नीला ने सिर्फ इतना ही कहा था, "वह तुम्हारी माँ है, पर चन्दा की तो सास है । वस यही अंतर है ।"

"मै हैरान हूँ नीला, कि चन्दा से भी माँ की नही निभ सकी । भाभी के सम्वन्ध मे तो माँ कहती थी कि वह लड़ाकी, झगड़ालू, कर्कशा है, लेकिन तुम्हारी वहन तो ऐसी नही । उसमे और कुछ न हो सरलता, सहृदयता, विनम्रता तो कूट-कूट कर भरी हुई है । मैं सोचता था कि मै न सही, माँ तो खुश होगी, लेकिन..."

और चेतन ने नीला का गर्म हाथ अपने ठंडे गालों पर रख लिया। एक निमिष के लिए वह हाथ काँपा, फिर स्थिर हो गया।

"चन्दा पढ़ी-लिखी नहीं। चार-पाँच दर्जे तक....लेकिन इतने से क्या होता है? और फिर यह एकदम देहातिन है। अपनी सारी सरलता और सहृदयता के होते भी उसे कपड़े पहनने, नहाने-धोने, बाल सँवारने, अपनी और घर की सफाई रखने की तमीज नहीं। मेरा विचार था कि माँ उसे अवश्य पसन्द कर लेगी। पर वह उसकी शिकायतें करती नहीं थकती। मैं उसे अभी ले जा नहीं सकता। भाभी वहाँ हैं और मेरे पास अधिक जगह नहीं और मैं चिंतित हूँ। तुम मेरी चिन्ता का अनुमान नहीं कर सकती...."

और वह उसके हाथ को अपने होंटों तक ले गया। उसके होंट शुष्क-से हो गये, गला सूखने-सा लगा। लेकिन उसने उसे चूमा नहीं। अपने सूखे होंटों पर फिराता हुआ वह उसे फिर गाल पर ले आया।

और फिर धीरे-धीरे जैसे अपने किसी अभिन्न-मित्र को सुना कर वह दिल का भार हल्का करना चाहता हो, उसने नीला को अपने विवाह की सारी ट्रैजेडी सुना डाली—यहाँ तक कि कुन्ती और प्रकाशो की बात भी उसने नहीं छिपायी।

नीला के हृदय की धडकन तेज हो गयी। चेतन को लगा जैसे उसके अपने हाथ और गाल के मध्य नीला का वह सुकोमल हाथ तनिक काँप उठा। धीरे-धीरे वह उस हाथ को फिर अपने सूखे होंटों की ओर ले जाने लगा था कि नीला ने जल्दी से हाथ खींच लिया।

"जीजा जी उठिए जल्दी कीजिए! आँधी आ रही है!"

अपने ध्यान में मग्न चेतन घबरा कर जल्दी से उठा। तब दूर उसने साँय-साँय की आवाज़ सुनी और बिजली की चमक में पश्चिमी क्षितिज का उग्र रूप देखा।

जल्दी से चारपाई को अन्दर चौबारे में करके नीला जाने लगी थी कि चेतन ने उसका हाथ थाम लिया।

"पागल हो गये हो जीजा जी।" और वह हाथ छुड़ा कर भाग गयी।

और चौबारे के दरवाजे में खडे चेतन ने नीला की छाया को सीढियों के और भी गहरे अंधकार में उतरते देखा।

तभी आँधी का पहला झोंका आया और एक बार आँखें मल कर चेतन ने जल्दी से किवाड़ बन्द कर लिये और चारपाई पर जा गिरा।

बाहर बस्ती के मकानों के दरवाजों, खिड़कियों और रोशनदानों की खड़खड़ाहट का शोर प्रतिक्षण बढ़ने लगा।

सत्ताइस

लाहौर आते ही चेतन ने एक पत्र लिखा—प्रकट अपनी पत्नी को, लेकिन उसका एक-एक शब्द नीला से लिए था। दूसरी कई बातों के अतिरिक्त उसने लिखा :

> 'एक अनजाने, भूले-भटके, निराश राही की तरह मैं तुम्हारे मार्ग में आ पडा हूँ! तुमने मुझे साहस बँधाया है। मेरे कानो मे नव-आशा सन्देश फूँका है। अब तुम मुझे साथ लिये चलोगी अथवा डाली से गिरे हुए, लड़खड़ाते पत्ते की तरह भटकने के लिए छोड़ दोगी।'

फिर एक पत्र मे उसने लिखा :

> 'मेरा हृदय युग-युग के सूखे सागर-सा अभाव ग्रस्त था—तरंगें और हिलोरें इसके लिए अनजानी थीं, अपने अभाव का मारा वह आकाश की ओर ताका करता था। फिर तुम नव-जीवन की बदली-सी आकाश के कोने से मुस्करायीं। यह तटों को तोड़ कर बह निकला। तूफ़ानों और हलचलों का

परिचय इसने पा लिया और चाँद-सितारों के प्रतिबिम्ब इसके तल मे झिलमिला उठे ।'

फिर एक पत्र में उसने लिखा :

'अपने समस्त मौन को तोड़ कर मै गा उठा । ऐसा उल्लास मेरी नस-नस मे समा गया जो सहसा एक अमूल्य निधि पा जाने पर किसी भिखारी के मन-प्राण पर छा जाता है । क्या मैंने निधि नही पायी ? लेकिन मै भय से सिहर उठता हूँ—कहीं यह निधि मुझसे छिन न जाय !'

लेकिन इन मुलकातों और पत्रो का सिलसिला उसे शीघ्र ही खत्म कर देना पड़ा और यद्यपि उसका विचार था कि चन्दा को अभी और दो-चार महीने मायके ही मे रहने देगा, किन्तु उसे शीघ्र ही उसको ले आना पड़ा ।

पहली बात तो यह हुई कि इन प्रेम भरे पत्रों के जो उत्तर उसे मिलते उनसे उसकी तृप्ति न होती । उसकी पत्नी तो उन्हे शायद समझती भी न थी और नीला समझ कर भी उत्तर न देती । इतनी आँखों के सामने उत्तर लिखना और फिर उसे डालना कुछ ऐसा सुगम न था । अपने टेढे-मेढ़े अक्षरो और प्रायः अधूरे शब्दों मे चेतन के लम्बे पत्रो का चन्दा जो उत्तर देती उसमे ही नीला अपने इन 'प्रिय जीजा जी' को नमस्कार लिख देती ।

दूसरे यह कि आशा के विपरीत उसकी भाभी ने उससे अत्यधिक रूखा व्यवहार किया । वह उसके पति की सहायता कर रहा है; न केवल अपने वेतन का आधे से अधिक भाग उसे देता है, बल्कि दिन-रात दुकान चलाने के बारे मे सोचता है, समाचार पत्रो में विज्ञापन देता है; मित्रों में प्रचार करता है; अपने पद की परवाह न करके अनारकली मे विज्ञापन-कार्ड बाँटता है (क्योकि किसी किराये के छोकरे द्वारा बाँटे गये कार्ड या तो हवा मे उड़ते दिखायी देते है, या अनारकली की अगणित जूतो की दूकानों के विभिन्न डिजाइन के जूतों, सैंडलों, चप्पलों और पम्पों के नीचे

रौंदे जाते हैं)। इन्हीं सब बातों के कारण चेतन का ख़याल था कि उसकी भावज उसके साथ अच्छा व्यवहार करेगी। किन्तु श्रीमती चम्पावती देवी उस कुटुम्ब में पली थीं, जहाँ भाई, भाई की सूरत तक से बेज़ार था। द्वेष उनके स्वभाव में कूट-कूट कर भरा था। इन दो महीनों में ही चेतन ने महसूस किया कि इस भावज के हाथों न उसे खाना अच्छा मिलेगा, न व्यवहार। ताने उसे घाटे में सुनने पड़ेंगे जो उसका तन-मन जलाते रहेंगे।

तीसरी बात यह हुई कि प्रकाशो उसके सिर पर सवार हो गयी। वह उसे अधिक अवसर देता हो यह बात नहीं, बल्कि अनन्त के कारण हैंड-पम्प पर जो घटना घटी थी उसके बाद वह कुछ और संकोचशील, सतर्क और संयत हो गया था। लेकिन वही प्रकाशो जो पहले उससे दूर-दूर रहती थी, भावज के आने पर उसके समीप होने की चेष्टा करने लगी। वह जब भी घर आता प्रकाशो भी कोई-न-कोई बहाना करके मुस्कराती-मटकती आ जाती—प्रकट उसकी भाभी से बातें करने, कभी उससे कोई वस्तु लेने, कभी देने, कभी बच्चों का हाल-चाल पूछने, कभी अपने घर का हाल-चाल देने। किन्तु चेतन को केन्द्र बना कर मुस्कराती-मटकती हुई उसकी आँखें चेतन पर उसके आने के सभी भेद खोल देतीं। यह और बात है कि चेतन की भाभी को कुछ भी पता न चलता।

भाभी वास्तव में विचित्र प्रकार की नारी थी। उसमें ज़िद थी, रूखापन था, सनक थी, क्रोध था और वह कुछ एकमुखी-सी थी। अजीब उसकी आदतें थीं। चेतन उसका देवर था, पर वह उससे घूंघट निकालती थी। एक बार किसी बात पर (चेतन को याद भी नहीं) अपनी इस भाभी से उसका झगड़ा हो गया था। तब से वह घूंघट निकालने लगी थी। फिर न कभी चेतन ने आग्रह किया और कभी उसने घूंघट उठाया। प्रकाशो जब भी आती तो चेतन की उपस्थिति के कारण भाभी घूंघट निकाले होती और प्रकाशो बातें चाहे भावज से करती, लेकिन उसकी निगाहें चेतन पर जमी रहतीं और जब भाभी ज़रा दूर होती तो वह ऐसी

बातें करती कि चेतन का हृदय धड़कने लगता और उसकी आँखें उसके ब्लाउज पर जा टिकती।

ऐसे समय प्रकाशो कोई ऐसी ही बात कहती : "अब तो बीवी आ गयी है, अब इन नदीदी आँखों से क्या देखते हो ?"

दुपट्टा उसके सिर से खिसक जाता, गोल-गोल गाल फूल जाते, मोटे होंट मुस्कराते और छोटी आँखें कुछ विचित्र आकांक्षा से फैल जाती।

उस समय चेतन का जी चाहता उसे अपने आलिंगन मे ले कर इतना दबाये कि उसका दम निकल जाय।

जब कभी चारपाई पर वह भाभी के पास बैठा होता (सिरहाने अथवा पायँते की ओर) और भाभी स्वाभावानुसार घूँघट निकाले होती तो प्रकाशो आ कर दूसरी ओर बैठ जाती और अपना एक हाथ भाभी की पीठ के पीछे (जैसे अनजाने मे) चेतन के समीप ले जाती कि विवश-सा हो कर वह उस पर अपना हाथ रख देता अथवा झुँझला कर चुटकी काट लेता। प्रकाशो इसके बदले मे चुटकी काटना कभी न भूलती।

एक दिन किसी बात पर हँसते-हँसते लोट-पोट होती हुई प्रकाशो पीछे की ओर इस तरह लेट गयी कि उसके पतले ब्लाउज से उसके कुचाग्र जैसे चेतन के दिमाग पर छा गये—उसकी निगाहे अपने ओवरकोट के ऐसे उन काले-काले बटनों पर जम गयीं। तब सहसा उसके मन मे क्या आयी कि उसने हाथ बढ़ा कर दायें बटन को जरा-सा मरोड़ दिया।

अचकचा कर प्रकाशो उठ बैठी। चेतन के मुख पर कालिख पुत गयी। लेकिन प्रकाशो बिना लजाये हँसती हुई चली गयी।

उस दिन चेतन की भाभी को घूँघट के बावजूद शायद कुछ पता चल गया, क्योंकि जब रात को डॉक्टर साहब घर आये और चेतन दफ़्तर चला गया तो उसने इस बात की शिकायत की।

"आप जब घर आते है," चेतन की भावज ने कहा, "प्रकाशो पल भर भी नही ठहरती, तत्काल चली जाती है। लेकिन जब चेतन आता है तो वह भी आ टपकती है और फिर जाने का नाम नही लेती। जाने दोनों

कैसी बातें करते रहते है । मै देख रही हूँ कि चेतन के लच्छन भी कुछ ठीक नही है ।

भाई साहब ने सोचा था कि सुबह कुछ ढब से चेतन के साथ इस बात की चर्चा करेंगे । किन्तु दूसरी सुबह, इससे पहले कि वे कोई बात चलाते, चेतन ने सूचित किया कि उसनें घर एक जरूरी पत्र लिख दिया है कि छोटे भाई के साथ उसकी पत्नी को तत्काल भेजा जाय । उसने यह भी कहा कि परसराम भाभी को जाता हुआ साथ ले जायगा । दो एक महीनें चन्दा यहाँ रह ले फिर उसे भेज कर भाभी को बुला लिया जायगा ।

अट्ठाइस

साँझ का सूरज कब और कहाँ छिपता है, छिपते-छिपते पश्चिम का क्षितिज कैसा सुन्दर रूप धर लेता है, आकाश मे कैसे रंगीन लहरिये बन जाते हैं और सघन वृक्षो के पत्तों में उनकी आभा कैसे हीरे-मोती जगमगा देती है, इस बात से लाहौर, विशेषतया अनारकली के अगणित निवासी सर्वथा अनभिज्ञ रह जाते है । वहाँ तो बाजार मे बिजली के हंडों के अचानक जग उठने, भीड़ के अधिकाधिक होते जाने, धुएँ और धूल के क्षण-प्रतिक्षण बढते जाने से पता चल जाता है कि साँझ बीत गयी है ।

चेतन दफ्तर से साढे छः बजे तक निरन्तर छः-सात घंटे काम करके निकलता तो सीधा घर न आता । गनपतरोड से होता हुआ अनारकली का छोटा-सा टुकडा पार कर अपने-आपको मुक्त-सा अनुभव करता, पैसे-आध पैसे की गजक ले कर चूसता हुआ या धेले-पैसे की मूँगफली ले कर कुटकता हुआ वह लोहारी के चौक तक चला जाता और वहाँ फजल की दुकान पर दो-एक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को देखा करता था । उसकी कविता अथवा कहानी जिस पत्र अथवा पत्रिका मे छपी होती या जिसमे

छपने की उसे आशा होती, उसे ही वह सबसे पहले उठा कर देखता। कभी जब उसके हाथ में कोई ऐसी पत्रिका आ जाती, जिसमे उसकी कभी रचना छपी होती और वही स्टाल पर पत्रों की देख करने वालो मे उसका कोई परिचित होता तो उसका मन उस अपने परिचित को उस बात की सूचना देने के लिए मचल उठा करता। कई बार ऐसा भी होता कि उसके पास ही कई व्यक्ति खड़े-खड़े उसकी ही कविता अथवा कहानी देख रहा होता, तब उसके चेहरे पर एक रंग आता और एक जाता। उसे प्रबल आकाक्षा होती कि उस व्यक्ति को किसी तरह इस बात का पता चल जाय कि यह नवयुवक जो उसके पास ही खड़ा है, उस कहानी अथवा कविता का रचयिता है। किन्तु इस तरह की बात अपने किसी परिचित अथवा अपरिचित को समझाने मे वह सदैव असफल रहा करता। हाँ अपनी कृतियों को छपे अथवा पढ़े जाते देख कर उसके मन को अपार प्रसन्नता होती। इसीलिये वह प्राय. धुएँ और धूल की परवाह न करके स्टाल पर कितनी ही देर खड़ा रहता। दुकान का मालिक उसे मुफ्तखोर न समझ ले, इस विचार से, जैसे-तैसे कुछ पैसे बचा कर एक दो साहित्यिक पत्रिकाएँ भी वह कभी-कभी खरीद लिया करता। दुकानदार से मेल-जोल बढाने के लिए उसने उसे एक पत्रिका की एजेन्सी भी ले दी थी।

०

चेतन का मन खिन्न-सा था। इसका एक कारण तो यह था कि सारा दिन दफ्तर मे प्रकट वह अंग्रेजी तारों का अनुवाद करता रहा था, किन्तु उसका मन जालन्धर से आने वाली प्रत्येक गाड़ी की प्रतीक्षा करता रहा था। किसी-न-किसी बहाने वह घर जा-जा कर देखता और निराश होता रहा था और इसी कारण वह गलतियाँ करता और झिडकियाँ खाता रहा था। दूसरा कारण यह था कि ड्योढ़ी के ऊपर रहने वाली विधवा ने उसे खूब चिढाया था। "क्यों झूठ बोलते हो," उसने कहा था, "ब्याह तो तुम्हारा हुआ ही नही, पत्नी कहाँ से आयगी ? पता नही किसके ब्याह की शीरनी ला कर तुमने मुहल्ले में बाँट दी !" चेतन ने कहा था कि उसकी पत्नी

आज अवश्य आ जायगी, लेकिन जब वह दो-तीन बार घर गया और पूछने पर उसे पता चला कि वह नही आयी तो उसे उनके सामने बहुत खिन्न होना पड़ा था ।

फिर शाम को दफ्तर का काम समाप्त करके, इस विचार से कि उसकी पत्नी घर न आयी बैठी हो, फजल की दुकान के बदले जब वह सीधा घर गया था तो उसे निराश होना पड़ा था । तब झुँझलाहट में खाना खाते-खाते वह अनायास भाभी से उलझ पड़ा था और खाने की थाली पटक कर उठ खडा हुआ था ।

वास्तव मे भाभी लाहौर आ कर फिर जालन्धर न जाना चाहती थी । वह अपढ और गँवार थी । उसका विचार था कि उसके देवर और देवरानी उसके पति की कमाई खाना चाहते है इसलिए उसे जालन्धर भेज रहे है । अपने मन का यह भाव उसने चेतन पर प्रकट भी कर दिया था । चेतन का रक्त खौल उठा था और वह लड-झगड कर खाना छोड चला आया था ।

०

वही अपने अड्डे पर पहुँच कर वह पत्रिकाएँ देखने लगा । उसका मन लग न रहा था । हल्की-हल्की सर्दी उतर आयी थी । वह खादी की एक कमीज पहने और तहमद बाँधे खडा था । सोच रहा था कि उसके पास गर्म कपडा कोई नही । उसने जल्दी की थी, यदि वह सर्दियों मे विवाह करता तो और कुछ न सही उसे एक गर्म सूट तो मिल ही जाता । अब सर्द सूट तो उसने अपने भाई को दे दिये थे । (वे उससे सिर्फ दो वर्ष बड़े थे और उसके सूट उन्हे फ़िट आते थे । फिर वे डॉक्टर थे और सूटों की उन्हे बडी आवश्यकता थी) लेकिन लाहौर मे सर्दी तो खूब पड़ती है । माना कि राष्ट्रीय पत्र के जूनियर एडीटर को सूट-बूट अच्छा नही लगता लेकिन वह एक गर्म अचकन तो सिलवा ही सकता था ;

उसे कुछ-कुछ भूख-सी लग रही थी और वह सोच रहा था कि यदि जेब मे कुछ पैसे होते तो सामने कोने के सिक्ख हलवाई की दुकान से डेढ़ •

पाव-आध सेर गर्म-गर्म दूध पीता, जिस पर मलाई की मोटी परत जमी हुई थी और जिस पर बादामों की गिरियाँ तथा छोहारे दूर ही से जमे दिखायी देते थे। कल्पना-ही-कल्पना मे चेतन के मन-मस्तिष्क मे उस दूध की सुगन्ध बस गयी। कुछ विचलित-सा हो कर उसने हाथ की पत्रिका पर से दृष्टि उठायी।

तभी एक ताँगा उसके पास से गुजरा। पिछली सीट पर एक नव-विवाहिता घूंघट निकाले बैठी थी। उसके साथ सफेद धोती पहने, उस पर रेशमी चादर ओढे एक अधेड महिला थी। ज्योंही युवती पर से होती हुई उसकी दृष्टि उस महिला पर पड़ी कि उसके मुँह से अनायास निकल गया —"माँ!"

पत्रिका को वहीं फेंक वह तहमद सम्हालता हुआ ताँगे के पीछे-पीछे भागा और उसने दो एक आवाजें दी—"माँ! माँ!" और फिर "परसराम! परसराम!" और माँ ने ताँगा रुकवा लिया।

उन्तीस

अपनी इस नयी बहू को घर के काम-काज में दक्ष करने का जो उत्साह माँ को था, यद्यपि वह जालन्धर ही मे ठंडा पड़ चुका था तो भी जब चेतन ने अपना वैवाहिक जीवन आरम्भ करने के लिए पत्नी को बुलाया और लिखा कि उसे परसराम या शिवशंकर के साथ भेज दिया जाय तो वह भी साथ आ गयी थी। शायद वह अपनी बहू को जीवन के कठिन मार्ग पर चलने से पहले हर तरह समझा-बुझा देने का एक और प्रयास कर देखना चाहती थी। इसीलिए जब अपनी देवरानी के आने पर चेतन की भावज अनिच्छापूर्वक अपने देवर के साथ जालन्धर चली गयी तो माँ उसके साथ न गयी।

भाई साहब की दुकान के अन्दर (कदाचित सामान आदि रखने के लिए) एक परछत्ती थी। इसकी छत दुकान के एक तिहाई भाग पर थी और लकड़ी की एक तंग सीढ़ी इससे लगी हुई थी। अपनी छोटी भावज के आने और अपनी पत्नी के जाने के बाद भाई साहब ने अपना बोरिया-बिस्तर वही लगवा लिया। बिस्तर तो खैर जैसा-तैसा था ही, किन्तु बोरिये के नाम पर उनके पास एक सूटकेस ही था, जिसके कब्जे इतने पुराने हो चुके थे कि ऊपर का ढकना सदैव खुला रहता था। बस दो जून खाना खाने के लिए वे घर आते थे।

अपनी माँ की उपस्थिति, विशेषतया विवाह के उन पहले दिनों में, चेतन को उतनी अच्छी नही लगी। कमरे दो ही थे। अन्दर धीरे से भी बात की जाय तो बाहर सुनायी दे जाती थी। माँ की उपस्थिति मे अपनी पत्नी से बात-चीत करने का उसे अवसर न मिलता। माँ कुछ रोड़ा अटकाती हो, यह बात न थी। वह तो बाहर के कमरे मे अधिक-से-अधिक फ़ासले पर बैठी मौन रूप से विष्णुसहस्रनाम, प्रेम सागर अथवा रामायण का पाठ किया करती या केवल माला फेरती रहती। किन्तु अपनी माँ की उपस्थिति मे अपनी पत्नी के साथ बातें अपने मे अथवा उसे अन्दर कमरे मे ले जाकर बैठाने मे चेतन को बड़ी लज्जा लगती थी। फिर उसकी पत्नी भी सदैव उससे कतराती थी। दिन-प्रतिदिन चेतन उससे खुल कर बातें करने को व्यग्र होता; पर जब भी वह घर आता उसे घूंघट निकाले मौन देखता। बहाने से यदि वह उसे अन्दर बुलाता भी तो अव्वल तो वह बहुत देर तक न ठहरती और यदि वह उसके शरीर से किसी तरह की आजादी लेना चाहता तो महज इस विचार से ही कि माँ बाहर बैठी पूजा कर रही है, उसे लज्जा आने लगती और अपनी पत्नी से खुल कर दो बाते करने की साध उसके समक्ष मे दिन-प्रतिदिन प्रबलतर होती जाती।

तभी इतवार आ गया।

इतवार को अधिकाश समाचार-पत्रो के दफ्तरों मे छुट्टी होती है। चेतन के दफ्तर मे उस दिन भी काम होता था। बात यह थी कि उसके पत्र

का 'संडे एडीशन' मंडे (monday) को निकलता था। उस दिन दूसरे पत्रों से मुकाबिला न होता था। शनि के दिन अँग्रेजी सरकार ने भारत सम्बन्धी ह्वाइट पेपर प्रकाशित किया था। इसलिए चेतन के ज़िम्मे इतवार को स्थानीय नेताओ से इन्टरव्यू करने की ड्यूटी लगी थी। दूसरे समाचार-पत्रों को छुट्टी के कारण यह सुविधा प्राप्त न थी। इसलिए सम्पादक महोदय चाहते थे कि वे उनसे पहले ही ह्वाइट पेपर के सम्बन्ध मे स्थानीय नेताओ की सम्मतियाँ छाप कर डायरेक्टरों की प्रशंसा और पाठको का यश अर्जित कर लें।

चेतन दिन भर साइकिल लिये घूमता रहा। वह तीन तरह के नेताओ से मिला। एक जो राजनीतिक थे, राजनीति के सम्बन्ध मे गम्भीर थे, अपने दृष्टिकोण के बारे में दयानतदार थे और जिनकी राय को महत्व भी दिया जाता था। ये नेता सारे के सारे ह्वाइट पेपर का पहले अध्ययन करना चाहते थे, फिर अपने दल के नेताओ के वक्तव्यों की प्रतीक्षा करना चाहते थे। किसी प्रकार का ओछा वक्तव्य देना उन्हे स्वीकार न था—उनके बयान कुछ अस्पष्ट से थे, कुछ अपूर्ण-से, जिनमे निश्चयात्मक रूप से कुछ भी न कहा गया था और सरसरी नजर से देखने पर ह्वाइट पेपर के असन्तोषजनक होने का उल्लेख था।

दूसरे नेता सामाजिक थे और राजनीति मे उन्हे इसलिए घसीटा जाता था कि उनके पास पैसा अधिक था या फिर उनका नाम बड़ा था। वे किसी-न-किसी साम्प्रदायिक सभा के प्रधान अथवा उप-प्रधान थे। उनके वक्तव्य बडे नपे-तुले द्व्यर्थी शब्दो मे वेष्टित थे।

तीसरे ऐसे थे जो न राजनीतिक थे, न सामाजिक! जो बस नेता थे। कॉंग्रेस की सभाओं मे शुद्ध खादी पहन कर भाषण झाड़ आते थे और किसी सामाजिक पार्टी मे अपटूडेट फैशन की पोशाक मे सज-बज कर पहुँच जाते थे। वे न इसके सम्बन्ध मे गम्भीर थे न उसके—जीवन उनके लिए फूलों के उपवन-सा था जिसमे वे भौंरे बने घूमना चाहते थे। इनमे से कोई डॉक्टर था, कोई वकील, कोई वैद्य, कोई बैरिस्टर, कोई धनी

रिटायर्ड अफसर—जिसे मालूम न था कि अपने धन का क्या करे—अथवा कोई सम्पन्न बेकार....जिसे मालूम न था कि अपने समय का क्या करे ।

उन्ही मे से एक लेडी डॉक्टर से इन्टरव्यू करने के बाद चेतन सारा दिन हँसता रहा ।

ये देवी जी प्रैक्टिस तो न जाने कहाँ करती थी, पर माल रोड पर उनके पति की कोठी थी । देवी जी बी० ए० थी और अपने नाम के साथ उन्होने इस तरह डिग्री लगा रखी थी, जैसे वह डिग्री सिर्फ़ उन्ही के लिए बनी हो । एक बार म्यूनिसिपेल कमेटी की सदस्या बन चुकी थीं, दो बार प्रान्तीय काउन्सिल के लिए भी खडी हुई थी और फिर नेताओ के जोर देने पर (जिसका मतलब यह कि अन्य उम्मीदवारों से कुछ रुपये ऐंठ कर दोनो बार बैठ गयी थी ।

चेतन ने जा कर घंटी का बटन दबाया । उन्होंने दरवाजा स्वयं खोला । वह उनके पीछे-पीछे ड्रॉइंग-रूम मे चला गया—साफ चमकती हुई दरी, झमझमाते हुए गालीचे झिलमिलाते हुए कुशन, साफ-सुथरी मेज-कुर्सियाँ, बहुमूल्य कैबीनेट, कीमती चित्र और मेटल-पीस पर रखी हुई कई ऐसी सुन्दर वस्तुएँ जिनका वह नाम भी न जानता था । श्रीमती राधारानी (यही उनका नाम था) एक श्वेत साड़ी मे सुसज्जित, एक कुर्सी सरका कर उस पर बैठ गयी—तीस-बत्तीस वर्ष की आयु, गेहुँआँ रग, लेकिन बेहतरीन पेंट से चमकता हुआ । चिबुक के नीचे माँस उभरा हुआ था । कुछ ऐसी सुन्दर तो न थी, लेकिन चेतन को मालूम था कि सिक्ख रईस ने केवल उनका सामीप्य प्राप्त करने के लिए इतनी पार्टियाँ दीं, इतनी सोसाइटियो को चंदे दिये कि उसकी सोलह-सत्रह हजार की जायदाद दूसरो के घर जा पडी ।

उस एक निमिष मे चेतन ने अपने शरीर पर निगाह डाली । क्या हुआ यदि उसके नक्श अच्छे थे, उसके बाल लम्बे, मुलायम और घुंघराले थे, किन्तु उसके कपड़े....उस पर कोई कुन्ती ही रीझ सकती है. कोई

महोदय को नमस्कार करके चला आया ।

वह आज लोहारी के चौक की ओर नहीं गया, सीधा घर पहुँचा । खाना खाया और फिर पत्नी से झट तैयार होने के लिए कहा । यह अजीब बात थी कि दहेज मे कितनी ही चीजें आने के बावजूद उसकी पत्नी के पास कोई ऐसी धोती अथवा ब्लाउज न था जिसे पहन कर वह उसके साथ सैर को जा सके । कीमती साड़ियाँ और रेशमी तथा दरियाई और सिल्मे के दो तीन सूट थे, लेकिन वे अनायास ही दृष्टि को अपनी ओर खीचते थे । चेतन के पास साधारण कपडे भी अधिक न थे और वह अपने सीधे-सादे कपड़ों को पहने हुए रेशमी सूट अथवा बनारसी साड़ी मे आवृत पत्नी के साथ सैर को न जाना चाहता था । उस समय मन-ही-मन मे उसने चाहा—कितना अच्छा होता यदि उसके ससुराल वाले इन कीमतो साड़ियो और सूटो के स्थान पर दस बोस अच्छी धोतियाँ दे देते !

इस महीने उसके पास एक पैसा भी न बचा था और इसीलिए वह अपनी पत्नी को घर मे हर वक़्त पहनने के लिए एक धोतो तक न ला कर दे सका था और वह घर मे भी बनारसी साड़ी ही पहने रहती थी । साडी पहन कर उसे न लेटने की तमीज थी न बैठने की । वह उसे पहने ही फ़र्श पर बैठ जाती थी और उसे पहने हुए ही लेट जाती थी ।

बहरहाल इस ख़याल से कि अँधेरा हो गया है और कोई व्यक्ति उनकी वेश-भूषा के अन्तर को न देखेगा, चेतन ने पैड की तख्ती पर क्लिप में दो-चार फुलस्केप कागज लगाये, पेंसिल ली और चल पड़ा ।

उसकी पत्नी ने अभी घूंघट निकाल रखा था । गली के बाहर निकल कर चेतन ने कहा, "अब घूंघट उठा लो, नहीं लोग दुकानों पर बैठे नीचे झुक-झुक कर देखेंगे ।"

सरलता से चन्दा ने कहा, "अँधेरे मे वे क्या देखेंगे ।"

चेतन निरुत्तर-सा हो गया । फिर कुछ ठहर कर उसने कहा, "लेकिन गिर पड़ोगी, फायदा क्या है ?"

और चन्दा ने साड़ी का छोर तनिक उठा लिया और चेतन के पीछे-

उठ जाना स्वीकार न हुआ। धैर्य के साथ उसने कहा, "मैं समझ गया हूँ, आपके कैसे भाव हैं। आप ने भारत की नारी के सम्बन्ध में शर्तें तो पढ़ ही ली हैं, मैं आपकी ओर से एक छोटा-सा वक्तव्य लिखता हूँ। यदि आपको उसकी कोई बात अपने विचारों से मेल खाती दिखायी न दे अथवा असंगत लगे तो काट दीजिएगा।"

उन्हों ने कुछ 'न, न' की। लेकिन चेतन ने कहा, "यदि आपको कोई वाक्य पसन्द न हुआ तो मैं बदल दूँगा या काट दूँगा।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये उसने लिखना आरम्भ कर दिया।

और यद्यपि उसने स्वयं वे शर्तें न पढ़ी थीं, किन्तु पहली दो महिलाओं के वक्तव्यों से, जो उसने अभी सँवारे थे, कुछ मसाला ले कर उसने एक गोल-मोल-सा वक्तव्य लिख डाला, जिसमें मिस्टर मैकडॉनल्ड के प्रयास की सराहना भी थी, लेकिन उसके फल-स्वरूप भारत की नारी को जो अधिकार मिले उनसे असन्तोष भी दिखाया गया था और यह भी आशा प्रकट की गयी थी कि व्हाइट पेपर की नींव पर जो इंडिया ऐक्ट बनाया जायगा उसमें भारतीय नारी को अधिक अधिकार दिये जायेंगे।

वक्तव्य लिख कर चेतन ने श्रीमती जी को सुनाया। वे खुश हो गयीं और उल्लसित स्वर में उन्होंने कहा कि कोई वाक्य काटने की आवश्यकता नहीं। चेतन ने उसके हस्ताक्षर कराये और चला आया।

०

इस इन्टरव्यू के बाद चेतन ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि आज के लिए यह यथेष्ट है। तीन वक्तव्य वह इससे पहले ले चुका था। लाला गणेश दास का वक्तव्य वह शाम को ले लेगा और समय मिला तो दफ़्तर में जा कर दे आयेगा, नहीं तो दूसरे अंक में छप जायगा।

घर जा कर उसने कहा कि रात को उसकी ड्यूटी नहीं, इसलिए उसकी इच्छा है कि पत्नी को लारेंस की सैर करा लाये।

यह कह कर वह दफ़्तर गया। दो घंटे जम कर उसने वह सब मसाला देख-दिखा कर कातिब को दिया, लिखे जाने पर पढ़ा और सम्पादक

प्रकाशो ही....और मन-ही-मन एक लम्बी साँस खींच कर उसने कहा :

"आप ने ह्वाइट पेपर पढ़ा ?"

"कल रात जस्टिस नवल किशोर की पार्टी थी, मैं समाचार-पत्र तक नही पढ़ पायी ।"

देश मे हलचल मच गयी है, देश की किस्मत का फैसला सुना दिया गया है, पर श्रीमती जी को, जो लीडर कहलाती है उससे कुछ मतलब नही ! लेकिन उन्हे ही क्या—चेतन ने सोचा—स्वयं उसे ह्वाइट पेपर से कितनी दिलचस्पी है ? कल जब उसके दफ़्तर मे टेलीफ़ोन पर टेलीफोन आ रहे थे, लोग ह्वाइट पेपर की शर्तें सुनने के लिए बेचैन थे, वह बड़े इत्मीनान से इनफर्मेशन ब्यूरो से ह्वाइट पेपर की कापी ले कर चला आया था । उसके मन मे उसे देखने की तनिक भी उत्सुकता पैदा न हुई थी और इस बहाने जब उसे छुट्टी मिली थी तो वह गोल बाग की ओर से आते हुई अपने घर से हो कर अपनी नव-परिणीता पत्नी से दो बातें करते जाना भी न भूला था । इसके अतिरिक्त समाचार-पत्र मे काम करने पर भी उसे उन शर्तो के अलावा, जिनका उसने स्वयं अनुवाद किया था, किसी दूसरी के सम्बन्ध मे कुछ भी तो ज्ञात न था ।

वास्तव मे दो तरह के लोगों को राजनीति मे किसी तरह की दिलचस्पी लेने का अवकाश नही मिलता । एक तो उन धनवानों को जो जस्टिस नवल किशोर की पार्टियो मे शामिल होते है—कही अकाल पडे, कही भूकम्प आये, ये उन अवसरों से भी (ख़ैराती कन्सर्टो के द्वारा) कुछ-न-कुछ मनोरजन का सामान जुटा लेते है । दूसरे उनको जिनका मस्तिष्क तेरह-चौदह घंटे काम करने के बाद इतना थक चुका होता है कि उसमे राजनीति अथवा किसी दूसरी नीति के लिए कोई स्थान नही रह जाता । जब कभी ये दूसरे लोग अपने अधिकारों को पहचानेंगे तभी पहलो को राजनीति मे भाग लेने को विवश होना पड़ेगा ।

चेतन ने कहा, "हमे आपका वक्तव्य तो अवश्य चाहिए, कल के विशेष साप्ताहिक अंक में सब नेताओं के वक्तव्य जा रहे है । आपका भी तो रहना

चाहिए ।"

"लेकिन मैंने तो अभी तक समाचार-पत्र ही नही पढ़ा ।"

"आप देख लीजिए । श्रीमती सुशीला देवी, श्रीमती अमृत कौर, मिसेज निहाल चन्द—सब के बयान जा रहे हैं । ह्वाइट पेपर का प्रभाव जहाँ तक भारतीय नारी के अधिकारो पर पड़ता है, वही तक बस आप पढ़ लें !"

और वे 'ट्रिब्यून' ले कर दूसरे कमरे मे चली गयीं । चेतन आध घंटे तक वही बैठा रहा । समय काटने के लिए जल्दी-जल्दी लिए गये वक्तव्यों को कातिबो[1] के हवाले करने के लिए ठीक करता रहा । तत्पश्चात् वह मन-ही-मन साँझ का प्रोग्राम बनाता रहा ।

वह लाला गणेश दास एडवोकेट, मंत्री, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के यहाँ गया था । वे मिले नही थे और दयाल सिंह मैन्शन्ज से, जहाँ वे रहते थे, उसे पता चला था कि रात को नौ बजे से पहले न आयेंगे, और चेतन ने सोचा था कि संध्या को ज़रा जल्दी खाना खा कर वह अपनी पत्नी को माल पर सैर के लिए ले जायगा और रास्ते मे दयाल सिंह मैन्शन्ज से दस-पन्द्रह मिनट मे इन्टरव्यू लेता जायेगा ।

तभी पौन घंटे के बाद श्रीमती राधारानी बाहर आयीं और उन्होने कुछ अन्यमनस्कता से कहा, "मै तो कुछ नहीं लिख सकी, वास्तव मे मेरा ध्यान बहुत-सी बातों की ओर लगा है । मै लिखने का 'मूड' नही बना सकी ।"

चेतन ने कहा, "आप ज़बानी मुझे अपने विचार बता दें, मै स्वयं लिख लूँगा ।"

"मै कुछ भी न सोच सकी ।"

लेकिन चेतन की सहज पत्रकार-बुद्धि को इतना समय नष्ट करके योंही

---

१. उर्दू में लीथो छपाई होने से पहले सब मैटर कातिब (छापे-सी सुन्दर लेखनी वाले) लिखते हैं, फिर प्लेट या पत्थर पर अंकित किया जाता है तब छपता है ।

जब रात को दो बजे के लगभग चेतन दफ़्तर से आया तो उसने कहा, "अब मैं भाई साहब से पर्दा किया करूँगी !"

उसके चिबुक को तनिक ऊपर उठा कर उसकी बड़ी-बड़ी भोली-भोली आँखों मे आँखें डाल कर उसने पूछा, "क्यों ?"

उत्तर मे सरल चन्दा ने दिन की सारी बातें बता दी ।

गहरी रात होने के बावजूद चेतन ने एक ऊँचा ठहाका लगाया—इतना ऊँचा कि अन्दर कोठरी मे सोयी हुई चेतन की भाभी और उसकी बच्ची जाग पडी और उसे चिचियाने से रोकने के लिए भाभी को उसके मुँह मे स्तन देना पड़ा । नींद भाभी की आँखों से उड़ गयी और वह दत्त-चित्त हो कर उस कमरे के अन्धकार मे लेटी अपने देवर और देवरानी की बाते सुनने लगी ।

किन्तु दो तीन रातो से निरन्तर अधिक काम करने के कारण थका-हारा चेतन, 'वह तो पागल है,' इतना कहने के अतिरिक्त कुछ और कहे बिना सिरहाने रखा दूध पी कर सो गया ।

एक दिन चेतन ने पड़ोस के एक विवाह मे चन्दा को गाते सुन लिया था । उसके स्वर की मधुरता को देख कर उसने मन मे निश्चय कर लिया था कि वह उसे नियमित रूप से गाने की शिक्षा दिलायेगा । पेट काट कर किसी-न-किसी तरह वह एक हारमोनियम भी ले आया था और उसने स्वयं एक संगीतज्ञ से एक-दो गीत सीख कर उसे सिखा भी दिये थे । इस घटना के दूसरे दिन इतवार था । इसलिए चन्दा अपने पति की उपस्थिति मे बाजा सीखने का अभ्यास कर रही थी । उसी समय भाई साहब आ गये ।

"देखिए भाई साहब, मैने कितनी अच्छी धुन सीखी है," चन्दा ने सहसा प्रशंसा पाने के विचार से कहा ।

भाई साहब चुप खड़े रहे । एक शब्द भी उनके मुँह से न निकला । पहले वह इस तरह पूछती तो वे कहते, 'कौन-सी धुन ? ज़रा सुनें तो !' पर वे चुप खड़े रहे और फिर गहर-गम्भीर वाणी मे उन्होने कहा, "चन्दा

तुम मेरे सामने न गाया करो !"

चेतन आश्चर्यचकित-सा उनके मुँह की ओर देखने लगा और फिर जब भाई साहब ने उसी स्वर मे उससे कहा, "तुम मेरे सामने इतने जोर से हँसा भी न करो !" तो चेतन झल्ला कर बोला—"यह नहीं हो सकता भाई साहब, चन्दा हँसेगी, गायगी। आप यह कैसी बात कर रहे है ? वह मुँह फुलाये अच्छी नहीं लगती। हँसती रहे तो अच्छी लगती है !"

भाई साहब ने इसका उत्तर नही दिया। सिर्फ़ इतना कहा, "तुम्हारी भाभी आपत्ति करती है !" और फिर चन्दा से कहा, "तुम्हे सास की तरह अपनी जेठानी का आदर करना चाहिए।"

यह अन्तिम बात चेतन के मन लगी और उसने चन्दा को समझाया, "भाभी पुराने और संकुचित वातावरण मे पली है। उसके विचारों और भ्रमो का कुछ-न-कुछ ख़याल रखना चाहिए। भाई साहब के सामने तुम नंगे सिर न रहा करो और कम हँसने की भी कोशिश किया करो !" और फिर बायी आँख दबा कर शरारत से मुस्कराते हुए उसने कहा, "विशेष कर जब भाभी सामने हो !"

इकतीस

अपने इस वैवाहिक जीवन से चेतन कुछ अधिक सन्तुष्ट हो और चन्दा के लाहौर आ जाने पर नीला उसे बिलकुल भूल गयी हो, यह बात न थी। उसे चन्दा अच्छी लगती थी, वह उसके साथ हँसता-हँसाता और सैर तमाशे भी जाता था। किन्तु इस पर भी जब उसने चन्दा से सुना था कि कान्ता की शादी है और शायद उन्हे इलाबलपुर जाना पड़े तो अज्ञात रूप से वह निमन्त्रण की प्रतीक्षा किया करता था। भाभी को लाहौर ले आने

के लिए भी उसने इसी विचार से अनुमति दे दी थी, चन्दा सरल थी, भोली-भाली थी, उदार थी, सहृदय थी, विनम्र और संकोचशील थी। पर वह सुन्दर और शिक्षित न थी, इसी बात का खेद चेतन को सदैव रहा करता था। इतने दिन के वैवाहिक जीवन के बाद उस खेद मे कमी न हुई थी, बल्कि वह कुछ ब्र ा ही था।

बात यह थी कि उन्ही दिनों उसके प्रधान सम्पादक का विवाह हो गया था। उन सम्पादक महोदय का, जिनको वह वज्र मूर्ख और निरा गावदी समझा करता था। एक दिन जब दफ्तर मे आ कर अपने उल्लास को छिपा सकने मे असफल होने पर, बात के औचित्य-अनौचित्य की चिन्ता न करते हुए उन्होंने कातिब को सम्बोधित कर कहा, "वह तो बस परी है अमरनाथ!" तो अपनी पत्नो का ध्यान आ जाने से चेतन का दिल धँस-सा गया था मन-ही-मन चेतन ने सोचा कि दैव दयालु भी होता है तो किन मूर्खों पर!

सम्पादक महोदय उदार विचारों के व्यक्ति थे और कभी एक समाज-वादी संस्था के मन्त्री तक रह चुके थे। उन्होंने अपने सब मित्रों का परिचय अपनी इस नव-परिणीता पत्नी से कराया था। इसी परी से एक बार रास्ते मे चेतन की भेंट हो गयी। चन्दा उसके साथ थी और वह चाहता था कि किसी प्रकार वह कन्नी काट जाय। पर अपनी स्वर्णस्मिति से चेतन को एक बार सिर से पाँव तक डुबोते हुए परी ने पूछ ही तो लिया, "यह आपके साथ क्या आपकी श्रीमती...." और उनके होंट फैल गए और दाँतों की अवलि चमक उठी।

"जी हाँ, यही मेरी श्रीमती जी हैं।" खिसियानी-सी हँसी के साथ उनकी बात काटते हुए उसने कहा था। और वह जल्दी-जल्दी चन्दा को ले कर चला गया था।

और सम्पादक महोदय की यह पत्नी सुन्दर ही न थी, सुशिक्षित और सुसंस्कृत भी थी।

०

उन दिनों चेतन को वड़ी आकांक्षा होती थी कि यदि उसकी पत्नी सुन्दर नही हो सकती तो सुशिक्षित अवश्य हो जाय। संध्या को दफ़्तर से आ कर, खाना आदि खा कर वे सैर को जाते थे। गोल बाग़ की रविशों पर टहलते हुए, जव बड़ी सुन्दर बातें हो रही होतीं, चेतन को सहसा ध्यान हो आता कि वे इस समय को व्यर्थ ही गँवा रहे हैं। क्यों न सैर ही सैर मे वह अपनी पत्नी को पढ़ा दे? और वह सहसा उससे पूछता :

" 'वह दाल के साथ रोटी खाता है,' इसकी अंग्रेजी बनाओ!"

वातचीत के अचानक वन्द हो जाने से चन्दा कुछ उदास हो जाती और धीरे से कहती :

"दाल की अंग्रेजी मुझे नहीं आती।"

"दाल को दाल ही रहने दो, शेष वाक्य की अंग्रेजी बनाओ।"

चन्दा सोचने का उपक्रम करती और फिर झिझकते हुए कहना शुरू करती :

"He eat...."

क्रोध को वरवस रोक कर चेतन कहता, "ग़लत! कल क्या नियम वताया था तुम्हे?"

चन्दा चुप रहती।

"जिस वाक्य मे 'ता है' या 'ती है' आये उसमे वर्ब (verb) अर्थात् क्रिया के साथ एस (s) या, ई-एस (es) लगता है।" क्रोध को किसी न-किसी तरह दवा कर चेतन कहता और फिर एक दूसरे वाक्य की अंग्रेजी पूछता।

"नौकर वाजार से मिठाई लाता है। अंग्रेजी वनाओ।"

"नौकर की अंग्रेज़ी मुझे नही आती," चन्दा की आवाज चिड़चिड़ी होती।

"नौकर को नौकर ही रहने दो!" चेतन के स्वर में क्रोध होता।

"लेकिन वाजार...."

"तुम अंग्रेज़ी तो वनाओ। वाज़ार को बाज़ार ही कहते है।"

किन्तु अंग्रेजी उससे फिर भी न बनती। कार्तिक की स्निग्ध धवल ज्योत्सना गोल बाग़ की सुनसान वीथियों, वृक्ष-लताओं, पुष्प-पल्लवों, घास से आच्छादित भूमिखंडों और तारकोल से काली सड़कों को स्वप्न की-सी सुन्दरता प्रदान कर रही होती; दिन भर चंगडानियों की गालियाँ और कर्कश स्वर सुन-सुन कर ऊबे हुए उसके कान पत्तों की मीठी मर्मर सुनने के लिए आकुल होते; उपलो से लदी हुई दीवारों को देख-देख थकी हुई उसकी आँखें इस स्वप्न-संसार का रस लेना चाहतीं; सड़क के किनारे जहाँ एक चबूतरे पर पुराने समय की एक नन्हीं-सी तोप पड़ी है, वह कुछ क्षण बैठना चाहती; पर उसका यह अरसिक पति जो कवि और कथाकार होने का दम भरता था....ये कैसे कवि हैं, वह सोचती....और वाक्य की अंग्रेजी उससे न बनती....

चेतन पहले तो झल्लाता, फिर शिक्षा पर एक छोटा-सा भाषण झाडता और फिर चुपचाप, तनिक जल्दी-जल्दी चलने लगता। चलते-चलते वह आगे हो जाता और वह पीछे घिसटती आती।

o

आधी रात के बाद सर्दी में ठिठुरता हुआ वह आता। गहरी नींद में सोयी चन्दा उसके कई बार दरवाजा खटखटाने पर किवाड़ खोलती और सिरहाने रखा ठंडा दूध, जिस पर मलाई की मोटी तह जम जाती, उसे पिला कर लेट रहती। वह पीठ मोड़ लेती। कुछ देर तक चेतन भी पीठ मोडे लेटा रहता, लेकिन उसके अंगों की सर्दी न जाती। तब वह एक हाथ से उसे अपनी ओर करके उसके गर्म-गर्म गदराये शरीर में गुम हो जाता।

हर दूसरे तीसरे ऐसा होता। मानसिक तौर पर वह रूठता, शारीरिक तौर पर मान जाता। और नीला कभी-कभी उसे बेतरह याद आने लगती।

अपने वैवाहिक जीवन के तीन-चार महीने बाद ही उसने एक दिन अनन्त को पत्र लिखना आरम्भ किया :

'....मैं कहता हूँ अनन्त मैंने क्या शादी कर ली! तुम ठीक कहते हो। मैं डरपोक हूँ। मेरी दशा उस व्यक्ति की सी है जो एक हिंस्र पशु से डर कर दूसरी ओर भागता है तो उसके सम्मुख दूसरा आ जाता है, दूसरे से भयभीत हो कर तीसरी ओर मुड़ता है तो तीसरे का सामना करना पड़ता है।

मैं डर रहा था कि मैं गिर रहा हूँ। अपने चरित्र से गिर रहा हूँ। और मैंने सोचा कि दूसरों की क्यारियों में मुँह मारने की आज्ञा देने की अपेक्षा मन के इस उद्दंड पशु को अपनी एक निज की क्यारी बना दूँ। पर कदाचित मन के इस पशु को दूसरे की खेतियों मे मुँह मारना अधिक रुचता है।

यह वासना है, गुनाह की लज़्ज़त है, देखे जाने का भय है, यह क्या है, जो अभिसार मे मिलन से अधिक सुख भर देता है।

दूसरे की आलमारी में लगी हुई पुस्तकें अनन्त, बड़ी अच्छी लगती हैं; उन्हे पढ़ने को बड़ा जी जाहता है; उन्हें पढ़ने मे वड़ा आनन्द मिलता है, पर जब हम उन्हें ख़रीद लेते है तो वे प्रायः अनपढ़ी और उपेक्षित हमारी आलमारियों में पडी रहती है।

मेरे मन मे सदैव द्वन्द्व मचा रहता है। चन्दा सीधी-साधी, भोली-भाली लड़की है। सहृदय, भावुक और उदार! किन्तु मुझे उसके ये गुण नहीं भाते। जब वह मेरे सामने आती है तो मैं अनायास ही नीला से उसकी तुलना करने लगता हूँ....'
चेतन अभी इतना ही लिख पाया था कि चन्दा उसके पास आ गयी। चेतन जल्दी से पत्र मेज़ के दराज़ मे रख दिया।
"क्या लिख रहे थे ?" पत्नी ने हँसते हुए पूछा।
"योंही एक कविता आरम्भ की थी।"
"सुनाइए।"

"खत्म होने पर सुनाऊँगा।" उसने कहा और फिर दीर्घ-निश्वास भर कर बोला...."लेकिन तुम कविता-अविता क्या समझोगी ? काश कही तुम भी कुछ परिश्रम करके थोड़ा-बहुत पढ़ लेती !" फिर सहसा बात का रुख बदल कर उसने पूछा, "वह पुस्तक पढ़ डाली तुमने ?"

"मैंने पढ़नी आरम्भ की थी पर....।"

चेतन ने उसके मुख की ओर देखा। निर्निमेष वह देखता रहा और वही उसके मुख पर उसे किसी दूसरे मुख की रेखाएँ बनती दिखायी दी। और उसने अपनी पत्नी को अपने आलिंगन में भींच लिया और उसकी आँखो मे देखते-देखते उसे चूम लिया है।

उसकी पत्नी चकित खड़ी उसकी ओर देखती रही। तब चेतन ने अपने प्रिय विषय 'शिक्षा' पर एक छोटा-सा भाषण दे डाला।

"जवानी के चार वर्ष तो चन्दा योंही बीत जायँगे। यों, फुर से !" और उसने चुटकी बजायी, "पता भी न चलेगा। यौवन में शारीरिक आकर्षण ही पति-पत्नी को एक दूसरे के समीप रखता है। किन्तु युवावस्था बीतते देर नहीं लगती और समय आ जाता है कि पति के लिए घर मे कोई आकर्षण नही रहता। पति पत्नी को नहीं समझ पाता और पत्नी पति को। यदि तुम मुझ-सी अध्ययनशील बन जाओ चन्दा, साहित्य मे तुम्हें भले-बुरे की तमीज़ हो जाय तो हमारे बीच पति-पत्नी के बदले संगी और संगिनी का नाता स्थापित हो जायगा, हम एक दूसरे को भली-भाँति समझते जायँगे और दिन-प्रतिदिन हमारे प्रेम की जंजीर मजबूत होती जायगी।"

चन्दा चुपचाप अपने पति की ओर देखती रही। फिर उसने धीरे से कहा, "मै पढने लगती हूँ तो मुझे नीद आ जाती है।"

"यह नीद तो प्रगति की घातक है। नीद आलस्य है, नींद मृत्यु है।" और चेतन को पता न था कि वह क्या बक रहा है। वह कहता चला गया—"अज्ञान भी एक नींद है चन्दा—महानिद्रा-सी भयानक ! इस महानिद्रा पर विजय पाने के लिए तुम्हे अपनी इस नींद की कुछ घड़ियों का त्याग

करना होगा, नही तो अज्ञान की महानिद्रा अपने अंधकार मे तुम्हे लील जायगी ।"

चन्दा ने तनिक हँस कर कहा, "व्याह होने पर मैं समझा करती थी कि पढाई समाप्त हो गयी, किन्तु मै आपके आदेश का पालन करने की पूरी कोशिश करूँगी ।"

"तुम्हारी पढाई तो वास्तव में अभी आरम्भ हुई है ।" चेतन ने कहा, "ज्ञान जाग्रति है और जाग्रति मानव को किसी समय भी अग्राह्य न होनी चाहिए ।"

"मै और अधिक लगन से पढ़ने का यत्न करूँगी ।"

और वह बाहर जा कर चारपाई पर लेटे-लेटे पढने लगी ।

चेतन ने पत्र निकाला और उसे फिर लिखने लगा, किन्तु अपनी पत्नी की सरलता और सहृदयता उस पर कुछ ऐसी छा गयी कि वह उस पत्र को और आगे न बढा सका । पढ़ कर उसने उसे फाड़ दिया । मन-ही-मन अनन्त को सम्बोधित करके उसने केवल इतना कहा—'तुम नही जानते अनन्त, मेरे मन मे सदैव कैसा द्वन्द्व मचा रहता है, प्रतिदिन मुझे कैसी यन्त्रणा सहनी पड़ती है ।'

बत्तीस

आखिर वह निमन्त्रण आ गया, जिसकी प्रतीक्षा चेतन इतने दिनो से मन-ही-मन कर रहा था । इलावलपुर मे उसके ससुर की ननिहाल थी । वही उनके मामा की पोती का विवाह था । ससुर के ननिहाल से साधारणतया दामाद को दूर का भी वास्ता नहीं होता, किन्तु पण्डित दीनबन्धु और बेणी प्रसाद का वास्तव मे उनके मामा ही ने पाला था । दोनों बच्चे ही थे, जब उनके सिर से उनके पिता का साया उठ गया था । नाना भी

जीवित न थे, किन्तु मामा ने इन भानजों को अपने बच्चो से भी अधिक समझा। पण्डित वेणी प्रसाद ओवरसियर हो गये, पण्डित दीनबन्धु ने भी खूब व्यापार किया। इस प्रकार उन्होने जो कमाया वह इस पिता-तुल्य अपने मामा को भेजते रहे। यही कारण था केवल प्राइमरी स्कूल के अध्यापक होने के बावजूद मामा ने दूर-दूर तक ईंटो के भट्टों का व्यवसाय फैला रखा था और इलावलपुर छोड़ वहाँ से बाइस मील दूर जालन्धर मे आ कर अपना एक पक्का मकान बनवा लिया था। उनके लडके हरमोहन और कुलदीप राजकुमारों की तरह रहते और हरमोहन के बारे मे तो एक बार इतना भी सुना गया था कि मामा उसे विलायत तक भेजने की सोच रहे हैं।

मामा के बडे लडके चूनी लाल की मृत्यु हो चुकी थी। गर्मियों के दिनो मे अपनी कुमैत घोड़ी पर सवार हो कर अपने एक दूर के भट्टे पर गया था। मार्ग मे उसे प्यास लगी। एक खेत मे पक्के हरे तरबूज बिखरे थे। उतर कर उसने दो बड़े-बडे तरबूज तोडे। हथेलियों का जोर दे कर उनकी फाँकें की और खा गया। प्यास तो मिट गयी, परन्तु भट्टे पर पहुँचते-पहुँचते पेट मे तीव्र शूल उठने लगा। जाते ही धरती पर लोट गया। ऊसर, उजाड़ स्थान, समीप के गाँव मे कोई हकीम न वैद्य, हैजे का सख्त दौरा, संध्या होते-होते तड़प कर ठंडा हो गया।

इसी चूनी लाल की बड़ी लड़की कान्ता का विवाह था। माँ-बाप के मर जाने के बाद दादा ने उसे अपनी दूसरी पोतियों से कहीं ज्यादा लाड़ से पाला था। और वह चाहता था कि उसकी शादी भी ऐसी धूम-धाम से करे कि बच्ची को पिता का अभाव न खटके। चन्दा कान्ता के साथ खेली-खूदी और बड़ी हुई थी। उसे कान्ता ने स्वयं अपने हाथ से पत्र लिखा था और अनुरोध किया था कि वह अपने साथ जीजा जी को भी लाये। पर जीजा जी तो दूर रहे, चन्दा स्वयं भी जाने के लिए कुछ वैसी आतुर न थी।

यह बात थी कि चेतन रोज-रोज़ के भाषणों से तंग आ कर अन्त मे

चन्दा नियमित रूप से स्कूल जाने लगी थी। "यदि आप मुझे सचमुच शिक्षित देखना चाहते हैं," उसने कहा था, "तो आप मुझे किसी स्कूल में दाखिल करा दें। आप स्वयं मुझे न पढ़ा सकेंगे। एक शब्द पढ़ायेंगे तो चार बार झिड़केंगे और चार घंटे लेक्चर देंगे।" उसने यह बात इतने भोलेपन से कही थी कि चेतन हँस दिया था और उसने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था और वह बड़े शौक़ से पढ़ने लगी थी। उसकी अध्यापिका का कहना था कि उसने अत्यन्त प्रखर बुद्धि पायी है। चन्दा को स्वयं भी पढने का बहुत शौक हो गया था और जो भी समय उसे मिलता, उसमे वह पढ़ने मे लगी रहती। वह जब दाखिल हुई थी तो लड़कियो ने एक बार सारी पुस्तकें समाप्त कर ली थीं, पर उसकी अध्यापिका ने विश्वास दिलाया था कि यदि चन्दा जी लगा कर पढ़ेगी तो वह तीन महीने ही मे हिन्दी-रत्न की परीक्षा दे लेगी। यद्यपि अध्यापिका ने यह भी आश्वासन दिलाया था कि यदि वह फ़ेल हो गयी तो भी दूसरे वर्ष उसे भूषण मे दाखिल कर लिया जायगा, पर चन्दा असफल न होना चाहती थी। रत्न मे पढ़ने वाली छोटी-छोटी लड़कियों में बैठते हुए उसे पहले ही बड़ी लज्जा आती थी, असफल हो कर वह उनमें कहाँ बैठ सकेगी? और उसने जी-जान से पढ़ना शुरू कर दिया था।

यही कारण है कि जब उसे निमन्त्रण मिला तो वह स्वयं इलाबलपुर जाने के लिए कुछ उतनी व्यग्र न थी। लेकिन जब चेतन दफ़्तर से आया तो उसने अपने पति से इस बात का ज़िक्र नही किया। "कान्ता की शादी है", उसने कहा, "ताऊ जी का पत्र आया है। कान्ता और नीला ने आप से आने का अनुरोध किया है।" चेतन को संक्षिप्त मे उसने पत्र का साराश बता दिया, पर अपनी ओर से किसी प्रकार की इच्छा प्रकट नही की।

चेतन का हृदय धक-धक करने लगा, पर अपने आन्तरिक उल्लास को छिपा कर उसने अत्यन्त संयत स्वर मे बेपरवाही से कहा, "अच्छा लाओ तो देखें क्या लिखा है?"

चन्दा ने पत्र अपने पति को दे दिया। वास्तव में यह निमन्त्रण हर मोहन की ओर से था। पर एक अलग काग़ज पर कान्ता ने उससे आने के लिए कहा था। इस पर चन्दा के ताऊ और पिता की ओर से ताकीद थी और नीला के हाथ की लिखी हुई दो पंक्तियों मे ताकीद-मजीद[1] थी, जिनमे उसने अपने इस प्यारे जीजा जी को सानुरोध बुलाया था।

"आज-कल दफ़्तर मे बड़ा काम है," चेतन ने पत्र पढ़ कर लौटाते हुए कहा, "दो सम्पादक तो बीमारी के कारण छुट्टी पर गये हुए, तीसरा बीमार होने की फ़िक्र मे है। फिर भाई मैं तो विवाह-शादी के झमेलो से बड़ा घबडाता हूँ, और शादी नगर मे हो तो बात भी है, यहाँ जाना होगा उनके गाँव मे...."

"हाँ विवाह तो वे अपने यहाँ ही करेंगे," चन्दा ने कहा, "लेकिन इलावलपुर गाँव नही, कस्बा है!"

"अरे यहाँ गाँव और कस्बो मे कौन-सा बड़ा अंतर होता है और मैं तो अपने सम्बन्धियो तक के ब्याह-शादियों मे शामिल नही होता। फिर...."

बात काट कर उसकी पत्नी ने कहा, "फिर निकट सम्बन्धी हों तो भी कुछ बात है, आपको दफ़्तर मे काम है और मैं स्कूल से छुट्टी लेना पसन्द नही करती। कान्ता की बात ज़रूर है। उससे मिलने को जी चाहता है, किन्तु उसे एक बार यहाँ बुला लेंगे। वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नही।"

अन्तिम बात सुन कर चेतन जरा बौखलाया। वह सोचता था— उसकी पत्नी अनुरोध करेगी, वह 'न न' करेगा और आखिर बडी मुश्किल से उस पर अहसान का बोझ लादते हुए जाने को तैयार हो जायगा। पर चंदा की यह बात सुन कर क्षण भर के लिए वह अप्रतिभ-सा उसके मुँह की ओर ताकता खड़ा रहा। फिर उसने शीघ्र ही पैतरा बदला।

"दूर निकट की बात नहीं," वह बोला, "प्रायः भाई-भाई भी इतने

---

१. ताकीद-मजीद = और भी अनुरोध

दूर चले जाते हैं कि शत्रु उनसे समीप जान पड़ते हैं। इसके विपरीत पराये कई बार इतने समीप आ जाते हैं कि अपने हो जाते हैं। प्रश्न समय का है। मेरे पास समय कम है।" फिर कुछ रुक कर वह बोला, "किन्तु मैं सोचता हूँ कि तुम्हारे पिता और ताऊ तो उन्हें अपना-सा ही समझते हैं। इसलिए, यह तो एक तरह से उन्हीं के यहाँ जाना है। निमन्त्रण भी तो उन्हीं की ओर से आया है, कहीं वे हमारी अनुपस्थिति का बुरा न मानें ?"

और वह कुछ क्षण चुप रहा ताकि चन्दा पर इस तर्क की प्रतिक्रिया जाने। पर उसका मुख भाव-शून्य था। उसने फिर कहा :

"तुम इतने महीनों से इस ब्याह की बात कर रही थीं, मुझे साथ चलने को तैयार कर रही थीं, अब...."

"पहले मुझे कोई परीक्षा तो पास करनी थी, शादी-ब्याह में शामिल होती रही तो दे चुकी परीक्षा, और फिर कहीं फ़ेल हो गयी तो आप ही जान खायेंगे।"

चेतन हँसा, "वहाँ कौन से इतने दिन लगेंगे, चार-पाँच दिन के लिए ही तो जाना होगा।"

चन्दा चुप रही। वह सोच में पड़ गयी। फिर लम्बी साँस ले कर चेतन ने कहा :

"और मैं सोचता हूँ इस बहाने तुम्हें भी कुछ आराम मिल जायगा और मैं भी समाचार-पत्र की इस चक्की से कुछ दिनों के लिए छुट्टी पाऊँगा।"

अपने आराम की बात तो शायद चन्दा पर उतना असर न डालती पर अपने पति के लिए हँसी-खुशी के दो दिन उपस्थित करने को वह झट से तैयार हो गयी।

तैंतीस

पाँच के बदले चेतन को वहाँ पन्द्रह दिन लग गये ।

०

कई बार जीवन मे कोई ऐसी छोटी-सी घटना घटती है जो हमारे जीवन की समस्त धारा बदल देती है । न केवल यह, बल्कि कई बार वह छोटी-सी; नित्य प्रति घटने वाली असंख्य साधारण घटनाओ मे से एक घटना हमारे सम्पर्क मे आने वालो की जीवन धाराओं को भी पलट देती है और हमारे जीवन की ऐसी महत्वपूर्ण घटना बन जाती है कि उसका प्रभाव जीवनपर्यन्त हमारे मन पर रहता है ।

चेतन के ससुर के मामा की इस पोती का विवाह भी चेतन, चन्दा और नीला के जीवन मे एक ऐसी ही महत्वपूर्ण घटना बन गया ।

०

चेतन अपनी पत्नी को ले कर सीधा इलावलपुर न गया था । वह कई महीनों से अपने माता-पिता से मिली न थी और पहले बस्ती गज़ाँ जाना चाहती थी । चेतन भी जाते-जाते चुपराना में होने वाले वसन्तोत्सव को देख लेना चाहता था ।

चुपराना गाँधी-मंडप से आध मील पर होश्यारपुर रोड पर स्थित है । किसी समय मे वहाँ सिर्फ़ एक कुआँ था और प्रातः सैर को जाने वाले नगर के उत्तरी भाग के निवासी, वहाँ स्नानादि को जाते थे । इधर जालन्धर के प्रसिद्ध सोंधी वंश मे किसी बुजुर्ग के मरने पर उसकी समाधि चुपराना के समीप बना दी गयी थी और अपने इस बुजुर्ग की याद को ताजा रखने के लिए वसन्त के दिन उस बुजुर्ग के वंशजों ने एक मेले का आयोजन कर दिया था । इस मेले को सफल बनाने के हेतु एक कवि-सम्मेलन का भी प्रबन्ध किया जाता था । चेतन की इच्छा थी कि यदि उससे कहा गया—यदि उससे : [illegible] किया गया—तो वह अपनी एक

कविता पढ़ देगा । यह कविता उसने तीन साल पहले कॉलेज के दिनों में वसन्तोत्सव पर लिखी थी । मन-ही-मन वह उस कविता को याद करने का प्रयास भी करता रहा ।

रात को चेतन अपनी ससुराल मे ही सोया । इससे पहले जब एक-दो बार वह आया था तो पण्डित बेणी प्रसाद के यहाँ ठहरा था और वह उस घर को ही अपने ससुर का घर समझता था । लेकिन अब उसे मालूम हुआ कि उसके ससुर का निजी कोई मकान नही । अपनी जेठानी से उसकी सास की कभी न पटी थी और अपने पति को ले कर वह अलग हो गयी थी इस मकान के भी दो कमरे ही उसके ससुर ने किराये पर ले रखे थे । यद्यपि किसी ने उस पर प्रकट नही होने दिया, परन्तु उसे कुछ ऐसा लगा कि उसके ससुर का हाल कुछ पतला है ।

रात को बड़े प्यार से चेतन की सास ने उसे आलू और अंडों की तरकारी बना कर खिलायी । "चन्दा के पिता बड़े शौक से खाया करते थे," उसने खाना परोसते हुए कहा, "रणवीर और हरमोहन भी बडे शौक़ से पकवाते थे । लेकिन चन्दा के पिता ने माँस खाना छोड़ दिया और रणवीर या हरमोहन अब इधर क्यों आने लगे ।" और उसने एक ठंडी उसाँस छोड़ी ।

यो चेतन बड़ा सात्विक प्रकृति का युवक था । शराब और सिगरेट तो दूर वह पान तक न खाता था । लेकिन बी० ए० पास करने के बाद अपने मित्र अनन्त के निरन्तर अनुरोध के कारण, स्वास्थ्य के विचार से, उसने माँस खाना आरम्भ कर दिया था । वह आरम्भ करने ही का अपराधी था । नियमित रूप से माँस खाने के लिए वह कभी पैसे न बचा पाया था । अंडे अत्यन्त स्वादिष्ट बने थे । वह जी भर कर खा गया ।

दूसरे दिन वह अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहन कर चुपराना जाने के लिए तैयार हुआ । बाकी घर वालों से उसने कह दिया कि 'आप लोग इलावलपुर जायँ, मैं रणवीर के साथ शाम की गाड़ी से पहुँच जाऊँगा ।'

यह रणवीर नीला का बड़ा भाई था । दूसरों से कविता लिखवा

कर पढ़ने का शौक़ीन । उसी को साथ ले कर चेतन चुपराना की ओर चल पड़ा ।

बारह बजने वाले थे । धूप तेज़ हो गयी थी । बस्ती से अपनी उमंग में वह अपनी कहानियों और कविताओं का प्रशंसा करता और इस प्रकार अपने इस साले पर रोब जमाता हुआ पैदल ही चल पड़ा था । लेकिन जब वह लगभग चार-पाँच मील चल कर चुपराना पहुँचा तो उसने देखा कि वसन्तोत्सव का तो वहाँ निशान तक नहीं । वास्तव मे जिन धनी-मानी सज्जनों के उत्साह ने वहाँ मेला आरम्भ करवाया था उनमे किसी की मृत्यु कुछ महीने पहले हो गयी थी और शोक के कारण उन्होंने इस बार मेले का आयोजन न किया था । लोग जा-जा कर लौटे आ रहे थे ।

चुपराना से इधर ही सड़क पर चेतन रुक गया । इस चार-पाँच घंटे मे पहली बार उसे महसूस हुआ कि वह अत्यन्त थक गया है और सूर्य की किरणें भी उसके शरीर में कुछ चुभती रही है ।

बड़ी मुश्किल से उसने अपनी तीन वर्ष पहले लिखी हुई कविता याद की थी और उसे मन-ही-मन कई वार दोहराया था । उस कविता के समस्त शब्द अगनित हथौड़ों की तरह उसके सिर मे चोट पहुँचाने लगे ।

चुपराना के वसन्तोत्सव मे सम्मिलित होने के बाद उनका स्टेशन जाने का प्रोग्राम था । घडी देखी तो गाड़ी मे अभी तीन घंटे बाकी थे । उसे इतनी थकान लग रही थी कि बस्ती या शहर में अपने घर वापस जाना उसे दूभर मालूम होता था ।

"यहाँ कोई ताँगा न मिल जायगा ?" चेतन ने विवशता से रणवीर की ओर देखते हुए पूछा ।

"नज़र तो नही आता ।"

"चलो नगर को जाने की अपेक्षा यही से स्टेशन की ओर चलें । वहीं जाकर कुछ सुस्ता लेंगे ।"

तभी रणवीर को पहली बार किसी चीज़ का अभाव महसूस हुआ । उसे अपना कंठ सूखता हुआ लगा और उसके कलेजे में कुछ कुसमुसी-सी

होने लगी। तब उसे ध्यान आया कि उसने तो सुबह से एक पान तक नहीं चबाया और न एक सिगरेट ही पिया है। इस समय तक तो वह आठ-दस पान चबा जाया करता है और सिगरेट की एक-डेढ़ डिबिया फूंक दिया करता है। उसने इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया। "रायल सिनेमा के पास चौधरी की दुकान पर बैठेंगे," उसने कहा, मैं पान और सिगरेट ले लूंगा और आप एक-दो कप चाय पी लीजिएगा। थकान दूर हो जायगी।"

और दोनों चल पड़े।

चेतन का यह साला विचित्र प्रकृति का युवक था। जिन लोगों की माताएँ उन्हे अत्यधिक लाड़ से पाल कर उनके बचपन मे ही मर जाती है, उन्हीं मे रणवीर भी एक था। यों कोई वैसा बुरा व्यसन उसमे न था, किन्तु निठल्लापन भी क्या कोई छोटा ऐब है? वह दिन भर निरर्थक घूमता रहता, खूब पान चबाता, खूब सिगरेट पीता, खूब स्कीमे बनाता और उन्हे खूब ही तोड़ता। लम्बा, पतला नोकदार मुंह, ठोढ़ी रास अन्तरीप! गाल जैसे खाड़ियाँ, दाँतो पर पान की लाली और टार्टर की कालिमा, बाल रूखे, शुष्क और चौड़े मस्तक पर बिखरे हुए! चौधरी की दूकान पर चाय पिलाने के बाद उसने अपने जीजा जी को इलावलपुर की गाड़ी मे बैठा दिया और इस समस्त सेवा के बदले मे उसने अपने इन कवि जीजा से गाड़ी के डिब्बे मे बैठे-बैठे एक कविता बनवा ली।

इस कविता के सम्बन्ध मे कुछ दिन बाद उसने आँखों मे बरबस मद भर कर और स्वर को यथासम्भव रोमेंटिक बना कर जालन्धर के एक फ़सली समाचार-पत्र के फ़सली सम्पादक से कहा, "दिन भर सरसों को सुन्दर वासन्ती फूल, गेहूँ को बालियाँ, आम और नीम को बौर और अनार तथा कचनार को नयी कोपलें प्रदान करता हुआ जब वसन्त का सूरज संध्या के समय पश्चिम की सुनहरी झील मे छिप रहा था, तब मुझे यह कविता सूझी।" फिर उसने तनिक और गर्वस्फीत स्वर मे कहा था, "जिस प्रकार वसन्त की मीठी मादक बयार में साँस भरने ही से नस-नस

में नव-स्फूर्ति का आभास होता है उसी प्रकार इस कविता को पढ़ कर आपको अपनी नस-नस में नव-जीवन दौड़ता हुआ महसूस होगा । ज़रा सुनिए तो....!"

चौंतीस

कविता को पढ़ कर किसी की नसों मे नव-जीवन अथवा नव-स्फूर्ति का संचार हुआ या नहीं, इसे तो रणवीर या उस कविता को सुनने-पढ़ने वाले जानें, पर कविता समाप्त कर उसे रणवीर को सौंपते हुए इलावलपुर स्टेशन पर उतर कर कस्बे को जाते-जाते चेतन को जोर की सर्दी लगने लगी । उसका सारा शरीर काँपने लगा । नव-जीवन का संचार तो दूर रहा, उसे अपना पुराना जीवन भी साथ छोड़ता हुआ प्रतीत होने लगा ।

वसन्त के आरम्भ की सुन्दर संध्या थी । सूरज सचमुच पश्चिम की सुनहरी झील मे धीरे-धीरे उतर रहा था और उसकी सुनहरी किरणें नाचते हुए मोर के पंखों-सी आकाश मे गोलाकार फैल रही थीं । बाकी जिस देहाती सुन्दरता का वर्णन चेतन ने उस कविता मे किया था, उसका चिन्ह मात्र भी उन्हे वहाँ दिखायी न दिया था। ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी थी, चेतन का शरीर बुरी तरह काँप रहा था और उसके मस्तक मे असह्य पीड़ा होने लगी थी ।

अपना हाथ रणवीर की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा, "रणवीर ज़रा मेरा हाथ तो देखो, मुझे बेहद जाड़ा लग रहा है !"

"जीजा जी आप का शरीर तो तवे की तरह गर्म है ।" रणवीर ने उसकी कलाई छूते ही दुश्चिन्ता से कहा ।

"जरा तेज़ चलो, मेरा जी घबरा-सा रहा है ।"

दोनों और तेज़ चलने लगे ।

१७

रास्ते की धूल से चेतन का सफ़ेद पायजामा मैला हो रहा था और मन-ही-मन वह सोच रहा था कि उसके पास तो कोई दूसरा पायजामा भी नहीं।

कस्बे के बाहर एक जौहड़ में अत्यन्त दुर्गन्ध भरा पानी इकट्ठा हो रहा था। उसमें एक दो बेडौल से सूखे पेड़ों के तने पड़े थे। किनारे पर कुछ टूटी हुई बैलगाड़ियों के पहिए, जुए, ऊँठने, उलारू आदि इधर-उधर बिखरे पड़े थे। एक बेपहिए की पूरी की पूरी बैलगाड़ी भी एक ओर पड़ी थी। इर्द-गिर्द कूड़े के ढेर थे। एक सूखा, टेढ़े-मेढ़े तने वाला पीपल का पेड़, जिसके सिरे पर ही चन्द हरी टहनियाँ लहरा रही थी, इस सारे दृश्य को एक दार्शनिक की उदासीनता से निरख रहा था।

तेज-तेज चलते और ज्वर के वेग से काँपते हुए चेतन को यह सब अत्यन्त नीरस और उदास प्रतीत हुआ। उसका जी मतलाने लगा और जब वह तीन-चार सँकरी, दुर्गन्ध-युक्त, गंदी, मैली, गलियों से गुज़र कर मामा चिरंजीत लाल के पक्के तिमंजिले मकान के बालाखाने पर पहुँचा तो उसे ज़ोर की कै हुई।

रणवीर ने नीचे जा कर बताया कि जीजा जी को ज्वर हो आया है और वह पानी ले कर फिर ऊपर को भागा।

अतीव पीड़ा से फटे जाते सिर को थामे, नाली पर बैठे-बैठे, ज्वर के वेग से जलती तपती आँखों से चेतन ने देखा कि एक लड़की भागती-भागती आयी और देखते-देखते उसने अन्दर चौबारे में बिस्तर बिछा दिया और रणवीर से कहा कि जीजा को वहाँ लिटाये।

कुल्ला करके, वैसे ही सिर थामे, रणवीर के सहारे जब वह बिस्तर पर जा लेटा और जब उस पर लिहाफ़ डाल दिया गया तो उसने अपने मस्तक पर ठंडा, प्यार भरा हाथ फिरता हुआ महसूस किया और उसके कानों में आवाज़ आयी—मधुर और मादक, "जीजा जी!"

चेतन को बड़े ज़ोर का कम्पन हो रहा था। ज्वर की तीव्रता के कारण उसकी आँखें भट्टी की तरह तप रही थीं। उससे बोला न जाता

था, लेकिन नीला का स्वर पहचान कर उसे बड़ी ही सान्त्वना मिली। लिहाफ़ के अन्दर उसकी आँखें भर-सी आयी। पुनः जब नीला ने प्यार से उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसे आवाज़ दी तो उसने लगभग गीले, थरथराते स्वर मे कहा :

"नीला, सिर फटा जा रहा है।"

०

इस बीमारी मे चन्दा अपने पति के पास ज़्यादा नहीं आयी। जब सिर दर्द से व्याकुल हो कर चेतन ने उनका नाम ले कर पुकारा था तो वह एक बार आयी और सहमे हुए स्वर मे उससे कहा था :

"आप मेरी माँ को यहाँ मुँह दिखाने योग्य न रहने देंगे। यह जालन्धर या बस्ती नहीं, यह गाँव है। बड़े पुराने विचारों के लोग रहते है यहाँ। आपको जिस चीज की जरूरत होगी, उसका मै पूरा-पूरा ख़याल रखूंगी। मै नीला से कहे देती हूँ। आपकी आवश्यकताओं की ओर वह पूरा-पूरा ध्यान देगी। मेरे माता-पिता की इज़्ज़त का ख़याल रखें—मुझे नाम ले कर न पुकारें!"

और अत्यन्त अनुनय के स्वर मे यह सब कह कर वह भाग गयी थी। नीला से कुछ कहने की उसे आवश्यकता ही न पड़ी थी, क्योंकि अपने जीजा जी की आवाज सुन कर वह चन्दा के पीछे ही भाग आयी थी।

चेतन के कमरे मे उस समय बच्चे शोर मचा रहे थे। और उसका सिर फटा जा रहा था। "भगवान के लिए इनको यहाँ से भगाओ!" चेतन ने सिर थामते हुए किसी-न-किसी तरह कहा।

नीला ने बच्चों को झिड़क-डाँट कर भगा दिया, किवाड़ भेड़, कुंडी चढ़ा दी और चेतन के सिरहाने आ बैठी। चेतन उस समय पीड़ा से कराह रहा था। नीला धीरे-धीरे उसका सिर दबाने लगी।

०

इसके बाद चेतन पर कुछ नीम बेहोशी-सी छा गयी। नीला का स्वर जैसे

कहीं वहुत दूर से आते हुए, मीठे मद-भरे संगीत की शांति-प्रद तान की भाँति उसके कानों मे आता रहा । नीला क्या-क्या वातें करती रही, उसे यह सव याद नहीं । लेकिन उस अर्घ-चेतनावस्था मे भी उसकी कुछ वातें चेतन के मानस पट पर अमिट रूप से अंकित हो गयीं ।

....उसके लम्वे-लम्वे घुंघराले वालों मे अपनी कोमल अँगुलियाँ फेरते हुए नीला ने कहा था, 'जीजा जी तुम्हारे वाल कितने सुन्दर हैं ! लम्वे, काले, घुंघराले....'

....और फिर पूछा था, 'क्यों जीजा जी । ये घूंघर आपने कैसे वनाये हैं ? आप ने वनाये है, या स्वयं ही वन गये हैं ? मेरे तो वाल ऐसे नही वन पाते । लम्वे तो है, पर घुंघराले नहीं ।'

और उसने अपनी वेणी ले कर जीजा जी को अपने वाल दिखाये थे कि वे कैसे कोमल और लम्वे हैं, पर घुंघराले नहीं ।

चेतन ने ज्वर के कारण तपते-जलते अपने हाथों में वे कोमल ठंडे केश ले लिये थे और अनजाने ही उसने वेणी को धीरे-धीरे खोल डाला था और लम्वे, काले, सुकोमल, सुवासित, शांतिप्रद कुन्तल चेतन के मुख पर विखर गये थे ।

'....जीजा जी आपने मेरी वेणी खोल दी !'

....उसने वाल खींचे थे । पर चेतन ने उन्हें न छोड़ा था, न नीला ही ने उन्हें मुक्त कराने का कुछ अधिक प्रयास किया था । उन लम्वे, काले, सुकोमल कुन्तलों को चेतन ने अपने दोनों हाथों मे ले लिया था, अपने मुख पर विखरा लिया था और नीला उस पर झुक गयी थी.... इतना....इतना....कि एक वार उसे प्रवल आकांक्षा हुई कि उसके गले मे वाहें डाल कर वह उसे चूम ले । पर उसने वालों को ही चूमा । वह भी इस तरह कि नीला को आभास तक न हुआ और वह पूर्ववत वातें करती गयी ।

'....जीजा जी मैं तो व्याह न करूँगी । कोई मेरी शादी वरवस थोड़े ही कर देगा ।'

'....क्यों जीजा जी जब लोग ब्याह के बाद ब्याह को कोसते हैं तो वे क्यों करते हैं शादी ? न करें ! सुख से रहें । मैं तो कभी न करूँगी । मैं तो साफ़-साफ़ कह दूँगी पिता जी से ।'

और उसने अपनी बड़ी बहन की कहानी सुनायी थी ।

'....मीला बहन क्या सुखी है ? विवाह के पहले जाने क्या-क्या सोचती होगी ? हवा मे कितने क़िले बनाती होगी ? किन्तु अब तो उसकी आँखों का पानी ही नही सूखता । बड़े जीजा जी इंजीनियर हैं, सात-आठ सौ वेतन पाते हैं । ससुर धनी-मानी हैं, किन्तु फिर भी सुख नहीं । जब विवाह हुआ था तब बड़े जीजा जी पढ़ते थे । सास ने तीन वर्ष तक उसे पति के पास नहीं फटकने दिया । फिर सास के साथ बहन की बनी नहीं, इसलिए सास ने शोर मचाया कि वह तो बाँझ है, मैं अपने लाल का दूसरा ब्याह कर दूँगी ।'

और नीला कुछ क्षण चुप शून्य में ताकती रही थी ! फिर उसने कहा था ।

'....ख़ैर उस समय जीजा जी दूसरा ब्याह करने को तैयार न हुए । बाद मे बहन के एक छोड़ तीन बच्चे हुए, पर उसका वैवाहिक जीवन सफल न हुआ । अब जीजा जी को शिकायत है कि जीजी कुरूप है । फूहड़ है, शिक्षित नही, संस्कृत नहीं !'

'....जबरदस्ती कौन करेगा जीजा जी ? मैं विवाह करूँगी ही नहीं ।'

'....बच्ची नहीं हूँ, चौदह वर्षों की होने आयी हूँ ।'

और मस्तक दबाते-दबाते नीला ने उसके गालों पर हाथ फेरा ।

'....जीजा जी दाढ़ी आपके बड़ी बढ़ आयी है । आप हजामत क्यों नहीं बनवा लेते ?' और वह हँसी थी, 'मैं बना दूँ उस्तरा ले कर ?'

'....जीजा जी आपके होंटों पर पपड़ियाँ जम गयी हैं, इन पर ज़रा-सा मक्खन लगा दूँ ।'

और अपना एक हाथ उसने चेतन के सूखे होंटों पर फेरा । चेतन ने

उसके हाथ पर अपना हाथ रख दिया था और उस हाथ को अपने होंटों से तनिक-सा दबा दिया था ।

और उसका समस्त शरीर झुनझुना उठा था । उससे कुछ बोला न गया था । उसका गला सूज गया था । उसे बड़ी तकलीफ़ थी, पर उस समस्त कष्ट और पीड़ा के बावजूद उसे बड़ा पुलक और राहत मिली ।

रात को नीला ने दूध मे बनफ़शा उबाल कर उसके गले पर बाँध दिया ।

दूसरे दिन गाँव के अस्पताल का कम्पाउंडर आया जो अपने-आपको डॉ० विधान चन्द्र राय से कम न समझता था । कुनैन मिक्सचर और फ़ीवर मिक्सचर की खुराकें वह उसे पिलाता रहा, किन्तु चेतन को आराम न हुआ । हार कर उसने एक देहाती हकीम से, जो अत्तार भी था, अत्तरी फल जमानी[१] मँगाया । दूध के साथ उसे पिया और गरिष्ठ अंडों से (जो ठीक तरह न पचने के कारण उसके आमाशय ही में सड़ कर विकार पैदा कर रहे थे) जब पेट साफ़ हुआ तो वह कुछ ठीक ढंग से सोचने योग्य बना । उसने हजामत बनवायी, मुँह-हाथ धोया और चारपाई पर आराम से लेट गया ।

एक-एक करके सब बातें उसके मस्तिष्क में घूमने लगीं....

गले मे शोथ होने के कारण वह अधिक न बोल पाया था और बातें अधिकतर नीला ही करती रही थी । लेकिन जितनी देर वह पास बैठी बातें करती रही थी, चेतन को एक अपार तुष्टि, एक अपार सुख का आभास मिलता रहा था ।....उसके लम्बे, काले, सुकोमल, सुगन्धित बाल; पतली पर माँसल अँगुलियाँ....हृदय को भेद कर, सोयी हुई भावनाओं को जगाने वाली उसकी दृष्टि...परन्तु चन्दा....

और अचानक अपनी पत्नी का ध्यान आ जाने से उसने उसे आवाज दी ।

भाग कर नीला ऊपर आ गयी ।

बिना उसकी ओर देखे, बिना उससे दृष्टि मिलाये चेतन ने कहा, "तुम जरा अपनी बहन को भेज दो ।"

---

१. एक यूनानी दवाई ।

"क्या काम है जीजा जी ?" जैसे उसकी नाचती हुई वाणी ने पूछा।

"तुम जरा उसे भेज दो।"

और कुछ चकित-सी नीला चुपचाप चली गयी। दूसरे क्षण चन्दा उसके पास खड़ी थी।

"कहिए !"

चेतन चुप रहा। वह सोच रहा था कि अभी जो बात उसके मन में अचानक उठी थी, उसे कहे या न कहे।

चन्दा उसके पास बैठ गयी और उसके लम्बे-लम्बे बालों पर हाथ फेरते हुए उसने कहा :

"आप ने मुझे बुलाया था, क्या हाल है अब तबीयत का ?" और एक स्निग्ध मुस्कान उसके होंटों पर फैल गयी।

"तुम्हारी बला से।" चेतन ने रुखाई से कहा, "तुम्हारी ओर से कोई मरे या जिये, तुम अपनी सखी-सहेलियों और गाने-बजाने मे मस्त रहो।"

"क्यों क्या बात है ?" चन्दा का गला भर आया। उसकी मुस्कान विषाद मे विलीन हो गयी और उसकी चकित आँखें पति के क्षीण और तनिक पीले चेहरे पर जम गयी।

"मै आज चार-पाँच दिन से बीमार हूँ। इतना ज्वर चढ़ आया, तुमने पूछा भी आ कर ?"

"क्यो मै तो बराबर आपकी खबर रखती हूँ। आपको किस बात का कष्ट हुआ है, नीला जो थी....!"

"नीला जो थी....नीला जो थी....नीला....," झल्ला कर चेतन ने लगभग चीखते हुए कहा, "तुम मेरे पास बैठो।"

अत्यन्त विनीत और आर्द्र स्वर में चन्दा ने कहा, "आप नहीं जानते मै आपके पास आ बैठी तो बीस तरह की बातें होगी। कुटुम्ब की स्त्रियाँ जो मुँह मे आया बकेंगी। नीला...."

"मै कहता हूँ चन्दा तुम पागल हो," चेतन ने खीज कर कहा, "नीला

अब बच्ची नहीं, चौदह वर्ष की हो गयी है वह, और मैं—देखती नहीं हो—इंसान हूँ, कमजोर इंसान...."

चन्दा जोर से हँस पडी, "आप ने तो मुझे डरा ही दिया था। मुझे इस बात का डर नही। वह मेरी छोटी बहन है। ताऊ की लड़की हुई तो क्या, मैने उसे बहन ही की तरह समझा है। उसकी इज्जत आपके हाथ मे है। वह चंचल है, बालिका है, छोटी-मोटी ग़लती कर सकती है, पर आप तो नही कर सकते।"

और एक असीम, अपार, उदार विश्वास से अपने पति को देखते हुए उसने उसके मस्तक पर हाथ फेरा।

चेतन ने अपनी दृष्टि अपनी पत्नी की आँखों मे जमा दी। इस सरल हृदया पत्नी से कभी वह विश्वासघात कर सकता है! एक असीम दया और निर्मल प्रेम से उसके मन-प्राण प्लावित हो उठे। कितना बड़ा दिल पाया है इस नारी ने? फिर कितनी भोली! नही जानती कि मानसिक सम्बन्ध के अतिरिक्त शारीरिक सम्बन्ध भी कोई चीज है। मन से मनुष्य अपने संगी का बना रहना चाहता है, शरीर नहीं रहने देता। मन शरीर को अपने अधिकार मे, अपने संयम मे रखना चाहता है, किन्तु वह प्रायः बिदके हुए घोड़े की तरह भाग खड़ा होता है। उसने धीरे से कहा:

"यदि तुम मेरे पास नहीं बैठना चाहती, तो फिर मुझे यहाँ से ले चलो।"

उस दृष्टि से जो स्निग्ध-स्नेह से भर कर एक बच्चे के चंचल भोलेपन को देखती है, चन्दा ने अपने पति की ओर देखा और उसके कन्धे को प्यार से थपथपा कर उसने कहा, "मैं कही जा तो नहीं रही, सदैव आपके पास ही तो मुझे रहना है। आप ही के कहने पर मै यहाँ आयी थी। अब जिस काम से आयी हूँ, उसकी समाप्ति के पहले कैसे चली चलूँ? इस तरह जाना तो बचपना होगा। बस दो-चार दिन और किसी प्रकार काट दें। मैं तो दिन-रात आपके पास बैठी रहूँ, किन्तु रिश्तेदारों का डर है। यो कहने को मै चाहे नीचे आँगन मे बैठी रहती हूँ, पर मेरी समस्त

वृत्तियाँ आप ही की ओर लगी रहती हैं ।"

और वह उठी ।

चेतन ने लम्बी साँस ली । कुहनियों के बल वह तनिक-सा उठा हुआ था । उन्हें उसने ढीला छोड़ दिया और हताश-सा लेट गया ।

"मुझे कुछ भूख-सी लगी है । ज़रा-सा गर्म दूध ला दो ।" मीठे स्वर में उसने कहा ।

"मैं अभी भिजवाती हूँ ।" तत्परता से चन्दा नीचे की ओर चली ।

पैंतिस

चेतन ने सिर उठा कर देखा—दूध भरा गिलास लिये हुए नीला आ रही है ।

गिलास को दोनों हाथोंसे थामे होने के कारण उसके सिर का दुपट्टा खिसक गया था और लम्बे, काले, खुले, सुवासित केश उसके कन्धों को ढके हुए थे ।

चेतन का हृदय धक से रह गया । यह नीला इतनी सुन्दर उसे कभी न लगी थी । सद्यस्नाता, धुले निखरे अरुण कपोल, मधु-ऋतु के प्रभात-सी स्वच्छ वह उसके सामने खड़ी थी ।

"जीजा जी दूध पी लो ।"

दूध के गिलास पर झुकी उसकी निगाहें तनिक-सी ऊपर उठ कर चेतन की आँखों से चार हुई और वसन्त के सूरज की प्रथम किरण-सी एक हल्की-सी मुस्कान उसके होंटों हर फैल गयी ।

चेतन नही हँसा । वह उठ कर बैठ गया और तनिक काँपते हुए हाथों से उसने गिलास थाम लिया । नीला उसके बिस्तर पर बैठ गयी और दोनो हाथों से उसके दोनों कन्धे थाम कर उसने उसे सहारा दिया उसके

वक्ष की गर्मी को चेतन ने अपनी पीठ पर अनुभव किया।

उसने दो घूंट पिये—गर्म, स्वच्छ, ताज़ा दूध। लेकिन चेतन का कंठ जैसे सूख रहा था, उसके हाथ काँपने लगे।

"मै पिला दूँ आपको," नीला ने प्यार से कहा।

"नही मैं पी रहा हूँ!" चेतन बोला।

और उसने दो घूंट और पिये।

तभी बाहर कोठे पर खेलते शोर मचाते, एक दूसरे को छूते, धमा-चौकड़ी मचाते हुए बच्चे अन्दर चौबारे मे आ दाखिल हुए। चिढ कर नीला बिस्तर से कूद उनके पीछे भागी। "तुमसे कितनी बार कहा है, इधर न आओ!" उसने उन्हे डाँटते और बाहर निकालते हुए कहा और बाहर आँगन की मुंडेर पर से नीचे किसी चची को सम्बोधित करके चिल्लायी:

"चाची हटा लो इनको, जीजा जी की तबीयत ठीक नही और ये शोर मचाते हैं! किवाड़ लगाती हूँ तो बड़ाबड़ तोड़ते है, शैतानों से क्या कम हैं ये सब?" और क्रोध मे भ्रू-भंग किये हुए आ कर उसने खट से किवाड़ बन्द कर दिये, चिटखनी लगा दी और अपने जीजा के पीछे उसी तरह सट कर बैठ गयी।

चेतन के शरीर मे फिर बिजलियाँ-सी कौंध गयी। अपनी पीठ के साथ नीला के स्वस्थ वक्ष का परस और उष्णता अनुभव करते ही चेतन के हाथ फिर काँपने लगे। एक विचित्र आनन्द-भरी झुरझुरी-सी रह-रह कर उसके शरीर मे उठने लगी। अपनी पत्नी को बीसियों बार उसने आलिगन मे लिया था, किन्तु कभी भी ऐसी झुरझुरी, ऐसा कम्पन उसके शरीर मे उत्पन्न न हुआ था।

नीला ने गिलास उसके हाथ से ले लिया। "आप तो काँप रहे है।" यह कहते हुए चेतन के समस्त शरीर को अपनी दायीं बाँह पर ले कर उसने बायें हाथ से गिलास उसके होंटो से लगा दिया। चेतन जैसे किसी दूसरी ही दुनिया में पहुँच गया। बेलि-सी उस किशोरी के हाथ से, उसकी

भुजा का सहारा लिये उसके वक्ष से लगे दूध पीने में चेतन ने जो क्षण व्यतीत किये और उनमे उसे जिस असीम आनन्द का आभास मिला, वह उसे अब तक कभी न मिला था। कुन्ती के साथ बात करते हुए भी नहीं और प्रकाशो के वक्ष पर चुटकी काटते हुए भी नहीं। वसन्त के नीलाम्बर पर जैसे छोटे-छोटे मेघ-बाल अपनी गर्म-गर्म ऊन के गदेले लिये उडे जा रहे थे और वह उनकी सेज पर लेटा उनके साथ उड़ा जा रहा था।

जब चेतन के दूध पी चुकने के बाद नीला ने वही बैठे-बैठे हाथ बढ़ा कर गिलास ताक मे रख दिया और हटने लगी तो अचानक दायें हाथ से उसे अपने आलिगन मे भर कर चेतन ने उसे चूम लिया।

नीला चारपाई से उतर गयी।

चेतन श्रान्त-सा बिस्तर मे धँस गया।

नीला ने जा कर झट से दरवाज़ा खोल दिया और फिर चुपचाप आ कर उसके सिरहाने मे खड़ी हो गयी।

चेतन ने देखा—उसके गाल निमिष-मात्र के लिए और भी लाल हो गये और फिर कपास के फूल की सफ़ेदी उन पर दौड़ गयी।

करवट बदल कर लेटे-लेटे चेतन ने कहा, "नाराज़ हो गयी हो नीला, माफ़ कर दो!"

नीला ने उत्तर न दिया। तेज़-तेज़ चलती वह कमरे से निकल गयी।

०

उसने अपने उस कृत्य पर नीला से माफ़ी ली थी और नीला ने उसे माफ़ भी कर दिया था पर वह स्वयं अपने-आपको क्षमा न कर पाया था। साँझ को जब पण्डित वेणी प्रसाद अपने हिलते-डोलते शरीर को लिये हुए उसका हाल चाल पूछने उसके पास आ कर बैठे थे तो लैम्प के उस धीमे प्रकाश में, उसने धीरे-धीरे, एक दो बातों को छोड़ कर इशारों-इशारो में सब कुछ उन्हें बता दिया और सलाह दी कि नीला अब युवती हो गयी है, अब उसका विवाह कर देना चाहिए। माँ सिर पर नहीं और आप भी उतना ध्यान नहीं दे सकते....और जमाना अच्छा नहीं....बस्ती मे अपढ़ लड़कियों

की संगति .. और व्यस्त रहने के लिए उसके पास है नहीं....आदि ....आदि....

इसके बाद नीला उसके पास न आयी थी। यदि चेतन को कुछ आवश्यकता भी हुई तो उसकी छोटी बहन शीला ही आयी। चेतन का दम घुटने लगा। वह चाहने लगा कि उसी क्षण उठ कर भाग जाय, सीधा लाहौर चला जाय, फिर कभी जालन्धर अथवा इलावलपुर न आये।

लेकिन इसके बाद भी उसे चार दिन वहाँ रहना पड़ा। वे चार दिन जैसे चार वर्षों से बीते। चारपाई पर वह अकेले लेटा छत की कड़ियाँ गिनता रहा। उसे पहली बार अनुभव हुआ जैसे कमरे में से रूह उड़ गयी है और वह एक शव-सा मुँह बाये उसके पास पड़ा है। एक ही दिन में उसके स्वभाव मे चिड़चिड़ापन आ गया। वह यों चन्दा को आवाजें देता और जब हर आवाज़ पर नन्हीं शीला फुदकती हुई आती तो मन-ही-मन में झल्ला कर रह जाता।

अन्त मे तीसरे दिन शीला को अपने पास बैठा कर, उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए, उसने पूछा था, "क्यों शीला, नीला को इधर नहीं देखा, क्या करती रहती है वह!"

"रोती रहती है।"

"रोती रहती है। पर क्यों ?"

किन्तु इस 'क्यो' का उत्तर वह निरीह बालिका क्या देती ? चेतन लगता जैसे कोई उसका हृदय कचोट रहा है।

चौथे दिन भी नीला न आयी। चेतन के लिए अब पल भर भी उस कमरे मे बिताना कठिन हो गया। कान्ता अपनी ससुराल से एक दिन के लिए आ कर जा चुकी थी। विवाह पर आये हुए सगे-सम्बन्धी जाने लगे थे। उसने चन्दा को बुलाया और आग्रह किया कि मुझे इसी क्षण यहाँ से ले चलो। कान्ता की माँ और उसकी सास ने बहुतेरा कहा कि अभी तुम्हारा जी ठीक नहीं, अभी दो-चार दिन और यहाँ रहो, पर वह न माना। ग्लानि से उसके मन प्राण जल रहे थे! विवश हो चन्दा उसे ले

कर चल पड़ी।

मामा चिरंजित लाल के उस तिमंज़िले मकान से उतरते हुए उसके मन मे प्रबल आकांक्षा हुई कि यदि नीला कहीं मिल जाय तो वह उससे फिर एक बार माफ़ी माँग ले। पर उसे उतरते देख, वह भाग कर कमरे मे जा छिपी। चेतन को ऐसा लगा था जैसे किसी ने ज़ोर से उसके मुँह पर चाँटा दे मारा हो।

छत

कल्लोवानी के अपने उसी कमरे मे चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ चेतन अन्यमनस्क-सा खिड़की के बाहर देख रहा था।

जिस दिन वह इलावलपुर से जालन्धर लौटा था, उसी दिन, घर पहुँचते ही उसे मालूम हुआ था कि उसके दादा का देहान्त हो गया है और ग्यारह दिन तक उसके लिए वहीं रहना अनिवार्य है। यद्यपि इलावलपुर मे उसका ज्वर उतर गया था, किन्तु रास्ते की थकन, गर्मी और दादा के देहान्त के बाद घर मे खाने की असुविधा हो जाने के कारण वह फिर बीमार पड़ गया था।

०

आज ग्यारहवें दिन दादा का क्रिया-कर्म हुआ था, और दिन भर का थका चेतन लेटा था। सामने के मकान की छत पर गोपीनाथ सुनार की लड़की दम्मो अनमनी-सी बैठी थी और निचली मंजिल की खिड़की मे उसकी माँ—अमरकौर—एक ही धोती से अपने तन को ढँके, न जाने किसे कोस रही थी।

दम्मो की माँ दिन-भर किसी-न-किसी को कोसती रहती थी—कभी

बूढ़ी अन्धी सास के लोभ को, कभी बूढ़े बेदम, अपाहिज ससुर की लोलुपता को, कभी बच्चों की नालायकी को, कभी पति के ख़सारे को और कभी सनयी की नीचता को—गली-मुहल्ला, सगे-सम्बन्धी सब उसे अपने विरुद्ध षड्यन्त्र रचते दिखायी देते थे।

खिड़की से आधी बाहर को झुकी हुई, अपनी नंगी बाँह बढ़ा-बढ़ा कर पीले, निचके पपीतों-सी अपनी नंगी छातियों को बार-बार बोतों से ढकती हुई, वह न जाने किसे गालियाँ दे रही थी। लड़ने के लिए उसे केवल बहाना दरकार होता था। मुहल्ले में कोई लड़ता हो, वह किसी-न-किसी प्रकार उसमें आ कूदती थी और फिर दिन भर उसके शत्रुओं को उससे मुक्ति पाना कठिन हो जाता था।

चेतन के सामने चन्द दिन पहले की घटना घूम गयी और उसके होंठों पर एक हल्की-सी मुस्कान आ गयी। अजीब लड़ाकी थी यह दन्नो की माँ....

साँझ का समय था, जब परली गली की पंडितानी ने (जिसे चेतन मौसी कह कर पुकारता था) अपनी भैंस ला कर खिड़की के सींखचों से बाँध दी। दादा के रहते तो किसी को साहस न होता था कि सींखचों से कोई पशु बाँधना तो दूर, मकान के पास से भी कोई भैंस या गाय ले जाय। किन्तु उसके देहावसान के पश्चात् शायद उसने चेतन की माँ के शहर की होने के नाते इसका अधिकार पा लिया था। किन्तु माँ को यह बात अच्छी न लगी कि जिस बात को दादा नापसन्द करते थे, उनके आँखें मूँदते ही उसकी आज्ञा दे दी जाय। उसने चेतन को आदेश दिया कि भैंस जिसकी भी हो खोल दी जाय।

चेतन ने भैंस को खोलते हुए, मुहल्ले के चौक में सूत के अड्डे पर बैठी पड़ोसिन मलावी से हँस कर कहा, "वाह चाची तुम भी खूब हो, तुम्हारे यहाँ बैठे-बैठे हमारी खिड़की से कोई भैंस बाँध दे और तुम हटाओ भी न।"

"मैं कैसे हटाती, तुम्हारी मौसी ही ने बाँधी है।" मलावी ने मुख

ग्रटेरते हुए कहा ।

मौसी भी कही निकट खड़ी थी । नाक-भौ सिकोड़ते हुए भैस की रस्सी हाथ मे ले कर वह बोली, "मैने तो पल भर के लिए बाँधी थी । जरा सानी मे खली मिला रही थी ।" फिर कुछ रुक कर ग्रौर तनिक मुँह बिचका कर उसने कहा "ग्रौर दम्मो की माँ ने रात भर बाँध रखी, उसे किसी ने नहीं रोका ।"

उसने यह बात साधारण ढंग से केवल सूचनार्थ कही थी, लेकिन दम्मो की माँ ने सुन ली । वह घर मे कोई भी काम क्यो न करती हो, उसके कान मुहल्ले ही मे लगे रहते थे । मौसी के मुँह की बात ग्रभी उसके मुँह ही मे थी कि उसी एक धोती से ग्रपना तन ढाँके, वह खिड़की मे ग्रा बैठी ग्रौर बाँह बढा कर ग्रपनी नंगी होती हुई छाती पर कपड़ा ठीक करते हुए उसने कहा :

"ग्रौर उन खसमाखानियों को क्या करूँ जो मेरे दरवाजे पर ग्रा कर मरती हैं । ग्रभी कल एक रंडी का कटड़ा सारा दिन दरवाज़े के सामने बँधा रहा । ग्राना-जाना मुश्किल हो गया ।"

"खसम को ग्रपने तू खा, रंडी तू हो ।" ऐन कोने में लाला जंगबहादुर की माँ दम्मो की माँ ही की तरह ग्रकेली धोती मे ग्रपना शरीर छिपाती ग्रा खड़ी हुई ।

चेतन भैस की रस्सी खोल कर ग्रन्दर बैठक में ग्रा बैठा । मौसी भैस को ले कर उसके खूँटे से बाँध कर चली गयी । मलावी ने ग्रपना साज-सामान उठाया ग्रौर ग्रपने घर जा कर मिरचें कूटने लगी—ग्राध मन मिरचें उसे रात भर में कूट कर पंसारी को देनी थी—लेकिन मुहल्ले के एक कोने मे ग्रपने मकान की खिड़की मे बैठी दम्मो की माँ ग्रौर दूसरे कोने मे बैठी लाला जंगबहादुर की माँ पूर्ववत् एक दूसरी के पति, पुत्रों, बेटियों, दामादों ग्रौर दूर निकट के सम्बन्धियों का नाम ले-ले कर मधुर वचनो की वर्षा करती रही ।

०

लड़ते-लड़ते दम्मो की माँ के मुँह से झाग निकलने लगी थी और क्रोध के आवेश मे उन पीले-पीले पपीतों को ढकने का भी उसे उतना ध्यान न रहा था, लेकिन वह किससे लड़ रही है, यह देखने के लिए चेतन उठ कर खिड़की मे नही गया। वहीं लेटा-लेटा वह उसके मुख पर क्रोध और आवेश के क्षण-क्षण बदलते भावो को देखता रहा। वहाँ से उसकी दृष्टि ऊपर छत की शहनशीन पर बैठी उसकी लड़की पर चली गयी। इस समस्त लड़ाई-झगड़े से जैसे उसे कोई दिलचस्पी न थी। अनमनी-सी बैठी वह कही दूर शून्य में मुटर-मुटर तक रही थी।

उस समय ऐसा लगता था कि यह लड़की अपने जीवन मे हँसी तो दूर, मुस्करायी तक नही। पर चेतन जानता था कि कुछ ही वर्ष पहले सारा मुहल्ला उसकी स्वर्ण-स्मिति और जगमगाते मोतियो-सी स्वच्छ हँसी का घायल था। जब वह अपने लम्बे, घुँघराले बालों को धो कर, उन्हे सुखाने के हेतु पीठ पर बिखराये, खिड़की मे आ बैठती थी तो मुहल्ले भर के लड़के किसी-न-किसी बहाने चेतन की बैठक मे आ इकट्ठे होते—अमरनाथ, जगदीश, प्राण, महेश, गूजर—यहाँ तक कि अमीचन्द भी उस समय वहाँ आ जाया करता था।

यह अमीचन्द चेतन का सहपाठी था। योग्य और बुद्धिमान तो उतना नही था, पर परिश्रमी बड़ा था और अपने इसी परिश्रम के बल पर सदैव क्लास मे सर्व-प्रथम आता था। जब अध्ययन मे जुटता तो उसे दीन दुनिया की खबर न रहती। किन्तु चेतन ने देखा था कि जब दम्मो खिड़की मे आ बैठती तो वह भी चेतन से कोई-न-कोई पुस्तक लेने, या स्कूल-टास्क (school-task) पूछने, या किसी ऐसे ही बहाने आ जाया करता और यद्यपि साधारणतया वह मौन और गम्भीर बना रहता पर दम्मो की मुस्कान के सामने चेतन ने उसकी उस सौम्यता को भी पिघल कर मुखर होते देखा था।

अमीचन्द के बहाने उतने सूक्ष्म चातुरी-भरे न होते और चेतन और अनन्त तत्काल उसका अभिप्राय भाँप जाया करते।

"तुमने यदि विदर्ज की Money समाप्त कर ली हो तो मुझे दे दो !" अमीचन्द कहता और कनखियों से दम्मो की ओर देखता।

अनन्त ठहाका लगाता, "यहाँ बैठ कर अर्थशास्त्र के ग्रन्थ कहाँ पढे जा सकते है मित्र !" वह हँसते हुए कहता, "हम तो बुत को सामने बैठा के, यादे खुदा करते है।" और एक नजर दम्मो की ओर देख कर आँख मारता और कहता :

जहाँ उलझा हुआ है दिल तुम्हारा
वहीं अटका हुआ है दम हमारा ?

अमीचन्द शरमा जाता और घबरा कर चला जाता। बाद मे अनन्त और चेतन उसी की इस घबराहट पर खूब ठहाके लगाते।

"किताबों का कीडा !" अनन्त उपेक्षा से कहता, "पढ-पढ़ कर मर जायगा और अन्त मे किसी सरकारी दफ़्तर मे दो एक चपरासियों पर रौब जमाता हुआ बाल सफ़ेद कर लेगा। दम्मो की मुस्कान का जादू यह क्या जाने ?"

फूल मुस्कराते हैं, दिल पै चोट पड़ती है,
हाय वो रुखे खंदाँ, हाय वो शबाब उनका

और शेर कह कर और अभिनेताओ की तरह लम्बी साँस भर कर, अनन्त दम्मो पर अपनी निगाहे जमा देता।

०

लेकिन वही दम्मो, जिसकी मुस्कान से उनके हृदयो की गति तीव्र हो जाती थी, उस समय अनमनी और उदास बैठी थी। यदि वह उस समय मुस्कराती भी तो मन पर पुलक के बदले अवसाद छा जाता।

जीवन ! चेतन ने लम्बी साँस भरते हुए सोचा—बचपन की सरलता और यौवन की सरसता कब प्रौढ़ता के गम्भीर अवसाद मे बदल जाती है, इसका माप नही। प्रायः शरीर युवा रहता है, पर मन प्रौढ़ हो जाता है।

और वही लेटे-लेटे चेतन के सामने नीला का विषन्न मुख घूम गया। उसने देखा उसका विवाह हो गया है। किसी अनजाने नगर मे, किसी

अनजाने मकान की छत पर वह दम्मो ही की तरह अन्यमनस्क और उदास बैठी है। उसकी वह मुस्कान, उसकी वह चंचलता सब लुप्त हो गयी है और उसके होंटों ने दम्मो ही की तरह विष का वितरण सीख लिया है....

यह उसने चण भर की भावुकता मे क्या कर डाला ? कायर ! अतीव आत्म-ग्लानि और आत्मोपेक्षा के साथ उसने दिल-ही-दिल मे अपने-आपको कोसा। इलावलपुर की समस्त घटना उसके सामने घूम गयी और उसने बेचैनी से करवट बदली। तभी एक उदास-सी दृष्टि से दम्मो ने उसकी ओर देखा और फिर मुख फेर लिया—मानो कह रही हो, 'अब तुम इन होटो पर मुस्कान मत ढूँढ़ों। इनकी मुस्कान का स्रोत तो सूख गया है। विवाह के विषैले साँप ने उसमे विष का संचार कर दिया है। अब यदि मै मुस्करायी भी तो उस विषैली मुस्कान को ले कर तुम क्या करोगे।'

क्षण भर के लिए चेतन की आँखों के सामने फिर वही दृश्य घूम गया—किसी दूरस्थ प्रदेश में ऐसे ही मकान पर अनमनी-सी नीला बैठी है। वह कुमारी नही, विवाहिता है और चेतन को देख कर उसके होटों पर ऐसी ही कटु-विषैली मुस्कान फैल गयी है।

०

चेतन के हृदय से एक दीर्घ-निश्वास निकल गयी। उसने करवट बदल ली। उसी समय उसे ऊपर से अपने पिता की, नशे मे चूर थरथराती कड़क सुनायी दी :

"इस हरामजादे ने कहा कि इसे विश्वास नही आता ! क्या मैंने लगाया हाथ शराब को इन ग्यारह दिनों मे ?"

सैंतीस

चेतन के दादा को मरे आज पूरे ग्यारह दिन हो गये थे और ग्यारह दिन

तक उसके घर मे एक प्रकार की चहल-पहल रही थी। रोना और पीटना भी हुआ था। पर चेतन के दादा सत्तर वर्ष के हो कर, अपनी आयु पूरी भोग कर, एकादशी के शुभ दिवस परलोकगामी हुए थे। ऐसी अच्छी मौत तो सब को आये। क्योकि पुराने खयाल के हिन्दुओं मे ऐसे दिन परलोक वासी होने वाला सीधा स्वर्ग जाता है, इसलिए रोने-पीटने के साथ हासपरिहास भी होता रहा था। सियापे मे भी दादा को (यद्यपि जीवन मे वे पटवारी से गिरदावर तक न बन पाये थे।) पंजाब का राजा बना दिया गया था। अब अपने आधे सीनों को धोतियों से कसे सियापे की परेड के लिए घेरा बाँध कर खड़ी हुई स्त्रियाँ मध्य बैठी हुई रानी (नाइन) ने अपने बारीक सानुनासिक स्वर मे बैन गाया था :

हाय हाय वे पंजाब देया राजिया

और मुहल्ले की स्त्रियो ने छातियाँ पीटते हुए उसका अनुकरण किया था तो बड़ी बूढियों ने सियापे के सुरताल मे किसी प्रकार की रुकावट डाले बिना, उसी समान-गति से छातियो पर हाथ जमाते हुए कहा था—'राजा, सच राजा!'

बूढ़े लोगों के मरने पर दुख के बदले सुख अधिक मनाया जाता है। चेतन के दादा की अरथी भी बाजे-गाजे के साथ निकली थी; गुलाल से सिर मुँह रँग गये थे; छोहारों, तालमखानों और भुने हुए चावलों की वर्षा अरथी पर की गयी थी। पर उनकी मृत्यु पर घर मे दुख भी कम न था। एक तो वे इतने बूढ़े न दिखायी देते थे, फिर वे इतने बीमार न पडे थे और फिर उनकी उपस्थिति पण्डित शादीराम के हाथो दुखी उस घर की आत्मा पर एक शात, सुखद मरहम का काम देती थी। इन ग्यारह दिनो मे स्वयं चेतन की आँखों के सामने कई बार दुनिया के तीन-पाँच से बेखबर, भोले, उदार, धर्मपरायण अपने दादा का चित्र घूम गया था। रह-रह कर चेतन को उन दिनो की याद आ जाती जब उनके दादा ने अपनी कमजोर आँखों से महीनो चूल्हा झोंका था।

'कलायत' के स्टेशन पर रामानन्द को और 'सैला खुर्द' के स्टेशन पर

चेतन को पण्डित शादीराम ने जिस निर्दयता से पीटा था, उसकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए (ज्योंही पण्डित जी की बदली रिलीविंग मे हुई) माँ अपने सब लड़कों को जालन्धर ले आयी थी (बहाना सीधा था कि रिलीविंग मे जब पण्डित जी स्टेशन-स्टेशन घूमेंगे, बच्चों की पढ़ाई ख़राब होगी) चेतन के बड़े भाई को भी माँ ने अपने मायके से, जहाँ पिता की मार के डर से उसने उसे भेज रखा था, जालन्धर बुला लिया था और वे सब स्थानीय स्कूल मे शिक्षा पाने लगे थे। इसके बाद यद्यपि दो-तीन साल रिलीविंग मे रह कर चेतन के पिता मकेरियाँ पर पक्के नियुक्त हो गये थे और मकेरियाँ मे एक छोड़ दो हाई स्कूल थे, लेकिन माँ बच्चो को वहाँ न ले गयी थी। जब चेतन और उसके भाइयो को जालन्धर ही मे छोड़, महीने के वेतन को शराब अथवा जुए की भेंट होने से बचाने के लिए माँ अपने पति के पास मकेरियाँ चली जाती तो चेतन के दादा ही सब को खाना पका कर खिलाते। अपने बूढ़े दादा के स्नेह-सौहार्द, सरलता, सहृदयता का ख़याल आ जाने से चेतन की आँखों में आँसू छलक आते। यद्यपि स्वभाव उनका भी कर्कश था, किन्तु हृदय इतना कोमल था कि उनकी सब कर्कशता भूल जाती थी। वे दुर्गा के उपासक थे। बच्चों को खाना खिला कर, स्कूल भेज कर वे स्वयं कुएँ पर जा कर स्नान करते और फिर दो-अढ़ाई घंटे तक चंडी का पाठ करते। पाठ-पूजा से निवृत्त हो कर वे अपने लिए खाना तैयार करते और कई बार दो बजे, कई बार अढाई-तीन बजे जा कर स्वयं खाना खाते। वे पीटते थे, लेकिन प्यार भी करते। पीटने पर पश्चात्ताप भी करते। वे चंडी के उपासक है, इसलिए उनके स्वभाव में कठोरता और कर्कशता आ गयी है—ऐसा उनका विचार था। किन्तु यह कठोरता उनके हृदय को कठोर न बना सकी थी। वे बच्चों पर नाराज होते, पर जब वे रोने लगते तो उन्हे मिठाई के लिए पैसे भी दे देते। जब चेतन के पिता सब कुछ गँवा देते, वेतन तक न भेजते तो वे उन्हे गालियाँ देते; किन्तु यदि कहीं ऐसे समय पण्डित शादीराम स्वयं वहाँ आ पहुँचते और अपने पिता के पाँव पर सिर रख देते तो चेतन के दादा उनके सब

दोष क्षमा कर देते और पेन्शन से जोड़-जोड़ कर रखे हुए रुपये उन्हें ला कर दे देते । चेतन के पिता प्रायः उनसे इस प्रकार रुपये हथिया ले जाते, किन्तु जानते हुए भी उसके दादा हर बार ठगाई खा जाते ।

वही चारपाई पर लेटे-लेटे दादा का समस्त जीवन चेतन के सामने घूम गया । अपने इस पुत्र के लिए उन्होने कितने कष्ट न उठाये थे ? चेतन के पिता तीन वर्ष के थे जब उनकी माँ मर गयी थी । तब उसके दादा ने जिस कठिनाई से उन्हे पाला, महामारी के उन दिनो में जिस प्रकार वे शिशु को पीठ से लगाये हुए घूमते थे, इसका ज़िक्र कई बार आँखो मे आँसू-भर कर दादा ने किया था । और इस सब तपस्या का फल उन्हे क्या मिला ? सदा की जलन, दुख और पीड़ा ! पेन्शन ले कर वे इसलिए घर आये थे कि उनकी आँखो की ज्योति मन्द पड़ गयी थी । और उनका विचार था कि उनका बेटा, जो अब स्टेशन मास्टर हो गया था, उन्हे जीवन के शेष दिन आराम से बिताने मे सहायता देगा । उनके इस बेटे ने उन्हे यह विश्वास भी दिलाया था । पर क्या उन्हे कभी एक घड़ी को सुख मिला ? एक घड़ी को भी शान्ति नसीब हुई ? वे अपने इस पुत्र की करतूतो पर सदैव जलते-भुनते रहे । बुढापे मे प्रायः अपनी अन्धी आँखों से अपने पोतों के लिए खाना पकाते रहे और बडी किफायत से जोड़ा हुआ (आठ रुपये प्रति मास) पेन्शन का धन सदैव अपने इस स्टेशन मास्टर पुत्र और उसके बेटों पर खर्च करते रहे ।

चेतन को महसूस हुआ जैसे उसके दादा सदैव एकाकी रहे । अपने इस पुत्र के हाथो (अपने पौत्र ही की तरह) उन्होंने भी कम यातनाएँ नहीं सही । अपने इकलौते पुत्र को वे सदैव धर्मपरायण, सत्यवादी, साधु-सन्तों, गौ-ब्राह्मणों की सेवा करने वाला; धन का यथेष्ट भाग दान-पुण्य तथा सत्-कार्यों मे लगाने वाला देखना चाहते थे । उसे शराबी, जुआरी, वेश्या-गामी, धन को पाप के कामो मे गँवाते देख कर उन्हे कितना दुख, कितना क्लेश, कितनी आन्तरिक व्यथा होती होगी ? किन्तु इतने पर भी जब यही दुराचारी पुत्र उनके सामने आ कर अपनी मुसीबतों का रोना रोता था

तो उस बुजुर्ग का सरल हृदय द्रवित हो उठता था और वे अपना तन मन तक उसके अथवा उसके बच्चों के हेतु अर्पण करने को तत्पर हो जाते थे ।

माँ ने चेतन को बताया था कि मरने से चार दिन पहले तक वे स्वयं कुएँ पर जा कर स्नान और पाठ-पूजा करते रहे थे । अचानक उनके मूत्राशय में कुछ तकलीफ़ हो गयी, पेशाब रुक गया । वे स्वयं जा कर हकीम नबीजान को दिखा आये और एक दिन उन्होंने उनका जोशांदा भी पिया । फिर जब कष्ट बढ़ा तो डाक्टर बख्शीराम को बुलाया और उसने कैथीटर से पेशाब खारिज किया । फिर ऐसा दिखायी दिया कि आराम आ जायगा । पर रात को उनकी तबीयत कुछ ज्यादा खराब हो गयी । वे बेहोश हो गये । पण्डित शादीराम को तार दिया गया । वे उन दिनों रहमान स्टेशन पर नियुक्त थे । उस समय शायद वे पी-पिला कर बेहोश पड़े थे । सुबह उनको फिर तार दिया गया और उधर भैरो बाज़ार से कैप्टन डॉक्टर लहना सिंह को बुलाया गया । पर दोनों उस समय पहुँचे जब दादा की सरल निरीह आत्मा पिंजर छोड़ चुकी थी ।

पण्डित शादीराम ने उसी समय शपथ खायी कि मैं अब कभी भी शराब न पिऊँगा और आज क्रिया-कर्म के दिन तक उन्होंने उसे मुँह न लगाया था ।

○

"यह हरामज़ादा कहता है कि इसे विश्वास नहीं आता ।" उसके पिता की गरज फिर सुनायी दी । "मुझे अभी बनारसी दास ने बताया है । सब मेरी हँसी उड़ा रहे हैं, और मैंने ग्यारह दिन तक शराब को हाथ तक नहीं लगाया ।"

"यदि इतने दिन नहीं लगाया तो अब जो लगा लिया, अभी आज ही तो क्रिया समाप्त हुई है !" माँ ने कहा ।

"तूने ही तो लड़कों को भड़काया है जो बाहर जा कर मेरी निन्दा करते हैं ।" चेतन के पिता ने गरज कर कहा । और चेतन को ऐसा लगा जैसे यह कहते-कहते उन्होंने एक लात माँ को जमा दी और वह गिर पड़ी ।

भाग कर वह ऊपर गया ।

उसके पिता और उसका छोटा भाई परसराम गुत्थम-गुत्था हो रहे थे, उसकी माँ गिरी पड़ी थी और उसकी भाभी (जो भाई साहब के साथ उसी सुबह क्रिया-कर्म में भाग लेने आयी थी) एक ओर सहमी खडी थी और क्रोध से लाल आँखें किये भाई साहब माँ को उठा रहे थे ।

"मै तुम सब का क़त्ल कर दूँगा ।" और अपने लडके से अपने-आपको छुडा कर उसके पिता लकड़ी चीरने की कुल्हाड़ी उठाने बढ़े ।

जल्दी से भाई साहब ने एक हाथ से माँ को और दूसरे से छोटे भाई को पकड़ा और बाहर हो कर सीढ़ियों का दरवाजा लगा दिया ।

दूसरे क्षण चेतन के पिता खाली हाथ लौटे । कुल्हाडी उन्हे नहीं मिली । उन्होने दरवाजा खोलना चाहा । वह बाहर से बन्द था । "अच्छा !" उन्होने अपने-आप से कहा, "जैसे मै यह दरवाजा नही खोल सकता ! मै इसे तोड़ दूँगा ।" और उन्होंने रसोई-घर से पीतल की गागर उठा ली । उसे सिर से ऊपर उठा कर दरवाज़े पर दे मारा । किवाड़ नये थे । एक ही चोट से क्या टूटते । तब वे गागर पर गागर—उन्मादी की भाँति वे किवाड़ों को तोड़ने लगे ।

रात का अन्तिम पहर था । उसके पिता ऊधम मचा कर सो गये थे । उन्होंने किवाड़ तोड़ दिये थे, लेकिन भाई साहब ने नीचे डेवढी के किवाड़ लगा दिये थे और वे सूखे शीशम के मोटे तख्तो के किवाड़ ! उनके सामने गागर बेचारी की क्या बिसात थी । आखिर मुहल्ले वालो ने आ कर बीच-बचाव कर दिया । भाई साहब और छोटे भाई ने माफी माँग ली थी, पण्डित जी का नशा भी टूट गया था और सब रो-रुला कर सो गये थे । लेकिन चेतन को ज़रा भी नींद न आयी थी ।

०

पास के किसी घर मे घड़ी ने चार बजाये । चेतन उठा । उसने भाई साहब और अपनी पत्नी को जगाया और आध घंटे के बाद तीनों सामान उठाये स्टेशन की ओर चल दिये ।

को वुला लो ताकि रोज़ की किल-किल से मेरा पिंड छूटे।

यह एक विचित्र बात थी कि चेतन की भाभी ने पढ़ना आरम्भ कर दिया था। माँ ने लिखा था कि काम-धन्धा छोड़ कर सारा दिन कापियाँ काली करती रहती है और पूछा था कि आखिर यह बूढ़ा तोता पढ़ कर करेगा क्या ?—ऐसे सब पत्रों के उत्तर में भाई साहब 'एक चुप सौ सुख' के सुनहले सिद्धान्त से काम लेते थे। उस महान तितिक्षावादी को तो माँ अथवा बीवी के पत्र क्या विचलित करते, किन्तु चेतन को ही स्वयं कुछ आत्म-ग्लानि-सी होने लगी थी। वह सोचता था—मेरे भाई अकेले रहते हैं और मैं अपनी पत्नी के साथ मौज उड़ाता हूँ, यह तो निरा स्वार्थ है। क्या मुझे ही पेट भर खाने का अधिकार है, उन्हे क्या भूख नहीं लगती ? अन्त में एक दिन जब रणवीर लाहौर आया तो उसने सहसा अपनी पत्नी को उसके साथ भेजने का निश्चय कर लिया और भाई साहब से कह दिया कि आप भाभी को आने के लिए पत्र लिख दें।

०

चन्दा ने स्वयं तो चेतन से कुछ नही कहा। उसनें परीक्षा पास कर ली थी और उसे छुट्टियाँ ही थी। पर जब शाम को चेतन घर लौटा तो बाहर गली ही मे मेहतरानी ने (जिसे वह सहृदयता वश अथवा मानवता के नाते आदर से चौधरानी कह कर पुकारता था) उसे रोक लिया।

यह चौधरानी उसके पारिवारिक जीवन मे कुछ अर्से से महत्व पा गयी थी। वास्तव मे चेतन अपनें उदार विचारों के कारण भंगी और ब्राह्मण मे मानवता के नाते कोई अंतर न मानता था। उसकी शह पा कर चौधरानी भी अपने-आपको उनके बराबर समझने लगी थी और एक बार तो उनके चौके की चौखट तक पर आ बैठी थी।

वह साफ़-सुथरे कपड़े पहनती थी, एक आँख मे तनिक-सा भैंगापन होने पर भी साफ-सुथरी और बनी-ठनी रहती थी और जब चाहती थी तो अपनें उसी स्वर को जिससे वह अपने शत्रुओं को भयंकर गालियाँ देती थी, मधु-सा मीठा बना लेती थी। चेतन उससे छू जाने पर बिदकता न

था और न उससे बात करना बुरा समझता था, पर उसे अपने रसोई-घर की चौखट मे बैठे देख कर संस्कार वश वह तनिक चौंका। कुछ क्षण वह चुप खड़ा रहा। फिर एक खिसियानी हँसी के साथ उसने सिर्फ इतना कहा—"चौधरानी, कहीं यदि मेरी माँ तुम्हे यहाँ बैठे देख ले! ..."

इस पर अपनी भैंगी आँखों मे हँसते हुए चौधरानी ने कहा था, "अजी बाबू जी भला मै क्या जानती नहीं...."

और यह कहते-कहते वह जरा पीछे भी हट गयी थी। चेतन उसके साफ़-सुथरेपन के कारण उसकी कुछ आर्थिक सहायता भी कर दिया करता था और वह चन्दा के बेकार क्षणों मे पास पड़ोस की बातें सुना कर उसका दिल बहला जाया करती थी।

उस समय चेतन को रोक कर तनिक भेद भरे स्वर मे चौधरानी ने कहा, "बीवी जी आज रो रही थी। उनसे क्या क़सूर हो गया जो आप उन्हे भेज रहे हैं। कहती थी—चौधरानी तू उनसे कहना मेरा यहाँ से जाने को जी नहीं चाहता।"

चेतन कुछ उत्तर दिये बिना तनिक-सा हँस कर घर चला आया था। मन-ही-मन उसे अपनी पत्नी पर बड़ी दया हो आयी। वह उसे बराबर की संगिनी कहने का दम भरता है, पर उसकी इस बराबर की संगिनी मे इतना साहस भी नही कि अपनी इस ज़रा-सी स्वाभाविक इच्छा को उसके सामने रख सके। एक बार उसके जी में आया कि यदि किसी तरह बन पड़े तो अपनी पत्नी का जालन्धर जाना रोक दे। पर वह रणवीर और भाई साहब से कह चुका था और भाई साहब ने जोश मे (सेक्स की अपनी स्वाभाविक भूख के जोश मे नही, वरन पत्नी और माँ को अपनी महत्ता और कर्त्तव्यपरायणता का प्रमाण दे सकने के जोश मे) उन दोनों को पत्र भी लिख दिये थे। माँ को उन्होने लिखा था—मैंने प्रबन्ध कर लिया है, चम्पा को तत्काल लाहौर भेज दीजिए, और पत्नी को आदेश दिया था—पत्र देखते ही लाहौर चली आओ!

चेतन ने चुपचाप आ कर अपनी पत्नी को तैयार कर दिया पर न

जाने क्यों उसे तैयार कर देने के बाद वह अपने-आपको इतना खिन्न और क्लान्त पा रहा था कि उसने उन्हें वहीं से विदा कर दिया। अपनी पत्नी की मूक अभिलाषा के बावजूद वह उन्हें स्टेशन तक छोड़ने नहीं गया।

उनके चले जाने के बाद वह चुपचाप नाली पर बिछी हुई खाली चारपाई मे धँस गया और फिर लेट गया और उस तिमंजिले मकान के ऊपर छाये हुए खुले, निखरे, नीले, आकाश के शून्य को अपलक निरखने लगा। सहसा उसका अपना मन विशाल शून्य से भर गया। एक अज्ञात, अकथ, अनाम अवसाद उके मन-प्राण पर छा कर उसकी आत्मा को अनायास मसलने लगा। चेतन ने अनुभव किया जैसे उस अवसाद के सामने वह नितान्त बेबस है। निर्जीव से शरीर को उसने और भी ढीला छोड़ दिया और निस्पन्द लेटा रहा।

दो दिन निरन्तर वर्षा होते रहने के बाद आकाश कुछ खुला था। कच्ची, गीली दीवारो, उनसे बेतरह चिमटे हुए भीगे-भीगे उपलो, कीचड़ से भर कर बह निकलने वाली नालियों, चंगडों के आँगनों मे पशुओं के खुरों से बन जाने वाले गोबर और कच्ची मिट्टी के तगारो और न जाने किन-किन रसायनिक द्रव्यों की मिली-जुली दुर्गन्ध सारे वातावरण पर छा रही थी; नाक मे घुस कर जैसे नस-नस मे समा रही थी; अनुभूति को, चेतन मानो शिथिल कर रही थी और चेतन एक प्रकार अचेतावस्था मे दीवार के उस पार चगड़ानियो का शोर सुन रहा था।

साँझ के सूरज की कुन्दन-धूप गली के सिरे पर बने सरदई खिडकियो वाले तिमंजिले मकान के शिखर को दीप्ति कर रही थी और ऊपर आकाश मे विखरे हल्के सफेद बादलो के टुकड़ों मे आग लग गयी थी। उस ऊँचे मकान और उनके सुनहरे शिखर को देखते-देखते, चेतन को उस मकान के पैरों मे किलबिलाने वाली सृष्टि का ध्यान हो आया—उस साधनहीन सृष्टि का जिसमे वह भी शामिल था—उसने लम्बी साँस ली। जीवन....! इसके पैरो मे कितनी गन्दगी, कूड़ा-कर्कट, बीमारी, ग़रीबी, दुर्गन्ध, कुरूपता विखरी रहती है, परन्तु अपने सिर पर यह सदैव उस मकान के शिखर की

भाँति स्वर्ण-मुकुट पहने रहता है। और चेतन की आँखों के सामने अपना अतीत वर्तमान और भविष्य घूम गया और उसने सोचा—क्या वह सदैव जीवन के पैरों ही मे पड़ा रहेगा ? उसके ताज का मोती बनना क्या उसे कभी नसीब न होगा ?

इन उदास विचारों से वह घबरा-सा उठा। उसने चाहा कि उठे और सैर करता गोल बाग तक हो आये। पर वातावरण की उदासी और सील भरी बू कुछ इस प्रकार उसकी चेतना पर छा गयी थी कि वह अपने इन असम्बद्ध, असंगत, अस्त-व्यस्त विचारों की उलझन मे फँसा वहीं लेटा, आकाश की ओर ताकता रहा और मकान के शिखर पर दमकती हुई कान्ति किसी मरणासन्न रोगी के नयनों की दीप्ति-सी धीरे-धीरे अंधकार मे परिणत हो गयी।

उन्तालिस

एक सप्ताह के बाद भाभी आ गयी। और उसके आगमन के एक सप्ताह बाद ही चेतन को दूसरे मकान की खोज मे रत हो जाना पड़ा।

भाभी एक बार पहले भी आयी थी। और तब चेतन विवाहित न था। सारे कष्ट सहता हुआ दुकान पर रहने लगा था, पर अब उसे ऐसा करना कठिन दिखायी देता था।

अपनी पत्नी को जालन्धर भेज कर, चेतन ने अपने अवकाश के समय में कुछ साहित्य-सृजन का निश्चय कर लिया था। चन्दा को वह एकदम भूल गया हो; अथवा वह अवसाद, जो उसके बेबसी के क्षणों में, चन्दा को जालन्धर भेजने के बाद, उसके मन-प्राण पर छा गया था, सर्वथा मिट गया हो, ऐसी बात न थी, पर स्थिति कैसी भी क्यो न हो, उसे अपने अनुसार

बना कर उसका अधिकाधिक लाभ उठाना, उसने बहुत पहले सीख लिया था। अपने अवकाश और अवसाद को उसने रचनात्मक कार्य मे लगाने का निश्चय कर लिया। उसका विचार था कि कम-से-कम पाँच-छः महीने अपनी पत्नी को नही बुलायेगा और इसलिए मन-ही-मन उसने एक बड़ा उपन्यास लिखने का प्रोग्राम बना लिया। किसी महान लेखक के सम्बन्ध मे उसने पढ़ा था कि जब वह सैर को जाता तो अपनी कहानियो के अध-कच्चे, अस्पष्ट खाकों मे रंग भरता और उनकी रेखाओ को उभारता-सँवारता था। चेतन ने भी यह नियम बना लिया कि संध्या को आ कर खाना खाने के बाद अकेला सैर को चला जाता और अपने उपन्यास का ढाँचा तैयार करता।

उपन्यास और उसकी कला के सम्बन्ध मे उसका ज्ञान नही के बराबर था। पुस्तकें खरीदने के लिए पैसे का और लायब्रेरियो मे जा कर उनकी आलमारियो मे भरी हुई दौलत से लाभ उठाने के लिए समय का उसके पास नितान्त अभाव था। अपने कॉलेज के पाठ्य-क्रम मे उसने जो दो एक उपन्यास पढ़े थे, उनकी भी कुछ धुँधली ही-सी याद उसे थी। रही भाई साहब के लाये हुए उपन्यासों को पढने की बात, सो अव्वल तो वे एक उपन्यास पढने के बाद शीघ्र ही दूसरा लाने के विचार से उसे तत्काल लौटा दिया करते थे, फिर चेतन को पढ़ाई का शौक़ था और परीक्षाओं के दिनों मे वह उपन्यासों को हाथ न लगाता था। इसके अतिरिक्त भाई साहब की रुचि कुछ वैसी स्पष्ट अथवा संस्कृत न थी। वे किसी तमीज के बिना उपन्यास पढते। कई बार ऐसा हुआ कि वे कोई अच्छा उपन्यास पढ़ रहे होते, पर चेतन के पास समय न होता। फिर जब उसके पास समय होता तो वे ऐसा उपन्यास पढ़ रहे होते जिसे पढ़ना उसके विचार मे समय नष्ट करने के बराबर होता।

किन्तु उपन्यास-कला के सम्बन्ध मे अपनी इस अज्ञता के होते भी उसने एक बड़ा उपन्यास लिखने का प्रोग्राम बना लिया और मन-ही-मन उसका ढाँचा बना कर उसके कुछ पहले परिच्छेदो की रूप-रेखा भी तैयार

कर ली जो कुछ यों थी :

१. नायक अभिजात-कुल का दीपक है। भोला-भाला और माँ-बाप के लाड़ प्यार में पला। अभी-अभी उसने कॉलेज से डिग्री ली है। उसकी माँ चाहती है कि वह एक बड़े सम्पन्न घराने में विवाह करे, पर वह इन्कार कर देता है। वह कुछ और आगे पढ़ना चाहता है और इतनी जल्दी विवाह के बन्धन मे बँधना उसे पसन्द नहीं।

२. उसके पिता को रुई के सट्टे में हानि उठानी पड़ती है। यद्यपि उसका पिता उसे कुछ नहीं कहता, पर वह प्रातः-सायं उसके मुरझाये हुए चेहरे को देखता है। अपनी माँ से उसे पता चलता है कि स्थिति न सुधरी तो उन्हें दीवालिया होना पड़ेगा और उसका पिता इतना चुप है कि आशंका मे उसका दिल दहल जाता है। उसे डर है कि कही उसका पिता अपनी जान पर न खेल जाय और एक दिन जब फिर उसकी माँ उससे उसी सम्पन्न घराने मे विवाह करने का अनुरोध करती है तो वह मान जाता है। इस विचार से पिता के दीवालिया होने और-फल-स्वरूप शादी की मंडी मे अपना मूल्य घट जाने से पहले वह शादी कर ले और दहेज़ के आभूषणो से अपने पिता की सहायता करे।

३. वह अपने मन मे भविष्य के आचरण की एक रूप-रेखा बना लेता है। उसका विवाह हो जाता है। उदास-उदास-सा वह उसमे भाग लेता है। उसे लगता है। जैसे वह शादी उसकी नही किसी दूसरे की है और वह दूल्हा नही केवल बराती है।

४. सुहाग रात में वह अपनी दुल्हन को देखता है। उसकी सुन्दरता तलवार-सी नोक सरीखी उससे अन्तर मे खुब जाती है। वह उससे प्यार भी करता है और उससे दूर भी हटता है। वह अपनी सोची हुई स्कीम को कार्य-रूप मे परिणत भी करना चाहता है, पर जब वह अपनी नव-परिणीता पत्नी को देखता है तो उसे साहस नही होता। इसी द्वन्द्व मे दिन बीत जाते है और उसके संकल्प के पाँव डगमगाते-से दीखते है। तभी एक दिन अपने पिता से उसका साक्षात्कार होता है और वह उसका दिन-

प्रतिदिन पीला होता मुख देखता है और उसका मन एकदम कठोर हो जाता है। द्वन्द्व मिट जाता है। वह निश्चय करता है कि जो कुछ उसे करना है जल्दी करेगा।

५. उस रात वह अपनी पत्नी से कहता है कि वह अपने गहने उतार कर अलग रख दे, क्योंकि चाँद को गहनों की जरूरत नही होती और वह उस चाँद को उसकी स्वाभाविक सुन्दरता मे देखना चाहता है। फिर कुछ क्षण इधर-उधर की बातें करके, अपने संकल्प को प्रतिक्षण मन-ही-मन बड़ी कठोरता से दृढ़ करते हुए, वह जेब से एक पत्र निकालता है जो किसी अध्यापक की ओर से उसके नाम लिखा हुआ है उस पत्र मे उसकी पत्नी के विश्वासघात का उल्लेख है कि वह अपने ट्यूटर से प्रेम करती थी कि उससे विवाह करने का वचन उसने अपनी उँगुली के रक्त से लिख कर दिया था और उसने धन के लोभ मे उस वचन को तोड़ दिया था आदि ....आदि. ..यह पत्र वह अपनी पत्नी के आगे कर देता है।

६. उसकी पत्नी यह अभियोग सुन कर भौचक्की रह जाती है। वह इन्कार करती है, पर वह नही सुनता और कृत्रिम क्रोध का अभिनय करते हुए, उसी दशा मे उसे साथ ले कर अपनी ससुराल जाता है और अपनी पत्नी को उसके घर के दरवाजे पर छोड़ आता है। वह अपने पिता के नाम एक चिट्ठी लिख देता है और हरद्वार को चल देता है।

इसके बाद चेतन ने सोचा था कि नायक (शरत बाबू के देवदास की भाँति) मारा-मारा फिरेगा, हरद्वार में एक लडकी उससे प्रेम करने लगेगी। पर वह उसके प्यार का प्रतिदान न देगा। अपनी भोली-भाली पत्नी और उसके प्रति किये गये पाप की याद एक दुर्धर-चट्टान बन कर उस प्रेम के मार्ग मे आ खड़ी होगी। पर वह उस बाला से जितना खिंचेगा उतना ही वह उस पर मिटेगी। आखिर वह उसे छोड़ कर चल देगा। इस बीच मे उसके पिता की स्थिति अचानक अच्छी हो जायगी। वह अपने समधी के घर जा कर अपनी बहू को तसल्ली देगा और नायक को खासी दयनीय दशा मे खोज निकालेगा। नायक का पिता, उसकी माँ, उसका ससुर, यहाँ

तक कि उसकी पत्नी तक उसे क्षमा कर देगी, पर फिर हँसी उसके होंटों पर न आयेगी । अपनी पत्नी और प्रेमिका के मध्य उसका हृदय पेंडुलम सरीखा डोलेगा । उसकी प्रेमिका उसके विरह मे चारपाई पकड़ लेगी । वह उससे मिलेगा, पर कब ?—जब उसकी अन्तिम हिचकी अपने प्रेमी की प्रतीक्षा मे उसके कंठ मे अटकी होगी ।

०

प्रेयसी के विरह-जनित-दुख और नायक की दुविधा का वर्णन चेतन कुछ ऐसे करुणापूर्ण ढंग से करना चाहता था कि उसकी कल्पना ही से उसकी आँखें कई बार भर आयी थी ।

उसने उपन्यास का नाम भी सोच लिया था—'चंचल'—और दो एक बार उसे दिल-ही-दिल मे पुकार कर देख भी लिया था कि यह कानों को कितना अच्छा लगता है और इतना सुन्दर नाम सोचने पर मन-ही-मन अपनी पीठ भी ठोक ली थी ।

और फिर वह मोहन लाल रोड से एक मोटी कापी ले आया था । वह मैली न हो जाय, इस खयाल से उसने उस पर काग़ज भी चढ़ा दिया था और उसके पहले पृष्ठ पर उपन्यास और उसके लेखक का नाम सुन्दर मोटे अक्षरों मे लिख कर नीचे ऊपर सुन्दर बेल बना दी थी ।

अवकाश रहने पर वह घर पर भी काम करता था और इस कापी को दफ़्तर भी ले जाता था । जब रात को एक बजे के बाद काम अपेक्षाकृत कम होता तो वह कुछ लिखने का प्रयास करता ।

०

भाभी के आने पर उसका यह उपन्यास धरा का धरा रह गया और घर मे रहना अथवा वहाँ बैठ कर काम करना उसके लिए कठिन से कठिनतर होता गया ।

बात यह थी कि जब उसकी पत्नी यहाँ थी तो भाई साहब दुकान पर सो जाते थे । अब उनकी पत्नी आ गयी तो वे घर मे उठ आये थे और दुकान पर सोने की बारी चेतन की थी । परन्तु उसे अब वहाँ सोना बड़ा

कठिन लगता था। जब रात के एक दो बजे वह दफ्तर से चलता तो उसे इतनी दूर दुकान पर जाना दूभर मालूम होता। फिर सोने के पहले उसे ठंडा, मलाई वाला दूध पीने की आदत हो गयी थी। इसके अतिरिक्त दुकान पर लघु अथवा दीर्घ किसी प्रकार शंका से निवृत्त होने का प्रबन्ध न था, और चेतन दो अढ़ाई बजे दफ्तर से आ कर शौचादि से निवृत्त हो लिया करता था, ताकि सुबह नौ बजे तक आराम से सो सके।

रहा घर, सो वहाँ इतना स्थान न था कि भाई, भाभी तथा उनके दो बच्चो के साथ वह भी सो सके। या सो सके तो उन चंचल बच्चों की उपस्थिति मे सुबह नौ बजे तक सोया रह सके। फिर उसकी उपस्थिति में भाई साहब के लिए प्राइवेसी की कोई गुजाइश न थी। सब से बढ कर यह बात थी (और इसी ने वास्तव मे उनके लिए उस मकान का निवास असह्य बना दिया) कि भाई साहब जितने सुस्त, और शांत स्वभाव के थे, उनके बच्चे उतने ही चंचल और उद्दंड थे। इतना लडते-भिडते और शोर मचाते कि अवकाश के समय किसी प्रकार का आराम करना अथवा रचनात्मक काम करना नितान्त असम्भव था।

एक दिन शाम को जब वह वापस आया तो उसने देखा कि उसका प्रिय शीशे का कलमदान (जो उसने कबाड़ी की दुकान से नक़द एक रुपये मे खरीदा था और जो उसकी उस थर्ड-हैंड मेज को सुशोभित करता था) देहरी मे रखा हुआ है और भाई साहब के सपूत सुरेश महाशय उसकी लाल नीली स्याही से अपनी छोटी बहन के मुँह पर बेल-बूटे बना रहे है, ताकि वह पूर्णरूप से सीता बन जाय और वे रामलीला का खेल खेल सके।

चेतन ने कलमदान छीन कर मेज़ पर रखा; बका-झका; अपने भतीजे को पीटा और इसके फल-स्वरूप भाभी से लड़ा, किन्तु इसका परिणाम कुछ भी न निकला। दूसरे दिन जब वह संध्या को दफ़्तर से आया तो उसने देखा कि सुरेश महाशय उसकी मेज पर चढ़े दीवार से चिपटी एक मकड़ी को पकड़ने के प्रयास मे तल्लीन है और उसके लेखों,

कहानियों तथा कविताओं की मोटी फाइल उनके पाँवों के नीचे बेतरह कुचली जा रही है। उसे देख कर जो वे चौंके तो मेज़ समेत सब कुछ धड़ाम से नीचे आ रहा। क़लमदान टूट गया, कागज बिखर गये और जब रोते भीखते उसने सब कुछ फिर से सजाया तो उसे मालूम हुआ कि मेज की वह टाँग, जिसे कबाड़ी ने बड़ी चतुराई से जोड़ रखा था, टूट गयी है।

और वह अपना समस्त रचनात्मक कार्य छोड़ मकान ढूंढ़ने की मुहिम पर निकल पड़ा।

चालीस

गर्मियो की एक सुबह चेतन अनन्त को पत्र लिख रहा था :

'हमने मकान बदल लिया है। यह नया मकान भी यद्यपि चंगड़ मुहल्ले ही मे है, पर यही ग़नीमत है कि पीपल वेहड़ा मे नहीं। मकान बहुत अच्छा है। जिस प्रकार चीकू के खुरदरे असुन्दर छिलके के मध्य सुन्दर गूदा होता है उसी प्रकार इस मैले, गन्दे इलाके मे यह सुन्दर सुनिर्मित मकान है। जगह बहुत नही—एक बड़ा कमरा है जिसे एक लकड़ी के पार्टीशन द्वारा दो कमरों मे बाँट दिया गया है। स्नानगृह नहीं है, पर रसोई-घर इतना खुला है कि उसके एक कोने में बने हुए नाली के खुरे से स्नानगृह का काम लिया जा सकता है। कमरों की पिछली दीवार मे खिड़कियाँ है, दीवारों पर सफ़ेदी और किवाड़ों पर बेहद अच्छा सरदई रंग का वारनिश है। इसके अतिरिक्त बड़े कमरे की छत में बिजली का पंखा भी लगा हुआ है। अनन्त! जब कभी मैं खिड़कियाँ खोल कर, पंखा चला, चारपाई पर लेटता हूँ तो मन

एक अनिर्वचनीय आनन्द से विभोर हो उठता है। एक अत्यन्त गन्दी, सील-भरी, अँधेरी, कोठरी के बाद एक खुले, रोशन, हवादार कमरे मे साँस लेने का आनन्द शायद तुम नही जान सकते।

तुम सोचोगे कि चंगड़ मुहल्ले मे ऐसा सुन्दर मकान मुझे मिल कैसे गया? वास्तव मे यह मकान सरदार जगदीश सिंह (लैन्ड लॉर्ड ऐन्ड हाउस प्रोप्राइटर) का निजी मकान है। यह सरदार जगदीश सिंह वही हजरत है जिन्होंने श्रीमती राधारानी का समीप्य प्राप्त करने के लिए अपनी अधिकांश जाय़दाद पार्टियों, कन्सर्टों और यार-दोस्तो की भेंट कर दी। तुमने शायद समाचार-पत्र मे यह खबर पढी होगी कि अब इन सरदार महोदय ने अदालत मे श्रीमती राधारानी के पति और अपने तीन मित्रों के विरुद्ध सोलह हजार रुपया ठग लेने के अभियोग मे मुकदमा चलाया है...'

o

वास्तव मे सरदार जगदीश सिंह को मित्र बड़े 'विश्वस्त' और वफ़ादार मिले थे। उनमे से अधिकांश की पत्नियाँ सुन्दर थी और वे उन्हे अपने इस रसिक मित्र की पार्टियों मे ले आना बुरा भी नहीं समझते थे। उनमे से दो मित्रो (हरचरण सिंह और बलवीर सिंह) ने जब यह देखा कि सरदार जी श्रीमती राधारानी के लिए अत्यधिक आतुर है तो उन्होने अपने इस मित्र का कष्ट निवारण करने की ठानी। सरदार जगदीश सिंह को समझाया कि निरी पार्टियाँ देने से कुछ न बनेगा। दर्शन हो जायँगे, पर केवल दर्शन! और यदि इतना ही अभीष्ट है तो इसके लिए इतना खर्च क्यों? बस शाम को लॉरेंस की सैर को गये—दर्शन भी हो गये और पैसे भी न लगे।

हरचरण सिंह ने कहा, "अरे भाई कोरी दीदारबाज़ी[1] से क्या बनता

---

१. दीदारबाज़ी = दर्शन

है। मजा तो जब है, जब महबूब पहलू में हो और...."और उसने मूंछों मे मुस्कराते हुए बायी आँख मारी।

सरदार जगदीश सिंह का शरीर यह सुनते-सुनते गर्म हो गया और दाढी और मूंछो के घने काले जंगल मे उनकी आँखें जुगनुओं-सी चमक उठीं।

तब उनके इन दोनों परम मित्रो ने उन्हे परामर्श दिया कि पार्टियां देने के अतिरिक्त त्योहार आदि मे उन्हे श्रीमती राधारानी को उपहार भेजने चाहिएँ, ताकि वह उनके और समीप आ जाय। अपने मित्र की खातिर इस बात का भार उन्होंने अपने 'दुर्बल' कन्धों पर लेना स्वीकार कर लिया कि वे स्वयं उन उपहारो को श्रीमती राधारानी तक पहुँचा देंगे।

सरदार जगदीश सिंह ने अपने इन 'एक-निप्ट' मित्रों का परामर्श मानने में विलम्ब से काम न लिया। यह और बात है कि वे उपहार श्रीमती राधारानी तक पहुँचते-पहुँचते उन मित्रो के घर ही रह गये। और इस बहाने सरदार जगदीश सिंह की पार्टियों का आनन्द लूटने के साथ-साथ उन्होंने अपनी पत्नियो के पुराने तगादे मिटा दिये और उन्हे गहनों कपड़ो से लाद दिया।

फिर एक दिन सरदार जगदीश सिंह के इन मित्रों ने उनसे कहा कि श्रीमती राधारानी को छः-सात हजार रुपये की आवश्यकता है, यदि वे गुप्त रूप से इसका प्रबन्ध कर देंगे तो बस वह उनकी क्रीत दासी हो जायगी।

"उसको अपनी सर्जरी के लिए रुपया चाहिए," हरचरण सिंह ने कहा, "और मैं तुमसे कहता हूँ कि उसे प्राप्त करने का इससे अच्छा अवसर तुम्हे न मिलेगा।"

"राय साहब भवानी दयाल अपनी सारी जायदाद उसके चरणों पर न्योछावर करने को तैयार थे," बलबीर सिंह ने रद्दा जमाया, "पर वह उनके पास तक न फटकी।" और फिर उसने भेद-भरे स्वर मे कहा,

"लेकिन तुम्हारी पार्टियों, तुम्हारे उपहारों, तुम्हारे मूक प्रेम और सब से बढ कर तुम्हारे पुरुषत्व ने उसे विमुग्ध कर दिया है। तुम उसका यह काम कर दो, फिर उसे तुम्हारे पहलू मे ला बैठाना हमारा काम है।"

"और फिर जब एक बार तुम्हारे पास आ गयी," हरचरण बोला "तो उसे अपनी बनाये रखना, तुम्हारी हिम्मत पर निर्भर है।"

"नारी," बलवीर ने आँख मार कर कहा, "बस एक ही चीज़ चाहती है—पुंसत्व! और तुमसे अधिक वह किसमे होगा!"

सरदार जगदीश सिंह (लैन्ड लॉर्ड ऐन्ड हाउस प्रोप्राइटर) अपनी मूँछों को ताव दे कर बोले, "इस बात की तुम चिन्ता न करो।" और उनकी आँखो मे एक अमानुषीय चमक आ गयी। फिर सहसा सम्हल कर कुछ सन्देह के स्वर मे उन्होने कहा, "मुझे विश्वास कैसे हो कि तुम ठीक ही कहते हो।"

इस पर दोनों मित्र सरदार जगदीश सिंह को अमृतसर ले गये और दरबार साहब जा कर उन्होने सौगन्ध खायी कि वे उनका काम बना देंगे और सरदार जी ने वहीं (अमृतसर के एक साहूकार के पास) अपनी अन्तिम कोठी गिरवी रख कर श्रीमती राधारानी के गदराये शरीर का परस प्राप्त करने के लिए सात हजार रुपया उनकी भेंट कर दिया। और बाक़ी दो-चार हज़ार उस सुअवसर पर ख़र्च करने के लिए रख लिया, जब वह उनकी हो जायगी।

उनके तीसरे एडवोकेट मित्र ने जब यह देखा, कि नहाने वाले तो बहते जल मे जी भर डुबकियाँ लगा रहे हैं और वे किनारे पर ही खड़े तक रहे हैं तो उन्होने भी लगे हाथों एक डुबकी लगा लेने की सोची। लेकिन वे जरा देर मे चेते। उस समय तक तो नदी का पानी ही प्रायः सूख चुका था। इस पर भी उन्होने हिम्मत न हारी और नदी मे कुछ और जल लाने की युक्ति सोच निकाली।

अपनी सुन्दर और सुशिक्षित पत्नी द्वारा उधर तो उन्होंने सरदारनी जी को भड़काया कि वे अपने 'सरदार जी' से पूछें कि आखिर इतना

रुपया किस कुएँ अथवा खाई में जा पड़ा और इधर जब जगदीश सिंह ने अपने मित्रों की 'हरामज़दगी' की कथा उन एडवोकेट मित्र से कही तो अपने मित्र के दुख से दुखी हो उन्होने कहा :

"मै तुम्हे एक-एक पैसा इन हरामज़ादों से ले कर दूँगा।" रोष से उनका गला भर-सा आया, "कमीने! तुम इन पर नालिश क्यों नहीं कर देते ?"

लेकिन जब सरदार जगदीश सिंह ने (जो अब लैन्ड लॉर्ड ऐन्ड हाउस प्रोप्राइटर कुछ भी न रहे थे) प्रश्न-सूचक दृष्टि से उनकी ओर देखा और पूछा आखिर नालिश भारतीय दंड विधान की किस धारा के मातहत की जाय तो उन एडवोकेट साहब ने उन्हे विश्वास दिलाया कि दंड विधान की धाराएँ तो उनके हाथ की कठपुतली है; मुकदमा वे अवश्य खड़ा कर देंगे।

"आखिर निगला हुआ धन ये हरामजादे यों ही तो नहीं उगलेंगे," उन्होने अपनी सुन्दर ऐनक को ठीक करते और अपनी सुन्दर पत्नी से समर्थन चाहते हुए कहा, "इनको तो अदालत में ख्वार करना पड़ेगा।" फिर धीरे से उन्होने कहा, "बस नालिश करने के लिए रुपये का प्रबन्ध तुम कर दो! वह केस खड़ा करूँगा कि पहली पेशी ही मे हरामज़ादों के वारंट जारी हो जायँ।"

किन्तु भूतपूर्व लैन्ड लॉर्ड तथा हाउस प्रोप्राइटर ने उन्हें बताया कि जायदाद के नाम पर उसके पास सिर्फ़ उनका निवासस्थान ही है और पहली पेशी ही सही, पर उसके लिए भी तो रुपया चाहिए। वह कहाँ से आयगा ?

तब उन एडवोकेट मित्र ने सरदार जगदीश सिंह को मामला चलाने के लिए इसी मकान से रुपया प्राप्त करने की युक्ति बता दी।

"तुम्हारे एक बीवी और दो बच्चे है। तुम चार जीव हो। इतना बड़ा मकान तुम्हारे किस काम का है ? इसके हिस्से करके तुम किरायेदार क्यों नही बसाते ? इससे जहाँ तुम्हारे घर मे रौनक़ हो जायगी, तुम्हारी पत्नी को सहेलियाँ मिल जायँगी और तुम्हारे बच्चों को साथी, वहाँ मजे

से तुम्हारे केस के लिए रुपया मिल जायगा। कुछ भी तो यत्न नहीं करना पड़ेगा !"

०

अपने पत्र मे इस घटना का संक्षिप्त विवरण देते हुए चेतन ने लिखा।

'इस मामले के लिए पैसा जुटाने के हेतु सरदार जगदीश सिंह ने अपना निवास-स्थान किरायेदार के लिए भिन्न भागों मे विभक्त कर दिया है और इस तरह वे लैन्ड लॉर्ड न सही, हाउस प्रोप्राइटर फिर से बन गये है। इन्हीं किरायेदारों में सरदार जी के साथ के हिस्से मे रहने के लिए हम आये है। उनकी लडकी जवान हो रही है और वे नही चाहते कि इस हिस्से मे किसी संदिग्ध व्यक्ति को रखें। और इस तरह हम सरदार जगदीश सिंह (भूतपूर्व लैन्ड लॉर्ड और वर्तमान हाउस प्रोप्राइटर) के साथ बड़ी शान से डंटे हुए है। बरामदे में प्लाइवुड का एक पार्टीशन उनके भाग को हमारे भाग से अलग करता है और हम उनके एडवोकेट मित्र की जान की दुआएँ दे रहे है....'

०

उन एडवोकेट साहब ने क्या केस बनाया, यद्यपि इस सम्बन्ध में चेतन ने अपने पत्र मे अनन्त को कुछ नहीं लिखा, पर जिन लोगों ने अदालत में सरदार जगदीश सिंह के पेटीशन को सुना, वे उन एडवोकेट साहब की धूर्तता और सरदार जगदीश सिंह की 'बुद्धिमत्ता' की भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना न रह सके।

संक्षिप्त मे पेटीशन कुछ इस प्रकार था : 'एक दिन मैंने अपने मित्र बलवीर सिंह को मोरी गेट के बाहर सोशलिस्टों की एक सभा मे देखा। मै कुछ क्षण उनके पास जा खड़ा हुआ। दूसरे दिन मेरी अनुपस्थिति मे मेरे घर पुलिस का एक सिपाही दो बार आया और उसने कहा कि सरदार जी कहाँ है, उनकी गिरफ्तारी के वारंट है। उस शाम मेरे दूसरे मित्र

सिंह ने बताया कि सोशलिस्टों की उस सभा को खिलाफ़-कानून करार दे दिया गया था, तुमने नाहक उसमे भाग लिया। उसने कहा, 'बलवीर सिंह की गिरफ़्तारी के भी वारंट आये हैं। अब तुम यों करो कि अमृतसर भाग जाओ, नही यहाँ गिरफ़्तार हो जाओगे और सात साल सख्त क़ैद से कम मे छुटकारा नहीं होगा'—मैं अमृतसर भाग गया। वही मुझे बलवीर सिंह भी मिला। उसने कहा, 'श्रीमती राधारानी के पति मैजिस्ट्रेट के परिचित है और हरचरण से भी उनकी मैत्री है। तुम हरचरण को लिखो कि कुछ दे-दिला कर इस मामले को खत्म करा दे।' मैंने हरचरण को लिखा। उसने आ कर बताया कि दस हजार से कम मे काम न बनेगा, बड़ा संगीन मामला है और मैजिस्ट्रेट आठ हजार से कम मे बात नहीं करता। दो हजार रुपया श्रीमती राधारानी के पति की भेंट करना होगा।' तब बलवीर सिंह ने लगभग रोते हुए कहा—'मेरे पास तो अपना मकान ही है, मैं उसे गिरवी रख दूँगा, पर उससे तो एक हजार भी हाथ न आयगा।' मैं भी घबरा गया और इस घबराहट मे मैंने अपनी माडल टाऊन वाली कोठी गिरवी रखने का फैसला कर लिया। हरचरण सिंह ने कहा कि वह ऐसा प्रवन्ध कर देगा जिससे किसी को कानोकान खवर न होगी। बस चार दिन के बाद हरचरण सिंह, साहूकार, वकील और श्रीमती राधारानी के पति को ले कर आया। मैंने कोठी गिरवी रख दी। दरबार साहब के सामने उन सभों ने शपथ ली कि वे मुझे और बलवीर सिंह को जेल की ज़िल्लत से बचा लेंगे। दरबार साहब के ग्रन्थी मेरी गवाही देंगे कि इन्होंने वहाँ शपथ ली थी। दूसरे गवाह भी उपस्थित है।'

इस पेटीशन के अन्त मे सरदार जगदीश सिंह ने यह भी कहा कि उनका वंश बड़ा ऊँचा है और सरकार का पुराना खैरख्वाह है (यहाँ उन्होंने अपने भाइयों के नाम गिनवाये जिनमे से कई सरदार साहब, कई सरदार बहादुर और दो सर भी थे)। वे अपने वंश को कलंकित करने से डरते थे। उन्होंने आज तक किसी राजनीतिक सभा मे भाग नही लिया। राजनीतिक सभाओं मे भाग लेना तो दूर उन्होंने कभी समाचार-पत्र तक

पढा । उनकी इसी सरलता, अनभिज्ञता और सरकार की वफादारी का अनुचित लाभ उनके इन मित्रों ने उठाया है ।

०

चेतन ने अपने पत्र के अन्त में लिखा :

> 'बस मामला चलते ही सरदारनी जी के अनुरोध पर सरदार जी ने बरामदे में एक और पार्टीशन करके उसमें 'ग्रन्थ साहब' का 'प्रकाश' कर दिया है । गुरु महाराज मामला जीतने में उनकी सहायता करें, इस आशय से सुबह शाम वे स्वयं, उनकी लडकी और लडका दरवाजे की चौखट पर मुट्ठियाँ भरते रहते हैं । एक अखंड पाठ हो चुका है, दूसरे की तैयारियाँ हो रही है । और श्रीमती राधारानी का यह प्रेमी इस तरह व्यस्त है जैसे किसी आपत्ति से जूझने के लिए नही, उसकी शादी के हेतु ये अनुष्ठान हो रहे है ।'

इकतालीस

रात बेहद अँधेरी थी । वर्षा अपना वेग दिखा कर अब नन्हीं-नन्ही बूंदों मे बरस रही थी । चेतन ने घडी की ओर देखा, अढ़ाई बज गये थे । सामने सम्पादक महोदय प्रेस कापी तैयार करके वहीं कुर्सी पर टाँगें सिकोड़े सो गये थे । चेतन उपन्यास लिख रहा था, किन्तु प्रयास करने पर भी उससे अब आगे न लिखा जाता था । उसका श्रान्त मस्तिष्क थके हुए घोडे की तरह अड गया था और बार-बार पानी के छींटों के रूप मे चाँटे मारने पर भी आगे न बढ़ रहा था । उसने कापी बन्द की, सम्पादक को जगा, उससे छुट्टी ली, छाता उठाया और चल दिया ।

बाहर ड्योढ़ी की चौखट पर खड़े हो कर उसने गली मे दृष्टि डाली ।

शुक्ल पक्ष होने के कारण बिजली की बत्तियाँ बन्द थीं। यद्यपि काजल-काली घटाओं ने शुक्ल पक्ष को कृष्ण पक्ष से भी अधिक काला बना दिया था, पर कानून तो कानून ठहरा, बादलों के छा जाने से उसमें कैसे परिवर्तन हो; गहन अंधकार के बावजूद बत्तियाँ बन्द थीं। गली के तिमंजिले मकान इस अंधकार को और निबिड़ बना रहे थे। नीचे पानी की नदी ठाठें मार रही थी और ऊपर से परनालों का पानी शोर मचाता हुआ उससे मिल रहा था।

चेतन ने सोचा, कुछ क्षण और प्रतीक्षा कर ले। किन्तु यह विचार कि अढ़ाई बज गये हैं, जैसे बरबस उसे आगे ढकेलने लगा। एक हाथ मे छाता और उपन्यास की कापी थाम कर दूसरे से तहमद को ऊपर उठाता हुआ वह सीढ़ियाँ उतर गया।

गली में घुटनों तक पानी था। रोशनी से सहसा अँधेरे मे आने के कारण उसे कुछ दीख न रहा था। माप-माप कर पग धरता हुआ वह आगे बढ़ा।

वह लाख चाहता था कि परनालों की निरन्तर बहती धाराओं से बच जाये, पर वे सब 'हरर-हरर' करते ऐन गली के मध्य गिर रहे थे। ˆव ९ के साथ चलने में पाँव के नाली मे फँस जाने का भय था। उसका छ ता। दो-तीन वर्ष उसकी सेवा करने के बाद जर्जर-प्रायः हो गया था। इसलिए वह भगवान शिव की भाँति इस अगनित धाराओं को अपने सिर पर वहन करने को विवश था।

अभी कठिनाई से उसने आधी गली पार की होगी कि उसे अचानक ऐसा लगा जैसे किसी ने निचुडता हुआ कोड़ा पूरे जोर से उसकी गर्दन पर दे मारा हो। उसे एक 'शूँ' की आवाज सुनाई दी और अँधेरे में कोई भयानक-सी चीज उसकी ओर बढी। वह उछला। उसका दिल धक-धक करने लगा और पानी की गर्म-गर्म धारा उसने गर्दन से अपने वक्ष की ओर बहती महसूस की।

जब वह पानी के सिरे पर पहुँच गया तो उसने पीछे मुड़ कर देखा।

उसकी आँखें अंधकार से अभ्यस्त हो चुकी थी । तब उसे पता चला कि वह तो पड़ोस में रहने वाले प्रोफेसर साहब की उद्दंड गाय है जिसकी गीली दुम उसके गले से किसी भूखी प्रियतमा की तरह लिपट गयी थी।

वहीं गली के सिरे पर खडे-खड़े उसने पहले प्रोफ़ेसर साहब, फिर उनकी गाय और फिर म्युनिसिपेल कमेटी को आधी दर्जन गालियाँ दी। फिर वह धीरे-धीरे चल पड़ा।

बाजार मे गली की अपेक्षा अंधकार कुछ कम था। और यद्यपि वर्षा फिर होने लगी थी, पर बादलों की तह शायद हल्की हो गयी थी। डूबा हुआ चाँद उभर आया था और उसकी मध्यम ज्योत्स्ना बादलों में से छन कर उस सूची-भेद्य अंधकार को कम कर रही थी।

और वह चलता-चलता महान लेखक के कथनानुसार समय का लाभदायक उपयोग करने के विचार से मन-ही-मन उपन्यास के कथानक पर विचार करने लगा था।

एस० पी० एस० के हॉल के पास पहुँच कर उसने देखा कि मोहन लाल रोड और चंगड़ मुहल्ले का संगम प्रयाग का संगम बना हुआ है। उसके सामने पानी में डूबी हुई चंगड़ मुहल्ले की सड़क घूम गयी। यदि वह उधर से जायगा तो दीवान चन्द हलवाई की दूकान तक उसे पानी में चलना पड़ेगा और चंगड़ मुहल्ले के बाजार का पानी—ध्यान मात्र ही से उसका जी मतलाने लगा। तब उसने सोचा कि वह बन्देमातरम प्रेस के पास से हो कर जाने वाली गली से घर जायगा। और वह उधर चल पड़ा।

गली के आरम्भ मे नाली का छोटा-सा लोहे का पुल टूटा हुआ था और पानी बडे वेग से बह रहा था। दस-बारह क़दम चलने के बाद गली ऊँची थी। पैरों से टटोलता-टटोलता चेतन बढा जा रहा था और अनजाने ही उस महान लेखक के कथन का भी पालन कर रहा था। उसके मस्तिष्क में उपन्यास का कथानक बन-सँवर कर अपना पूरा आकार पा रहा था। तभी उसे लगा जैसे उसके हाथ से कोई चीज फिसली जा रही है। कथानक

के निर्माण में तल्लीन उसने उसे थामा भी, पर तभी नाली में उसका पाँव फँस गया और वह चीज़ फ़िसल कर छप से पानी में गिर गयी।

वह चौंका। नाली बहुत गहरी न थी, इसलिए उसका पाँव टूटने से बच गया। पर यदि उसका पाँव टूट जाता तो शायद उसे इतना दुख न होता जितना उसे यह जान कर हुआ कि वह चीज़ उसके उपन्यास की कापी थी।

उसने बेतहाशा पानी मे इधर-उधर हाथ मारा। पर फिर वह अपनी इस मूर्खता पर स्वयं ही हँसा—कापी यहाँ कहाँ! वह तो पानी के प्रवाह में मोहन लाल रोड के संगम तक चली गयी होगी—उसने सोचा और कुछ क्षण तक वहीं मूक-मर्माहत-सा भीगता खड़ा रहा। चारों ओर निविड़ अन्धकार छाया था। वर्षा की रिमझिम, परनालों और बहते हुए पानो का शोर रात की निस्तब्धता भंग कर रहा था। एक ताँगा 'छप-छप' करता हुआ उसके पीछे से निकल गया। चेतन ने सोचा कि वह सुबह आ कर अपनी कापी ढूँढ़ेगा, किन्तु चलते समय उसने फिर अनायास पैर से इधर-उधर टटोल कर देख लिया।

०

नाली को पार करके वह चुपचाप चलने लगा। यद्यपि उस महान लेखक ने कहा था कि चलते समय का उचित प्रयोग लाभदायक तौर पर सोचना है, किन्तु निरन्तर प्रयास करने पर भी वह इस अमूल्य कथन का पालन न कर सका। वह सोचता तो रहा, पर वह सब लाभदायक था, इसमें सन्देह है। जब वह घर पहुँचा तो उसका मन खिन्न, शरीर क्लान्त और पलकें भारी थीं। रह-रह कर उसके सामने वह मोटी कापी, उसके सुन्दर पृष्ठ, नीली-नीली लकीरें और उन पर बड़े यत्न से सुन्दर लेखनी मे लिखे हुए उपन्यास के परिच्छेद घूम-घूम जाते। उसे ऐसा लग रहा था जैसे यह उपन्यास वह फिर न लिख सकेगा—इतना सन्तोष वह कहाँ से लायगा? यह सोचते-सोचते वह सीढ़ियाँ चढ़ गया और दरवाज़े पर पहुँच कर उसने दस्तक दी।

सरदार जगदीश सिंह के नौकर ने (जो पार्टीशन के इस ओर बरामदे मे सोता था) आ कर दरवाजा खोला और कहा :

"बीबी जी आयी हैं।"

"बीबी जी ! कौन बीबी जी ?"

"आपकी बीबी !"

"माँ।"

"नही जी आपकी बीबी," नौकर ने तनिक हँसते हुए कहा।

तभी चन्दा ने आ कर रसोई-घर का दरवाजा खोला। वह शायद अब तक जाग रही थी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। चेतन के मन मे उल्लास की लहर दौड़ गयी और कापी के खो जाने का विचार पलक झपकते हवा हो गया।

नौकर चला गया था। वहीं सीढियों पर खड़े-खडे वे कितनी देर तक बातें करते रहे। चन्दा ने उसे बताया कि उसका जी वहाँ बिलकुल न लगता था। वह बहुतेरा हँसने, प्रसन्न रहने का प्रयास करती थी, पर उदासी अनायास ही उनके मन-प्राण पर छा जाती थी। माँ ने उसे बस्ती भेज दिया, पर वहाँ भी उसका मन न लगता था—रोने-रोने को हुआ करता था। आखिर जब रणवीर लाहौर आने लगा तो माँ ने नाराज हो कर उसे उसके साथ चले जाने को कहा और वह चली आयी। "मुझे आपका डर था...." उसने कहना शुरू किया, किन्तु चेतन ने अपना सिर (वर्षा के कारण जिसके बाल घुंघराले हो गये थे) चन्दा के वक्ष से लगा दिया। उन भीगे, घुंघराले बालों मे अँगुलियाँ फेरते हुए चन्दा ने उस सिर को अपनी छाती से भीच लिया। अपने उस डर की बात को पूरा करने की जरूरत फिर उसे नही रही।

कुछ क्षण दोनो आनन्दातिरेक से चुप खडे रहे। फिर चन्दा ने कहा, "चल कर कपड़े बदल डालिए। सर्दी न लग जाय!" और वे दोनों रसोई-घर मे आ गये। कमीज उतार कर चेतन ने खूँटी पर फेंक दी और बदन पोंछ कर तहमद बदल. वही रसोई-घर में एक बाल्टी को उलट कर

उस पर बैठ गया। चन्दा उसके पास धरती पर बैठ गयी और उसका सिर चेतन ने अपनी गोद मे ले लिया।

वही बैठे-बैठे चन्दा ने बताया कि माँ ने एक चिट्ठी भी दी है। और उसने अपने ब्लाउज से एक चिट्ठी निकाल कर चेतन को दी। चेतन उस समय ज़रा भी चिट्ठी पढ़ने के मूड मे न था। चन्दा का कोमल, गदराया शरीर अज्ञात रूप से उसके मस्तिष्क पर छाया जा रहा था। उसने अन्यमनस्कता से पत्र को पढ़ना आरम्भ किया—माँ ने चन्दा के व्यवहार की शिकायत की थी और ताने दिये थे—किन्तु चेतन ने दो-चार पंक्तियाँ पढ कर ही पत्र को अलग रख दिया और दायें हाथ से चन्दा को अपनी छाती से लगा लिया।

चन्दा आयी थी तो डरती थी कि कहीं इस प्रकार बिना पूछे चले आने पर चेतन गुस्सा न हो, पर उसके व्यवहार से उत्साह पाकर उसके वक्ष से लगी-लगी वह अनवरत बातें सुनाती चली गयी—सोहनी, केसरी, लक्ष्मी, पारो, शीला, कर्तारी अपनी सभी सहेलियों की बातें....।

कई बार चेतन को इच्छा हुई कि वह चन्दा से नीला की बात भी पूछे, पर हर बार वह अपनी इस इच्छा को बरबस दबा कर रह गया।

सामने रसोई-घर की खिड़की से प्रातः का झुटपुटा दिखाई देने लगा था जब भाई साहब ने जग कर पार्टीशन के दूसरी ओर से लगभग पितृ-स्नेह से भरी आवाज मे कहा :

"अब सो जाओ चेतन, दोपहर को तुम्हे फिर दफ़्तर जाना है।"

बयालीस

सर्दी उतर आयी थी। चेतन ने छोटा कमरा सम्हाल लिया था। चारपाई उसमे एक ही आ सकती थी और पार्टीशन के दूसरी ओर भाई और भावज

के होने से उसे लज्जा भी आती थी । किन्तु चन्दा को पुनः बस्ती या जालन्धर भेजने की अपेक्षा उसने इस लज्जा को उठा रखना ही श्रेयस्कर समझा ।

"कोई हद है बेशर्मी की," इस बात की ओर संकेत करते हुए उसकी भाभी ने एक बार अपने पति से कहा था, "दिन-रात एक ही चारपाई पर लेटे रहते है । फिर वह । (भाभी का अभिप्राय चेतन से था) तो खुली तबीयत का आदमी है, इसको तो शर्म आनी चाहिए । पति तो पति जेठ के साथ भी उसी चारपाई पर बैठी 'खिहि खिहि' करती रहती है ।

इसी बात को ले कर सरदारनी ने भी चेतन से दो-चार बार मजाक किया था । तंग आ कर उसने उस छोटे से कमरे में बिछायी जा सकने वाली दो चारपाइयाँ बनवायीं । लेकिन एक ही रात उन पर सो कर उसने उन्हे भावज को दे दिया था कि लो इन पर अपने बच्चों को सुलाओ । इसके बाद वह रसोई-घर मे भी दूसरी चारपाई बिछवाता रहा था, पर कुछ ही दिन बाद इस प्रवंचना से भी उसने मुक्ति पा ली ।

०

पर इतने ही से उसे निष्कृति नही मिल गयी । देवरानी और जेठानी के इकट्ठे रहने से उसे नित्य किसी-न-किसी नयी समस्या से दो-चार होना पड़ता । सब से पहली समस्या खाना पकाने की थी । चन्दा पढ़ती थी, इसलिए खाना पकाने का काम भावज ही को अधिक करना पडता था । यद्यपि चन्दा को शिकायत रहती थी कि उसकी जेठानी चेतन की तरकारी मे तड़का कम लगाती है और उसके दूध मे मलाई नही डालती, पर चेतन सन्तुष्ट था कि चन्दा को पढने-पढ़ाने के लिए समय तो मिल जाता है । और वह उसे समझा देता था कि ऐसी जरा-ज़रा-सी बातों की ओर ध्यान नही देना चाहिए ।

वास्तव मे जब चन्दा ने कुछ ही महीनों के परिश्रम से अच्छे नम्बरों से हिन्दी रत्न की परीक्षा पास कर ली तो चेतन की दृष्टि मे उसकी वकत बढ़ गयी थी । वह न चाहता था कि उसे खाना पकाना पड़े, किन्तु उसकी

भाभी को अपनी देवरानी का यों रानी बने बैठना एक आँख न भाता था और वह भाई साहब से रोज़ तगादा करती थी कि उसे भी स्कूल में दाखिल करा दिया जाय। भाई साहब बेपरवाही से हँस देते। "अब तुम पढ़ कर क्या करोगी ?" वे कहते, "बच्चे पालो और राम का नाम जपो।" और वे छड़ी उठा कर सैर को निकल जाते।

दिन-प्रतिदिन भाभी के तगादे और भाई साहब की बेपरवाही बढ़ने लगी। आखिर जब भाभी का अनुरोध बढ़ कर क्रोध और भाई साहब की बेपरवाही चुप की सीमा को पहुँच गयी तो एक दिन भाभी स्वयं मोहन लाल रोड गयी और कैलीग्राफ़ी की दो-चार कापियाँ खरीद लायी। सारा दिन बैठी, एकनिष्ठ हो, वह उन्हें भरती रही। जब शाम को भाई साहब ने आ कर खाना माँगा तो उसने इन्कार कर दिया। "वह यदि पढ़ती है तो क्या मैं नहीं पढ़ती," उसने अँगूठा मटका कर कहा, "वह तो पढ़ने के बहाने खाट पर टाँगें फैलाये लेटी रहे और मैं बाँदी बनी घर का सब काम करूँ!"

जब भाई साहब का समझाना-बुझाना, अनुनय-विनय, सब बेकार गया तो आखिर चेतन ने फ़ैसला किया कि भाभी सुबह और चन्दा शाम को खाना पकाये। यह भी हो गया कि छुट्टी के दिन चन्दा सुबह पकायेगी ताकि वे शाम को सैर के लिए जा सकें।

इस समस्या से छुटकारा मिला तो बाजे की समस्या भयावह रूप धारण कर सामने आ गयी।

चेतन और चन्दा ने बड़ी कठिनाई से दूसरी ज़रूरतें काट कर बाजा खरीदा था। बात यह थी कि जिस दिन से चेतन पर अचानक यह भेद खुला था कि उसकी पत्नी ने बड़ा सुरीला गला पाया है और उसने इस बात का फ़ैसला कर लिया था कि वह एक हारमोनियम खरीदेगा और नियमित रूप से अपनी पत्नी को संगीत की शिक्षा देगा, वह बाजा जुटाने का तिकड़म भिड़ाने लगा था। चन्दा ने इस बीच में पन्द्रह रुपये जमा कर रखे थे। दस का और प्रबन्ध करके चेतन एक संगीत-टीचर की

सहायता से पैंतिस रुपये का एक हारमोनियम ले आया था। उसने दस रुपये इस वादे पर दुकानदार से उधार कर लिए थे कि पाँच-पाँच रुपये की किस्तो मे दो महीने मे उतार देगा। उन्हीं संगीत-टीचर से पाँच रुपये महीने पर वह स्वयं बाजा सीखने लगा था। जो कुछ वह सीख कर आता घर आ कर चन्दा को सिखा देता।

पहले तो भाभी को इस बात की जलन थी कि चन्दा अपने जेठ के सामने क्यो गाती है। जब चेतन ने उसे रोक दिया तो भाभी ने स्वयं बाजा सीखने की रट लगा दी। जब भी भाई साहब शाम को घर आते तो खाना परोसते समय भाभी बाजा सीखने की इच्छा प्रकट करती।

इन तगादो के उत्तर में भाई साहब दुख और व्यंग्य से हँसते। दुकान में अभी कितने ही औजार कम थे; कुर्सी भी सस्ती और पुरानी किस्म की थी; वाहर का साइन-बोर्ड भी छोटा था; दुकान मे लकड़ी और शीशे के पर्दों की जरूरत थी; बिजली का पंखा तक भी न था—वे पत्नी को समझाने की कोशिश करते, पर भर्तृहरि ने कहा है न कि सागर को कण भर मधु से मीठा किया जा सकता है, पर मूर्ख को....और भाभी चीख उठती, "आप तो डॉक्टर है और वह चालीस रुपये का क्लर्क! उसकी बीवी तो स्कूल मे पढ़े, बाजे बजाये और मै बैठी मुटर-मुटर ताका करूँ। उनको सब कुछ ले कर देने के लिए तो आपके पास पैसे आ जाते है और मेरे लिए...."

ऐसे समस्त अवसरों पर भाई साहब के लिए भोजन विष बन जाया करता। किसी-न-किसी तरह दो चार कौर निगल कर वे उठ खड़े होते। छडी उठाते और चुपचाप वाहर निकल जाते।

अपनी भाभी की इस ईर्ष्या से तंग आ कर चेतन ने अपनी पत्नी से कह दिया कि वह अपनी जेठानी को भी बाजा सिखा दिया करे।

चन्दा ने उसी दिन से श्रीमती चम्पावती को गाना सिखाना आरम्भ कर दिया। भाभी के गले मे रस का सर्वथा अभाव था। स्वर उनका कौवे का-सा था, किन्तु इससे वे तनिक भी हतोत्साह न होती थी और गला

फाड़े सुर-बेसुर गाये जातीं ।

०

उन्ही दिनों एक और घटना घटी जिसने भाभी की ईर्ष्याग्नि पर तेल का काम किया ।

०

बात यह हुई कि चेतन के पास उसके वेतन के अतिरिक्त कुछ और रुपये आ गये । कृषकों के हितचिन्तक, पूंजीपतियों के एक साप्ताहिक-पत्र के स्वामी ने चेतन से प्रति-सप्ताह एक कृषि-सम्बन्धी कहानी लेने का वादा किया था और पहली कहानी के रुपये भी उन्होने दे दिये । सर्दी जोरो से पड़ने लगी थी और चन्दा के पास एक भी गर्म कपड़ा न था । इसलिए चेतन ने उसे एक कार्डीगन ले दिया । जब चेतन घर से चला था तो उसका यही खयाल था कि एक सस्ता-सा कार्डीगन वह चन्दा को ले देगा। परन्तु जब वह चन्दा को लिये हुए 'तिलक होजरी' के अन्दर जा बैठा और उसने सामने के क़दआदम शीशे पर नज़र डाली और अपनी आकृति दर्पण में निरख (मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करते हुए) अपने मुलायम बालो पर उसने हाथ फेरा और देखा कि उसकी पत्नी की आँखों से एक सलज्ज मुस्कान निकल कर उसके होंटो पर फैलती हुई चेहरे को रोशन कर रही है तो न जाने उसे क्या हुआ कि वह सस्ता स्वेटर खरीदने की बात एकदम भूल गया । उसने ऐसे गर्व के स्वर मे सेल्ज़मैन से स्वेटर दिखाने को कहा कि घटिया स्वेटर लाने की उसमे हिम्मत ही न हो ।

पर उसके स्वर मे जो गर्व था, उसकी ओर ध्यान न दे कर सेल्ज़मैन ने दो-अढ़ाई रुपये तक के स्वेटर उसके सामने ला कर रख दिये ।

चेतन ने कहा, "कुछ और अच्छे दिखाओ !"

सेल्ज़मैन चार-पाँच तक के उठा लाया ।

शायद चेतन को इसमे अपना अपमान लगा । कुछ वेसब्र हो कर उसने कहा, "और दिखाओ भाई, जो सब से अच्छा हो वह दिखाओ !"

तब सेल्ज़मैन गुलाबाँसी रंग का एक कार्डीगन लाया जिसके कालर

पर श्वेत धारियाँ थी ।

"इसका क्या मूल्य है ?" चेतन ने पूछा ।

"आठ रुपये ।"

चेतन की जेब मे आठ ही रुपये थे । चार रुपये उसे मालिक मकान को किराये के हिसाब मे देने थे और चार रुपये उसने कार्डीगन के लिए रख छोड़े थे । चन्दा को यह बात मालूम थी, इसलिए जब उसने चन्दा से उसकी पसन्द पूछी तो उसने साढ़े तीन रुपये के एक कार्डीगन पर अँगुली रख दी ।

तब हँसते हुए और शीशे मे अपनी शक्ल देख कर बालों पर हाथ फेरते हुए गुलाबाँसी कार्डीगन की ओर संकेत करके चेतन ने पूछा, "यह तुम्हे अच्छा नहीं लगता क्या ?"

अरमान भरी आँखो से चन्दा ने कार्डीगन की ओर देखा और फिर आँखें झुकाली ।

चेतन भूल गया कि चार रुपये उसे मालिक मकान को देने है । एक विचित्र प्रेम भरे दया-मिश्रित भाव से उसने अपनी पत्नी की ओर देखा और आठ रुपये जेब से निकाल कर सेल्ज़मैन के सामने रख दिये, "यह गुलाबाँसी स्वेटर बँधवा दो ।"

भाभी ने इस स्वेटर को देखा तो ईर्ष्या की एक टीस उसके हृदय की गहराई मे उठी ।

"चन्दा को तो आठ रुपये के स्वेटर ले कर दिये जायँ और मै सर्दी में ठिठरूँ ?" भाई साहव के आने पर भाभी ने कहा ।

"मुझे तो यह भी मालूम नही कि उसने क्या खरीदा है ।" भाई साहव व्यंग्य और विवशता से हँसे । चन्दा को बुला कर उसने कार्डीगन देखा और दबी हुई साँस उन्होने दिल मे दबा ली । चेतन दफ़्तर जा चुका था । इस डर से कि उन्हे बहुत उल्टी-सीधी सुननी पड़ेगी, खाना खा, छड़ी उठा, भाई साहव सैर को चले गये ।

दूसरे दिन उन्होने अलग ले जा कर चेतन को समझाया कि तुम्हारी

भाभी भी स्वेटर के लिए शोर मचा रही है। मेरे पास तो पैसा है नहीं। जब उसे बाहर जाना हो तो कार्डीगन तुम उसे दे दिया करना।

यद्यपि पहले वह कार्डीगन भाभी ही ने पहना और कुछ मिला कर भी भाभी ही स्वेटर को ज़्यादा पहनती रही तो भी अपनी निजी स्वेटर के लिए उसने भाई साहब का पीछा न छोड़ा।

वे लाख समझाते कि उनकी आय ज़्यादा नहीं, उनका खर्च बड़ा है, उन्हे बहुत सामान खरीदना है, वे स्वयं चेतन के सूट पहनते है, पर भाभी को विश्वास न होता और वह यही कहती कि आप उनको खिला रहे है और हमे कुछ नहीं देना चाहते।

इस रोज-रोज की चख-चख से भाई साहब इतना तंग आ गये कि उन्होंने अपनी पत्नी को उसकी बुआ के पास भेज दिया। भाभी की यह बुआ लाहौर के पास ही श्रीरामपुर गाँव मे रहती थी। उसका दामाद लाहौर मे काम करता था। अपनी लड़की को देखने वह जब आती तो रस्मी-तौर पर चम्पावती को साथ ले जाने के लिए भाई साहब से अवश्य कहती। इस बार जब वह आयी और उसने भाई साहब से चम्पा को श्रीरामपुर भेजने के लिए कहा तो इस अनुरोध की औपचारिकता का ख़याल न कर, भाई साहब ने भाभी को बरबस तैयार कर दिया।

तैंतालीस

समाचार-पत्र के दफ़्तर में काम करते हुए उसे साल भर होने को आया था, पर चेतन के स्वभाव मे अभी तक लड़कपन कम न हुआ था। भाई साहब कई बार उससे कहा करते, 'चेतन तुम तो बिलकुल बच्चे हो !' वह उनसे लड़ने लगता। किन्तु जब कभी उसे अपनी ग़लती का पता चल जाता वह हँस देता और कहता, 'मै बच्चा ही तो हूँ, शादी हो गयी तो

क्या ? मेरी उम्र ही अभी क्या है ?' और कई बार वह हँस कर यह भी कहता, 'भाई साहब मैं बच्चा ही बना रहना चाहता हूँ । बूढ़ा बनना मुझे पसन्द नही ।' लेकिन बचपन मे कितने भी लाभ क्यों न हों, हानि भी कम नही और एक बार अपने इसी बचपने के फल-स्वरूप वह और उसकी पत्नी बीमार पड़ गये ।

बात कुछ भी न थी । चेतन संध्या को दफ्तर से आया था । उसे ज़ोर की भूख लगी हुई थी । भूख उसे जब भी लगती वह कुछ न कर पाता । कई बार ऐसा भी होता कि चन्दा उसके लिए अलग तरकारी छौंक कर रख देती और कहती, 'बस कुछ देर नही; आइए बैठिए, फुल्का अभी सेंके देती हूँ ।' वह आ कर रसोई-घर मे बैठ जाता और रोटी के सिकते-सिकते सब्जी खत्म कर देता और चन्दा जब फिर उसके लिए सब्ज़ी छौंकती तो वह इस बीच मे रूखा फुल्का ही खा जाता ।

कई बार ऐसा भी होता कि वह भूख के कारण कोई पुस्तक ले कर पढने बैठता पर पढ़ने मे उसका मन न लगता और वह पुस्तक छोड़ कर नीचे चला जाता । वहाँ मासिक 'गिरिजा' के सम्पादक मुन्शी गिरिजा-शंकर के पास जा बैठता और फिर बातो मे ऐसा लीन हो जाता कि उसे भूख की याद भी न रहती और चन्दा ऊपर रसोई-घर मे बैठी अपने भाग्य को कोसा करती ।

चेतन मुन्शी गिरिजाशंकर को कुछ अधिक पसन्द न करता था । केसर की घटना के बाद तो वह उनसे और भी बिदकने लगा था, पर उनकी बातो मे उसे रस मिलता था और इसलिए ऐसे समय जब उसे भूख लगी हो और खाना तैयार न हो, वह उनके यहाँ जा बैठता था और उनकी लच्छेदार बातो मे अपनी समस्त भूख भूल जाया करता था ।

उस दिन भूख से बेचैन हो कर जब चेतन अपने मकान की सीढ़ियाँ उतरा तो उसका विचार था कि मुन्शी जी के पास बैठेगा । पर उनकी दुकान बन्द थी । वह चुपचाप आगे चल पडा । मोहन लाल रोड से निकल कर वह लोअर-माल पर हो लिया और ज़िला कचहरी के पास से होता

हुआ गोल-बाग़ में एक पेड़ के साथ बनी हुई गोल.बेंच पर जा बैठा।

उसे इतनी भूख लग रही थी कि वहाँ बैठना और किसी दूसरी बात के सम्बन्ध मे सोचना उसे दुष्कर प्रतीत होने लगा। एक उदास-सी दृष्टि उसने अपने चारो ओर डाली—संध्या का समय था और लोग बाग़ की सैर को निकल आये थे। दायें ओर के लॉन मे दो-एक काली मामाएँ लाल-लाल गोरे-गोरे बच्चों को खेला रही थीं। गोरे गुलगोथने, गुबले-गुबले बच्चे अपनी नीली-नीली आँखों, सफ़ेदी मिश्रित हल्के-भूरे बालों, और अपनी स्वस्थ-स्फूर्ति के कारण चेतन को बड़े भले मालूम हुआ करते थे और कई बार वह गोल-बाग से गुज़रता हुआ उनका खेल देखने को रुक जाया करता था। पर उस अनमनेपन मे वे उसे अत्यन्त घिनौने दिखायी दिये। उसे कुछ ऐसा लगा कि जैसे उनके शरीर का हर लोथड़ा और उनके रक्त का प्रत्येक कण अगनित काले बच्चों के रक्त-माँस से बना है और उसे ऐसा आभास हुआ जैसे समस्त काला संसार मामा बना दिन-रात गोरे संसार की सेवकाई कर रहा हैं। और उसके मन मे आयी कि वह उल्का बन कर इस गोरे संसार पर फट पड़े और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर, उस भूखे काले संसार को मुक्त करे।

वह बेंच से उठा। सामने टेनिस कोर्ट में खेल शुरू हो गया था। अपने गोरे-गोरे शरीर पर श्वेत टेनिस शर्ट और नेकर पहने एक सुन्दर-स्वस्थ रमणी अपना कौशल दिखा रही थी। यद्यपि चेतन को टेनिस अथवा क्रिकेट के खेल बड़े प्रिय थे और स्वयं कभी न खेल सकने पर भी वह उन दोनों खेलों को देखने और उनके टूर्नामेंटों के विवरण पढ़ने मे बड़ा बड़ा आनन्द पाता था, पर उस समय टेनिस कोर्ट में उस रमणी की उपस्थिति भी उसे अपनी ओर आकर्षित न कर सकी। पेट की भूख जहाँ तृप्त हो कर सो जाती है, वहीं तन की जगती है। रमणी की गोरी जाँघें, जो नेकर के कारण आधी नंगी थी, चेतन को अपनी ओर न खींच सकीं। एक बार उनकी ओर अनमनी-सी दृष्टि डाल कर वह घर की ओर चल पड़ा। उसे ऐसा लग रहा था जैसे गोल बाग़ में आये उसे बहुत देर हो

गयी है, उसे चलना चाहिए। चन्दा खाना बना कर बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। इस प्रतीति के साथ ही उसकी कल्पना के सम्मुख तरकारी से भरी कटोरियाँ और गर्म-गर्म फूली-फूली रोटियों से भरी थाली घूम गयी। पर जब कचहरी तथा लॉ कॉलेज रोड की धूल फाँक कर वह अपने घर पहुँचा और अतीव उत्सुकता के साथ उसने रसोई-घर मे झाँका तो उसके वदन मे आग लग गयी—चूल्हे के पास घुटनों मे सिर दबाये चन्दा मजे से आलू छील रही थी।

"तुम अभी आलू ही छील रही हो और मैं मील भर का चक्कर लगा आया हूँ।" उसने चीख कर कहा, "खाना पकाना भी नही सिखाया किसी कम्बख्त ने तुम्हे !"

न जाने चन्दा की तबीयत खराब थी अथवा उसने चेतन की आकृति पर प्रतिक्षण गहरे होते रोष की रेखाओं को नहीं देखा, इसलिए वहीं घुटनों पर सिर रखे आलू छीलते-छीलते उसने कहा, "खाना पकाना कोई खेल तो है नही। पका तो रही हूँ।"

चेतन का शरीर क्रोध से काँपने लगा। उसने पत्नी की बाँह दबोच उसे उठाया और लगभग घसीटते हुए उसे बडे कमरे मे ले गया। वहाँ चारपाई पर उसे बैठा दिया और बोला, "यहाँ बैठो, देखो, कितनी जल्दी पकाता हूँ खाना !"

चन्दा रोने लगी थी। किन्तु उसकी ओर ध्यान दिये बिना, वह जैसे अंगारो पर चलता हुआ रसोई-घर मे आया। आलू लगभग छीले जा चुके थे। उसने उन्हे काट कर धोया और चढ़ा दिया। फिर आटा गूँथा और उसमे मुट्ठियाँ भर कर और पानी छिडक कर उस पर कपड़ा रख दिया। फिर उसने तरकारी को देखा। अभी पकी न थी। तब कुछ क्षण वह घुटनो पर सिर रखे चुपचाप बैठा विष घोलता रहा।

जब चेतन के पिता रिलीविंग मे न होते और किसी स्टेशन पर उनकी नियुक्ति हो जाती तो माँ उनके पास चली जाती थी ताकि कम-से-कम उनका वेतन तो मदिरा के चंगुल से घर के लिए बच जाय। तब उसकी

अनुपस्थिति में चेतन के दादा खाना पका लिया करते थे। उन्हें आँखों से कुछ कम दिखायी देता था। इसलिए खाना पकाने के अतिरिक्त और कोई काम न कर पाते। तब शेष काम तीनों भाई आपस मे बाँट लिया करते थे। भाई साहब सब्जी-तरकारी लाते और इस प्रकार दो-एक पैसे उसमे से बचा लेते। पानी भरने का काम छोटा भाई अपने जिम्मे लेता अखाड़े से वापस आ कर पसीना सुखाने के बहाने परसराम बड़ी आसानी से आठ-दस घड़े ला कर घर मे पानी-ही-पानी कर देता। घर की सफ़ाई और बर्तन मलने का काम चेतन अपने जिम्मे ले लेता। इस काम में उसकी सहायता उसके अन्य छोटे भाई करते।

कभी-कभी परसराम रूठ कर पानी भरने से इन्कार कर देता। तब चेतन चुपचाप घड़ा उठा कर पानी भर लाता था। पर रोज-रोज पानी भरना उसके बस का रोग न था। किन्तु सफ़ाई, यह उसे बड़ी प्रिय थी। सप्ताह मे एक बार रविवार को वह घर की सफाई करता और तब वह घर के समस्त कोने-अँतरे झाड़ कर रख देता। सफाई का जैसे उसे उन्माद सा हो जाता। जब बारह एक बजे वह घर की सफाई खत्म करता तो उसकी कमर दुख रही होती, शरीर धूल से अटा पड़ा होता और सिर में चक्कर आया करते। फिर सात दिन तक वह आँगन तथा दो-तीन कमरों की सफाई के अतिरिक्त किसी दूसरी ओर ध्यान न देता। किन्तु रविवार को जैसे उत्साह पुनः जाग उठता और वह एक-एक कमरा, एक-एक ताक, एक-एक कोना झाड़ने लग जाता।

रहा बर्तन मलना—तो न जाने उसे इसमे क्यों रस मिलता। जब वह मैले गन्दे बर्तनो को मल-धो और चमका कर टोकरे मे रखता तो उसे एक विचित्र प्रकार का सन्तोष होता। स्कूल ही की बात नही, जब वह कॉलेज मे गया था तब भी उसने अपने हिस्से का वह काम करने मे किसी प्रकार का संकोच न किया था। उन दिनों काम करते-करते वह सोचा करता था कि उसकी भावी पत्नी उसके घर को ऐसी ही सफाई और सलीके से रखेगी। उसका रसोई-घर इसी प्रकार धुला-धुलाया रहेगा और

टोकरे मे चुन कर रखे हुए चमकते-दमकते बर्तन आँखों को ठंडक पहुँचायेंगे ।—उसे कभी घर की सफाई न करनी पड़ेगी । वह चंचल चपल, सुघड और सलीके वाली होगी । बिजली की गति से वह काम किया । करेगी । जब वह सुबह-सुबह दफ़्तर जाया करेगा तो अपने कपडे धुले-धुलाये तैयार पाया करेगा । न उसे पायजामे या शलवार मे इजारबन्द डालना पडेगा, न कमीज के बटन टाँकने पड़ेंगे और न ऐन चलते समय उघड़े-फटे कपड़े सीने पडेंगे । वह घर के समस्त झंझट पत्नी को सौप कर निश्चिन्त हो जायगा और ऐसी मानसिक शाति पायगा जिसमे महान रचनाओ का सृजन होता है । पर उसे मिली यह मोटी-मुटल्ली, निर्जीव, निष्प्राण-सी, अकर्मण्य पत्नी जिसकी हर बात का उसे स्वयं ध्यान रखना पडता था, जो घर को तो क्या साफ-सुथरा रखती, स्वयं भी साफ़-सुथरी न रह सकती थी । एक दीर्घ-निश्वास उसके अन्तर से निकल गयी । उसकी दृष्टि बर्तनो पर गयी । ज़रा भी चमक न थी उनमे ।

और जैसे क्रोध के दुगुने वेग से वह उठा । सब बर्तन उठा-उठा कर उसने उन्हे नाली के खुरे पर रखा, मला, धोया और फिर टोकरे मे चुना । खुरे पर सेरों कीचड़ जमा हुआ था । मन-ही-मन जलते हुए उसने उसे मल-मल कर साफ किया और क्रोध के उस वेग मे सारे-के-सारे रसोई-घर को धो डाला । इस ओर से निबट कर उसने आटे को एक बार फिर से गूँथ कर उसकी लोई बना कर रख दी । तरकारी वह पहले ही उतार चुका था, तव ऊपर रख कर उसने रोटियाँ सेंकी । फिर उसने थाली परोसी और एक बार निखरे, धुले, साफ-सुथरे रसोई-घर और चमकते-दमकते बर्तनों को देख कर गर्व से सीना फुला वह बडे कमरे मे गया और किसी-न-किसी तरह हँसने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—"चलिए जनाब खाना तैयार है ! अब चल कर नोश फरमाइए और देखिए कि इस बीच मे किस प्रकार मैंने रसोई-घर की जिन्दगी सुधार दी है ।"

किन्तु चन्दा वही की वही बैठी रही । न हिली न डुली । उसने सिर्फ इतना कहा, "मुझे भूख नही !"

अपनी पत्नी की अपेक्षा अच्छे और सुचारु ढंग से सब काम कर लेने के गर्व ने चेतन के जिस क्रोध को दबा दिया था यह बात सुन कर वह पूरे वेग से भड़क उठा। भारी-भारी पग धरता हुआ वह रसोई-घर में गया, परोसा हुआ खाना उसने ढँक दिया और भूखा ही बाहर निकल गया।

तीन दिन तक दोनों तने रहे। न चन्दा ने खाना खाया और न चेतन ने। भाई साहब समझा-समझा कर हार गये। तीसरे दिन चेतन बीमार पड़ गया और चन्दा की तबीयत भी ख़राब हो गयी। भाई साहब ने माँ को तार दिया। वह आयी और दोनों को जालन्धर ले गयी।

चालीस

अपनी इस मूर्खता के बाद चेतन बीमार रहने लगा था। उसे ज्वर-सा रहता था। सिर में चक्कर आया करते और कमर में पीड़ा रहती। जब वह अपनी समझ से स्वस्थ हो कर लाहौर आया था तो भी सर्दियाँ उसे छुट्टियाँ लेते ही बीती थीं। चार दिन अच्छा रहता तो छः दिन बीमार पड़ जाता। उसे अपने ऊपर जो अटल विश्वास था उसके पाँव डगमगा गये थे।

मूर्खता-वश तीन दिन निराहार रहने के अतिरिक्त उसकी इस बीमारी का एक और भी बड़ा कारण था। तीन दिन भूखे रहने से जो वह बीमार पड़ गया, उसका भी शायद यही कारण था। अपने वैवाहिक जीवन के उस पहले वर्ष में वह उस भूखे की तरह व्यवहार करता रहा था जिसके सामने पहली बार मीठे स्वादिष्ट भोजन से भरी थाली आयी हो। उचित-अनुचित का उसे ज्ञान न रहा था। हमारी इस निम्न-मध्य-वर्गीय संस्कृति में जब यौन सम्बन्धी किसी बात का ज्ञान युवा लड़की-लड़के के कानों के पास तक ले जाना पाप समझा जाता है तो अपने सहज-ज्ञान द्वारा

केलिरत पशु-पक्षियों को देख; अपने ही तरह के अपने से ज्ञानी मित्रों या झूठे बाजारी वैद्य-हकीमों से सुन-सुना कर; या फिर छिपे-छिपे कोकशास्त्र की तरह के ग्रन्थ पढ-पढा कर उन युवकों की वासना समय से पहले चाहे जग जाती हो, पर सेक्स का उचित ज्ञान उन्हें प्राप्त नही होता। यही कारण था कि इस एक वर्ष के अन्त ही मे चेतन की शक्ति काफ़ी क्षीण हो गयी थी। वह बीमार-सा रहने लगा था और यद्यपि मुन्शी गिरिजाशंकर पर उसे भरोसा न रहा था और भाई साहब ने उसे उनकी दवाई करने से रोका भी था, किन्तु चेतन उनकी दवाई का चमत्कार देख चुका था—कितनी शक्ति भर गयी थी उसमे उन दिनों—वह सोचता और उन्हे पसन्द न करता हुआ भी उनके पास जा बैठता था। कई बार उसका जी होता था कि वह उनसे वही औषधि माँगे, जिसे दो दिन सेवन करने से उसके स्नायु सात दिन तक तने रहे थे।

लेकिन कुछ भाई साहब के डर और कुछ परिणाम के भय से उसे दवाई माँगने का साहस न हुआ था।

०

उन्ही दिनों उसकी भेंट कविराज रामदास से हो गयी।

०

कविराज रामदास यौन रोगों का उपचार करने वाले एक प्रसिद्ध वैद्य थे। कम-से-कम उनका नाम बहुत बड़ा था। सेक्स सम्बन्धी विषयों मे युवकों का पथ-प्रदर्शन करने के हेतु उन्होंने कई पुस्तके लिखी थी और ऐसे ढंग से लिखी थीं कि यदि अच्छा भला युवक भी उन्हे पढ़ लेता तो अपने-आपको बीमार समझने लगता और दूसरे ही दिन उनके दवाखाने जा पहुँचता।

चेतन ने भी उनमे से एक पुस्तक पढी थी और भाई साहब की डाँट के बावजूद वह कविराज से भेंट करने को उत्सुक था। वह तत्काल चला जाता, लेकिन उसने सुन रखा था कि पाँच रुपये तो केवल कविराज जी के परामर्श की फ़ीस है, दवाई के दाम अलग रहे। और पाँच रुपये तो दूर, वह

अवसर पा सके ।

कविराज ने उसे बड़े प्यार से बैठाया, उसे प्रोत्साहन दिया और कहा, "मै कागज का प्रबन्ध कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो !" फिर बातो-बातों मे उन्होने उसे यह भी समझा दिया कि जीवन मे सदैव अपनी सहायता आप करनी चाहिए । स्वावलम्बी के लिए किसी का एहसान सिर पर लेना उचित नही । "मन पर बोझ रह जाता है", उन्होने कहा, "आदमी ऊँचा उठ जाता है, पर उसकी आँखें झुकी रहती है ।" और चेतन को इस घोर-संकट से बचाने के लिए उन्होने यह प्रस्ताव किया कि वे उससे रुपये वापस लेने के बदले उसी क़ीमत की पुस्तकें ले लेंगे । "मै अपनी नयी पत्रिका 'स्वास्थ्य' के ग्राहको के लिए तुम्हारी पुस्तक पुरस्कार स्वरूप रख दूँगा", उन्होने कहा, "जो भी नया ग्राहक बनेगा, उसे तुम्हारी पुस्तक पुरस्कार स्वरूप दी जायगी । तुम्हारी पुस्तक भी छप जायगी, उसे अधिक लोग पढ़ भी लेगे और तुम्हारी दूसरी पुस्तक के लिए क्षेत्र भी बन जायगा !" और वे मूँछो मे मुस्कराये ।

"जी, जी !" चेतन ने प्रसन्न हो कर कहा, "मैं छपते ही आपकी सेवा मे ले आऊँगा । इस समय आप कागज का प्रबन्ध कर दें ।"

"वह सब हो जायगा, तुम इसकी चिन्ता न करो । खूब जी लगा कर लिखो ।" फिर हँसते हुए उन्होने कहा था, "पर अपने स्वास्थ्य का भी खयाल रखो, मालूम होता है कि तुम इस ओर ध्यान नही देते ।"

"जी....जी....।" और एक शर्मीली-सी हँसी के अतिरिक्त चेतन कुछ न कह सका था और दोनो हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हुआ वहाँ से उठ आया ।

वह कविराज जी के औषधालय से उतरा तो इतना प्रसन्न था जैसे अचानक कोई निधि उसके हाथ आ गयी हो । आते ही उसने कहानी-संग्रह का मसौदा मेज़ पर फैलाया और उसमे एक और पृष्ठ बढा कर समर्पण-स्वरूप लिखा :

कविराज रामदास जी को
पहली ही भट पर जिनके प्रति मन
श्रद्धा से प्लावित हो उठता है ।

पैंतालीस

कविराज जी ने न केवल कागज से उसकी सहायता करने का वचन दे कर चेतन का साहस बढ़ाया था, बल्कि अपनी नयी पत्रिका के लिए उससे स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों पर लेख भी लिखवाये थे और साहित्यिकों की जो सरपरस्ती वे किया करते थे, उसका जिक्र करते हुए, उसे उन लेखों के पैसे भी दिये थे ।

उन्होंने 'स्वास्थ्य' नाम से यह पत्रिका उन्हीं दिनों जारी की थी । मुन्शी गिरिजाशंकर की पत्रिका से यह उतनी ही भिन्न थी जितना कि दोनों का व्यक्तित्व ! नहीं तो 'स्वास्थ्य' के प्रति कविराज जी का प्रेम साहित्य के प्रति मुन्शी जी के प्रेम से भिन्न न था ।

"अभी पत्रिका नयी है, इसलिए मैं तुम्हे चार आने प्रति पृष्ठ ही दूँगा," उन्होंने कहा था, "पर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी पुस्तक की तरह यह पत्रिका भी लाखो की संख्या मे बिकेगी । तब तुम्हारा पुरस्कार भी चार आने से चार रुपये तक हो सकेगा ।"

चेतन के उल्लास का वारापार न रहा था । एक पृष्ठ के चार आने तो दूर उसे तो कभी पूरी-की-पूरी कहानी के चार आने न मिले थे । तब तक उसकी जितनी कहानियाँ छपी थी मुफ्त छपी थीं ।

वह स्वयं नये विषय चुनता और बारह-तेरह घंटे दफ्तर मे काम करने के बाद घर पर लेख लिखता । इस तरह जो पैसे बनते वे अपने बडे भाई को देता । भाई साहब की दुकान पर अब एक बड़ा भारी बोर्ड लग

गया था। बाहर एक शीशे का और अन्दर प्लाईवुड का पार्टीशन शोभा देता था। वेटिंग रूम का रूप निखर आया था। और परछत्ती के ऊपर भी एक गहरे नीले रंग का पर्दा दिखायी देता था। उसके पीछे भाई साहब ने दोपहर को आराम करने की जगह बना ली थी।

किन्तु जिस इच्छा को ले कर वास्तव में चेतन कविराज से मिलने गया था वह अभी तक उन पर प्रकट न कर सका था। उसके सिर मे पीड़ा कुछ अधिक रहने लगी थी, कमर भी अधिक दुखती थी और चक्कर भी कुछ ज्यादा आने लगे थे। आखिर एक दिन झिझकते-झिझकते उसने अपने स्वास्थ्य की चर्चा छेड़ कर अपनी वह इच्छा भी प्रकट कर ही दी। अपने शारीरिक कष्ट की बात कहते हुए उसने कहा, "मै कई बार आप से निवेदन करना चाहता था कि यदि आप भली-भाँति मेरा निरीक्षण कर मेरे लिए कोई औषधि बता दें तो बड़ी कृपा हो।"

कविराज ने एक बार उसके चेहरे की ओर देखा, निमिष भर सोचा और फिर हँसे। "तुम्हे औषधि की नही आराम की जरूरत है," उन्होंने कहा, "दो-तीन महीने के लिए अपने थके हुए अंगों को विश्राम दो, सैर करो आराम करो, व्यायाम करो, और परहेज रखो, तुम ठीक हो जाओगे।" फिर उन्होने जैसे अपने-आप से कहा था, "दैनिक पत्र का जीवन भी कोई जीवन है। इसमे पिसते हुए आदमी स्वस्थ रह भी कैसे सकता है? कुछ दिनों के लिए इससे छुटकारा पाओ।" और उन्होंने स्वास्थ्य और उसे अच्छा बनाये रखने के प्राकृतिक साधनों पर एक छोटा-सा मीठा भाषण दे डाला था। "जान है तो जहान है," उन्होने कहा, "यदि जान मे जान है तो एक छोड़ बीस काम हो सकते है और यदि जान को रोग लगा है तो आदमी क्या तीर मारेगा?"

"मै पहले ही बहुत छुट्टियाँ ले चुका हूँ।" चेतन ने विवशता से कहा, "मुझे दफ्तर से जितनी छुट्टियाँ मिल सकती है उनसे कही ज्यादा!"

"तुम कल आना," उन्होने तनिक सोचकर कहा, "मै कोई-न-कोई रास्ता निकालूँगा।"

०

दूसरे दिन जब वह उनके पास गया तो उन्होंने अपनी पत्नी का जिक्र किया :

"मैंने बीबी जी से (उनका अभिप्राय अपनी सहधर्मिनी से था) तुम्हारे विषय में बात की थी। उनका हृदय बड़ा कोमल है। अपने पाँवों पर आप खड़े होने का प्रयास करने वाले तुम जैसे युवकों से उन्हे बडी सहानुभूति है। जब मैंने उन्हे बताया कि तुम दैनिक-पत्र मे किस प्रकार दिन-रात काम करके अपना जीवन-निर्वाह करते हो और किस प्रकार तुम्हारा स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिर रहा है तो वे द्रवित हो गयी और उन्होने मुझसे कहा—आप उसे अपने साथ शिमले क्यों नही ले चलते ?"

और कविराज जी ने चेतन को बताया कि वे प्रति वर्ष ग्रीष्म-ऋतु मे किसी-न-किसी पहाड़ पर जाया करते है। "स्वास्थ्य भी ठीक रहता है और काम भी अधिक होता है।" वे बोले, "मै समय को व्यर्थ नष्ट करने, के पक्ष मे नही। धन अपने कुछ महत्व नहीं रखता—समय ही सब से बड़ा धन है। मै सदैव पहाड़ पर जा कर काम करता हूँ और मेरी समस्त पुस्तकें किसी-न-किसी पहाड़ पर ही लिखी गयी है।"

और उन्होंने बताया कि वे इस बार शिमले जा रहे है और चेतन चाहे तो उनके साथ चल सकता है।

"पर नौकरी...." चेतन ने कहना चाहा।

"जीवन होगा तो बीस नौकरियाँ मिल जायँगी।" वे उसकी बात काट कर बोले, "तुम्हे यहाँ कितने रुपये मिलते है ?"

"चालीस !" चेतन ने कहा।

मै तुम्हे पचास दे दूँगा, खाना वहाँ किसी होटल से खा लिया करना और मेरे यहाँ पड़े रहना। और तुम क्या चाहते हो ?" फिर कुछ देर बाद उन्होने कहा, "सेहत से बढ कर और कोई चीज नहीं। दफ़्तर से तीन महीने की छुट्टी ले लेना। बाद मे सेहत अच्छी हुई तो काम करना, नहीं तो सात-आठ महीने मेरे लड़के को पढ़ा देना। इस बीच में तुम्हे कोई-न-

कोई नौकरी मिल जायगी।"

"पर छुट्टी....।" चेतन ने कहना चाहा।

"इसकी चिन्ता तुम न करो, मैं तुम्हारे डायरेक्टर को चिट्ठी लिख दूँगा।"

"और काम...."

इस पर कविराज जी ने एक मीठा-सा ठहाका लगाया, "सेहत बनाओ भाई! इससे बड़ा काम कौन-सा है? वहाँ तुम सेहत बनाने के लिए जा रहे हो। यही तुम्हारे लिए सब से बड़ा काम है, इतना तुम समझ लो।"

"पर मैं...."

हँसते हुए कविराज जी ने कहा, "भाई, काम तुम कोई भी कर लेना। यह तो बात की बात है। तुम्हारा पहला काम तो अपनी सेहत बनाना है।" और फिर हँसते हुए उन्होंने कहा, "मैं शीघ्र ही शिमले के लिए चल दूँगा। मकान और दुकान का वहाँ प्रबन्ध हो चुका है। तुम तैयारी कर लो। काम तो होता ही रहेगा।"

चेतन इतना प्रसन्न हुआ कि आते ही उसने अनन्त को एक पत्र लिखा जिसमे उसने अपने सम्पादक और उन जैसे अगनित लोगों कीं नीचता का उल्लेख करते हुए कविराज जी की सहृदयता, उदारता और दयाशीलता पर छोटा-मोटा निबन्ध लिख डाला।

> 'मेरी भेंट सचमुच ही एक महान-आत्मा से हुई है,' उसने लिखा, 'कविराज रामदास का नाम तो तुमने सुना ही होगा। अरे वही जिन्होंने यौन-सम्बन्धी पुस्तके लिखी है। आज तक हम उन्हे एक विज्ञापनबाज वैद्य ही समझते आये है। उनके सम्बन्ध मे तरह-तरह की अफवाहे भी सुनते आये है। पर मैं तो पहली ही भेंट मे उनका भक्त हो गया। ऐसी सहृदय, महान, उदार आत्मा पायी है उन्होंने।'

न केवल यह, उसने कविराज की पत्नी से अपने अज्ञात परिचय का 'क्र करते हुए उनकी प्रशंसा मे एक 'क़सीदा' लिख डाला और कविराज

के भाग्य को सराहा जिन्हें उन ऐसी सदय और सहृदय पत्नी मिली ।

रात को जब भाई साहब घर आये तो उसने बड़े उल्लास से उन्हें बताया कि वह शिमले जा रहा है । अपने दफ्तर से छुट्टी ले लेगा; मजे से शिमले की सैर करेगा, कहानियाँ लिखेगा, पहाड़ियों पर घूमेगा और खूब मोटा हो कर आयगा ।

"पर तुम काम क्या करोगे ?" भाई साहब ने ससन्देह पूछा ।

"काम अभी तो उन्होंने कुछ बताया नहीं, बस इतना कहा है, सैर करो, खाओ-पिओ और सेहत बनाओ ?"

भाई साहब के मन मे कोई शंकाएँ उठीं, पर चेतन के पास उन्हें निवारण करने को समय न था । वह जा कर अपने सारे मित्रों को यह समाचार देना चाहता था कि वह गर्मियों मे शिमले जा रहा है । इसलिए उनकी शंकाओं का समाधान किये बिना ही वह घर से निकल गया । समय पर दफ़्तर पहुँचने की भी उसने चिन्ता नहीं की ।

छियालिस

जून का दूसरा सप्ताह अभी शुरू हुआ था, जब कविराज ने शिमले के लिए चल देने का फ़ैसला किया और चेतन से कहा कि वह भी तैयार हो कर उनके दवाखाने पहुँच जाय ।

चेतन को तैयारी ही कौन करनी थी । विवाह में आयी नर्म-गर्म रजाई-दुलाई उसके पास थी ही । किसी प्रकार जोड़-तोड़ करके खादी के दो पायजामे तथा दो कमीजे उसने और सिलवा लीं । उसके पास कोट का सर्वथा अभाव था, इसलिए उसने अपने पिता का वही पुराना सरकारी ओवर-कोट (जिसे भाई साहब काफी अर्से तक पहन चुके थे) साथ ले लिया । उन दिनों यह नियम था कि तीन वर्ष बाद स्टेशन मास्टर को

नया कोट मिल जाता था और पुराना उसी का हो जाता था। यह कोट पिता के पास अपनी अवधि समाप्त करके भाई साहब के पास आ गया था और जब वे तीन चार वर्ष तक उसे पहन चुके तो उन्होंने बड़ी कृपा कर चेतन को दे दिया था। चेतन ने उसे फिट करवा लिया था। नयी काट के बावजूद वह किसी कबाड़ी की दुकान से खरीदा हुआ दिखायी देता था। इतने पर भी जब चेतन नये धुले कपड़ों पर उसे पहनता तो लम्बे घुंघराले बालों और खुले गले के साथ वह कुछ बुरा न लगता था।

चेतन के लिए शिमला जाना विलायत जाने से कम महत्वपूर्ण न था। उसका उल्लास अन्तर मे समा न पाता था। आग उगलते मौसम मे तेरह-तेरह घंटे काम करने वाले उप-सम्पादक के लिए गर्मियों मे शिमले के आनन्द की कल्पना स्वप्न मे कुछ कम नही।

०

गाड़ी शिमले की ओर जा रही थी। कविराज, उनकी दयामयी पत्नी और उनके बच्चे इन्टर मे बैठे थे और कविराज के क्लर्क जयदेव तथा नौकर यादराम और उसकी पत्नी के साथ चेतन थर्ड मे।

वह इतना प्रसन्न था कि डिब्बे में सोने के लिए यथेष्ट स्थान होने पर भी उसे नीद न आ रही थी। अंतसर के स्टेशन पर उनके साथ जालन्धर का एक युवक आ बैठा। चेतन को पहचान कर उसने 'नमस्ते' की। चेतन उसे पहचान तो न पाया, पर जब उसे मालूम हुआ कि वह उनके मुहल्ले के निकट ही का रहने वाला है तो उसने बड़े गर्वस्फीत स्वर में बताया कि वह सेहत बनाने के लिए शिमला जा रहा है। और उससे यह प्रार्थना भी की कि यदि कष्ट न हो तो उनके घर जा कर वह चेतन की माँ और छोटे भाइयों को उसकी कुशल-क्षेम का समाचार अवश्य दे दे।

"कहना," चेतन ने उससे कहा, "कि चेतन शिमला जाते हुए गाडी मे मिला था। वह तीन-चार महीने वहाँ रहेगा और स्वास्थ्य ठीक होने पर लौटेगा।"

यह कह कर वह अपने उस जालन्धरी साथी के चेहरे पर ईर्ष्या-मिश्रित-आदर का भाव टटोलने लगा।

गाड़ी लगभग रात के एक बजे जालन्धर पहुँची। यादराम अपनी छः फुट लम्बी सुगठित युवा देह लिये नंगी सीट पर ही सो गया था। उसकी पत्नी ज़रा-सा घूँघट खींच कर बैठी-बैठी ऊँघ रही थी, पर चेतन की आँखों में नींद न थी। उसने खिड़की से सिर निकाल कर अपने चिर-परिचित स्टेशन को देखा। इधर-उधर निगाह दौड़ायी कि यदि कोई परिचित टिकट-चेकर दिखायी पड़ जाय तो उसे अपने शिमला जाने का समाचार दे, किन्तु दूर तक देखने पर भी उसे कोई परिचित टिकट-चेकर न मिला।

उनींदी आँखें लिये, बाहर प्लेटफ़ॉर्म ही पर मेज़ कुर्सियाँ सजाये, कुछ बाबू अपने काम में निमग्न थे। उनके लिए जैसे गाड़ियों का आना-जाना, मुसाफ़िरों का चढ़ना-उतरना, इंजनों की चीखें, गार्डों की सीटियाँ कुछ भी महत्व न रखती थीं। संसार के कोलाहल में रहते हुए भी उससे दूर रहने वाले योगियों की तरह जैसे निर्लिप्त वे अपनी साधना में रत थे। चेतन ने बड़ी ऊँचाई से एक बड़ी दया-भरी दृष्टि उन पर डाली। उन्हें क्या मालूम कि जब वे इस ऊमस में, निचुड़ते हुए कपड़ों के साथ, मेज़ों पर झुके हुए हैं, उनके पास ही खड़ी गाड़ी में बैठा वह युवक शिमले की ठंडी हवाओं का आनन्द लूटने जा रहा है।

चेतन के मन में आया कि एक बार उतर कर स्टेशन पर टहले, ज़रा प्लेटफ़ॉर्म के बाहर जाय, हो सके तो स्टेशन के चिर-परिचित कुएँ का ठंडा पानी ही पिये। पर उसे याद आया कि रात आधी से ज़्यादा बीत चुकी है, कुआँ खाली होगा और सबील पर पानी पिलाने वाला कहीं मीठी या कड़वी नींद के मज़े ले रहा होगा!

गाड़ी चल पड़ी। चेतन ने बाहर से दृष्टि हटा ली। यादराम की पत्नी यद्यपि अब भी ऊँघ रही थी, पर उसके चेहरे का घूँघट खुला था। चेतन ने पहले दबी और फिर खुली आँखों से उसके मुख की ओर देखा। लेकिन ऐसा करने से पहले उसने अपने सामने एक पुस्तक खोल कर

रख ली ।

०

शिमला चलने से पहले चेतन ने कविराज को एक तरह से विवश कर दिया था कि उसे साथ ले चलने से पहले वे उसे कोई-न-कोई काम अवश्य बता दें, उसके स्वाभिमान को यह स्वीकार न था कि वह उनके सिर पर बोझ बन कर जाय।

उसके मन में स्वयं ही यह बात उत्पन्न हुई अथवा कविराज के जीवन की घटनाएँ सुन कर उसे अपने स्वाभिमान का ध्यान हो आया, इसका ठीक-ठीक निश्चय तो नहीं किया जा सकता, पर शिमला ले 'चलने के प्रस्ताव को सुन कर और यह जान कर कि उसे वहाँ काम अधिक न करना होगा, उसने कृतज्ञता का भाव प्रकट किया था तो कविराज जी ने बातों-बातों मे अपने जीवन के आरम्भिक संघर्ष की एक घटना उसे सुनायी थी : 'मेरे एक मित्र ने मेरी आर्थिक सहायता की थी,' उन्होंने कहा, 'पर उस समय मैं उनके रुपये वापस न दे सकता था, इसलिए मैंने साल भर तक किसी प्रकार की फ़ीस लिये बिना उनके बच्चो को पढ़ाया।' वे अपनी रौ मे इसी प्रकार की कई घटनाएँ सुना गये जब अपने सहायकों से जो कुछ उन्होंने पाया, उससे कही अधिक उन्हें दिया। चेतन यद्यपि पहले भी इस बात पर ज़ोर देता था कि उसे काम बता दिया जाय, पर यह सब सुन कर उसने बिना काम जाने, उनके साथ जाने से इन्कार कर दिया था।

तब कविराज जी ने, जैसे विवश हो कर, उसे बताया था कि उनका विचार बच्चो के जन्म-मरण और लालन-पालन के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखने का है। उन्होंने उसे अमरीका की एक पत्रिका भी दिखायी थी और कहा था कि वह पंजाब-पब्लिक-लायब्रेरी मे जा कर देख ले। यदि इस विषय पर कुछ पुस्तकें मिल जायँ तो वे तत्काल लायब्रेरी के सदस्य बन जायँगे। चेतन उनकी बात समझ गया था और उनकी सहृदयता का बदला देने के लिए उसने मन-ही-मन इस विषय पर उन्हे एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिख देने का निश्चय भी कर लिया था।

बातों-बातों मे कविराज जी ने उसे समझा दिया था कि पुस्तक उनके नाम से छपेगी। उसमे बच्चों की समस्त व्याधियों के सम्बन्ध मे प्रारम्भिक ज्ञान संकलित होगा और पाठकों को परामर्श दिया जायगा कि पेचीदगी हो तो तत्काल किसी प्रसिद्ध वैद्य या डाक्टर से परामर्श लिया जाय।

चेतन लायब्रेरी से पाँच पुस्तकें ले आया था। उसने अपने मन मे पुस्तक का एक ढाँचा-सा भी बना लिया था। उन्हीं पुस्तकों मे से एक उसने उस समय अपने सामने खोल ली थी।

०

यादराम की पत्नी ने भी एक-दो बार कनखियों से उसकी ओर देखा। चेतन को लगा जैसे उसके होंटों पर हल्की-सी मुस्कान भी खेल रही है—ऐसी मुस्कान जिसका पता न लगता था कि होटों पर है अथवा आँखों में ! गेहुँआँ रंग, चेहरे पर शीतला के हल्के-हल्के दाग़, पतला-दुबला शरीर, दाँतों के मोतियों मे मिसी की लकीरें। वह सुन्दर न थी, पर उसकी आँखो और उसकी मुस्कान मे कुछ ऐसा आकर्षण था कि चेतन पुस्तक पढ़ना छोड़ कर उसे देखने लगा और फिर उससे बातें करने लगा।

डिब्बे मे यात्री बहुत न थे। जो थे वे भी विसुध, मुंह बाये, सिर लटकाये, बड़ी विचित्र मुद्राएँ बनाये, नीद की गोद में जा पड़े थे। सामने की बर्थ के ऊपर, सामान रखने के स्थान पर, सोये हुए एक व्यक्ति की टाँग बेतरह लटक रही थी और चेतन को डर था कि तनिक पहलू बदला और वह नीचे आ रहेगा। उस लटकते हुए पाँव के नीचे यादराम विसुध सोया हुआ था। उसके हल्के-हल्के खुर्राटे डिब्बे की निस्तब्धता भंग कर रहे थे। बात पहले मन्नी ही ने आरम्भ की।

"नीद नहीं आती बाबू जी ?" अपनी मुस्कान को तनिक और ज्ञेय बनाते हुए उसने पूछा।

चेतन को उसकी मुस्कान भली लगी। उसमे सहानुभूति थी, सौहार्द्र था और उत्सुकता थी।

पुस्तक पर ही दृष्टि जमाये उसने फिर कनखियों से मन्नी की ओर

देखा । "गाड़ी में मुझे नींद नहीं आया करती ।" उसने तनिक हँस कर कहा ।

मन्नी अधलेटी-अधबैठी थी । वह उठ कर बैठ गयी और उसने चेतन के घर, माता-पिता, भाई-बहनों के सम्बन्ध में प्रश्न किये ।

उसके प्रश्नों में, उसकी वाणी में, उसके नयनों की सालस-लालस मुस्कान में कुछ ऐसी स्निग्धता थी कि चेतन का शरीर गर्माने लगा ! रात की उस नीरवता में, उस सोये-खोये से डिब्बे में उसे मन्नी बड़ी प्यारी लगने लगी । बैठे-बैठे चेतन का शरीर अकड़ रहा था, उसने अपने पैर मन्नी की बर्थ पर थोड़े से पसार लिये ।

"खुल कर पसार लीजिए बाबू जी," मन्नी ने बड़े प्यार से उसके पाँव को लगभग खींचते हुए कहा । साथ ही उसने अपने पाँव चेतन की बर्थ पर फैला दिये । "बैठे-बैठे घुटने अकड़ जाते हैं," वह हँसी ।

कुछ क्षण तक चेतन चुपचाप पुस्तक पढ़ता रहा । फिर उसने कनखियों से मन्नी के पैरों की ओर देखा—छोटे-छोटे प्यारे-प्यारे पैर—उँगलियों में रजत चुटकियाँ और छल्ले पड़े थे और टखनों में कड़े तथा झाँझनें । उसके तलवों में जावर रचा था जिसका रंग मिट्टी और कीचड़ से मिल कर काला हो गया था ।

"तुम अपने पाँव धोती नहीं, देखो काले से हो रहे हैं !" उसने पहले उन्हें छूते और फिर उन पर हाथ फेरते हुए कहा ।

"लाख धोती हूँ बाबू जी, पर सारा दिन घर का काम करना पड़ता है—चौका-बर्तन, झाड़ू-बुहारी—कहाँ तक साफ़ रह सकते हैं ?" और उसने अपने हाथ दिखाये, जिनमें काली धारियाँ मेंहदी के लाल रंग पर उभर आयी थीं ।

चेतन के जी में आया कि इन लाल-काले हाथों को चूम ले; पर तभी यादराम ने करवट बदली । चेतन का हाथ फिर पुस्तक पर आ गया और दोनों के पाँव एक दूसरे से ज़रा फ़ासले पर हो गये ।

किन्तु इस बार यादराम की पीठ उनकी ओर हो गयी । तब मन्नी ने

झिझकते-झिझकते चेतन के पाँवों को छुआ और बोली, "आपके पैर भी तो काले हैं बाबू जी !"

"मेरे", चेतन हँसा, "मुझे धोने का अवकाश ही कब मिलता है। घूमता मैं क्या कम हूँ; और फिर जूतों के नाम मेरे पास केवल ये चप्पल हैं। जरा-सा पानी या कीचड़ ही तो लिचलिचाने लगते हैं।"

मन्नी का लहँगा जो उसके टखनों से ज़रा ऊँचा उठ गया था, दोनों बर्थो के मध्य लटक रहा था और टखनों के ऊपर का गोरा-गोरा हिस्सा नजर आ रहा था—गोरा-गोरा बादाम के-से रंग का-सा। चेतन का जी चाहता था कि पाँवों पर हाथ फेरता-फेरता ऊपर उन गोरी-गोरी बादामी पिंडलियों तक ले जाय; पर इसी समय गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकी। बहती हुई चीजें जैसे पानी के रेले से किनारे पर आ चढ़ती हैं, इसी प्रकार स्टेशन की भीड़ मे से कुछ यात्री डिब्बे मे चढ आये।

उनके आने, सामान रखने, बैठने या लेटने की व्यवस्था करने, और अपनी अनपढ़, अनमँझी पहाड़ी बोली मे निरन्तर बोलते रहने से डिब्बे की निस्तब्धता भंग हो गयी। यादराम पूर्ववत गहरी नीद मे सोता रहा। सामने ऊपर की बर्थ पर सोने वाले ने टाँग ऊपर खीच ली और चादर से गर्दन तथा मुँह का पसीना पोंछते हुए दूसरी ओर करवट बदल ली। कुछ ऊँघते-ऊँघते गर्दनों के झटके से उठ बैठे, कुछ सोये-सोये उठे और एक अलस दृष्टि चारो ओर डाल कर फिर सो गये। एक ने डेढ़ पाव गर्म-गर्म दूध पिया, दूसरा लोटा लिये पानी को भागा।

तभी कोने मे सोया हुआ एक व्यक्ति हड़बड़ा कर उठा।

"कौन स्टेशन है ?" उसने भारी स्वर मे एक नये यात्री से पूछा।

"अम्बाला।"

"अम्बाला !" उसने मुँह बा दिया। फिर साथ के व्यक्ति को झकझोर डाला। "अरे जल्दी उठो अम्बाला आ गया, गाडी चलने वाली है।"

साथी इस तरह उठा जैसे उसे बिजली का झटका लगा हो और जल्दी-जल्दी सामान समेट कर दोनों डिब्बे मे उतर गये।

चेतन की दृष्टि आगन्तुकों पर जम गयी। अपना सामान आदि सम्हाल कर वे लोग सामने की पटरी पर डट गये थे। उनमे तीन स्त्रियाँ थी। पुरुषों के कपड़े उतने अच्छे न थे—टखनों से ऊँचे, तंग, मैले पायजामे; गबरून की कमीजें और उन पर पहाड़ी जाकेट! दोनों के मस्तकों पर उस्तरे से बडे चौड़े खत बने हुए थे जिनकी नोकें उनकी गोल-गोल टोपियों मे छिपी हुई थी। उनकी चोटियाँ चूहों की दुमो की तरह टोपियों के नीचे गर्दन के पिछली ओर लटक रही थीं। स्त्रियों के कपड़े कुछ साफ और भड़कीले थे। दो युवा थी और एक अधेड़। किन्तु तीनों अपनी उम्र से कुछ ज्यादा की लगती थी और असंयम ने उनके चेहरो पर ऐसी रेखाएँ बना दी थी जो सस्ते पाउडर और रूज के बावजूद स्पष्ट दिखायी देती थीं।

जब गाड़ी चल पड़ी और सब लोग जम कर बैठ गये तो एक पहाड़ी युवक ने जाकेट की जेब से सिगरेट की डिबिया निकाली और एक-एक सिगरेट सब को बाँट दिया। क्षण भर बाद सब बड़े मजे से सिगरेट पीने लगे। चेतन चकित-सा उन स्त्रियों की ओर देखता रह गया। वे इतने सहज सरल भाव से सिगरेट पी रही थी कि इस कला मे पूर्णतः सिद्धहस्त दिखायी देती थी। बड़े इत्मीनान से सिगरेट पीती हुई वे बड़े मजे से धुएँ के नन्हे-नन्हे मरगोले छोड़ रही थी।

चेतन स्वयं सिगरेट न पीता था। सिगरेट का धुआँ उसके लिए असह्य था। कमरे मे या उसके पास बैठा कोई सिगरेट पीता हो तो उसके सिर को चक्कर आने लगते थे। इस पर भी उसके मित्रो मे ऐसे युवकों की कमी न थी जिन्हे सिगरेट का व्यसन था। किन्तु स्त्रियाँ भी सिगरेट पीती है, उसके लिए यह सर्वथा नयी बात थी।

डिब्बे मे अधिक लोगो के आ जाने से एक प्रकार की घुटन-सी हो गयी थी। गाड़ी पूरी रफ़्तार से जा रही थी। खुली खिड़कियों से गर्म हवा के झोके आते थे, उनके साथ ही रास्ते की धूल और इंजन का धुआँ। यह धूल और धुआँ यात्रियों के पसीने की गन्ध से मिल कर पहले ही कम गला

न घोंट रहा था, इस पर ये पाँच व्यक्ति सिगरेट पीने लगे। चेतन का जी घबराने लगा। उसके सर को हल्का-हल्का चक्कर आने लगा। पर वे पहाड़ी स्त्रियाँ अधलेटी-अधबैठी टाँगें फैलाये-सिकोड़े, जैसे डिब्बे के सारे वातावरण पर छायी हुई, इस शांति और सन्तोष से सिगरेट पी रही थीं कि चेतन के मन में आया—वह भी टाँगें पसार ले, शरीर को पीछे की ओर ढीला छोड़ दे और कहीं से सिगरेट ले कर उन्हीं की तरह नाक और मुँह से धुएँ के नन्हे-नन्हे मरगोले छोड़े। पर इस बीच में उसका दम अधिक घुटने लगा और उसका सिर अधिक चकराने लगा। उसने सिर खिड़की से बाहर निकाल कर दो-चार बड़े-बड़े साँस लिये और फेफड़ो को बाहर की हवा से भर लिया।

बाहर चाँद चमक रहा था और बादलों का भी कोई निशान न था, पर धूल का एक पर्दा-सा धरती और आकाश के मध्य छाया हुआ था। ऐसा लगता था जैसे चाँदनी को धरती तक पहुँचने में कष्ट हो रहा है। सकुची-सकुची वह छायी हुई थी। उसकी बाहें जैसे कुछ ही दूर तक फैल कर रह जाती थीं। अंधकार को भेदने में जैसे वे अशक्त थीं। इस धूल-धूसरित ज्योत्सना के नीचे दूर तक मटमैली धरती लेटी थी। वर्षा अभी आरम्भ न हुई थी। मुरझायी, झुलसी हरियाली रात की इस मटमैली चाँदनी का अंग बन गयी थी। पेड़-पौधे भागती छायाओं की तरह सामने से निकल जाते थे। सहसा गाडी के परले सिरे पर इंजन फिर धुआँ छोड़ने लगा। हल्की चाँदनी मे धुएँ का काला बादल गाड़ी के ऐन ऊपर पीछे की ओर लपकते हुए अजगर की तरह बढने लगा। उसकी जलती आँखो की तरह चिनगारियाँ चमक उठी। चेतन ने जल्दी से अपना मुँह अन्दर कर लिया।

डिब्बे के अन्दर सब कुछ उसी तरह था। केवल मन्नी अपने पति की जाँघ पर सिर रख कर सो गयी थी। मुँह पर उसने घूंघट कर लिया था और लहँगे को टाँगों के गिर्द अच्छी तरह लपेट लिया था। उसके पैरों की अँगुलियो मे पड़े हुए छल्ले और चुटकियाँ पूर्ववत चमक रही थी।

उन चमकती हुई चुटकियों और छल्लों से ऊपर दृष्टि उठा कर चेतन ने फिर उन पहाड़ी स्त्रियों की ओर देखा । वे पूर्ववत सिगरेट पी रही थीं। उनकी आँखों मे चेतन को कुछ ऐसी बेबाकी और संकोचहीनता दिखायी दी जो उसने कभी जालन्धर के कोतवाली बाजार की वारांगनाओं के नयनो में देखी थी । स्कूल से आते समय वह मुहल्ला मेहन्द्रुआँ से आने के बदले कई बार पुलिस लाइन को पार कर, सब्जीमंडी के सामने से होता हुआ, कोतवाली बाजार की ओर से आया करता था और कितनी देर तक खडा निर्निमेष उन काली कुरूप स्त्रियों को देखता रहता था जो बडी बेबाकी से अपनी कोठरियों के आगे पाउडर थोपे बैठी रहती और गाँवो से नगर को आने वाले जाट जिनसे अत्यन्त अश्लील और भद्दे मज़ाक किया करते । इन पहाड़ी स्त्रियों की आँखों मे उन्ही वेश्याओं जैसी निस्संकोचता थी ।

तभी उसकी दृष्टि एक दूसरे व्यक्ति पर गयी जो उन पहाड़ी स्त्रियों की ओर अत्यन्त भूखी निगाहों से देख रहा था । उसकी लोलुप दृष्टि का अनुसरण करते हुए चेतन ने देखा कि उसके आकर्षण का केन्द्र वह स्त्री है जो उन तीनों मे युवा और अपेक्षाकृत सुन्दर है । गुलाबी रंग का चूडीदार रेशमी पायजामा, चमचमाती कमीज़, उस पर सुन्दर सरदई रंग की जाकेट और सिर पर रेशमी दुपट्टा पहने, बिस्तर पर कुहनी रखे वह दीवाली के अवसर पर बिकने वाले चित्र को 'मंगल-द्वीप की साम्राज्ञी' की भाँति हथेली पर सिर टिकाये लेटी हुई थी । उसके कानो की रजत बालियाँ और नाक की लौंग उसकी तीखी नुकीली आकृति पर बड़ी भली लग रही थी । उसके गालों पर पाउडर की धूलि भी दूसरो की अपेक्षा कम थी—शायद इसलिए कि उसके चेहरे पर लकीरें भी दूसरों की अपेक्षा कम थी । और वह व्यक्ति—अधेड़ उम्र, नुकीली खिचड़ी दाढ़ी, नाक के नीचे से कटी हुई शरयी मूँछें, नंगा सिर, खरखरे खिचड़ी बाल, आँखों मे तीव्र भूख और वासना की झलक !

जब स्त्रियों ने सिगरेट खत्म कर लिये और उनके शेष टुकड़े खिड़कियों

के बाहर फेंक दिये तो वह उठ कर उनके पास आया। जेब से सिगरेट की डिबिया निकाली, एक सिगरेट स्वयं लिया और डिबिया उन दो पहाड़ी युवकों की ओर बढ़ा दी। उन्होंने एक-एक सिगरेट ले लिया। तब उसने डिबिया दूसरी दोनों स्त्रियों की ओर बढ़ायी। उन्होंने भी एक-एक सिगरेट ले लिया। अन्त में उसने होटों के कोनों को फैलाते और अपने पीले दाँत निकालते, सकुचाते, लजाते, डिबिया उस 'मंगल-द्वीप की सम्राज्ञी' की ओर बढायी। वह ठहरी मंगल-द्वीप की सम्राज्ञी! उसी शाहाना अन्दाज से उसने सिर हिला दिया : "हम यह नहीं पीते!"

खिसियानी-सी हँसी के साथ हाथ पीछे हटाते, दाँतों को कुछ और निपोरते हुए निराशा-मिश्रित स्वर से उस व्यक्ति ने पूछा : "तो....?

"हम कैवेंडर पीते हैं।"

"मेरे पास तो लाल बादशाह ही है!" और वह खिन्नता से हँसा।

तब उस स्त्री ने उसी राजसी ठाठ से अपने साथी को आदेश दिया कि वह कैवेंडर की डिबिया निकाले।

पहाडी युवक ने कैवेंडर की डिबिया निकाल कर उसे एक सिगरेट दिया। उसी तरह लेटे-लेटे, बिना हाथ हिलाये उसने वह होंटों में थाम लिया जब उसने दियासलाई जलायी तो उसी तरह लेटे-लेटे मुँह जरा-सा आगे बड़ा कर उसे सुलगा भी लिया और उसी प्रकार मंगल-द्वीप की सम्राज्ञी बनी धुएँ के हल्के-हल्के मरगोले छोड़ने लगी।

चेतन ने पुस्तक पढने का प्रयास किया पर उसे लग रहा था जैसे उसके सिर पर मनो बोझ लाद दिया गया हो। आँखों में नीद का नाम तक न था, पर उनमें कड़ुवाहट आ गयी थी। भवो के ऊपर पीड़ा की एक रेखा दौड रही थी और शरीर क्लान्त प्रतीत हो रहा था। सामने की बर्थ पर टाँगे फैला कर वह पीछे को लेट गया और उसकी आँखें महज थकान से बन्द हो गयी।

लेकिन उसे नींद न आयी। पहाड़ी स्त्रियों की बात-चीत, उस वासना-सक्त व्यक्ति की खिसियानी हँसी और बैकग्राउंड में गाड़ी की खड़खड़ाहट

—सब कुछ उसे सुनायी दे रहा था।

वह व्यक्ति मंगल-द्वीप की उस सम्राज्ञी से अत्यन्त भोंडे मजाक कर रहा था और उसी मुस्कान-मिश्रित उपेक्षा से वह उसे टाले जा रही थी। तभी उसने एक दूसरी आवाज सुनी, "अरे पास जा बैठो, वहीं पड़े क्या 'हि हि हि हि' कर रहे हो।"

भारी थकी आँखें खोल कर चेतन ने देखा कि एक और व्यक्ति जाग कर उठ बैठा है और पहले को बढ़ावा दे रहा है। लेकिन उसका साहस नही होता कि उस मानिनी के पास जा बैठे।

तभी गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी। वह व्यक्ति उठ कर मिठाई ले आया और दोना लिये हुए उसके पास जा बैठा। अपने मैले दाँत निकालते हुए उसने एक हाथ से मिठाई का दोना उसकी ओर बढ़ाया और दूसरे से उसके दोनो घुटनो को ले कर अपनी बगल मे भीचा। और उसकी आँखों मे वासना की ज्वाला लपलपाने लगी।

चेतन की अर्ध-निमीलित आँखें पूरी तरह खुल गयी।

मंगल-द्वीप की सम्राज्ञी ने ज़रा-सी भवें सिकोड़ कर उस दोने की ओर देखा, फिर घृणा-मिश्रित-उपेक्षा से उस व्यक्ति की ओर, फिर सहसा बिस्तर पर कुहनी के बल उठते हुए अपने घुटनो को उसके बन्धन से मुक्त करके उसने खीच कर ज़ोर से एक लात उस दोने पर दे मारी—ऐसे कि मिठाई उस व्यक्ति के मुँह पर उसकी मूर्खता के चिह्न अंकित करती हुई खिड़की के बाहर जा पड़ी।

"वेश्याएँ है!" उस दूसरे व्यक्ति ने कहा, "खा कमा कर फ़र्लो (furlough) पर जा रही है।" और वह हँसा।

खिन्न-सा हो कर पहला व्यक्ति चेहरा पोंछता हुआ अपनी जगह पर जा बैठा। उसके नयनो की लपलपाती हुई वासना बुझते हुए अंगारों-सी मन्द पड गयी।

चेतन ने आँखें बन्द कर ली।

"फ़र्लो!"—कितना स्निग्ध, प्यारा शब्द है! जिस दिन उसे दफ़्तर

से छुट्टी होती थी, बंगाली गली तो दूर, वह गरणपत रोड तक की ओर न जाता था । यदि उसे अनारकली भी जाना होता तो चाहे उसे कितना घूम कर जाना पड़े, वह दफ़्तर को जाने वाली सड़क की ओर मुँह न करता । उसे वेश्याओं के प्रति एक विचित्र सहानुभूति से उसका मन प्लावित हो उठा । साल भर के थके, टूटे, शिथिल अंग ले कर अपने शरीर को बेच कर, उन्हें भूखे हिंस्र पशुओं की दया पर छोड़ने के बाद, ये बेचारी क्लान्ति की मारी कुछ आराम करने जा रही हैं । और वह भूखा व्यक्ति.... पाजी....! और एक नपुंसक-सा क्रोध उसके मस्तिष्क में अलाव की भाँति जलने लगा....लेकिन उसके पलक भारी होते गये, उसके अंग शिथिल पड़ते गये और वह अलाव क्षण-प्रतिक्षण मन्द पड़ता गया । उसका सिर खिड़की के साथ जा लगा, बाज़ू लटक गये और वह गहरी नींद सो गया ।

सैंतालिस

धूप खूब चमक रही थी और दो-एक छींटे चाहे पड़े हों, पर वर्षा ऋतु अभी आरम्भ न हुई थी, जब वे शिमले पहुँचे ।

कविराज उनके साथ न थे । मोटर द्वारा शिमले पहुँचने के विचार से कालका में ही उतर गये थे । "तुम पहली बार शिमले जा रहे हो," उन्होंने कालका स्टेशन पर चेतन से कहा था, "शायद तुम्हें बहुत चक्कर आयें, इसलिए तुम गाड़ी ही से जाओ ।" और उन्होंने जयदेव को आदेश दिया था कि वह चेतन के आराम का पूरा-पूरा ध्यान रखे ।

उन्हें सपत्नीक मोटर में सवार कराके जयदेव, यादराम और उसकी पत्नी के साथ चेतन शिमला को जाने वाली डिबिया-सी गाड़ी में तीली की भाँति ठस कर जा बैठा था ।

उस नन्हीं-सी गाड़ी में बैठ कर शिमले की सैर का आनन्द लेने की

आकांक्षा चेतन के हृदय मे बचपन से दबी पड़ी थी। चौथी कक्षा मे उसकी पुस्तक मे 'शिमला की सैर' शीर्षक से एक बड़ा मनोरंजक लेख था। जिस दिन उसने वह लेख पढा था, वह घर आ कर घंटों बैठा कल्पना-ही-कल्पना मे शिमले की सैर का आनन्द लेता रहा था। 'शिमले को जाओ तो बड़ा मजा आता है'—पुस्तक मे लिखा था—'रेल छक-छक करती धीरे-धीरे चलती है, कभी इधर मुड़ती है, कभी उधर मुडती है, साँप की तरह बल खाती हुई सुरंग मे दाखिल हो जाती है। डिब्बे में अँधेरा छा जाता है। बत्तियाँ जल उठती है, लगता है जैसे रात हो गयी हो....' इस परिच्छेद मे शिमले को जाने वाली छोटी-सी पटरी और उस पर चलने वाली नन्ही-सी गाड़ी का एक चित्र भी दिया गया था, जिसमें उस सत्तर मील लम्बी रेल की पटरी का एक छोटा-सा टुकड़ा बल खाता हुआ दिखाया गया था। उस पर एक छोटी-सी गाड़ी भी थी जो एक सुरंग से निकल रही थी। उस रात जब चेतन अपने बिस्तर पर लेटा तो बार-बार उसके मस्तिक में यह चित्र घूमता रहा और बार-बार वह अपने-आपको उस छोटी-सी गाड़ी की खिडकी मे बैठे शिमले की सैर का आनन्द लेते देखता रहा।

कालका से शिमले को जाने वाली इस गाड़ी के डिब्बे मे बैठते हुए चेतन के मस्तिष्क मे वह चित्र और उससे सम्बन्ध रखने वाला शिमले की सैर का वृत्तान्त घूम गया। मन-ही-मन उसने इस सैर का अवसर देने के लिए कविराज जी को धन्यवाद भी दिया।

किन्तु उसका यह उल्लास शीघ्र ही भंग हो गया और उसकी कृतज्ञता का वेग भी कम हो गया। डिब्बा यात्रियों से इतना भर गया कि उसके लिए सिर तक हिलाना कठिन हो गया। एक दो बार उसने जयदेव की करुणा भरी दृष्टि से देखा, किन्तु वह स्वयं इस प्रकार बैठा था कि उसके लिए गर्दन तक मोड़ना कठिन था।

कालका ही मे चेतन लघुशंका के लिए जाना चाहता था, किन्तु कविराज जी को कार तक पहुँचाने के कारण उसे देर हो गयी और जब यादराम ने उससे कहा कि यदि वे देर कर देंगे तो गाड़ी मे जगह न मिलेगी

तो वह उससे निवृत्त हुए बिना गाड़ी मे ग्रा बैठा था। किन्तु कई घंटे वह उसे दबाये बैठा रहा जिससे उसकी नाभि के नोचे,पीड़ा होने लगी। प्राकृतिक दृश्यो मे उसका मन तनिक न लगा। जब किसी सुन्दर दृश्य की ओर उसकी आँखें जाती, नाभि के नीचे की पीड़ा उसका ध्यान हटा देती। भीड़ जरा भी कम न हो रही थी, बल्कि पहाड़ी लोग गाड़ी के पायदानो पर लटके हुए थे। आखिर बड़ोग के स्टेशन पर बड़ी मुश्किल से खिड़की द्वारा निकल कर वह लघुशंका से निवृत्त हो पाया।

दुर्भाग्य से बड़ोग स्टेशन पर उसे कुछ भूख-सी लगी और उसने स्टेशन पर दो-चार कचौरियाँ खा ली। और इसके बाद आ कर जब वह बैठा और गाड़ी साँप की तरह बल खाने लगी और दायें-बायें गिरिमालायें बनने-मिटने लगी तो उसका सिर चकराने लगा। तभी उसके साथ बैठी एक स्त्री ने बाहर को मुँह करके कै की। चेतन का अपना जी मतला उठा....। इसके बाद उसे इतना ही याद है कि जब शिमले के स्टेशन पर जयदेव ने उसे कन्धे से हिलाया तो वह घुटनों मे सिर रखे अचेत सा पड़ा था।

'शिमले को जाओ तो बड़ा मजा आता है....!' सड़क पर चलते-चलते उस लेख की याद आने पर उसने निहायत बेज़ारी से सिर हिलाते हुए, एक बडी-सी गाली उस लेख के रचयिता को दे डाली। उसके माथे में हल्का-हल्का दर्द हो रहा था और शरीर, ऐसा प्रतीत होता था, जैसे पत्थरों में पिस गया हो। यादराम के झकझोरने पर जब वह गिरता-पड़ता स्टेशन के बाहर आया तो उसने जैसे पहली बार उस धूप को देखा था जो बाहर पेड़-पौधों, सड़कों और मकानों पर खिली हुई थी—निखरी-धुली, चमकती, तेज—पर जलाने वाली नहीं—शरीर को हल्की-हल्की गर्मी पहुँचाने वाली लेकिन चेतन का जी अभी तक मतला रहा था।

जयदेव ने सामान गिनवा कर कुलियो की पीठ पर लदवाया और पैदल चल पड़ा। चेतन भी उसके पीछे घिसटता हुआ चलने लगा।

जयदेव खुश था। यादराम भी खुश था और छोटे-से घूंघट से मन्नी

की मुस्कान भी दिखायी दे जाती थी—लेकिन चेतन को कोई भी चीज अच्छी न लग रही थी। यद्यपि वे शिमला पहुँच गये थे किन्तु सर्दी उतनी न थी, बल्कि चेतन का गला सूख रहा था। ऐसा लग रहा था उसे जैसे वह 'अलिफलैला' के किसी उजड़े, वीरान नगर में आ गया है, जिसे आक्रमणकारियो ने जीत लिया है और ये कुली उस नगर के वासी है जो नये आक्रमणकारियो के गुलाम बन गये है।

कुलियों के शरीर पर मैले-कुचैले चीथड़े लिपटे हुए थे, जो मैल और पसीने से, कपडे की बजाय कीचड ही के बने दिखायी देते थे। इतना-इतना भारी बोझ उठा रखा था उन्होंने कि चेतन आश्चर्यचकित-सा उन्हे देख रहा था। देर तक उसकी निगाहें अपने साथ-साथ जाने वाले कुली पर लगी रही। उसके पाँव मे धूल से भरे भारी चप्पल थे, टाँगें घुटनों तक मैल से सनी हुई थीं, बाहो पर मछलियाँ उभर आयी थीं, पीठ पर सात ट्रंक एक साथ उठाये, लठिया के सहारे वह चला जा रहा था।

तभी एक रिक्शा छनछनाती हुई उसके पास से गुजर गयी। चार वर्दीपोश कुली उसे भगाये लिये जा रहे थे और एक मोटा, गंजा अंग्रेज़ मजे से उसमें बैठा समाचार-पत्र पढ रहा था! घोड़ों और बैलों के स्थान पर पुरुषों को जुते हुए चेतन ने पहली बार ही देखा था। बाद मे उसे मालूम हुआ कि शिमले की माल पर मोटर, इक्का, ताँगा कुछ भी नहीं चल सकता। शिमले के प्रभुओं को आदमी की सवारी अधिक पसन्द है। चेतन ने पीछे मुड कर देखा। धूप से उस अंग्रेज का गंजा सिर चमक रहा था और कुलियो के पाँव नंगे थे। चेतन को लगा जैसे संसार का समस्त सुख वैभव चंद गंजे आदमियों के हिस्से मे आया है। शेष सब तो उसकी सवारी को खीचने वाले पशु हैं।

लोअर बाजार के इस सिरे पर कविराज जी ने अपने लिए औषधालय किराये पर ले रखा था। इस पर उनका बोर्ड उनके आने से पहले लग चुका था। कुछ सामान वही उतरवा दिया गया और यादराम को वहाँ ठहरने का आदेश दे कर वे आगे बढ़े। पूछने पर चेतन को पता चला कि

उनको रुल्दू के भट्टे जाना है, क्योंकि निवास के लिए कविराज जी ने मकान वही लिया है ।

कुछ दूर चल कर वे बायी ओर मुडे । सामने एक सुरंग थी जो माल के नीचे-नीचे ईदगाह को जाती थी । उसमे प्रवेश करते हो पहली बार चेतन ने अनुभव किया कि वह पहाड़ पर पहुँच गया है । ठंडी-भीगी हवा का एक झोंका आया और उसे लगा जैसे मन का सब ताप मिट गया हो । यद्यपि वर्षा ऋतु अभी आरम्भ न हुई थी तो भी पहाड़ मे से रिस-रिस कर पानी सुरंग की गोलाकार दीवार को भिगो रहा था और अणु परमाणुओं-सी नन्हीं-नन्हीं बूँदें हवा मे उड़ रही थीं। बिजली के नन्हे-नन्हे बल्ब सुरंग मे धूमिल प्रकाश की सृष्टि कर रहे थे और सुरंग के दूसरे दरवाजे के अर्ध गोलाकार प्रकाश मे से आते हुए मनुष्य बड़े भले प्रतीत होते थे ।

रुल्दू भट्टा ईदगाह के नीचे बीस-तीस घरों की एक छोटी-सी बस्ती है, जिसके निर्माण मे ईंट-पत्थरों के स्थान पर लकड़ी ही से अधिक काम लिया गया है—लकड़ी की सीढ़ियाँ, लकड़ी के फ़र्श और लकड़ी की छतें !

कविराज ने मकान की दूसरी मंजिल किराये पर ली थी । सीढ़ियाँ चढ़ कर कुली ने सामान रख दिया । चेतन इस बीच मे बिलकुल थक गया था । दीवार से पीठ लगा कर वह अपने बँधे बिस्तर पर बैठ गया । लकड़ी के फ़र्श पर उसने टाँगें पसार ली । और चुपचाप दूसरों को काम करते देखने लगा ।

अड़तालिस

शिमले के अपने इस निवास मे, जहाँ दूसरी कई बातों के सम्बन्ध में चेतन की धारणाएँ बदली, वहाँ कविराज की महानता और कविराज-पत्नी की

सहृदयता के सम्बन्ध मे भी चेतन के विचार बदल गये।

इन तीन महीनो में उसने 'बीबी जी' की कुछ झाँकियाँ ही देखी और उसे मालूम हो गया कि वे और चाहे जो हों पर सहृदय और उदार कदापि नही।

बीबी जी को उसने पहली बार लाहौर और फिर कालका के प्लेटफ़ार्म पर देखा था। गाड़ी रात के समय लाहौर से चली और प्रातःकाल कालका पहुँची थी, इसलिए दोनों ही बार वह उन्हे भली-भाँति न देख पाया था। फिर उसे कुछ संकोच-सा भी था। लेकिन उस डिबिया-सी गाड़ी मे छः घंटे बन्द रहने के बाद, शिमले मे कविराज जी के निवास-स्थान पर पहुँच कर, जब वह हताश-सा अपने बँधे हुए बिस्तर पर बैठ गया तो उसने जैसे पहली बार आँख भर कर उन्हे देखा।

वे कुलियों से सामान उतरवा कर उसे ठीक जगह रखने की व्यवस्था कर रही थी।—पतला छरहरा शरीर, बत्तीस-पैंतीस की आयु, तीखे नक्श, तिकोन से चेहरे पर सजती हुई लम्बी नाक, भरे-भरे गाल और गोरा रंग। चश्मा उनके मुख पर सजता था। किन्तु ढूँढने पर भी चेतन को वह स्निग्धता और सौहार्द वहाँ दिखायी न दिया, जो कविराज जी की बातें सुन कर, उसकी कल्पना ने, उनकी पत्नी के चेहरे पर बना लिया था। उनका मस्तक चौड़ा था, किन्तु उस पर तेवर चढ़े हुए थे, भ्रूभंग थे और होट जैसे भिचे-से थे। पहले उसने समझा कि रास्ते की थकन और परेशानी ने उनके मस्तक पर वे लकीरें बना दी है, पर बाद के तीन महीनो मे उसने सदैव उन्हे वहाँ पाया और उनके होंट सदैव भिचे रहे। चेतन की बड़ी इच्छा रही कि वह उन होटों पर मुस्कान देखे, पर शिमले के अपने उस प्रवास मे उसे वह सौभाग्य प्राप्त नही हुआ। तब उसने जान लिया कि वह सब मुस्कान तो कविराज जी के कथन मे थी, उनकी पत्नी के होंटों पर नही। रही सहृदयता तो ज्यो-ज्यों दिन बीतते गये चेतन को मालूम होता गया कि वह सहृदयता भी कविराज के शब्दों ही मे थी, उसकी पत्नी के हृदय में नहीं और न उनके अपने ही दिल मे। उसे यह भी ज्ञात हो गया

कि अपने से छोटों के प्रति उनकी पत्नी के हृदय में दया के स्थान पर सदैव एक तीव्र घृणा विराजमान रहती है, जिसे कविराज अपनी वाणी की मिठास मे छिपाये रखते है।

शिमला पहुँचने के पहले दिन तो उसने उन्ही के साथ खाना खाया और वही सोया भी, पर सुबह ही कविराज जी ने उसका बिस्तर दवाखाने पहुँचा दिया।

"तुम्हारा मन यहाँ ऊब जायेगा," उन्होंने कहा, "यह जगह बाजार से दूर है, फिर कुछ दिनों मे ही बरसात शुरू हो जायगी, प्रतिदिन बाजार जाने मे तुम्हे कष्ट होगा।" और उन्होंने उसे यह भी, सुझा दिया कि शिमले मे हर तरह के होटल है, जहाँ सात रुपये से पचास रुपये मासिक तक पर खाना मिल सकता है।

दवाखाने मे सारी जगह का निरीक्षण करके उन्होंने उसके लिए एक कोना भी नियत कर दिया, जहाँ उसका बिस्तर रात को बिछाया और दिन को उठाया जा सके। इस ओर से निश्चिन्त हो कर मूँछो में हँसते हुए उन्होंने कहा, "शिमले मे तो आधे निवासी फ़र्श ही पर सोते हैं, चारपाइयाँ यहाँ बड़ी कठिनाई से मिलती है।" फिर उन्होंने अपनी मिसाल दी थी कि वे जब पहाड़ जाते है, सदा धरती पर ही सोते है। धरती पर सोने मे उन्हे बड़ा आनन्द मिलता है। स्वास्थ्य के लिए भी धरती पर सोना बड़ा हितकर है। इससे आदमी की शक्ति बढ़ती है और स्वावलम्बन की भावना पैदा होती है। फिर चेतन के ज्ञान मे वृद्धि करते हुए उन्होने यह भी बताया कि संसार मे ७५ प्रतिशत महान व्यक्ति उन्ही लोगों मे से उठे जो धरती पर सोने को बुरा नही समझते।

किन्तु एक सप्ताह बाद ही यह सब भूल कर वे उसे फिर घर ले गये और उन्होंने उसे एक चारपाई भी दे दी।

शायद उन्होंने यह अनुभव किया कि जयदेव और यादराम की संगति तथा मिडिल बाजार का सामीप्य होने के कारण चेतन सन्तोषजनक रूप से क़ाम नहीं कर पा रहा है। किसी दवाखाने का वेटिंग-रूम किसी लेखक

के लिए उपयुक्त स्थान भी तो नहीं। उसे दवाख़ाने गये एक सप्ताह हो गया था और उसने पुस्तक की एक पंक्ति भी न लिखी थी।

"यहाँ तुम्हे धरती पर सोना पड़ता है," उन्होंने एक दिन दवाख़ाने मे उससे कहा, "रात को बिस्तर बिछाना और सुबह उठाना एक मुसीबत है। तुम ठहरे लेखक! तुम्हे तो चाहिए कि बिस्तर बिछा रहे, किताबें तुम्हारे आस-पास बिखरी रहे, सोते-जगाते, उठते-बैठते, पढ़ने-लिखने की पूरी स्वतन्त्रता तुम्हे प्राप्त हो। घर मे एक कमरा तुम्हारे लिए रिजर्व कर दिया जायगा। चारपाई का मै प्रबन्ध कर दूँगा। एकान्त होगा। तुम्हे अपनी किताबें, अपने कागज, अपनी चीजें रखने की पूरी सुविधा होगी। तुम अपनी इच्छा के अनुसार उठ-बैठ, सो सकोगे और फिर यहाँ नहाने के लिए भी कोई जगह नहीं। वहाँ सब प्रकार की सुविधा होगी।"

रुल्दू भट्टे के मकान में कविराज जी ने उसे सीढियों के पास वाला कमरा दे दिया। इस कमरे का एक दरवाजा अन्दर को ओर और दूसरा बाहर की ओर सीढियों मे खुलता था। उसी ओर एक खिड़की भी थी। एक छोटी-सी लकड़ी की अँगीठी भी कोने मे बनी हुई थी। चेतन ने इस पर साबुन, तेल और शेविंग का सामान करीने से रख दिया। जो चारपाई उन्होने उसे दी, उसे चेतन ने खिड़की के पास बिछा लिया। कमरा कुछ अंधेरा था, इसलिए उसने खिड़की के प्रकाश मे बैठ कर काम करना उपयुक्त समझा। पुस्तकें रखने की समस्या कठिन थी। (क्योंकि कमरे में कोई आलमारी न थी) सोच-सोच कर चेतन बाजार से एक चटाई ले आया और उसे सामने की दीवार के साथ बिछा कर उसने अपनी सब पुंस्तकें उस पर चुन दी।

एक तरह से यह कमरा उसे दवाख़ाने के वेटिंग-रूम से अच्छा ही लगा।

o

दूसरे दिन कविराज जी दवाख़ाने को जाने से पहले उसके कमरे में आये। मूँछों मे मुस्कराते हुए उन्होने कमरे की सजावट पर एक आलोचनात्मक

दृष्टि डाली, उसकी प्रशंसा की और बोले, "यह कमरा सिर्फ तुम्हारा है, तुम इसमे पढ़ो-लिखो, सोओ-जागो, मालिश अथवा व्यायाम करो, तुम्हें किसी प्रकार की रोक नहीं। अन्य किसी प्रकार का कष्ट यदि हो तो मुझसे कह देना।" फिर रुक कर उन्होने पूछा, "रात को दूध आदि तो नही पीते तुम ?"

"मैं रात को डेढ़ पाव दूध पीता हूँ।"

"तुम्हे कम-से-कम आध सेर पीना चाहिए।"

"डेढ़ पाव पीने का स्वभाव भी मैंने बड़ी मुश्किल से डाला है।"

इस पर कविराज हँसे, फिर उन्होंने दूध के गुणों पर एक छोटा-सा भाषण दिया और कहा, "यादराम की पत्नी तुम्हारे लिए दूध अँगीठी पर रख दिया करेगी। तुम सोते समय पी लिया करना।" यह चेतावनी उन्होने उसे दे दी कि वह दस बजे तक घर पहुँच जाया करे, क्योंकि दस बजे सब सो जाते है और इसके बाद यदि कोई आये तो बीबी जी बुरा मानती है।

कविराज यह कह कर मूँछों से मुस्कराते हुए चले गये, पर चेतन को शीघ्र ही मालूम हो गया कि बीबी जी केवल दस बजे के बाद आने का ही बुरा नही मानती और भी बीसियों बातों का बुरा मानती हैं।

चेतन के वहाँ फिर लौट आने ही को उन्होंने ऐसी टेढ़ी दृष्टि से देखा कि दूसरी सुबह शौचादि के लिए उसे अन्दर के शौचालय मे जाने का साहस नही हुआ। मन्नी ने उसे बता दिया कि नीचे घाटी में शौचालय बने हुए हैं और वह निश्चिन्त हो कर वहाँ निवृत्त हो सकता है।

ये शौचालय रुल्द भट्टे से काफ़ी नीचे खड्ड में बने हुए थे। बनवाने वाले ने उन्हें नौकरों के लिए बनवाया था। टीन की एक चारदीवारी थी और ऊपर छत के नाम पर टीन की चादर तक न थी। वर्षा के दिनों मे वहाँ बैठना बड़ा कष्ट-साध्य था। पर चेतन मन्नी से पानी का लोटा ले कर वहीं निवृत्त हो आया, नहाने के लिए उसने अन्दर स्नानगृह में जाने का प्रस्ताव नहीं किया। चुपचाप लोटा और बाल्टी ले कर वह रुल्दू भट्टे

के नल पर चला गया जो ऊपर माल को जाने वाले मार्ग के एक किनारे बना हुआ था ।

उसके आराम का इतना ध्यान रखने वाले कविराज जी को शायद इसमे कोई विषमता नही दिखायी दी । वह नहा रहा था जब वे दवाख़ाने जाते हुए वहाँ से गुजरे । उसे सड़क के किनारे नहाते देख कर उन्होंने पूछा, "अच्छा ! यहाँ नहा रहे हो ?"

"मुझे खुले मे स्नान करना भाता है," चेतन ने अपनी हीनता को गर्व का विषय बना कर कहा ।

"तुम बड़े हिम्मती हो !" कविराज हँस कर बोले और फिर अपने रास्ते चले गये ।

और जब बरसात की हवाएँ अपने पार्श्व में काले-कजरारे मेघो को लिये हुए आयी और दिन-रात पानी बरसने लगा, तब भी चेतन साहसी बना रहा । उसी बेछत की, नौकरो वाली टट्टी मे शौचादि के लिए जाता रहा और वही सड़क के किनारे नल पर नहाता रहा ।

कविराज प्रतिदिन गर्म पानी से स्नान करते, सर्दी होने के कारण ओवर कोट पहने, हाथो पर दस्ताने चढ़ाये, छड़ी हाथ मे लिये रोज़ उसके पास से निकलते, कई बार अपने मित्रों मे उसके साहस का बखान भी किया करते, किन्तु अपने निजी स्नानगृह के समीप उन्होंने, या यों कह लीजिए कि उनकी सहृदय पत्नी ने उसे एक दिन के लिए भी फटकने न दिया । यह और बात है कि एक दिन उनके पड़ोसी ने दयाभाव से चेतन को अपने स्नानगृह मे नहाने की आज्ञा दे दी और चेतन ने खुले मे नल पर, शीत से ठिठुरते हुए नहाने की मुसीबत से मुक्ति पायी ।

ज्यो-ज्यो दिन बीतते गये, उसे मालूम होता गया कि वह तो उसी प्रकार कविराज का नौकर है, जिस प्रकार जयदेव अथवा यादराम । कविराज दूसरे बीसियों शोपकों की तरह एक शोषक है, वे उसे शिमला केवल वह पुस्तक लिखवाने के विचार से लाये है और उसे इस बात का भी पता चल गया कि पहले भी एक दो कलाकारों का स्वास्थ्य वे इसी

प्रकार सुधार चुके है और इस पुण्य का फल वे पुस्तकें है जो सहस्रों की संख्या मे उनके नाम से विक रही हैं।

प्रतिदिन दुकान को जाने से पहले हँस कर वे उसके काम का ब्योरा ले लेते—पूछ लेते कि उसने कौन-सा नया अध्याय लिखा है, वह कौन-सा नया अध्याय लिख रहा है, या फिर आगामी अध्याय में वह क्या लिखना चाहता है ? चेतन ने कुछ लिखा होता तो पास वैठ कर उसे सुनते। न लिखा होता तो पूछते कि उसकी तबीयत तो ठीक है, वह सैर तो कर रहा है और हँस कर कहते, "कोई बात नहीं, कोई बात नही, आज का दिन आराम कर लो, कल दुगुना लिख लोगे।" और उसी प्रकार मूँछो मे हँसते हुए चले जाते।

एक बार उन्हे कुछ ऐसा लगा कि चेतन उनके अनुमान के अनुसार पूरा काम नहीं कर रहा। तब हँसी-हँसी मे उन्होंने उसे जता भी दिया।

वह दोपहर को खाना खाने मिडिल बाजार जाया करता था और साधारणत: घंटे भर मे वापस आ जाता था। उस दिन उसे देर हो गयी। वह खाना खा कर ऊपर से आ रहा था जब कविराज भोजन और आराम के उपरान्त औषधालय को जाते हुए उसे मार्ग मे मिल गये और उन्होने हँसते हुए पंजाबी में कहा : "घोड़िया, तू कम्म कुछ ज़्यादा नही कर रिहा।"

यद्यपि 'घोड़ा' उनके प्यार का शब्द था, पर रात को जब चेतन लेटा तो उसे नीद न आयी। प्रत्येक घटना अपने यथार्थ रूप मे उसके सामने आने लगी। उसने अनुभव किया—वह, जयदेव, यादराम सब घोडे ही तो है। कविराज की ख्याति की गाड़ी मे जुते हुए है। यह अनुभूति जैसे एक तीरकी तरह उसके हृदय को भेदती हुई चली गयी। ये इतने क्लर्क, मजदूर, किसान—ये सब घोडे है, विभिन्न गाड़ियो मे जुते हुए घोडे ! अपने आराम और सुख की परवाह किये बिना, पसीने से तर, थकन से चूर, दिन-रात काम किये जाते है। इसलिए कि उनके प्रभु सफलता की गाड़ियों मे वैठे अपने ध्येय तक पहुँच जायँ। वदले मे उनको मिलता क्या है ? रूखा-सूखा

दाना और बस ! उसे पचास रुपये मिल रहे हैं । शिमले जैसे महँगे नगर में पचास रुपये ! 'घोड़ा'—एक तीव्र व्यंग्य तथा पीड़ा से वह मन-ही-मन हँसा—'तो वह कविराज की सफलता और ख्याति की गाड़ी में जुता हुआ केवल एक घोड़ा है', उसने सोचा, 'उसे बड़ी चतुराई से उसमें जोता गया है । वह जो पुस्तक लिखेगा उस पर कविराज का नाम होगा । उनके बाद उनके पुत्र, पौत्र और चाहे तो पर-पौत्र तक उससे लाभ उठायेंगे और वह स्वयं क्या पायगा ? पचास रुपये प्रतिमास के हिसाब से तीन महीनों के केवल डेढ़ सौ रुपये, जिनका अधिकांश वह शिमले ही में खर्च कर जायगा । फिर जिस प्रकार एक घोड़े के अयोग्य होने पर अथवा उसकी आवश्यकता पूरी हो जाने पर उसे हटा दिया जाता है, उसे भी हटा दिया जायगा ।'.... और वह इस भ्रम में था कि उसकी स्थिति से दयार्द्र हो कर उनकी पत्नी, अथवा उसकी कला से प्रभावित हो कर कविराज, उस दैनिक-पत्र की चक्की से उसकी रक्षा करने के हेतु, उसे शिमला ले आये हैं—अपने घर का-सा एक व्यक्ति समझ कर !....घर का-सा....वह फिर उसी व्यंग और पीड़ा से मुस्कराया ।....उसने निमिष-मात्र को भी न सोचा कि उसकी स्थिति जयदेव अथवा दयाराम से तनिक भी भिन्न न होगी ।

तभी एक अदम्य विद्रोह उसके रोम-रोम में भड़क उठा । न जाने उससे पहले कौन उनकी सफलता की गाड़ी का घोड़ा बना होगा ? उसे यह स्थिति स्वीकार नहीं । वह रस्सी तुड़ा कर भाग जायगा । यदि वह घोड़ा ही है यो किसी की गाड़ी में जुतने की अपेक्षा स्वच्छन्द विचरण करेगा ।

दूसरी सुबह, जब सदा की भाँति वही व्यावहारिक, मशीनी-सी मुस्कान मूँछों पर लिये हुए कविराज उसके कमरे में आये और उन्होंने हँसते-हँसते पूछा कि उसने पुस्तक का कोई नया परिच्छेद लिखा ? तो उसने सब काग़ज-पत्र उठा कर उनके सामने रख दिये और कहा, "मुझे छुट्टी दीजिये !" आवेश में वह केवल इतना और कह सका था, "मैं समझता था कि मैं यहाँ स्वास्थ्य बनाने के लिए आया हूँ, पर अब मुझे अपनी वास्त-

विक स्थिति का ज्ञान हो गया है ।"

निमिष-मात्र के लिए मुस्कान कविराज के होंटों से विलीन हो गयी । फिर तत्काल उसी मुस्कान को तनिक और फैला कर उन्होंने कहा, "तो भई ठीक तो है, तुम स्वास्थ्य बनाने ही के लिए तो आये हो । खूब मालिश करो, व्यायाम करो, सैर को जाओ । तुम्हें रोकता कौन है ? रहा काम, सो भाई वह तो तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है । वह अनिवार्य नही । करो, चाहे न करो । यदि तुम यहाँ से अपने स्वास्थ्य को कुछ भी ठीक करके लौटे तो मेरा तुम्हे यहाँ लाना सफल हो जायगा ।"

वे छड़ी घुमाते हुए चले गये और चेतन उस घायल साँप की तरह फुफकारता और अन्दर-ही-अन्दर विष घोलता हुआ-सा बैठा रहा जो चोट खा कर झपटा तो हो, किन्तु जिसका वार बिलकुल खाली गया हो ।

उन्चास

सारा दिन चेतन खिन्न-मन-सा बिस्तर पर पड़ा करवटें बदलता रहा । उसकी आँखो पर से सहसा एक पर्दा हट गया था और जो कुछ उसे दिखायी दिया था, वह उसके सदा आदर्श की दुनिया मे बसने वाले मन के लिए अत्यन्त वीभत्स था । उसे अपनी स्थिति की यथार्थता का आभास हो गया था और यह कटु आभास उसके मन-प्राण को एक विचित्र-सी क्लान्ति, एक अजीब से विषाद से भर रहा था । उसकी दशा उस रोगी की-सी थी जिसने कड़वी दवा का एक घूँट ही पिया हो किन्तु वह एक घूँट ही उसकी जीभ, उसके कंठ, उसकी नस-नस को जलाता हुआ चला गया हो । यह कटु अनुभूति उसके मन-प्राण को एक गहरे अवसाद से भर रही थी । आज तक उसके शिशु-हृदय ने दुनिया का पाउडर और रूज से ढका हुआ सुन्दर मुख ही देखा था । उसकी वास्तविक कुरूपता देख कर उसका

मन खिन्न हो उठा। ऐसो कुरूपता भी कहीं है, वह इस बात मे विश्वास न करना चाहता था, किन्तु वह जैसे कई गुना होकर उसके सरल हृदय पर अंकित हो रही थी।

संध्या को कविराज रोज़ की अपेक्षा कुछ जल्दी आ उये। वह उसी तरह अपने कमरे मे लेटा हुआ था। खाना खाने तक न गया था। उन्होंने खिडकी मे से झाँक कर उसे अन्यमनस्क लेटे हुए देखा और चुपचाप अन्दर चले गये। कुछ क्षण बाद, कदाचित छड़ी आदि रख कर, उन्होने अन्दर से चेतन के कमरे का दूसरा दरवाजा खोला। चेतन उसी प्रकार लेटा रहा। उसने सिर तक न हिलाया।

"अरे भाई इस अँधेरे मे क्या पड़े हो?" उन्होंने अपने स्वर मे चिन्ता भर कर कहा। "बना चुके इस तरह तुम अपना स्वास्थ्य!" और वे हँसे। फिर उसके सामने आ कर बोले, "चलो तुम्हे जाकू की सैर करा लायें।"

चेतन वहाँ से हिलना तक न चाहता था। वह चाहता था, जोर से रो पडे, चीख उठे और उठ कर जन्नाटे का एक थप्पड़ उस कपटी के मुँह पर जमा दे। पर वह चुपचाप लेटा रहा और जब उसके इतना कहने पर कि उसकी तबीयत ठीक नही और वह लेटना चाहता है, कविराज जी ने उसका हाथ थाम कर उसे उठाया तो वह चुपचाप उठ खड़ा हुआ।

रास्ते में अपने आरम्भिक जीवन की कथाएँ सुना कर वे उसका मन बहलाते रहे। जब जाकू की चढाई शुरू हुई तो उन्होने कहा, "सफलता का शिखर भी इसी प्रकार दुर्गम है भाई, धीरे-धीरे, निरन्तर अध्यवसाय और निष्ठा से उसे सर करना होता है।"

ऊँचाई पर जा कर वे एक स्थान पर रुके। दायी ओर के पेडों में से उन्होने नीचे की ओर संकेत किया। केलू के दो ऊँचे-ऊँचे पेडों के मध्य, सामने बहुत नीचे, शिमले की माल रोड बल खाती-सी दिखायी दे रही थी। उसके साथ नन्हे-नन्हे से दीखने वाले मकान ऊपर से नीचे तक फैले हुए थे, उनके वहुत नीचे घाटी अत्यधिक सुरम्य लग रही थी। धुएँ के वादल उसमे तैर रहे थे। सूरज कहीं पहाड़ी के पीछे जा छिपा था। केवल

एक किरण, न जाने किस कोण से, घाटी में प्रवेश करके बादलों के नीचे-नीचे एक सिरे से दूसरे सिरे तक, एक अत्यन्त मनोरम झूला बना रही थी। संध्या के उस झिलमिल प्रकाश में, उन सालस-लालस मेघों के नीचे, घाटी की गहरी हरियाली को विचित्र रंगों से रँगता वह झूला इतना सुन्दर और अलौकिक लग रहा था कि चेतन मन्त्र-मुग्ध-सा खड़ा रह गया।

'किसी कुशल चित्रकार की कल्पना अपने शिखर पर पहुँच कर भी क्या ऐसे सुन्दर चित्र की सृष्टि कर सकती है?' चेतन ने मन-ही-मन सोचा। किन्तु प्रकृति का वह अमर चितेरा प्रतिदिन न जाने ऐसे और इससे भी कहीं सुन्दर कितने ही चित्र बनाता-मिटाता रहता है। उसका जी चाहा वह सारे के सारे दृश्य को अपने मानसपट पर अंकित कर ले।

"धीरे-धीरे, पग-पग हम उन्नति के शिखर की ओर बढते है," कविराज जी अपनी बात को जारी रखते हुए बोले। (उनकी दृष्टि शायद उस अलौकिक दृश्य तक नहीं गयी। वे माल और उस पर की लौकिकता ही मे उलझे रहे।) "हमे मालूम भी नहीं होता कि हम इतनी ऊँचाई चढ़ आये हैं। एक बार पलट कर जब हम नीचे की ओर देखते हैं तो हमे पता चलता हैं कि हमारे साथ चलने वाले अभी वहीं है और नन्हे-नन्हे क्षुद्र कीड़ों की भाँति मन्थर गति से चले आ रहे हैं। ज़रा उन माल रोड वालों को एक नजर देखो और फिर इस ऊँचाई का ख़याल करो!" वे हँसे और भेद-भरे स्वर मे उन्होंने कहा, "सफलता के शिखर पर पहुँचने वालों का यही पुरस्कार है!"

उस प्राकृतिक दृश्य के अलौकिक सौन्दर्य मे चेतन इतना निमग्न था कि कविराज जी ने क्या कहा, किस सत्य का निदर्शन किया, उसने कुछ नही सुना। जब कविराज चल पडे तो जैसे एक सुख-स्वप्न से वह जागा और चुपचाप उनके साथ-साथ चलने लगा।

"उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए," कविराज ने अपने वक्तव्य को जारी रखते हुए कहा, "अध्यवसाय, निष्ठा और संलग्न-शीलता के अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि हम अपने हाथ मे काम को

धैर्य के साथ पूरा करें। उसी मे रस पायें। काम को काम की प्रसन्नता के लिए करें। जब हम अपने हाथ के काम को समाप्त कर लें तो हमारा मन खिन्न न हो, बल्कि प्रसन्न हो। यह गुण उन्ही लोगों मे होता है, जिन्होंने सफलता की प्राप्ति को अपना ध्येय बनाया हो।"

और उन्होने फिर अपने आरम्भिक जीवन की एक मिसाल दी।

"मै फिरोज़पुर के अनाथालय मे क्लर्क था। यद्यपि मुझे वह काम ज़रा भी पसन्द न था, पर जब तक मै वहाँ रहा, जी-जान से उसे निभाता रहा। एक बार व्यवस्थापक के छुट्टी जाने पर, मुझे उसके स्थान पर काम करना पड़ा। तुम्हें आश्चर्य होगा कि मै उनके सारे काम के साथ अपना सब काम भी करता रहा और मैनेजर होते हुए भी चपरासियों की तरह साइकिल लिये घर-घर घूमता रहा। आज उन दिनों की याद करता हूँ तो वे स्वप्न से दिखायी देते है। हर सफल व्यक्ति को इन परिस्थितियों से जूझना पड़ता है और इनसे जूझ कर ही वह सफलता के शिखर पर पहुँचता है।"

'हरामजादा!' चेतन ने मन-ही-मन दाँत पीस कर कहा, 'तू मुझे बिलकुल उल्लू समझता है; पर अब मै तेरी बातों मे आने से रहा।'

प्रकट वह 'जी हाँ, जी हाँ' करता रहा। कविराज जी ने उसे बताया कि सेहत काम करने से खराब नही होती, वह तो बेकायदगी से बिगड़ती है।

अपनी धुन मे वे चेतन को सफल-जीवन के सफल नुस्खे बताते रहे और चेतन सोचता रहा—काश इस सैर में उसके साथ नीला होती, चन्दा होती या और कोई न सही तो अनन्त ही होता! यह व्यापारी....यह सैर का आनन्द क्या जाने? इसका मस्तिष्क तो दिन-रात लोगों की जेबें काटने के नित्य नये ढंग सोचने मे व्यस्त रहता है।

०

जाकू के शिखर पर पहुँचते ही उनके इर्द-गिर्द बन्दरो की टोलियाँ आ इकट्ठी हुई। कविराज जी ने उसे बताया कि जाकू शिमले की सब से ऊँची

चोटी है और उसी पर हनुमान जी का मन्दिर है, जहाँ पर हर मंगलवार को लोग दर्शनार्थ आते हैं।

चेतन चकित-सा खड़ा उस मन्दिर और उन बन्दरों को देखता रहा। उसने स्वप्न में भी न सोचा था कि इतनी ऊँचाई पर मन्दिर होगा। उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब कविराज जी ने अपनी पतलून की जेब से चनो की मुट्ठी निकाली और बन्दरों के आगे फेंकते हुए मन्दिर की ओर बढ़े।

यद्यपि बन्दरों की संख्या बहुत बड़ी थी, लेकिन जब भी कविराज दाने फेंकते दो चार हृष्ट-पुष्ट वन्दर बरबस उस स्थान पर अधिकार कर लेते, कुछ दुर्बल खड़े तकते और शेष कविराज जी के पीछे हो लेते। क्षण भर के लिए रुक कर चेतन उन मोटे-मोटे बन्दरों को देखने लगा। वे कभी एक और कभी दोनों हाथों से दाने चुग रहे थे। उनके कंठ की थैलियाँ फूल रही थीं और कुछ दूर पर उनके दुर्बल भाई उन दानो को अरमान भरी दृष्टि से तक रहे थे।

चेतन चुपचाप खड़ा उन बन्दरो को देखता रहा और देखते-देखते उसके सामने वे बन्दर मोटे-मोटे सेठ, जमीदार, नवाब, राजे, अफ़सर और नेता वन गये और चनों के दाने चाँदी-सोने के सिक्के! और चेतन ने अपने-आपको उनमे पाया जो कविराज के पीछे-पीछे विवशता से दुम हिलाते हुए चले जा रहे थे।

'जाओ, भागो!' कविराज के पीछे चलते हुए मन-ही-मन चेतन ने उन बन्दरों से कहा, 'तुम्हें क्या मालूम कि इस व्यक्ति की प्रकट दया-माया के अन्दर एक रक्त-पिपासु शोषक पशु भी है। अच्छा है कि यहाँ तुम महावीर की छत्रछाया में रहते हो। यहाँ तुम्हे भोजन भी मिल जायगा और श्रद्धा भी; पर यदि कभी तुम रल्दू भट्टे तक इनके पीछे-पीछे चले जाओ तो इनकी दया-माया का सारा भ्रम तुम पर खुल जायगा।'

कविराज मन्दिर के पास जा पहुँचे। महावीर के मन्दिर का पुजारी गैरिक लंगोट और बंडी पहने उनकी अभ्यर्थना को मन्दिर के दरवाज़े पर

आ गया । चेतन को इस वेश-भूषा में वह महावीर के उन अनुचरों ही सा लगा । अंतर केवल इतना ही था कि उसके दुम नहीं थी ।

मन्दिर का दरवाजा लौह-सीखचों से बना था । चेतन ने पास जा कर देखा—अन्दर एक ओर अनाज की बोरियाँ पडी थी । वह चकित रह गया । उसकी धारणा थी कि पुजारी शिमले जा कर कुछ माँग-जाँच कर ले आता होगा, किन्तु उस ऊँची चोटी पर अनाज की उतनी बोरियो का तो ख़याल भी उसे न आ सकता था । उसकी कल्पना के सम्मुख पीठ पर बोरियाँ लादे, झुकी हुई कमरो को लाठी के सहारे सम्हाले, पसीने और मैल से तर कुली जाकू की दुष्कर चढाई चढते हुए घूम गये ।

'यह धर्म क्या पूँजी ही का दूसरा रूप नही ? पूँजी ही की तरह यह हजारों गरीबो की रक्त-स्वेद की कमाई पर फल-फूल कर मोटा नही हो रहा क्या ?' उसने सोचा ।

फिर उसे ख़याल आया कि आज से पहले उसे यह सब क्यों नही सूझा । वह स्वयं मन्दिर में जा कर श्रद्धा-भक्ति से फूल चढ़ाता रहा है, घटे-घंड़ियाल बजाता और मन्दिर की देहरी पर मस्तक नवाता रहा है । किन्तु मन्दिरों द्वारा निरीह जनता का जो शोषण हो रहा है और जिस प्रकार मन्दिर पूँजीवाद के स्तम्भ बने हुए है, इस बात को ओर कभी उसका ध्यान क्यो नही गया ? यह सब जो आज सहसा उसके सामने स्फटिक-सा साफ़ होकर आ गया, वह शायद इसलिए कि आज वह स्वयं अपने-आपको शोषित समझता था । और संसार मे सभी प्रकार के शोषण के विरुद्ध उसका मन एक प्रबल उपेक्षा से भरा जा रहा था ।

इस बीच मे कविराज जी मन्दिर के आगे नमस्कार करके एक रुपया चढ़ा चुके थे । वे आर्य-समाजी थे । चेतन जानता था कि साधु-सन्तों, मन्दिरो-मठो में उनकी तनिक भी आस्था नही । फिर इस महावीर के मन्दिर देख कर उनके मन मे अचानक इतनी श्रद्धा क्यों उमड़ पड़ी ? किन्तु दूसरे ही क्षण यह भेद उसकी समझ मे आ गया ।

जब रुपया पाने पर पुजारी जी प्रसन्न हो कर आशीर्वाद की वर्षा

करने लगे तो कविराज ने उनको अपना परिचय देना आरम्भ किया—कि वे वैद्य है और वैद्य के नाते जहाँ तक होता है, जनता की सेवा करते है। उनके दवाखाने पर जब कोई ग़रीब आ जाता है तो उसको निशुल्क परामर्श देते है। (झूठ! चेतन दिल-ही-दिल मे चिल्लाया।)

"बचपन ही से मेरी यह इच्छा थी," कविराज जी ने कहा, "कि मैं बड़ा हो कर व्यवसाय अपनाऊँ जिसमें जनता की अधिक-से-अधिक सेवा करने की सम्भावना हो। जब मैंने बी० ए० पास कर लिया और जीवन मे कुछ काम करने का प्रश्न पैदा हुआ तो मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि मुझे रोगियो की सेवा करनी चाहिए और मैंने वैद्य बनने का निश्चय कर लिया।"

चेतन ख़ूब जानता था कि कविराज जी का वैद्य बनना केवल परिस्थितियों की विवशता के कारण था, नहीं वे तो ठेकेदार बनने जा रहे थे और उन्हे कभी लोक-सेवा का लेश-मात्र भी ध्यान न आया था।

किन्तु पुजारी जी ने दाँत निपोरते हुए कविराज जी का समर्थन किया, "स्वास्थ्य-दान से बढ़ कर कौन-सा दान है महाराज!"

"मै जब से शिमले आया हूँ," कविराज जी ने फूल कर कहा, "प्रतिदिन महावीर जी के दर्शनों को आने की सोचता रहा हूँ। पर इधर सामान आदि की व्यवस्था मे इतना निमग्न रहा कि मुझे सिर उठाने का भी अवकाश नही मिला।"

पुजारी जी ने फिर खीसें निपोरी।

"यह तो बड़ी सुरम्य जगह है। आप तो सचमुच स्वर्ग मे रहते है।" कविराज जी ने कहा।

पुजारी जी केवल हँसे और सिर झुका कर हाथ धोने के अन्दाज़ मे हाथ मलते रहे।

"मै प्रयास करूँगा कि कम-से-कम सप्ताह मे एक बार अवश्य ही आपके दर्शनार्थ आया करूँ," कविराज जी बोले। फिर उन्होने ज़रा उदास

हो कर कहा, "पर रोगियों की सेवा में इतना व्यस्त रहता हूँ कि नित्य-कर्म तक भूल जाता हूँ।" फिर बात का रुख बदल कर वे बोले, "पर महावीर जी की भेंट स्वरूप एक रुपया मासिक आपको नियमित रूप से पहुँचता रहेगा। हमारी ओर से उसे आप बजरंग बली के चरणों मे चढ़ा दिया कीजिएगा।"

पुजारी जी ने फिर आशीर्वादों की झड़ी लगा दी।

फिर चलते-चलते जैसे सहसा कुछ याद आ जाने पर, मन्दिर की दीवार को देखते हुए कविराज जी ने कहा, "मै आज-कल बच्चो के पालन-पोषण पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ," और सहसा चेतन की उपस्थिति का ध्यान आ जाने से उन्होंने इतना और बढा दिया, "यह बच्चा मुझे उसके लिखने मे सहायता दे रहा है। मैं चाहता हूँ कि उस पुस्तक की विज्ञप्ति इस दीवार पर लिखवा दूँ ताकि यहाँ आने वाले महानुभाव उससे लाभ उठा सकें।"

"मन्दिर आप ही का तो है महाराज!" पुजारी जी ने हाथ जोड़ कर कहा।

कविराज जी ने उनको प्रणाम किया और चेतन की ओर मुडे, "सूरज डूब रहा है," उन्होंने कुछ घबरा कर कहा, "जल्दी चलना चाहिए, नहीं उतरने मे बड़ी दिक्कत होगी।"

और फिर कुछ आश्वस्त हो कर, मूँछो मे हँसते हुए, पुजारी जी को पुनः प्रणाम करके वे चल पड़े।

चेतन भी चुपचाप उनके पीछे-पीछे चला। घृणा का एक प्रचंड, दुर्दम-नीय उफान उसके हृदय मे उठा। उसने चाहा कि उफान को प्रबल वेग से वाहर निकल जाने दे—इतने वेग से कि वह इस ढोंगी, कपटी, शोषक को वहा ले जाय; उसकी उस मुस्कान को, जो चेतन को विषैले बिच्छू के डंक-सी लगती थी, मिटा दे; उसे वता दे कि वह उसे क्या समझता है और एक ही वार इस प्रवंचना का अन्त कर दे। पर वह कुछ न कह सका। उसके अन्तर की समस्त घृणा एक गोला-सा वन कर उसके गले मे अटक

गयी । कविराज जी की बातों के उत्तर में 'हूँ, हाँ' करता हुआ वह उनके पीछे-पीछे चला आया ।

जब वे उस जगह पहुँचे जहाँ रिज माल रोड मे मिलती है तो कविराज जी की दृष्टि अचानक मोटे होंट, चपटी नाक और चपटे चेहरे वाले एक काले-कलूटे व्यक्ति की ओर गयी जिसने एक क़ीमती सूट पहन रखा था और जिसके पीछे-पीछे बावर्दी रिक्शा वाले धीरे-धीरे उसकी रिक्शा ला रहे थे ।

"सर टीकम लाल !" कविराज ने सहसा उल्लास से कहा और चेतन को कम-से-कम उतनी सैर प्रतिदिन करने की नसीहत देते और छड़ी को दुम की तरह हिलाते हुए वे उन सर महोदय की ओर चले गये ।

तब चेतन की समस्त घृणा एक दबी हुई अत्यन्त अश्लील गाली के रूप मे निकल पड़ी । जब कविराज दूर चले गये तो उसने पूरे जोर से शून्य मे वही गाली उनकी ओर फेंक दी । फिर वह चौंका कि उसे कोई पागल न समझ ले । किन्तु आस-पास कोई न था ।

और वह चल पड़ा ।

सामने रिज के किनारे, बायीं ओर स्कैन्डल-पॉयंट पर सदा की तरह दर्शक एकत्र थे । माल पर रोशनियाँ जाग रही थी और उनके साथ ही दर्शकों की आँखों मे लालसाएँ अंगड़ाइयाँ ले उठी थीं । अपने समस्त क्रोध और घृणा को गाली के रूप मे निकाल कर चेतन तनिक हल्का हो गया । पहले उसे खयाल आया कि वह स्कैन्डल-पॉयंट से कैम्बरमियर पोस्ट ग्राफ़िस तक माल के दो-एक चक्कर लगा कर, मन के इस अवसाद को दूर करे । लेकिन वह कुछ थकान-सी अनुभव कर रहा था । इसलिए स्कैन्डल-पॉयंट के जँगले पर खड़े हो कर माल का तमाशा देखना ही उसने यथेष्ट समझा और इस विचार से वह स्कैन्डल-पॉयंट की ओर बढ़ा ।

पचास

रिज की सड़क जिस स्थान पर जा कर माल से मिलती है, वहीं माल की ओर को यह जँगला-सा बना है। न जाने किस मसखरे से इसे 'स्कैन्डल-पॉयंट' का नाम दे दिया, पर अब यह स्थान इसी नाम से प्रसिद्ध है। इस जँगले पर कुहनी टिका कर बड़े आराम से माल की चहल-पहल देखी जा सकती है। शिमले की सैर को आये हुए लोग प्रायः इस जगह एक दूसरे से आ मिलते है। शिमले भर मे कोई ऐसा एकान्त स्थान नही, जहाँ खड़े हो कर नीचे माल पर घूमने वालो (या वालियों) के केशों की बनावट से ले कर जूतो के फ़ैशनों तक का निरीक्षण किया जा सके और किसी की शक्ल, किसी की चाल, किसी के स्वर अथवा किसी के ठहाके की कृत्रिमता, किसी हूर के पहलू मे लंगूर और किसी यूसफ की बगल मे बन्दरिया को लक्ष्य कर (किसी प्रकार के संकट के बिना) केवल अपना जो खुश करने के लिए फब्तियाँ कसी जा सकें। अपने ध्यान मे मग्न चेतन इसी स्थान की ओर चला जा रहा था कि सहसा अपने एक पड़ोसी और सहपाठी को स्कैन्डल-पॉयंट की रेलिंग पर कुहनी टिकाये खड़े देख कर वह चौका और 'अरे अमीचन्द तुम कहाँ ?' कहता हुआ सोल्लास उसकी ओर लपका।

एक सुदूर-सी मुस्कान के साथ अमीचन्द ने चेतन को ओर देखा और जैसे उतनी ही दूर से बोला, "कहो तुम कहाँ ?" और फिर यह देख कर कि चेतन ने हाथ बढा रखा है, उसने भी हाथ आगे बढा दिया।

चेतन चकित-सा उसे देखता रह गया। निश्चय ही यह उसका सहपाठी, उसका पड़ोसी, रट्टू, किताबों का कोड़ा, लजीला, शर्मीला, भीरु अमीचन्द नही, यह तो आकाश से भी ऊँचे अहं के सिहासन पर बैठा कोई दूसरा ही व्यक्ति है। केवल उसका रूप-रंग अमोचन्द जैसा है।

उत्तर देने के वदले उसने पूछा, "तुम यहाँ कैसे ? किताबो की सैर ने

तुम्हें किस प्रकार शिमले की सैर का अवकाश दे दिया ?" और वह खिन्नता से हँसा।

उतनी ही दूरी से अमीचन्द ने कहा, "मैं ज़रा ई० ए० सी० का कम्पीटीशन देने आया था।"

'साला ई० ए० सी० का'—चेतन मन-ही-मन आश्वस्त हो कर हँसा—और कोई रह जो नहीं गया ई० ए० सी० बनने के लिए !' प्रकट उसने ज़रा खुल कर हँसते हुए कहा, "तो भई ई० ए० सी० हो कर हम ग़रीबों को न भूल जाना।"

तभी अमीचन्द का एक मित्र नीचे से गुज़रा।

"हैल—लो अमीचन्द !"

और अमीचन्द से चेतन से हाथ मिला कर अपने मित्र से मिलने माल पर चला गया। उसने न चेतन की बात का उत्तर दिया और न इस प्रकार अचानक चले जाने के लिए क्षमा माँगी। उसकी वह सुदूर मुस्कान तनिक और फैली और बस चेतन के हाथ को ज़रा-सा हिला कर वह चला गया।

चेतन वहीं खड़ा-का-खड़ा रह गया। सामने प्रतिक्षण फैलने वाले बादलों पर जैसे अमीचन्द की वही सुदूर मुस्कान अंकित हो गयी। उसने रेलिंग पर अपनी कुहनी टिका ली और शून्य मे देखने लगा।

सूरज पश्चिम की पहाड़ियों के पीछे अस्त हो चुका था। आकाश से सुरमई साये उतर आये थे। धरती के उजियाले मे उनका उन्मुक्त नर्तन प्रकाश और छाया के विचित्र संसार की सृष्टि कर रहा था। बादल नीचे घाटियो से उठ कर उस संसार को और भी स्वप्निल बनाते हुए माल पर छा रहे थे। दुकानों की रोशनियाँ और माल के तमाशाइयों की चहल-पहल उस संसार मे रस, राग और रंग का विचित्र समावेश कर रही थी।

देखते-देखते बादल माल से ज़रा और उठ कर जाकू की ओर बढ़ गये। रिज के ऊपर, अपनी समस्त हारयाली को लिये हुए किसी ध्यानमग्न योगी की तरह जाकू का पहाड़ खड़ा था और मेघ-मालाएँ तरुणियों की

भाँति उसके वक्ष से लिपट कर उसे अपनी साधना से डिगाने का विफल प्रयास कर रही थीं।

माल की रौनक क्षण-क्षण बढ़ रही थी। अपटूडेट सूट; रँगीली, भड़कीली, चमचम करती साड़ियाँ; नये-नये फैशनों से गुँथे हुए बाल; पाउडर, लिपस्टिक और रूज की कृपा से दमकते चेहरे; अहंकार और दर्प से भरी चालें; गप-शप और हँसी-ठहाके—माल का शून्य क्षण-प्रतिक्षण भर रहा था, मुखर हो रहा था।

किन्तु चेतन को वहाँ यह सब दिखायी न देता था। उसे तो सामने की दुक़ानो के कंगूरों पर घुलते हुए बादलों मे अमीचन्द की वही सुदूर मुस्कान अंकित दिखायी दे रही थी। और उसका मन हीन-भाव से भरा जा रहा था। 'यह साला जरूर ई० ए० सी० हो जायगा,' उसने मन-ही-मन कहा। 'मै तो जरा भी सरक नहीं पाया। मेरे प्रासादो की तो नीव भी नही जम पायी!' उसने एक दीर्घ-निश्वास छोड़ा और वहीं रेलिंग पर खडे-खडे पल-पल गहन होते अंधकार के पट पर उसके सामने उसके सारे प्रासाद एक-एक करके बनने लगे—अपने दफ्तर मे अंग्रेजी समाचारो का अनुवाद करते-करते जब वह थक जाता था, निरन्तर घंटों तक क़लम चलाने के कारण जब उसके अँगूठे का अग्र-भाग दुखने लगता था और जब उसकी आँखें जल-सी उठती थी तो जरा सुस्ताने के लिए कुर्सी पर पीछे को लेट कर वह शरीर को ढीला छोड देता था और कल्पना मे भविष्य के महल बनाया करता था—ज्योंही भाई साहब की दुकान जमी और कुछ पूँजी हुई, वह उन्हे माल रोड पर दुकान खुलवा देगा। इस बीच में परसराम भी आ जायगा। तब भाई साहब की सहायता से वे एक प्रकाशन-गृह खोलेंगे; प्रेस लगायेंगे; अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें छापेंगे। परसराम दुकान का हिसाब-किताब देखेगा। स्वयं चेतन बाहर दौरे करके पुस्तको की बिक्री का प्रबन्ध करेगा। बाक़ी छोटे भाई भी उसी दुकान में लग जायँगे। भारत के बडे-बडे नगरो में प्रकाशन-गृह की ब्रांचें खोली जायँगी और दूसरे भाई बड़े हो कर उनके काम की देख-भाल

करेंगे । रही चन्दा सो वह इस बीच मे प्रभाकर करके बी० ए० कर लेगी और उनका हाथ बटायेगी । रुपया पानी की तरह बरसेगा । किसी तरह का अभाव न रहेगा । सब भाई मिल कर मॉडल टाऊन में कोठी बनवा लेंगे, मोटर रख लेंगे और....

o

तभी एक परिचित ठहाके ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । चेतन ने देखा उससे तनिक अंतर पर महाशय धर्मचन्द खड़े हैं । चेचक भरा गोल मुँह, कानी आँख, सिर पर पगड़ी, गले में ओवरकोट और टाँगों मे उटंग पायजामा । ये महाशय लाहौर के एक उर्दू साप्ताहिक के स्वामी और सम्पादक थे । किसी ज़माने मे वे साप्ताहिक-पत्र के बदले एक तंदूरनुमा होटल के प्रोप्राइटर थे । उनके होटल पर खाना खाने के लिए आने वालो मे लाहौर के दो-चार उदीयमान कवि तथा साहित्यिक भी थे । उनकी संगति और अनुरोध के कारण वे होटल छोड़ कर एक साप्ताहिक पत्र जारी कर बैठे । पंजाब मे उन दिनो साप्तहिक-पत्रो का अभाव था और महाशय धर्मचन्द के होटल पर आने वाले लेखक अथवा कवि अपने साहित्यिक जीवन के उस काल से गुज़र रहे थे, जब मनुष्य को संसार मे अपनी जगह बनानी होती है । इसलिए इनके पत्र को उन्होंने अपना मुख-पत्र बना लिया । और अपने उन मित्रों की सहायता से महाशय धर्मचन्द न केवल होटल वाले के स्थान पर एक प्रसिद्ध पत्र के सम्पादक हो गये, बल्कि उनका पत्र भी खूब चल निकला । किन्तु शीघ्र ही उनके मित्रों ने जीवन में अपना स्थान बना लिया । वे व्यस्त हो गये और अपने प्रचार तथा उन्नति के दूसरे साधन उन्होने ढूँढ़ लिए । साहित्यिक षड़यन्त्रो के स्थान पर वे दफ़्तरी षड़यन्त्रों में उलझ गये । इसके अतिरिक्त महाशय धर्मचन्द के पत्र की सफलता को देख कर दो-चार और साप्ताहिक निकल आये । न केवल यह, बल्कि दैनिक पत्रो ने भी अपने साप्ताहिक संस्करण निकालने आरम्भ कर दिये और इस मुकाबिले मे महाशय धर्मचन्द के पत्र का हाल पतला हो गया । स्वयं वे लगभग अपढ़ थे, इतनी क्षमता

कहाँ से लाते कि पत्र के ऊँचे स्तर को बनाये रखते । इतनी ख्याति पाने के बाद पुनर्मूषक बनना उन्हे स्वीकार न था इसलिए अब वे प्रसिद्ध 'ब्लैक-मेलर' हो गये थे । रियासतों के पत्त अथवा विपत्त मे लिख कर, बडे-बडे सेठों को उनके भेद खोल देने की धमकी दे कर और फ़िल्मों के पत्त अथवा विपत्त मे प्रचार करके, वे अपने पत्र की गाड़ी को किसी-न-किसी प्रकार ठेले जा रहे थे । उनका पत्र तीन-चार सौ ही छपता था, पर उसके मुख-पृष्ठ पर वे अब भी, 'उत्तरी भारत का सर्वोत्कृष्ट बहु-संख्यक' छापे जा रहे थे।

उनके बराबर ही अपने पतले-दुबले शरीर पर पतलून के साथ शेर-वानी पहने, अपने दिन-प्रतिदिन गंजे होते सिर पर रूसी टोपी टिकाये एक साहब खडे थे । ये महाशय कभी जालन्धर मे टोपियाँ बनाया करते थे, पर अपने सुन्दर कंठ तथा प्रखर बुद्धि की बदौलत अब एक प्रसिद्ध कवि थे । कई रियासतों से उन्हे मासिक रुपया मिलता था और बड़ी सुन्दरता से उन्होंने कला और जीवन मे समझौता कर लिया था। खाँ साहब हो गये थे । यह और बात है कि अब वे कला की उलझनों के बदले दिन-प्रति-दिन जीवन की पेचीदगियो मे उलझते जाते थे । उन दिनों वे इस्लाम के इतिहास को कला को अमर बेड़ियाँ पहना रहे थे और मुसलमान श्रद्धालुओं ने उनके नाम के साथ मौलाना का शब्द भी लगा दिया था । वे शिमले में वडे-वड़े राजा नवावों को अपनी नयी कृति गा-गा कर सुनाते, प्रशंसा के साथ धन पाते और शिमले की सैर का आनन्द उठाते हुए घूम रहे थे ।

उनके निकट एक लँगडा युवक सूट हैट में आवृत्त खडा था । वह प्रति वर्ष शिमले आता था, एक वड़े मुशायरे का आयोजन करता था और साहित्य सेवा का पुण्य लूटने के साथ-साथ शेष आठ-दस महीनों के पैसे कमा कर घर चला जाता था ।

०

ये तीनो व्यक्ति न जाने वहाँ महज तमाशा देखने के लिए आ खड़े हुए

थे, अपने मित्रों की प्रतीक्षा कर रहे थे कि अथवा नीचे की भीड़ को देख कर इस बात का अन्दाजा लगा रहे थे कि उनके शिकारों में से कौन-कौन इस बार शिमले आये हैं।

बादल तनिक और ऊपर उठ गये थे। जाकू की सौम्यता बढ गयी थी। दुकानों के कंगूरे सुरमई उजेले की धुधली पृष्ठ भूमि मे चित्रित-से दिखायी देते थे और उनकी रोशनियाँ माल पर लम्बी-लम्बी छायाएँ बना रही थी। नन्ही-नन्ही बूँदें गिरने लगी थीं और माल की काली-गीली सड़क पर ये छायाएँ थिरकती, नाचती बडी सुन्दर दिखायी दे रही थीं। भारत के हर प्रान्त की वेष-भूषा जैसे एक प्रदर्शनी के रूप मे नीचे से गुजर रही थी। लोग प्रसन्न थे, उल्लसित थे, तमाशा देखने अथवा दिखाने का आनन्द लूट रहे थे।

जँगले पर कुहनी टिकाये चेतन किसी सोये-खोये-से व्यक्ति-सा, यह सब वैभव, उल्लास, मुखरता, सजीवता, स्फूर्ति, आकर्षण निरख रहा था। वह स्वयं इन सब से परे था। वह न तमाशा था न तमाशाई। वह हीन-भाव जो कविराज की सफलता और अमीचन्द की अवहेलना ने उसके मन मे उत्पन्न कर दिया था, वहाँ से निकल कर जैसे उसके सारे अस्तित्व पर छाया जा रहा था। उसके पास एक गर्म सूट—गर्म सूट दूर रहा—एक स्वेटर तक नही कमीज और पायजामे के ऊपर उसने वर्षो पुराना, मैला, खुरदरा, ओवरकोट पहन रखा है और वह इन सफल व्यक्तियों के मध्य खड़ा है! कौन जाने अमीचन्द ही की तरह सुन्दर सूट पहने उसके सहपाठियो मे से कोई दूसरा उसके पास आ खडा हो और उसे अपने अभाव पर लज्जित होना पडे। यह सोच कर और एक भीत-सी दृष्टि अपने दोनों ओर खडे व्यक्तियो पर डाल कर, ओवरकोट के कालरों को अपनी छाती पर कसता हुआ, वह स्कैन्डल-पॉयंट हट गया।

उसका जी चाहता था कि चुपचाप घर चला जाय और जा कर सो रहे। लेकिन उसने अभी तक खाना न खाया था। दुख और अवसाद की गहराइयों से ऊपर उठती हुई भूख धीरे-धीरे उसके मन से सफलता,

सम्पन्नता, ख्याति आदि की सभी भावनाओं को भगा कर वहाँ अपना आधिपत्य जमा रही थी । वह दुखी था; व्यथित था; थका हुआ था और पग भर आगे चलने को उसका मन न था । चाहता था कि जितनी जल्दी हो अपने कमरे में चला जाये, जाकर बिस्तर में सिर छिपा कर विफलता के भार को आँखों के रास्ते निकाल दे । पर वह भूखा था और वह जानता था कि यदि वह बिना कुछ खाये-पिये वापस चला जायेगा तो भूख के मारे उसे सारी रात नींद न आयेगी ।

भूख....यदि कहीं यह भूख न होती ! पेट भरने की यह बेबसी न होती ! तब उसे समाचार-पत्रों की, कविराज ऐसे शोषकों की गुलामी न करनी पड़ती ! वह संसार के विशाल प्रांगण में स्वच्छन्द, स्वतन्त्र घूमता । बला से उसके तन पर कपड़े न होते, बला से उसके पाँवों में जूते न होते, वह निरन्तर भ्रमण करता । पहाड़ों में जा कर हिम-मंडित शिखरों की रजत-छटा निरखता । कल-कल, छल-छल बहते झरनों के पास बैठ कर घंटों उनका मधुर संगीत सुनता । ऊषा और संध्या के बदलते हुए रंगों को देखता । अनवरत बहती हुई नदियों के साथ बह कर उनकी अमर खोज का पता लगाता । निरन्तर करवटें लेते, उनींदे, उद्विग्न उदधि की बेचैनी का भेद पाता । सूर्य और चन्द्र की अथक आकुलता; उमड़-घुमड़ कर छाते, बरसते, उड़ते मेघों का उन्माद; आकाश की गहराइयों में विचरने वाले पक्षियों की जिज्ञासा—सब की थाह पा लेता और उस महान सौन्दर्य, उस महा-गान, महा-परिवर्तन, उस महती आकुलता में डूब कर, तन्मय हो कर अमर गीतों की सृष्टि करता....किन्तु यह भूख....मानव के पाँव में सब से पहली, सब से कड़ी बेड़ी, यह न होती तो कदाचित मानव खिलौना न हो कर खिलाड़ी बन जाता । सृजनहार के आसन पर जा बैठता ।

और चेतन उन नन्हीं-नन्हीं बूँदों में भीगता और सड़क के किनारे-किनारे चलता हुआ, मिडल और लोअर बाजार पार कर, चोर बाजार के अपने उस घटिया-से ढाबे पर जा पहुँचा, जहाँ से वह पेट के तंदूर को ईंधन दिया करता था ।

इक्यावन

यद्यपि कविराज उसे अपने साथ सैर को ले गये थे और चेतन की मनःस्थिति को समझ कर, उसका क्लेश दूर करने के लिए, जीवन-दर्शन की शिक्षा देते हुए उन्होंने उसे यह भी समझाया था कि सफलता के शिखर पर पहुँचने के लिए इन परिस्थितियों से गुज़रना अनिवार्य है. पर चेतन के क्षोभ और उसकी पीड़ा का अन्त न हुआ था। क्षोभ, क्रोध और ग्लानि से उसका मन विक्षिप्त-सा हो उठा था। वह कुछ भी कर न पा रहा था। निरन्तर कई दिन तक वह बेपतवार की नौका-सा डोलता रहा था। लेटा रहता तो अन्यमनस्क-सा दिन-दिन भर लेटा रहता और घूमता तो दिन भर उद्देश्यहीन, उत्साहहीन घूमा करता ...

'मुझे क्या हो गया है?' बार-बार यह प्रश्न उसके सामने आता, पर पीड़ा इतनी अज्ञात थी कि उसका केन्द्र ढूंढ़ पाना उसके लिए कठिन था।

जब वह सोचता तो पाता कि जीवन की कटुता से यह उसका पहला ही साक्षातकार नहीं। वह तो जीवन की कटुता ही में उत्पन्न हो कर पला और युवा हुआ। यद्यपि अपने जन्म के सम्बन्ध में उसे कुछ ज़्यादा मालूम न था, पर उसने माँ से सुना था कि उनके पुराने खँडहर से मकान मे बरसात की एक रात उसका जन्म हुआ था। निरन्तर कई दिन से पानी बरस रहा था, उनका मकान कई जगह से टप-टप चू रहा था और कच्चे फ़र्श पर गड़े बन गये थे। परदादी गंगादेई कई बार वर्षा के कोप को शांत करने के लिए जले हुए कोयले आँगन मे फेंक चुकी थी, और वे (माँ और परदादी) मकान के गिर जाने के भय से रात-रात भर जागती रहती थीं। दाय को देने के लिए घर मे पैसे न थे। परदादी कहीं से (धर्मशांति अथवा शुद्धि मे) आये हुए बर्तन बेच कर कुछ रुपये जुटा लायी थीं और प्रसव के पश्चात माँ को सोंठ और गुड़ मिले सँठोले के अतिरिक्त पंजीरी अथवा

अछवानी आदि शक्तिवर्द्धक कोई भी चीज न मिली थी । वह तो पूरे चालीस दिन आराम भी न कर पायी थी । परदादी अपनी अन्धी आँखों से चूल्हा झोंकती थी और दो-तीन बार जलते-जलते बची थी, इसलिए ग्यारहवें दिन का स्नान करके ही माँ घर के काम-काज में जुट गयी थी ।

चिन्ता, भय, पुष्टिकारक भोजन के अभाव और काम के आधिक्य के कारण माँ की छातियाँ शीघ्र ही सूख गयी थीं और वह चेतन को छः महीने भी अपने स्तनों का दूम न पिला सकी थी । उसके लिए वह बकरी का दूध लेती, पर न जाने क्यों चेतन को बकरी के दूध से घृणा थी । बकरी ही का नही, गाय का हो अथवा भैंस का, उसे सब प्रकार के उपरे से घृणा थी । माँ की छातियों से दूध पीने के लिए वह लालायित रहा करता । न पाने पर रोता, पिटता, पिटने पर और अधिक रोता, (यहाँ तक कि उसकी परदादी ने उसका नाम चेतन के बदले चिनकदास रख दिया था) किन्तु माँ दूध कहाँ से लाती ? उसकी छातियाँ तो एकदम सूख गयी थी ।

वह बहुत छोटा था जब उसके पिता हिसार के स्टेशन पर तार बाबू हो कर गये । तब एक बार परदादी को जमुना स्नान कराने वे दिल्ली ले गये थे । माँ भी साथ थी और चेतन भी । वहाँ से माँ ने नन्ही-नन्हीं कटोरियाँ खरीदी थी । उसका विचार था कि उनके लोभ से चेतन दूध पी लिया करेगा । एक दो बार चेतन ने पी भी लिया, परन्तु फिर जब कटोरियाँ बाहरी दूध का स्वाद न बदल सकी तो वह कटोरी देखते ही रोने लगता । माँ उसे कान से पकड़ लेती और बरबस लिटा कर दूध पिलाती । वह रोता चीखता, हाथ पैर पटकता और इस प्रकार अपने शैशव ही में मरियल, चिडचिड़ा और रोना हो गया था ।

चेतन को बचपन ही में अपने वातावरण की कटुता का आभास मिल गया था । एक दिन जब वह दूध न पी रहा था और माँ भरी कटोरी हाथ मे लिये उसे मना रही थी कि उसके पिता आ गये । एक बार प्यार से, दूसरी बार तनिक कर्कश स्वर मे और तीसरी बार गरज कर उन्होंने उसे

दूध पीने को कहा। जब इस पर भी उसने कटोरी को मुँह न लगाया तो तड से दो थप्पड चेतन के पिता ने उसके गालों पर जड़ दिये और क्रोध के आवेश मे उसे टाँग से पकड़ कर उल्टा लटका दिया। वे उसे इसी प्रकार पकड़ कर दो-एक चक्कर देते, यदि माँ लगभग रोते हुए इतना न कहती, "लाइए, अब पी लेगा।"

पिता ने उसे फिर सीधा खड़ा कर दिया। उनकी आँखों से चिन-गारियाँ निकल रही थीं। चेतन रोया न था। वह सहम गया था। जब माँ ने कटोरी उसके मुँह से लगायी तो उसने बरबस विष के घूँट की तरह दूध पी लिया; पर दूसरे ही क्षण उसे कै हो गयी। तब उसका मुँह धुलाते हुए, उसकी पीठ पर अतीव दुःख से हल्का-सा थपेडा जमाते हुए माँ ने आर्द्र कंठ से कहा था, 'जा कम्बख्त! तेरे भाग्य मे दूध है ही नही।'

यह हल्का सा थपेड़ा जैसे अपने मे एक प्रवल प्रचालन-शक्ति रखता था। उसे आगे ही धकेले जाता था। पीठ पर माँ का थपेड़ा खा कर वह चला तो उसने पीछे फिर कर न देखा था। वह धीरे-धीरे आगे ही बढता गया। उस क्रूर पिता के नैकट्य से दूर होता गया।

सारा दिन वह निरर्थक, निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता रहा। गालो से ले कर कनपटियों तक उसे सारी जगह सुलगती हुई प्रतीत होती थी। किन्तु वाह्य पीड़ा के अतिरिक्त उसके नन्हे, अपरिपक्व अन्तर के किसी अज्ञात स्तर मे भी कुछ-न-कुछ सुलग रहा था—बिलकुल इसी तरह, जैसे अब अपने उस कमरे में बैठे, उसके अन्तर मे कही कुछ सुलग रहा था और वह उस स्थान को निर्दिष्ट न कर पा रहा था।

वह पिटते समय रोया न था, पर ज्योंही आँगन से बाहर हुआ था उसकी आँखो से अनायास अविरल आँसू बहने लगे थे। दिन भर ऐसा होता रहा था। जब-जब वह अपना हाथ अपने सुलगते गालो पर ले जाता, उसकी आँखों मे आँसू आ जाते।

पिटे हुए पिल्ले-सा वह सारा दिन इधर से उधर दुबका फिरता रहा था। दोपहर भर भुस की कोठरी में पड़ा रोता रहा था और साँझ समय

जव माँ को उसकी याद आयी थी तो वह पानी वाले सूने क्वार्टर में पीढ़े पर भूखा सोया पड़ा था।

०

बाहर वर्षा हो रही थी और चेतन अपने कमरे मे चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ था। अपने बचपन की इस घटना की याद आने पर उसकी आँखें भर आयी। अनायास उसका हाथ अपने गाल पर चला गया। धीरे-धीरे वह उसे सहलाता रहा। वही लेटे-लेटे, गाल को सहलाते-सहलाते उसके सामने अपने पिता की क्रूर-आकृति घूम गयी और फिर बचपन की वे समस्त घटनाएँ जब वह अपने उस क्रूर पिता के हाथो बुरी तरह पिटा था।

०

वह पाँच वर्ष का रहा होगा जब उसके पिता 'सैला खुर्द' स्टेशन पर नये-नये नियुक्त हुए थे। तब उन्होने उसे अंग्रेजी सिखाना आरम्भ किया था। वे अपने जीवन के आरम्भिक दिनो मे एक स्कूल मे अंग्रेजी के अध्यापक रहे थे और अध्यापकों के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि जीवन के आरम्भ मे, सौभाग्य या दुर्भाग्य से, जो एक बार अध्यापक बन कर छात्रो पर शासन जमाता है, वह जीवन भर अध्यापक बना रहता है और उसके अधीन रहने वालों को इस या उस विषय पर निरन्तर उसके भाषण सुनने पडते है। चेतन के पिता का विचार था कि उन दिनों स्कूलो में जिस रीति से शिक्षा दी जा रही थी, वह सर्वथा गलत थी। शिक्षा देने का ढंग तो उनके अपने समय ही का उत्तम था। स्कूल ही मे छात्र को इस ढंग से पढाया जाता था कि घर जा कर पढने अथवा रटने की उसे आवश्यकता ही न रहती थी। तभी उन्होंने उसी अनूठे ढंग से चेतन को शिक्षा देने का निश्चय किया। उनका दावा था कि छः महीने ही मे अपने विशेष ढंग से शिक्षा दे कर वे चेतन को मैट्रिक मे पढ़ने वालो के बराबर ले जायँगे।

चेतन की माँ को जव उनके इस निश्चय का पता चला तो वह डर से सहम गयी। अपना यह ढंग पण्डित शादीराम ने अपने बड़े लड़के पर

भी आज़माया था और फल यह हुआ था कि माँ को विवश हो कर उसे अपने मायके भेजना पड़ा था। उसने एक दो बार डरते-डरते कहा भी कि चेतन अभी बच्चा है, उसमें जान तो है नहीं, वह पढ़ेगा क्या ? पर उसके पिता 'सैंला ख़ुर्द' के स्टेशन पर नये-नये गये थे और उन्हें पीने-पिलाने वाले मित्रों का पता न था। इसलिए उनके पास अवकाश काफ़ी था। इस अवकाश को उन्होंने सार्थक बनाना ही श्रेयस्कर समझा। गाड़ी के स्टेशन से चले जाने के बाद वे घर आ जाते और चेतन को अपने उस विशेष ढंग से पढ़ाने का प्रयत्न करते।

सब से पहले उन्होंने चेतन को गीता के कुछ श्लोक रटाये 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि'....'कर्मण्येवाधिकारस्ते'....आदि-आदि। और जब चेतन ने श्लोकों को कंठस्थ करने में असाधारण मेधा का परिचय दिया तो चेतन के पिता ने सिर, नाक, आँख, कान, मुँह, टाँग, पैर आदि शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की अंग्रेज़ी बतायी। इसके बाद उन्होंने उसे कुछ अंग्रेज़ी शब्दों के हिज्जे सिखाने शुरू किये। धीरे-धीरे वे उसे ऐसे शब्दों के हिज्जों पर ले आये जिनमें कुछ अक्षर लिखे तो जाते हैं पर बोले नहीं जाते जैसे white, write, night, might आदि। चेतन को यह सब समझ में न आता। जब अक्षर लिखे जाते हैं तो बोले क्यों नहीं जाते ? पर पिता से पूछने का साहस उसे न होता। वह चुपचाप उन्हें रट लेता। पिता ने उसे जितने शब्द और जितने हिज्जे बताये, चेतन ने उन्हें तत्काल रट लिया। पण्डित शादीराम ने फ़तवा दिया कि बड़ा हो कर वह अवश्य डिप्टी कमिश्नर बनेगा। और अपने इस मेधावी पुत्र को डिप्टी कमिश्नर के योग्य बनाने में उन्होंने अपना कर्तव्य भी शीघ्रातिशीघ्र पूरा कर देना उचित समझा।

पढ़ने में बच्चे के उल्लास और पढ़ाने में पिता की तत्परता देख कर माँ का हृदय काँपा करता। किन्तु चेतन अपनी बाल-सुलभ-जिज्ञासा के कारण हर शब्द की अंग्रेज़ी पूछता और पिता सोल्लास उसे बताते।

शब्दों और उनके हिज्जों के बाद उन्होंने चेतन को अंग्रेज़ी के छोटे-

छोटे वाक्य बताने आरम्भ किये :

वह जाता है—He goes.

वह स्कूल को जाता है—He goes to school.

वह राम और श्याम के साथ स्कूल को जाता है—He goes to school with Ram & Shyam.

वह राम और श्याम के साथ ताँगे मे स्कूल को जाता है—He goes to school with Ram & Shyam in a tonga.

जब उसने ये वाक्य याद कर लिये और यह भी सीख लिया कि क्रिया के साथ s अथवा es कहाँ लगता है; I, we, you, they के साथ निरा go और he तथा she के साथ goes क्यो आता है, तो चेतन के पिता ने उसे भूत और भाविष्यकालिक वाक्य बताये । जब गाड़ी स्टेशन पर आती तो वे अपने इस मेघावी पुत्र को बुला लेते और बड़े गर्व-स्फीत स्वर मे गार्डो के सामने उससे अंग्रेज़ी के वाक्य पूछते । जब वह ठीक-ठीक बता देता और गार्ड आश्चर्य-चकित-से उस नन्हे से बालक की ओर ताकते रह जाते तो चेतन के पिता उसे उठा कर चूम लेते । उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें, पतली पैनी दूब की भाँति चेतन के कोमल गालो मे चुभ जाती, उसका साँवला रंग और भी साँवला हो जाता और जब पिता उसे नीचे उतारते तो वह भाग जाता और माँ को जा कर अपनी सारी कारगुजारी सुनाता। सुनते-सुनते माँ के होटों पर गर्वीली मुस्कान आ जाती, फिर सहसा वह मुस्कान विषाद की गहरी रेखाओ मे परिणत हो जाती । माँ चुपचाप शून्य मे देखने लगती और विषाद-रेखाएँ उसके होटो से फैल कर उसके सारे मुख-मडल पर छा जातीं ।

तभी एक दिन पण्डित शादीराम ने चेतन को उस समय बुलाया जब गाड़ी जा चुकी थी । बात यह थी कि उनका एक मित्र अपने दसवी श्रेणी मे पढने वाले लड़के के साथ 'राहो' जा रहा था । चेतन के पिता ने उसे गाड़ी से उतार लिया था और खाने की दावत भी दे दी थी और देसी शराब का एक अद्धा भी ठेके से लाने के लिए पानी वाले को भेज दिया

था। चेतन जब पहुँचा तो उसके पिता ने पहले बड़े अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में उसकी स्मरण-शक्ति और उसकी बुद्धि के चमत्कार का उल्लेख किया और फिर उन्होंने अचानक अपने उस मित्र के लड़के से दो-चार शब्दों के हिज्जे पूछे। कुछ उनकी सूरत, कुछ उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें, कुछ उनकी लाल-लाल आँखें, कुछ उनके स्वर की कर्कशता—उस बच्चे ने कई बार उनकी ओर देखा, पर कुछ उत्तर देने के बदले सहमा-सा चुप बना रहा। तब जैसे विजेता के उल्लास से उन्होने चेतन की ओर देखा और मूँछो को बल देते हुए कहा, "इधर-आओ।" चेतन का विचार था शायद वे उनके सिर पर प्यार से हाथ फेरेंगे या उसे उठा कर अपनी जाँघ पर बैठा लेंगे। पर जब उससे केवल इतना ही कहा गया, "इधर आओ!" और वह भी कुछ कर्कश स्वर मे तो यह मन-ही-मन किंचित डर गया, पर प्रकट साहस बनाये हुए पिता के पास चला आया।

तभी पानी वाला शराब की बोतल ले आया। बोतल को देखते ही चेतन के पिता की आँखो मे लाली के डोरे कुछ और गहरे हो गये और उनमे एक पाशविक-सी चमक झलक उठी। कॉर्क को खोलते हुए उन्होने चेतन से पूछा :

"सफेद की अंग्रेजी क्या है?"

"ह्वाइट।"

"यह तुम खड़े कैसे हो, सीधे खड़े रहो!"

चेतन सीधा खड़ा हो गया।

पानी वाले ने मेज पर दो कटोरियाँ रख दी। कॉर्क खोल कर थोड़ी-थोड़ी मदिरा दोनों कटोरियों मे उँडेलते हुए चेतन के पिता ने चेतन को हुक्म दिया।

"हिज्जे करो।"

"डब्लयू....डब्लयू....आई....टी, ई।"

"क्या?" चेतन के पिता बोतल को रखते हुए कड़के और सड़ से एक तमाचा चेतन के गाल पर पड़ा और कनपटी तक खाल सुलग उठी।

उसने हकलाते और काँपते स्वर मे गाल पर हाथ रखते हुए कहा, "नहीं जी, नही जी, डब्लयू, एच, आई, टी, ई।"

"पहले क्यों नही बताया ? मादर ...!" और एक थप्पड़ उसके दूसरे गाल पर पड़ा, और एक मुक्का उसकी पीठ पर।

चेतन डर से काँपने लगा। मुक्का इस जोर से उसकी पीठ पर पड़ा था कि उसकी पीठ दोहरी हो गयी थी। चेतन के पिता ने कटोरी मे पडी हुई शराब को एक ही घूंट में खाली करके मुँह बना कर कुल्ला किया और पानी वाले को गाली दी कि वह अचार क्यो नही लाया। पानी वाला अचार लेने के लिए भागा और चेतन के पिता चेतन की ओर मुडे। पर चेतन को इसके बाद कुछ भी याद नही। उसे कुछ ऐसा आभास है कि उसकी आँखों के आगे पर्दा-सा छा गया था—उसकी उस चेतना के आगे भी, जो उसके मस्तिष्क मे बैठी उसे हिज्जे, शब्द और वाक्य सुझाया करती थी। उससे दूसरे शब्दों के हिज्जे पूछे गये थे (वाक्य पूछने की नौबत ही न आयी थी) और न जाने कैसे, उसने काँपते-काँपते जो हिज्जे किये थे, वे सब-के-सब ग़लत थे। उसके पिता उसे उन्मादी की तरह पीटने लगे थे और उस गार्ड ने बड़ी कठिनाई से उसे चंगुल से छुडा कर दरवाजे के बाहर किया था।

चेतन स्टेशन के कमरे से निकला तो लज्जा, क्रोध और ग्लानि से उसका नन्हा-सा हृदय भरा आ रहा था। आँसू अनायास उसकी आँखों से बहे जा रहे थे। वह किधर जा रहा है, कहाँ जा रहा है, उसे कुछ बोध न था। वह रोता जा रहा था, हाथ की उल्टी तरफ से आँसू पोंछता जा रहा था और भर आने के कारण बार-बार नाक को ऊपर सुड़कता जा रहा था।

वह घर की ओर न गया था। न जाने क्यों माँ के सामने यो रोते जाने मे उसे लज्जा आ रही थी, शायद उसके नन्हे से हृदय मे कही नन्हा-सा अहं आ बैठा था और उसके अहं को माँ के सामने यो रोते जाना स्वीकार न था।

वह सीधा माल गोदाम में गया और गेहूँ की बोरियों में मुँह छिपा कर रोता रहा। पके हुए अनाज की सोंधी-सोंधी गन्ध उसके नथुनों मे प्रवेश करके एक विचित्र तन्द्रा-सी उत्पन्न कर रही थी। वह सो गया, किन्तु नीद ने उसके मन से उस लज्जा और ग्लानि के बोझ को हल्का न किया। वहीं सोते-सोते उसके सामने कुछ वैसा ही भयानक दृश्य आ गया और उसने स्वप्न मे अपने पिता को डाँटते सुना। वह डर कर उठ बैठा। उसने सुना, उसके पिता माल गोदाम की ओर आ रहे हैं। वह चुपचाप बोरियों से उतर कर खिसक गया।

माल गोदाम से निकल कर वह खेतों, खलिहानों मे घूमता रहा। उसे खाने-पीने की चिन्ता न थी। खो जाने का भय न था। वह घूमता रहा—निरर्थक, निरुद्देश्य, निरुत्साह!

....वह रहँट पर गया और कुएँ की जगत पर बैठ कर चुपचाप रहँट की रूँ-रूँ....रीं-री....सुनता रहा; किसान बच्चे को बड़े मजे से गाधी[1] पर बैठे, कभी-कभी टिटकारी भरते, बैलों को लगातार उसी चक्कर मे घूमते, रहँट की टिंडो[2] को भर-भर कर खाली होते देखता रहा।

....वह खेतों मे गया और कितनी ही देर तक वहाँ गेहूँ की बालियों को बैलो के खुरों के नीचे पिस कर दानों को छोड़ते; छाज की सहायता से भुस और दानों को अलग-अलग होते; साँघे और तंगली की मदद से दानों के ढेर बनते और बोरियों मे अनाज को भरे जाते ताकता रहा।

....वह चरसे पर भी गया। कितनी ही देर तक वह मन्त्र-मुग्ध-सा वहाँ खडा चरसे की 'लाओ'[3] को बैलों द्वारा खींचे जाते देखता रहा।

---

१. गाधी = बैलों के पीछे उन्हें हाँकने वाले के बैठने की जगह!

२. रहँट के कोहिरे पर आज-कल टीन के डिब्बे लगे होते हैं, जिसमें पानी भर कर नीचे से आता है। पहले उस पर मिट्टी के कूज़े लगे होते थे, इन्हें पंजाबी भाषा में टिंडे कहते थे।

३. लाओ = रस्सा।

जब बैल लाओ को ले कर नीचे को जाते तो हाँकने वाला तनी हुई लाओ पर बैठ जाता। उधर बैल ढलवान में पहुँचते इधर चरसा ऊपर आ जाता और किसान उसे थामते हुए जोर से संगीत भरे स्वर में हाँक लगाता— 'बेली रब्ब ओ!'[1] और चरसे से पानी की नहर बहने लगती। चरसे को खाली कर वह कुएँ में फेंकता। बैल फिर ऊपर को चल पड़ते; चर्खी पर से लाओ घिसटती जाती। अर्से तक वहाँ खड़ा चेतन निरन्तर यही क्रम देखता रहा।

किन्तु प्रकट ये दृश्य देखते हुए भी वह उन्हें न देख रहा था। उद्भ्रान्त-सा वह घूमता रहा था। उसकी आँखें तो इन सुखद दृश्यों के स्थान पर कोई दूसरा ही दृश्य देखती रही थी, अनायास भर-भर आती रही थी और वह उस हाथ से, जो उड़ती हुई मिट्टी के कारण मैला हो चुका था, अपने आँसू पोंछता रहा था। उसके नन्हें से हृदय में बवंडर-सा उठता-मिटता रहा था। उसे भारी दुख था। पर वह दुख निर्दोष पीटे जाने का था, सोचने का अवसर दिये बिना पीटे जाने का था, अथवा दूसरे लड़के के सामने पीटे जाने का, इसका विश्लेषण उसका नन्हा-सा मस्तिष्क न कर पा रहा था। उसके गालों की टीस मिट गयी थी, पर उसके नन्हे-से हृदय में जो घाव बन गया था, उसमें असह्य पीड़ा हो रही थी।

०

वहीं लेटे-लेटे चेतन को लगा कि वह घाव तो अब भी वहाँ है और उसमें पीड़ा उतनी ही तीव्र है। वह आज तक इस पीड़ा को कैसे भूला रहा? उसके सामने उसका अपना नन्हा उद्भ्रान्त रूप अपनी समस्त व्यथा के साथ आ गया। अपने क्रूर पिता का चित्र भी उसके सामने आया और उसके शैशव का वह दुखद अध्याय जैसे नये सिरे से उसके सामने खुल गया....

साँझ को जब वह थक कर और तनिक आश्वस्त हो कर घर आया था

१. भगवान ही मित्र है।

तो उसके घुटनों तक मिट्टी चढ़ी हुई थी, बाल बिखरे हुए थे, आँखें रोने के कारण उबल आयी थीं और मैले हाथों से बार-बार पोंछने से उसके चेहरे पर धब्बे बन गये थे। माँ उस समय गाय का दूध दुह कर उसे चूल्हे पर गर्म करने जा रही थी, चेतन को इस अवस्था मे देख कर उसने उसे छाती से लगा लिया। चेतन चाहता था उसके आँसू न निकलें, पर सहसा उसे रोना आ गया। किन्तु जब उसने देखा कि उसकी माँ भी रो रही है (कदाचित पानी वाले से उसे सब बात का पता चला गया था) तो वह आप-से-आप चुप हो गया। तब उसे चुप होते देख कर अथवा अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण माँ ने भी जैसे अपने आँसुओं को बरबस रोक लिया। उसे अपनी छाती से अलग किया और भड़ोली[१] मे उपलों[२] की आग पर सुबह से चढ़े हुए गाढ़े दूध की मलाई उतार कर उसके साथ चेतन को रोटी दी। जब वह खाने लगा तो माँ ने धीरे-धीरे, रसोई का काम करते-करते चेतन से हिन्दी शब्दों के अंग्रेजी अनुवाद, उनके हिज्जे और उन समस्त वाक्यों की अंग्रेजी सुनी जो चेतन के पिता ने उसे बताये थे। खाना खाते-खाते चेतन ने अपनी माँ को वे सब शब्द, हिज्जे और वाक्य ठीक-ठीक सुना दिये। वह न कही अटका, न भूला। किन्तु जब रात को पिता ने उसे सोते हुए झकझोर कर उठाया और शराब के नशे मे उसे अत्यन्त अश्लील गालियाँ देते हुए डाँटा कि वह इतनी जल्दी क्यों सो गया है और कुछ कठिन शब्दों के हिज्जे पूछे तो चेतन बिना अटके न बता सका। वह अटका कि उसके थप्पड़ पड़ा, थप्पड़ पड़ा कि उसे सब कुछ भूल गया। इसके बात उसे इतना स्मरण है कि वह भूलता गया और पिटता गया। हुक्के की नै से पिता ने उसे पीटा और एक बार जब पिटता-पिटता वह दीवार तक आ गया और नै बरामदे के खम्भे मे लगने से टूट गयी तो पिता ने अपने नशे और क्रोध के आवेश में चूल्हे मे से अधजली लकड़ी उठा ली। तब रोते-रोते माँ बीच में आ गयी। तीन-चार लकड़ियाँ उसके लगीं, एक बार चेतन के घुटने

१. भड़ोली = गुरसो = मिट्टी की बनी गहरी सिगड़ी जिसमें कंडों की आग पर दूध पकता है। २. उपला = कंडी।

पर पड़ा । घुटने का माँस उड़ गया । पिटते-पिटते उसका पेशाब निकल गया । वह न जाने कितना पिटता यदि परदादी गंगादेई अपनी अन्धी आँखों और कमान-सी कमर को लठिया के सहारे सम्हाले चेतन के पिता को गालियाँ देती हुई, उनके बीच न आ जाती और चेतन पर खीच कर मारी हुई लकड़ी उसकी पीठ पर न जा लगती और अपनी दादी को पीटने के पाप का खयाल करके चेतन के पिता का नशा न टूट जाता ।

०

शैशव की धुंधली गुफाओं से निकल कर ऐसी कई घटनाएँ चेतन के सामने आ गयी जिनके फल-स्वरूप वह आज ही की तरह खिन्न, क्लान्त, दुखी और व्यथित हुआ था । 'वह तो सदा ही पिटे हुए पिल्ले की तरह छिपता, डरता और दुबकता रहा है,' वह सोचने लगा, 'कभी अपने समवयस्क लड़कों से वह नही मिल पाया, उनके खेलों मे शामिल नही हो सका । बड़े भाई की तरह ताश, शतरंज, चौपड़, कनकौएबाजी और छोटे भाइयों की तरह गिल्ली-डंडा, कबड्डी, जंग-पलंगा, लम्बी-लम्बी-टीलो और दूसरे ऐसे खेलों मे भाग नही ले सका । वह सदा एकाकी बना रहा । पिता ने दोनों टाँगों से पकड़ कर शून्य मे उसे इस तरह झकझोरा था कि उसकी आँतें सदा के लिए निर्बल हो गयी थीं । उसका पेट दर्द किया करता था और कई बार ऐसी असह्य पीड़ा उसके सिर या पेट मे होती कि वह रात-रात भर रोया करता था । किन्तु इन सब बातों के बावजूद क्यों उसके मन में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हुई ? क्यों आज की तरह उसका मन प्रतिहिंसा से नही भर उठा ? क्यों वह कभी खिन्न मलीन हो कर नहीं बैठा ? वह तो सदैव चलता रहा । क्यों....?'

०

वह उठ कर बेचैनी से कमरे मे घूमने लगा ।

बचपन ही से अपने पिता के प्रति उसके मन मे (अज्ञात रूप से) सदैव के लिए एक आतंक, एक डर, एक तीव्र घृणा का भाव आ बैठा था ।

जिन दिनों उसके पिता मकेरियाँ के स्टेशन पर थे, उन्हें आय खूब होती थी। गार्ड और टिकट-चेकर उनसे सदैव कुछ-न-कुछ पाते रहने अथवा उनकी महफ़िलों मे दो चार पैग (मुफ़्त मे) चढ़ाते रहने के कारण उनके अधीन थे। इसलिए चेतन के सब भाई शनिवार के दिन, बिला-टिकट, मकेरियाँ जा पहुँचते और इतवार को जब वापस आते तो उनकी जेबें पैसों से भरी होतीं। वे उसे दिखा-दिखा कर, चिढ़ा-चिढ़ा कर खाते, खेल और खिलौने लाते, पर चेतन अन्यमनस्क-सा बना रहता। उसे अपने भाइयों के भाग्य से तनिक भी स्पर्धा, तनिक भी ईर्ष्या न होती। उस योगी ऐसा सन्तोष उसे प्राप्त रहता जिसने गहरे सोच-विचार के बाद इस असार-संसार के नश्वर सुखों से मुँह मोड़ लिया हो और मानवों की सुख-सम्पदा ने जिसे किसी प्रकार की ईर्ष्या अथवा डाह न होता हो। किसी लोभ पर भी उसे मकेरियाँ जाना स्वीकार न होता और फिर बिला-टिकट! इसे वह अपने पिता का (अज्ञात रूप से अपना) अपमान समझता था।

एक बार उसे विवश हो अपने पिता के पास जाना पड़ा था। घर में तेल खत्म हो गया था और वहाँ से तेल का कनस्तर लाना था। इस काम मे किसी तरह के पैसे मिलने की आशा तो थी नहीं और इतना भारी कनस्तर सिर पर उठा कर स्टेशन से घर तक, मील-डेढ़-मील लाने की बात थी। इसलिए उसका कोई भाई वहाँ जाने को तैयार न था। और लकड़ियाँ गीली होने के कारण आग जलाने मे उसके दादा को (जो उन दिनो रसोई का काम देखते थे) बड़ी दिक्क़त होती थी। जब पढ़ने-पढ़ाने के लिए ही तेल न था तो आग जलाने के लिए कहाँ से आता? इसलिए चेतन जाने को तैयार हो गया था।

चेतन का इरादा था कि वह टिकट ले कर ही सवार होगा, किन्तु पिता के डर से उसने न लिया था। पर गार्ड से भी वह कुछ न कह पाया था। पिता का आदेश था कि गाड़ी पर सवार होने से पहले गार्ड को यह बता दिया जाय कि मैं (या हम) पण्डित शादीराम स्टेशन मास्टर मकेरियाँ का पुत्र हूँ (या है) और उनसे मिलने जा रहा हूँ (या जा रहे हैं) और

यदि गार्ड परिचित न हो तो यह भी कहा जाय कि जल्दी में टिकट नहीं मिल सका—गार्ड से कुछ कहने का समय न हो, यह बात न थी। उसे यह सब कहने मे बड़ा संकोच हुआ था। वह कुछ कह ही न पाया था और चुपचाप जा कर डिब्बे मे बैठ गया था। जब टिकट-चेकर डिब्बे में आया तो उसे यह सब बताना चेतन को अपना अपमान लगा। उसने बिना कुछ कहे जुर्माने-सहित किराया टिकट-चेकर को दे दिया और रसीद ले ली। किन्तु जब चार स्टेशन बाद वह मकेरियाँ पहुँचा और पण्डित शादीराम ने उसी टिकट-चेकर को उसका परिचय दिया (पण्डित जी हर टिकट-चेकर और गार्ड को अपने पुत्रों से परिचित करा देते थे ताकि उन्हे सफर करने मे दिक्क़त न हो) तो टिकट-चेकर ने खेद के स्वर मे उन्हें बताया कि वह तो उके बिला-टिकट यात्रा करने के अपराध मे पहले ही चार्ज कर चुका है। तब दो थप्पड़ पण्डित जी ने चेतन के गाल पर जमाये कि उसके मुँह से क्यों न कुछ फूटा और क्यों उसने यह न बताया कि वह पण्डित शादीराम स्टेशन मास्टर मकेरियाँ का लड़का है और उनसे मिलने जा रहा है।

चेतन कहना चाहता था, 'मै बे-टिकट यात्रा करने को गुनाह समझता हूँ!' पर वह केवल अपने पिता की ओर टेढ़ी दृष्टि से देख कर चुप हो रहा।

घर पहुँच कर पण्डित जी ने पत्नी से इसी बात का उल्लेख करते हुए कहा कि चेतन अत्यन्त कायर और भीरु है। "मैं इन साले गार्डों और चेकरों को इतना खिलाता-पिलाता हूँ," उन्होंने सरोष कहा, "और इस साले से इतना भी नही कहा गया कि यह मेरा बेटा है और मुझसे मिलने आ रहा है। अब तो वे सब मुझे जानते हैं, न भी जानते हो तो किसी साले की मजाल है कि मेरे बेटे को चार्ज कर ले।" और मूँछों पर ताव देते हुए उन्होने कहा, "मलावा राम—टिकट-चेकर—अफसोस कर रहा था कि वह मेरे सब दूसरे बेटों को जानता है, इसी को उसने नहीं देखा। देखता वह क्या खाक?" पण्डित जी ने अपनी ओर से कहा, "इस साले

को तो यहाँ आते मौत आती है। यह दो शब्द भी कह देता तो वह इसे चार्ज न करता।"

और चेतन को गर्दन से पकड़ कर झकझोरते और दो चार 'मधुर वचन' सुनाते हुए पण्डित जी ने उसे आदेश दिया था कि वह अपने दिल में कुछ साहस पैदा करे—मरियल-सा न बना रहे। यदि उसे कभी टिकट-चेकर मिल जाय तो निडर हो उससे कह दिया करे कि वह अमुक स्टेशन मास्टर का लड़का है और उनसे मिलने जा रहा है। टिकट-चेकर उसे खा न जायगा। और उन्होंने उसे पुनः समझाया था कि यदि कोई ऐसा टिकट-चेकर मिल जाय जो उन्हे न जानता हो तो बेधड़क कह दिया करे कि गाडी चलने वाली थी, टिकट लेने का समय न था, इसलिए वह बैठ गया। मकेरियाँ जा कर वह उतरेगा और वहीं जुर्माना या किराया अदा करेगा, इससे पहले नही।

संध्या को जब चेतन तेल का कनस्तर लेकर लौटा था तो अपने पिता के प्रति उसके मन मे घृणा की एक और तह चढ गयी थी। वह समझ न पाता था कि माता और पिता मे से किसकी बात माने। माँ उसे सदैव सत्य बोलने, धर्म और पुण्य के काम करने की प्रेरणा देती थी और पिता सदैव उसे उलटी बात सुझाते थे। क्यों उन्होंने उसे सत्य बोलने पर पीटा, क्यों गालियाँ दी?

साँझ की गोधूलि रात की कालिमा मे परिणत हो चुकी थी। रेलवे रोड की सड़क उजड़ी और सुनसान पड़ी थी। (उन दिनों उस पर इतनी दुकानें और सिनेमा हाऊस न बने थे और वहाँ इतनी रौनक़ न होती थी।) वह सिर पर तेल का भरा कनस्तर उठाये सड़क की निस्तब्धता से भयभीत, कनस्तर के बोझ से दबा, धीरे-धीरे चला जा रहा था। उसकी गर्दन ऐंठ गयी थी, कमर दुखने लगी थी और निर्दोष पीटे जाने का ध्यान आ जाने से रोष के कारण आँखों से आँसू बह रहे थे। उसी तरह चलते-चलते उसने एक जगह रुक कर कुर्ते की बाँह से अपनी आँखों को पोंछा और प्रतिज्ञा की कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, वह कभी उस क्रूर, अन्यायी पिता

के पास न जायगा—कभी न जायगा वह ।

o

किन्तु उसे फिर वहाँ जाना पड़ा और वह भी एक लम्बे अर्से के लिए । वह आठवी मे पढता था कि उसे मलेरिया ने आ दबाया, और जब निरन्तर कई महीनों तक ज्वर से पीड़ित रहने पर उसे कुछ आराम आया तो डॉक्टर ने परामर्श दिया कि उसे तत्काल उस कल्लोवानी मुहल्ले के गन्दे वातावरण से निकाल कर खुली हवा मे ले जाया जाय । तब पिता ने उसे आदेश दिया कि वह बिना विलम्ब किये मकेरियाँ चला आये; जलवायु बदल जायगी और फिर मकेरियाँ के अस्पताल का डॉक्टर उनका मित्र है, किसी प्रकार का कष्ट होगा तो उपचार आसानी से किया जा सकेगा । और उसे विवश हो अपने पिता के पास जाना पड़ा था ।

वह महीना भर वहाँ रहा, किन्तु इस अर्से मे कभी अपने पिता के सामने न हुआ । वे घर आते तो वह स्टेशन पर चला जाता, स्टेशन पर जाते तो माल गोदाम की ओर खिसक जाता । माल गोदाम जाते तो घर आ जाता अथवा खेतो-खलिहानो की ओर निकल जाता या फिर किसी रहँट की जगत पर बैठा चुपचाप रहँट का मधुर मदिर स्वर सुनता । यहाँ तक कि एक दिन उसके पिता ने उसकी माँ से पूछ ही लिया, "चेतन इतने दिनो से आया हुआ है पर मैंने उसको सूरत तक नहीं देखी । वह मेरे सामने आता क्यो नही ? "

जब चेतन घर आया तो माँ ने हँसते-हँसते यही बात उससे पूछी ।

"मुझे उनसे डर लगता है," चेतन ने कहा ।

जब उसके पिता ने यह बात सुनी तो वे गरजे—"वह हरामजादा मेरा बेटा नही, कायर और नपुंसक ! "

चेतन ने उनका यह गर्जन सुन लिया । एक बगूला-सा उसके अन्तर मे उठा । दूसरे ही दिन वह चुपचाप गाड़ी पर सवार हो कर जालन्धर आ गया और यद्यपि उसने माँ से कहा था कि वह शीघ्र ही लौट आयेगा, किन्तु वह फिर मकेरियाँ नही गया ।

०

सारी-की-सारी घटना चेतन के सम्मुख घूम गयी और तभी उसे अपनी शंका का समाधान भी मिल गया। वह सोचता था कि उसके मन मे इस अन्याय, क्रूरता तथा अत्याचार के प्रति कभी प्रतिक्रिया क्यों नही हुई? अब उसे अचानक मालूम हुआ कि प्रतिक्रिया तो उसके मन मे अज्ञात-रूप से होती थी, किन्तु उसका पता उसे न चलता था। वह उसके अर्ध-चेतन मन मे होती थी, अपने उन अवसादमय क्षणो मे उस प्रतिक्रिया का रूप ज्ञेय हो कर उसके सम्मुख आ गया। पिट कर खेतों-खलिहानो मे उसका भटकना; प्रकृति के दृश्यों में निमग्न हो कर अपने मन की पीड़ा को भुलाना; बीमार रह कर अपने पिता की चिन्ता का कारण बनना; मकेरियाँ से भाग कर फिर वहाँ कभी न जाना—यह सब उस प्रतिक्रिया ही का तो अज्ञात-रूप था।

बात वास्तव मे यह थी कि उस प्रतिक्रिया को उसकी आँखों से छिपा लेने वाली, उस कटु-वातावरण मे रहते हुए भी, उसे उससे ऊपर उठाने वाली एक प्रबल शक्ति उसके अपने अन्तर मे अनजाने ही मे संचित होती रही थी। वह जब भी कटुताओं की चट्टानों से टकराया तो टुकडे-टुकड़े होने के बदले, सदा उसी शक्ति के बल पर उभरता रहा। उसी के बल पर खिन्न हो कर भी उसने खिन्नता अनुभव नहीं की। दुखी हो कर भी दुख को भूलता रहा। निराशा की गहन-निविड़ता मे आशान्वित रहा। उसका वह सन्तोष प्रतिक्रिया के अभाव के कारण न था, वरन इस आन्तरिक-शक्ति के संचय के कारण था।

०

किन्तु अब वह शक्ति उसकी सहायक क्यों नहीं होती? वह झुंझलाता, कविराज की धूर्त्तता को देख कर और यह जान कर कि वह शोषित है, वह इतना खिन्न, इतना अन्यमनस्क क्यो हो बैठा? क्यों पहले ही की तरह इस खिन्नता को झटक कर, स्वस्थ हो कर नहीं उठ बैठा?

०

साँझ का अंधकार प्रतिक्षण गहरा होता जा रहा था। बाहर अनवरत वर्षा हो रही थी। मकानों की छतें मुखर हो उठी थीं। रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था। परनालों का पानी शोर मचाता हुआ नालों मे मिल रहा था और नालों का पानी उन्मत्त हो उछलता-कूदता नीचे खड्ड मे चला जा रहा था। इस समस्त कोलाहल मे, बिजली जलाये बिना, अँधेरे ही मे चेतन सपने बिस्तर पर अन्यमनस्क पड़ा था। उस सारे कोलाहल मे उसे ऐसी नीरवता का आभास हो रहा था जो उसे निगले जा रही थी। पुरानी स्मृतियाँ नयी बन-बन कर उसके सामने आ रही थी और वह हर बार रो-सा उठता था। उसे लगता था जैसे सारी दुनिया मे वह अकेला है और सारी दुनिया उसका शोषण करने पर तुली हुई है।

यद्यपि वह आज भी दोपहर को बाजार न गया था और भूखा ही पड़ रहा था तो भी महज खाना खाने के लिए मिडिल बाजार जाने की इच्छा उसे बिलकुल न थी। दूध पी कर ही वह सो जायगा, उसने सोच रखा था और वही लेटा वह करवटें बदलता, उठता-बैठता, कमरे मे चक्कर लगाता अपने मन की गुत्थियों को सुलझाने-उलझाने मे निमग्न रहा था।

बाह्य कटुता के निरन्तर प्रहारों ने उसके अन्तर मे जिस शक्ति का उद्रेक किया था वह थी उसकी कल्पना-शक्ति। जब भी वह दुखी होता, पिटता तो इस दुख और कष्ट के संसार से निकल कर वह कल्पना के सुखद सुरम्य लोक में जा पहुँचता।

जब वह बहुत छोटा था, तब भी जब दिन के दुख से खिन्न क्लांत हो वह रात को लेटता तो सोने से पहले उसकी कल्पना उसके सम्मुख राम और सीता की मूर्तियों को ला खडा करती। राम उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते, सीता जी उसे अपनी गोद मे ले कर प्यार करतीं और वह पिता की मार-पीट, झिड़कियों और गालियों का दुख भूल जाता। उसके शरीर की समस्त पीड़ा एक मदिर मीठी सिहरन मे बदल जाती।

उसने माँ से उस गिलहरी की कहानी सुनी थी, जो रावण के विरुद्ध राम की सहायता को तैयार हो गयी थी। राम ने प्रसन्न हो कर प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरा था, जिससे गिलहरी की पीठ पर पाँच धारियाँ बन गयी थीं। अपने सपनों में उस प्यार भरे हाथ के नीचे वह उस गिलहरी ही की तरह दोहरा-सा हो जाता।

कभी वह वृन्दावन के काल्पनिक कुंजों में कान्ह के ग्वाल-बालों में जा मिलता और सुन्दर सुकोमल गोपियों के संग रास रचाता। उसकी माँ अथवा परदादी दिन में उसे जो कहानियाँ सुनातीं, रात को वह उन्हीं का नायक बन जाता। उसके अन्तर के किसी गुप्त स्तर मे अपने पिता के दुर्व्यवहार के प्रति घोर प्रतिक्रिया हो रही है, अपने इन सुख-स्वप्नो मे यह बात उसे कभी ज्ञात भी न होती। हो भी न सकती।

ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया उसकी कल्पना-शक्ति उसके सामने नित्य नये संसार बसाती रही। बाह्य-संसार में प्रेम से वंचित रह कर भी वह कल्पना-संसार में जी भर कर प्रेम पाता रहा; बाह्य-संसार मे उतना सफल न होते हुए भी स्वप्न-संसार मे सदैव सफल-मनोरथ होता रहा। शैशव से ले कर युवावस्था तक यही आन्तरिक कल्पना-शक्ति उसकी सहायक रही, उसको समस्त कटुताओं को भुलाये रही। चंगड़ मुहल्ले का कलुषित वातावरण, समाचार-पत्र की घुटी-घुटी, संकुचित, दम घोंटने वाली फ़िज़ा उसकी कल्पना के पारस को छू कर प्रशस्त, विशाल, सुखद सुरम्य, स्वर्णिम हो जाती। वह सोचता—इस वातावरण से वह एक दिन अवश्य ऊपर उठ जायगा; सम्पन्न, सुखी और सफल होगा। अपने अदम्य आशावाद के सामने वह घोर-से-घोर निराशा को भी परास्त कर देता।

उसकी कल्पना के सम्मुख जीवन का महासागर अपनी विशालता के साथ हिलोरें लेता था। अपने-आपको वह सदैव उसके तट पर खड़े चंचल-चपल ऊर्मियो को सोल्लास तकते पाता और सोचता—वह नौका ले कर इन उत्ताल तरंगों के वक्ष पर खेलता हुआ दूसरे किनारे जायगा; दूसरे किनारे—जहाँ सफलता है, सम्पन्नता है, सुख है। उसे अभी उपयुक्त

नौका नहीं मिली और वह किनारे ही पर भाग-दौड़ कर रहा है। पर वह अवश्य ही उपयुक्त नौका पा लेगा, इस बात का उसे विश्वास था। उसकी कल्पना उसके इस विश्वास की नीव को दिन-प्रतिदिन पक्का करती रहती थी।

०

लेकिन रुल्दू भट्टे के उस अंधकार भरे कमरे मे लेटे, अपने उन अवसाद के क्षणो मे, उसे अपना यह आशावाद मूर्खता से अधिक कुछ न लगा। पीछे मुड़ कर जो वह देखता तो उसे लगता कि वह तो सदैव ठगा जाता रहा है, उसकी कल्पना उसे सदैव धोखा देती रही है। उसके काल्पनिक प्रासादों की दीवारें सदैव ढहती रही है। तट के जिस-जिस भाग पर वह जा कर खड़ा हुआ, वह गिरता रहा है। उसके पाँवों के नीचे से मिट्टी सदैव खिसकती रही है और वह उछल कर दूसरी जगह जा खड़ा होता रहा है। कुन्ती के साथ सुखी जीवन बिताने के हौसले; नीला सुख के संसार की कल्पना; कविराज की सहृदयता सहारा पा कर असफलता के उदधि को लाँघ कर सफलता को प्राप्त करने के स्वप्न—सब मिथ्या ! सब झूठ ! ! मरीचिका की तरह निकट रह कर भी दूर ! ! ! कविराज ने उसे जो अवसर दिया था, उसे वह नौका ही तो समझा था। किन्तु जिसे उसने नौका समझा था वह तो ग्राह निकला। और तभी उस शक्ति का झूठ जो आज तक उसे दुख, दैन्य, निराशा और असफलता से ऊपर उठाती आयी थी, उसके उन अवसाद के क्षणों में कई गुना बड़ा हो कर, उसके सामने आ गया। उसका वह सम्बल ही छिन गया। यही कारण था कि जो शक्ति उसे बचपन से ले कर अब तक दुखी होना सिखाती आयी थी, आज ऐसा करने मे नितान्त असमर्थ थी। आज वह अपनी खिन्नता, दुख, अवसाद और निराशा पर विजय पाने मे सर्वथा असफल था।

उन निराश क्षणो मे जब उसकी आँखों से कल्पना का पर्दा हट गया उसने सारे संसार को उसके यथार्थ रूप मे देखा। उसने पाया कि उसके इर्द-गिर्द जो संसार है उसमे दो वर्ग हैं—एक मे अत्याचारी है, शोषक हैं;

दूसरे में पीड़ित हैं, शोषित हैं ! यह ज्ञान कि वह पीड़ित और शोषित है, उसे खिन्न किये दे रहा था ।

उसे लगता था जैसे वाटिका की वीथियों में घूमते-घूमते उसने एक सुन्दर, पर विषैले पौधे का पत्ता तोड़ कर मुंह में रख लिया है और उसकी जीभ और होंट ही नहीं, उसका सीना तक जल उठा है । यदि सफलता के लिए केवल श्रम दरकार होता तो वह जान लड़ा देता किन्तु छल-छिद्र, धोखा-कपट—क्या वह धोखे का धोखे, कपट का कपट से मुकाबिला कर सकेगा ? और यही उसके दुख का दूसरा कारण था ।

उसकी सरलता को पहली बार जग की धूर्त्तता का सामना करना पड़ा था । माँ ने पाप-पुण्य, भलाई-बुराई के जो विचार उसे घुट्टी के साथ पिलाये थे, वे उसे हवा होते दिखायी देते थे । जिस बुराई के साथ वह अन्तर मे लड़ता था, वह तो उसे सर्वव्यापी दिखायी देती थी । सत्य, शिव, में विश्वास करने वाले उसके विश्वासी, आदर्शप्रिय, भावुक हृदय पर पहली बार जग की व्यावहारिकता का प्रहार हुआ था और उसका दिमाग़ इतना कच्चा था, चोट इतनी अज्ञात थी कि वह उसके स्थल को न जान पा रहा था । उसे लगता था, जैसे वह अपने विश्वासो की चोटी से गिरता जा रहा है और सहारा पाने के लिए शून्य में हाथ-पाँव मार रहा है ।

कविराज तथा उनकी पत्नी की 'सहृदयता', सहृदयता तो दूर, उनकी दयानतदारी के सम्बन्ध में भी वह अपना पहला विश्वास खो बैठा था । अनन्त को शिमला आने से पहले लिखे हुए पत्र की एक-एक पंक्ति उसके सामने घूम रही थी । अपने इस विश्वास को खो देने का भी उसे दुख था। कविराज के वास्तविक रूप को जानने के साथ ही पहली बार उसे अपनी सरलता अथवा मूर्खता का बोध हुआ था और अपने-आपको मूर्ख मानना उसके अहं को स्वीकार न था ।

०

अंधकार और भी गहरा हो गया था । वर्षा उसी प्रकार हो रही थी, वह उसी प्रकार खिन्न-मलीन लेटा हुआ था कि उसे कविराज के जूतों को

परिचित ध्वनि सुनायी दी । वह हिला तक नहीं पूर्ववत लेटा रहा । तब उसके कमरे की बिजली जली और वाटरप्रूफ कोट उतारते हुए कविराज जी ने चिन्तित स्वर में पूछा कि बात क्या है, वह इस प्रकार क्यों लेटा हुआ है ?

चेतन चुपचाप लेटा रहा ।

कविराज उसकी चारपाई पर आ बैठे । कुछ क्षण तक उसकी कलाई थामे नाड़ी देखते रहे । फिर उन्होंने कहा, "तुमने कसरत आज कुछ ज्यादा कर ली है शायद, तुम्हें सिर्फ़ आराम ही करना चाहिए । गर्म-गर्म शरीर से तुमने स्नान कर लिया होगा, और क्या ?" और जैसे उन्होंने उसकी नित्य स्नान करने की सनक को लक्ष्य करके बेज़ारी से सिर हिलाया । उसे हर काम में मध्य मार्ग ग्रहण करने पर एक छोटा-सा लेक्चर दिया और अन्त में परामर्श दिया कि उसे उबलते हुए दूध में अंडे हल करके सेवन करने चाहिएँ । "मैं अभी स्वयं बना कर तुम्हारे लिए ले आता हूँ ।" वे व्यस्त होते हुए बोले । "गर्म-गर्म पी कर रजाई ओढ़ कर सो जाओ । भगवान ने चाहा तो सुबह तक तुम स्वस्थ हो जाओगे ।"

यह कह कर वे बरसाती लिये हुए अन्दर चले गये ।

"पाजी !" चेतन ने मन-ही-मन कहा । वह होंटों में उपेक्षा से हँसा ! फिर उसने करवट बदल ली और पेट के बल ही, बाँहों में सिर दे कर अन्यमनस्क लेटा रहा ।

बावन

तीन दिन तक कविराज चेतन को दूध और अंडे मिला कर पिलाते रहे और चौथे दिन (इतवार होने के कारण) उन्होंने उसे 'चैडविक प्रपात' दिखा लाने का प्रस्ताव किया ।

०

बर्फ़ीले पहाड़ों के हिम-मंडित धवल-शिखर जैसे प्रातःकालीन धुन्ध से ढँक कर मालिन दिखायी देते है, किन्तु सूरज के उदित होते ही धुन्ध के छँट जाने पर फिर चमक उठते है, उसी चेतन के हृदय की उज्ज्वल चोटियाँ क्षणिक दुर्बलता की न्ध से ढक गयी थी। उसकी कल्पना के चिर-प्रकाश और उसके हृदय के (आशावाद रूपी) धवल शिखरों के मध्य दुर्बलता-जनित निराशा की धुँधियाली-सी छा गयी थी, किन्तु धीरे-धीरे सूरज की किरणें धुँधयाली को बेध रही थी; क्षत-विक्षत हो, धुन्ध छट रही थी और उसके हृदय-शिखर पुनः अपनी धवलता, उज्ज्वलता, निर्मलता और अपनी समस्त चमक-दमक पा रहे थे।

वह सोचता—यदि आज वह दुर्बल है तो क्या कभी सबल न होगा? हताश हो कर वह क्यो बैठ गया है? सृष्टि मे चारों ओर वह दृष्टि दौड़ाता तो उसके अपरिपक्व मन को सब जगह जंगल का नियम (निर्बलो पर बलवान की विजय) क्रियाशील दिखायी देता। यदि इस संसार मे बलवान ही को जीत प्राप्त होता है तो बल का संचय क्यो न करे? क्या हुआ यदि उसके शारीरिक बल को उसकी कटु परिस्थितियों ने शैशव ही मे पंगु बना दिया है, क्या हुआ यदि उसे धन का बल भी प्राप्त नही, उसे बुद्धि! का बल तो प्राप्त हो सकता है। चाणक्य ने इसी बल के द्वारा नन्द से अपने अपमान का बदला लिया था। उसका राज्य उलट कर चन्द्रगुप्त को न केवल सिंहासन पर बैठाया, बल्कि उसको अपने इंगित पर चलाया; धनिक तो दूर रहे, बड़े-बड़े राजा महाराजो के मान मर्दन किये और महान कहलाये। तो फिर वह भी बुद्धि का बल क्यो न ग्रहण करे?....और उसी अंधकारमय कमरे मे खिन्न-मन बैठे-बैठे उसे लगा जैसे चाणक्य की आत्मा उसके अन्तर मे प्रवेश कर गयी है, उसे लगा जैसे वह स्वयं उस बुद्धिशाली का वंशज है। कल्पना-ही-कल्पना मे उसने अपने-आपको चाणक्य के रूप में देखा और पाया कि धन और बल की सत्ता उसके सामने अकिंचन हो कर रह गयी है। अपने-आप मे उसने अपार बल का अनुभव

किया । उसका क्रोध धीरे-धीरे शांत हो गया । और जब कविराज चैडविक प्रताप दिखा लाने का प्रस्ताव ले कर आये तो आँधी का वेग समाप्त हो चुका था और वातावरण पर हल्की-सी ठंडी-ठंडी बयार डोल रही थी ।

अपने उस नये आत्मबल के प्रभाव मे चेतन ने कविराज की ओर इस प्रकार देखा जैसे कोई वलशाली पुरुष किसी अकिंचन वौने की ओर देखता है । उसने चैडविक की बड़ी प्रशंसा सुनी थी, किन्तु उसे देखने का अवसर उसे न मिला था । कई दिन से अन्यमनस्क लेटा-लेटा वद उकता भी गया था, इसलिए प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया ।

कविराज ने अपनी सहृदय पत्नी से अवश्य ही कोई-न-कोई बहाना किया होगा, क्योकि यदि वे उसको बता कर चलते तो उनके पास थर्मास मे चाय अथवा दूध और रूमाल मे मठरियाँ अथवा बेसन आदि कोई-न-कोई घर ही मे तैयार की हुई मिठाई अवश्य होती, किन्तु जब चले तो वे बिलकुल खाली हाथ थे । लोअर बाजार पहुँच कर उन्होने एक रुपये की मिठाई खरीदी और चेतन के बार-बार अनुरोध करने पर भी वे उसे स्वयं उठाये रहे ।

मार्ग मे कविराज ने उससे अपनी पुस्तक के बारे मे दो-तीन विज्ञापन वनवा लिये । वे अपनी वाणी मे इतनी मिठास भर लेते थे और फिर इतनी सावधानी से बातें करते थे कि आदमी अनायास ही उनके जाल में फँस जाता था । अपने समस्त नये आत्मबल के बावजूद चेतन अभी उनके सामने बच्चा था । न जाने उन्होने किस प्रकार बातों का सिलसिला शुरू किया किन्तु धीरे-धीरे वे उसे विज्ञापनबाजी पर ले आये । आधुनिक युग मे विज्ञापनबाज़ी के महत्व पर उन्होंने छोटा-सा भाषण दे डाला :

"आज का युग विज्ञापनबाज़ी का युग है," उन्होने कहा, "आज विनम्रता से, गुण के पारखियों की गुणग्राहकता पर विश्वास करके, काम नही चलता, बल्कि छत पर खड़े हो कर डंके की चोट अपनी चीज का, अपने आविष्कार का, अपनी कला का, अपनी कृति का, अपने चरित्र और उसके गुणो का ढिंढोरा पीटने ही से जनता में सुनवाई होती है । सफल

व्यक्ति के लिए बुद्धिमान होना, किसी उपयोगी चीज़ का आविष्कार करना, अथवा किसी कला-कृति का सृजन करना ही यथेष्ट नही, सफल विज्ञापनबाज होना भी आवश्यक है। विनम्र व्यक्ति आज की दुनिया में मरु का फूल हो कर रह जायगा, जनता के गले का हार बनना उसके भाग्य मे नहीं।"

और कविराज जी अपने प्रिय विषय 'मै' तक पहुँच गये और बोले, "मेरी सफलता का भेद दूसरी बातो के अतिरिक्त इसमें भी निहित है कि मैंने अपनी औषधियों का, अपनी पुस्तकों का बड़ी चतुराई से विज्ञापन किया है। जनता को पता भी नहीं चला और पुस्तकें और दवाइयाँ उसके दिल में घर कर गयीं। अवकाश का समय मैंने सदैव नयी स्कीमे बनाने अथवा नये विज्ञापन सोचने में लगाया।" और सहसा अपने मन्तव्य पर आते हुए उन्होने कहा, "मैने अभी कल दो विज्ञापन बनाये हैं। मै शिमले मे पहली बार आया हूँ, रोगी अभी उतने आते नहीं। आयें भी कैसे ? उन्हे पता भी हो कि मै यहाँ आ गया हूँ। लेकिन मै कोशिश कर रहा हूँ कि शिमला और दूसरे निकटवर्ती स्थानो के लोग मेरे नाम से अच्छी तरह परिचित हो जायँ। दवाखाना अपने मे स्वयं एक बड़ा विज्ञापन है। मै जब भी किसी पहाड़ पर जाता हूँ, वहाँ अपने निजी मकान के अतिरिक्त दवाखाने के लिए अवश्य स्थान लेता हूँ। बेकार बैठे सेहत बनाना मुझे पसन्द नहीं और घर मे काम हो नही सकता। दवाखाना, एक तरह से न केवल मेरे ऑफ़िस का काम देता है, बल्कि विज्ञापन का भी। देश के विभिन्न प्रान्तों से सैर को आने वाले बाजार से गुज़रते समय मेरे नाम से परिचित हो जाते है। शिमले मे भी जब से आया हूँ, कुछ-न-कुछ कर ही रहा हूँ। मिडिल बाज़ार की समस्त दुकानों, लोअर बाज़ार के समस्त होटलो और तंदूरों के अन्दर मैंने अपनी पुस्तक 'विवाह के भेद' के विज्ञापन लगवाये है म्यूनिसिपेल कमेटी अपनी सीमा के अन्दर विज्ञापन लगाने अथवा विज्ञापन बाँटने की आज्ञा नहीं देती। इसलिए मै जयदेव को साथ ले कर भराड़ी, संजोली, छोटे शिमले आदि निकटवर्ती बस्तियों मे (जो पहाड़ी

रियासतों के अन्तर्गत हैं) बड़ी-बड़ी चट्टानों और दीवारों पर अपनी पुस्तको के नाम लिखवा आया हूँ। और तो और, सोलन को जाने वाली सड़क पर (कमेटी की सीमा के बाहर) दूर तक मैंने चट्टानों और पत्थरों पर अपनी पुस्तकों के नाम लिखवा दिये हैं। लाभ यह होगा कि मोटरों से आने-जाने वाले उनसे परिचित हो जायँगे। एक ही नाम जब बार-बार आँखो के आगे आता है तो वह मानसपट पर अंकित हो जाता है। और इस बहाने सैर भी हो जाती है और काम भी।"

अपनी इस कारगुज़ारी पर वे हँसे और फिर उन्होंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा :

"मैं जिस पहाड़ पर जाता हूँ, वहाँ के निवास-काल मे अपनी पुस्तकों का पूरा-पूरा प्रचार करता हूँ, ताकि यदि फिर कभी मुझे वहाँ जाना पड़े तो किसी प्रकार का कष्ट न हो। पुस्तकें मैंने इस ढंग से लिखी हैं कि उन्हे जो पढ़ लेता है, वह इलाज-उपचार के लिए सीधा मेरे पास आता है।" अनायास उनका हाथ अपनी मूँछों पर चला गया। और आत्म-तुष्टि की अनुभूति से उनके होंटो की मुस्कान उनके सारे मुख पर फैल गयी। कुछ क्षण चुप चलते रहने के बाद वे बोले :

"मैंने विज्ञापनबाजी के नित्य नये ढंग सोचता हूँ। चाहता हूँ कि एक विज्ञापन दूसरे से न मिले। उसमे नवीनता हो, उपज हो, मौलिकता हो।"....और सहसा उन्होने दो एक विज्ञापन चेतन को दिखाये।

चेतन चुपचाप उनकी बातें सुनता चला आया था। एक-दो बार मन-ही-मन उन्हे गालियाँ भी दे चुका था और जब कविराज जी ने विज्ञापन दिखाये तो उसने बड़ी अन्यमनस्कता से उन्हे देखना शुरू किया, किन्तु पढ़ते-पढ़ते उसके अन्तर का कलाकार सजग हो उठा। "इनमे बारीकी नही," उसने कहा, "ये विज्ञापन स्पष्ट और अनगढ दिखायी देते हैं। तत्काल पता चल जाता है कि विज्ञापन है। विज्ञापन होना चाहिए जैसे संक्षिप्त कहानी। उसकी पहली पंक्ति ही पाठक के ध्यान को ऐसा बाँध ले कि वह अन्त तक बँधा चला जाय। अन्त पर पहुँच कर ही उसे मालूम

हो कि वह तो एक विज्ञापन पढ़ रहा था।"

और चलते-चलते उसने कविराज की पुस्तक 'विवाह के भेद' का विज्ञापन बनाया :

ट्रंक गुम हो गया

मैं इंग्लिस्तान से एस० एस० जहाँगीर पर आ रहा था। रास्ते में मेरा एक कीमती ट्रंक खो गया। वैवाहिक जीवन की समस्याओं पर लिखी और योरुप से खरीदी हुई बीसियों उत्कृष्ट और बहुमूल्य पुस्तकें उसमें बन्द थीं। बम्बई पहुँच कर मैंने इस बात की घोषणा पत्र-पत्रिकाओं में की थी कि जो व्यक्ति उस ट्रंक को मुझ तक पहुँचा देगा, उसे मैं ५०० रुपया पुरस्कार-स्वरूप दूंगा। अब इस सूचना द्वारा मैं अपनी वह विज्ञप्ति वापस लेता हूँ। जो भाई ट्रंक की खोज में लगे हों, वे अब कष्ट न करें, क्योंकि उन सब पुस्तकों का निचोड़ मुझे एक ही पुस्तक में मिल गया है, जिसे लाहौर के प्रख्यात वैद्य कविराज रामदास जी ने लिखा है और जिसका नाम सत्य ही उन्होने 'विवाह के भेद, रखा है।

—डी० आर० टैक्नाइट, गोरखपुर

पत्थर की गगनचुम्बी दीवार ऐसे पहाड़ में बहुत ऊपर, एक छिद्र में से पिघली हुई चाँदी की तरह, बीसियों पेड़-पौधों को नहलाता, फुहारें उड़ाता, चैडविक प्रपात एक विशाल रजत-पट की भाँति लहराता हुआ नीचे गिर रहा था। वह फुहार जैसे बिना स्पर्श मन को सब खिन्नता, सारी थकन, समस्त क्लान्ति को धो रही थी।

प्रपात के नीचे पहुँच कर कविराज उसके पास ही एक चट्टान पर बैठ गये। चेतन उनसे कुछ अंतर पर बैठा। यद्यपि प्रपात उनसे तनिक दूर गिरता था तो भी उसकी फुहार का कोई-कोई कण उड़ कर उन तक आ जाता था। कुछ देर तक दोनो चुपचाप प्रकृति के इस अनुपम सौन्दर्य को देखते रहे। फिर उन्होंने लोअर बाज़ार से ली हुई मिठाई खा कर ठंडा

पानी पिया। और फिर न जाने कुछ उमंग मे आ कर अथवा चेतन को कुछ उदास देख कर कविराज ने एक गाना सुनाया :

लंघ आ जा पत्तन झनाँ दा,
ओ यार,
आ जा पत्तन झनाँ दा ! [१]

उनके स्वर में इतनी मधुरता, इतनी आर्द्रता और इतनी लय थी कि चेतन चकित-सा, मुग्ध-सा उनका गाना सुनता रहा।

ठंडी वायु से हिलते हुए पेड़ों की मर्मर और प्रपात की मादक छर्र-छहर कविराज के गाने के लिए वाद्य-यन्त्रों का काम दे रही थी और ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरे उस नीरव स्थान में उनका स्वर झरने के कलकल नाद से मिल कर सारे वातावरण को एक विचित्र आर्द्रता से भर रहा था।

कविराज गा रहे थे और चेतन सोचता था—यह व्यक्ति, जिसे वह केवल एक चतुर व्यापारी, एक हृदयहीन शोषक समझता था, अपने वक्ष में हृदय भी रखता है ! इसने अवश्य ही कभी-न-कभी प्रेम भी किया है। चाहे अब उस प्रेम की चिनगारी दुनियादारी की राख के नीचे दब गयी हो, लेकिन वह एकदम बुझ नहीं गयी; कहीं उस व्यावहारिकता, चतुराई, व्यापार, प्रवंचना, छल-कपट के नीचे दबी पड़ी है। और चेतन ने सोचा —मनुष्य क्यो अपने-आप पर एक खोल चढाने को विवश है, क्या कोई ऐसी व्यवस्था नही जिसमे वह जैसा है वैसा रह सके; उसे छल-कपट, धोखे-धड़ी, शोषण और उत्पीड़न की आवश्यकता न पड़े। वह अपने गुणों को जिला दे, चमकाये, मन्द न पडने दे, इस प्रकार क़ैद न करे, दबा कर न रखे !—कितना दर्द है इस कंठ मे, कितना सुन्दर है यह गीत, कितना गीला, कैसी मनुहार है इसमें !

---

१. ऐ मेरे प्रिय ! चनाब (नदी) को पार करके मुझसे आ मिल—ओ मेरे प्रिय मुझसे आ मिल।

तेरी डाची दे गल विच टल्लियाँ,
वे मैं पीर मनावन चल्लियाँ,
चाहे बुरी आँ, ते चाहे भली आँ
अ यार,
आ जा पत्तन भनाँ दा ![1]

चेतन ने सोचा कि आयुर्वेदाचार्य के स्थान पर वे गायनाचार्य क्यों न बनें ? उसके ऐसा गला होता तो वह अवश्य ही एक प्रसिद्ध गायक बनता। इतना अमृत, इतनी मिठास ! यह कहीं बन्द करके रखने की चीज है ? वह तो उन्मत्त गाता फिरता, अपनी तानों से अपने वातावरण को गुंजाता फिरता, रस की धारें बहाता फिरता। और कविराज गा रहे थे :

साडे यार दी एहो निशानी आँ,
लक्क पतला ते गल विच गानी आँ,[2]
तेरा नाँ दिन रात ध्यानी 'आँ,
ओ यार,
आ जा पत्तन भनाँ दा ![3]

सुनते-सुनते नयी श्रद्धा से उसका मन प्लावित हो उठा। वह भूल गया कि कविराज शोषक है, व्यापारी है, दुनियादार है। उसके सामने रह गया केवल उनका कलाकार जो अनायास अपने आवरण को उतार कर गा उठा था; रह गया केवल मानव, जो उस स्वच्छन्द स्थान मे अपने स्वाभाविक बन्धनों से मुक्त होने के लिए तड़फड़ा उठा था; एक गायक,

---

१. तेरी ऊँटनी के गले में टल्लियाँ (घंटियाँ) हैं—तेरी खातिर मैं पीर की मन्नत मनाने चली हूँ। चाहे बुरी हूँ चाहे भली हूँ, ऐ मेरे प्रिय, चनाब को पार कर आ जा।

२. मेरे प्रिय की यही निशानी है। कमर पतली और कंठ में कवच है।

३. ओ प्रिय, मैं तेरे नाम का ध्यान करती हूँ। चनाब घाट पार कर आ जा।

जो अनायास रस के सागर उँडेल रहा था ! और कविराज ने गीत समाप्त कर दिया ।

"बहुत कम लोग है," कविराज जी ने गीत खत्म कर किंचित हँसते हुए कहा, "जिनको इस बात का पता है कि मै गा भी लेता हूँ ।" और अपनी रौ मे उन्होने एक बीस वर्ष पहले गाया जाने वाला गीत चेतन को सुनाया ।

दिन चढ़िया ते पै गयी जुदाई, वे नहीं कोई गल्ल पुच्छ लई
सस्सी चोरी चोरी प्रीत लगायी, वे नहीं कोई गल्ल पुच्छ लई
रात अँधेरी, वेले-कुवेले
माएँ नी ढूँढा जंगल, वेले
दिस्सदा नहीं मरा माही, वे नहीं कोई गल्ल पुच्छ लई
डूंघी नदी आ, तल्ला वे पुराना
मै अनतारू तरन न जाना
कंढे ते खड़ा मेरा माही, वे नहीं कोई गल्ल पुच्छ लई
दिन चढ़िया ते पै गयी जुदाई, वे नहीं कोई गल्ल पचछ लई[1]

शाम होने को आयी थी और चैडविक प्रपात को आने वाला मार्ग बहुत ऊबड-खाबड़ था । इसलिए जब कविराज ने दूसरा गीत समाप्त किया तो वे उठ खडे हुए । एक लम्बी साँस ले कर उन्होंने कहा, "चलो

---

१. दिन चढ़ते ही जुदाई हो गयी । कोई बात भी न कर सकी मैं ।

सस्सी ने चोरी-चोरी प्रीत लगायी, उसे बात करने का अवसर न मिला ।

अँधेरी रात में समय-कुसमय ओ माँ, मैं बेले वीराने ढ़ूँढ़ती हूँ, लेकिन मेरा प्रिय कहीं दिखायी नहीं देता ।

गहरी नदी है, नाव का तला पुराना है और मैं तैरना जानती नहीं और किनारे पर माही खड़ा है । (भगवान ही नौका को बचाये और उससे मिलाये ।)

दिन चढ़ते ही जुदाई हो गयी, कोई बात भी न कर सकी मैं ।

भाई ! इन गीतों का अन्त कहाँ, लेकिन दिन का अन्त तो आ पहुँचा है।"

०

वापसी पर कविराज ने अपने जीवन की कहानी छेड़ दी और जाने अथवा अनजाने मे वे उसे कितनी ही ऐसी बातें बता गये जो वे शायद किसी और को न बताते।

चेतन जान गया कि चार वर्ष के बदले उन्होंने केवल एक ही वर्ष आयुर्वेदिक कॉलेज मे शिक्षा पायी है और जब उन्होंने प्रैक्टिस आरम्भ की थी तो उन्हे आयुर्वेद का उतना ज्ञान न था। पर अपने परिश्रम, अध्यवसाय, निष्ठा और व्यवहार-कुशलता के बल पर उन्होंने इतनी सफलता, धन, वैभव और ख्याति पायी।

चेतन यह भी जान गया कि उन्होंने प्रैक्टिस का आरम्भ न केवल हर तरह की पूंजी के अभाव मे किया, बल्कि जब उन्होंने प्रैक्टिस आरम्भ की तो उनके सिर पर नौ हजार रुपया कर्ज था। कुछ रिश्तेदारों के साथ मिल कर उन्होने ठेकेदारी आरम्भ की थी और उसमें घाटा आ गया था। पास तो कुछ था नहीं जो दे देते, पर मन-ही-मन उन्होंने उस रकम को अपने ऊपर एक ऋण मान लिया।

"तब मेरे एक मित्र ने जिसे मै बचपन मे प्यार करता था मेरी सहायता की।" उन्होंने बताया, "आयुर्वेदिक कॉलेज मे तब एक ही वर्ष मे डिग्री मिल जाती थी। घर वालों से मेरी बनती न थी, इसलिए पत्नी को भी लाहौर ले आया और मेरा वह मित्र हम दोनों का खर्च भेजता रहा। फिर वह समय भी आया कि मुझे जिन लोगो का कर्ज देना था उनको मैने पाई-पाई चुका दी। यही नहीं, बल्कि वे मेरे ऋणी हो गये।"

चेतन की उत्सुकता उनकी जीवन-गाथा सुनने के बदले उनके मित्र के सम्बन्ध मे कुछ जानना चाहती थी। उसने उनकी बात काट कर पूछा, "फिर वह मित्र आप से नहीं मिला।"

कविराज जी की वाणी गद्गद् हो गयी। उन्होने कहा, "एक बार वह दवाखाने आया था। तब मैने उससे कहा, 'मै तुम्हारी क्या ख़ातिर

करूँ ? किसी चीज के लिए पूछते हुए भी मुझे शर्म आती है, क्योंकि सब कुछ तो तुम्हारा ही है ।' "

और उन्होंने उसे बताया कि किस प्रकार वे चंगड़ मुहल्ले में रहते रहे और उन्होंने स्वयं अत्यन्त विपन्नता के दिन देखे ।....और अपनी रौ मे वे एक अभिन्न मित्र की तरह संगत-असंगत, कथनीय-अथकनीय सब बातें उसे बता गये । और संध्या समय जब चेतन अपने कमरे में पहुँचा तो उसे लगा जैसे कविराज के प्रति उसके मन मे जितना क्रोध था, वह सब पिघल चुका है । तब यद्यपि उन्होने उससे दो-तीन विज्ञापन बनवा कर सप्ताह भर के पैसे वसूल कर लिए थे, और चेतन यह समझता था तो भी उसने वहीं शिमले मे ठहर कर उनकी पुस्तक समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया ।

जोवन की धूर्तता से उसकी भावुकता का यह पहला समझौता था ।

तिरपन

दोपहर को जब बाबू लोग दफ्तरों मे होते और गृहिणियाँ घर के काम-काज से निबट कर सैर या सामान खरीदने को निकल जाती या सो जातीं तो रल्दू भट्टे मे एक तरह की नीरवता छा जाती । ऐसे समय मे मन्नी प्रायः चेतन के कमरे की चौखट पर आ बैठती ।

मन्नी का आना कुछ निश्चित न था । वह रोज आती हो, यह बात भी न थी । जब बीबी जी सो जाती अथवा बाहर जाते समय उसे साथ न ले जातीं और छोटे काका रिरियाना भूल कर निद्रा मे मग्न हो जाते तो वह अन्दर के दरवाजे की चौखट पर आ बैठती । किन्तु इतने ही से शिमले मे चेतन का प्रवास सह्य हो जाता । अपनी शोषित और हीनावस्था

पर विचार करता हुआ जब वह खिन्न-मन होता तो मन्नी के सामने सब बातें रख कर वह हल्का हो जाता और पुस्तक को आगे बढाने के लिए नव-स्फूर्ति पा जाता।

मन्नी के प्रति चेतन का आकर्षण आरम्भ मे कुछ शारीरिक ही था। शिमले को आते हुए, उस ऊमस और गर्मी की रात में जागते हुए, अपने उस आन्तरिक उल्लास के प्रकाश में, मन्नी उसे सुन्दर लगी थी। लम्बे-तगड़े, बर्बर और बलिष्ठ यादराम के मुकाबिले मे वह उसे एक चिडिया-सी दीखी थी। जब शिमले मे आ कर दोपहर को कभी-कभी वह उसकी चौखट पर बैठने लगी तो चेतन को वह किसी हिंस्र पशु की बर्बरता से भयभीत मृगी के समान लगी थी। उसे महसूस हुआ जैसे वह उसके अपेक्षाकृत संस्कृत रूप ही की ओर आकर्षित हुई है। शुरू-शुरू मे जब वह आती तो चेतन का हाथ अनायास अपने बालों पर चला जाता और उसकी अँगुलियाँ धीरे-धीरे बिखरी, उलझी लटों को सुलझाने लगती। वह उठ कर कमरे मे चक्कर लगाता-लगाता, मन्नी से बातें करता-करता, मैंटलपीस पर पडे हुये शीशे के टुकड़े मे अपना चेहरा देख कर आश्वस्त हो जाता कि वह मन्नी के बर्बर पति से चाहे सुन्दर और बलिष्ठ न हो, पर उससे कहीं अधिक संस्कृत दिखायी देता है। किन्तु इस बीच मे मन्नी ने तनिक भी आगे क़दम नहीं बढाया, कोई ऐसी बात नहीं की जिससे चेतन को आगे बढने का साहस होता। वह आती, चौखट पर बैठ जाती, उसके सुख-दुख की बातें सुनती, अपने सुख-दुख की बातें कहती और जब नीचे सीढियों मे, अथवा दूसरे कमरे मे बीबी जी की पद-चाप सुनायी देती, या छोटे काका जाग कर रिरियाने का क्रम शुरू कर देते तो वह धीरे-से किवाड लगा कर खिसक जाती।

मन्नी का पति यादराम छः फुट लम्बा, हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर व्यक्ति था। कविराज जी के दवाखाने मे औषधियाँ कूटने का काम करता था। इस काम के लिए तब उन्होने मशीन न लगायी थी और यादराम ही मशीन का काम देता था। वह सचमुच मशीन था। उसमे अपार, अथक

बल था। किन्तु इन सारी बातो के होते, यद्यपि उनके विवाह को तीन वर्ष हो चुके थे, मन्नी की गोद पुत्र-रत्न से खाली थी और कविराज जी अपने प्रसिद्ध औषधि 'पुत्र दाता' से अपनी इस नौकरानी को कुछ भी लाभ न पहुँचा सके थे। मन्नी के शरीर मे, उसकी आकृति मे, उसकी आँखो मे, उसके लटके-लटके, मीठे-मीठे, भीगे-भीगे स्वर मे एक तरह की भूख छिपी रहती थी। उसी ने चेतन को बहुत देर तक भ्रम मे डाले रखा, किन्तु धीरे-धीरे उसकी वास्तविकता चेतन पर खुल गयी।

मन्नी कविराज जी के छोटे बच्चे की देख-रेख करने पर नियुक्त थी। तेरह-चौदह वर्ष के बाद कविराज जी के यह दूसरा पुत्र हुआ था। पहले और दूसरे पुत्र के जन्म मे इतने वर्षों का अन्तर आत्म-निग्रह का फल था अथवा पहले बच्चे के जन्म के बाद उनकी पत्नी के रोग ग्रसित होने का, यह तो नही कहा जा सकता, किन्तु कविराज उसे अपने आयुर्वेदिक-परिज्ञान का ही फल बताया करते थे। जब उनके मित्र, इस अन्तर का ज़िक्र करते हुए, इतने वर्षो बाद पुत्र का सुख देखने पर उन्हे बधाई देते तो कविराज उनका धन्यवाद देने के साथ बातों-बातों मे बड़े गर्व से इस बात का उल्लेख कर देते कि बच्चा और वह भी नर बच्चा, पैदा करना तो उनके आयुर्वेदिक ज्ञान का एक साधारण-सा चमत्कार है। उनकी प्रसिद्ध औषधि 'पुत्र दाता' यदि सावधानी से, आदेशानुसार, सेवन करायी जाय तो निश्चय ही बालक उत्पन्न होता है। रही इतने वर्षो के अन्तर की बात, सो उनकी दूसरी प्रसिद्ध औषधि 'निरोध' का सेवन जितने अर्से के लिए कोई चाहे, सन्तान-उत्पत्ति को रोक सकता है। प्रति वर्ष बच्चे पैदा करते जाने मे उनका विश्वास नही। उनके विचार मे तो पहले और दूसरे बच्चे मे तेरह-चौदह वर्ष का अन्तर अवश्य रहना चाहिए....और अपनी इस धारणा के लिए वे अजीबोग़रीब युक्तियाँ देते।

चेतन यह सब सुनता तो उस महान प्रवंचक के प्रति अत्यन्त क्रोध से उसका तन-मन जल उठता; कभी इतना झूठ इतनी सफ़ाई से निस्संकोच बोल सकने की क्षमता के समक्ष उसका मस्तक नत हो जाता; कभी एक

विषादमयी मुस्कान उसके होंटों पर फैल जाती और कभी वह झुँझला उठता।

वह अच्छी तरह जानता था कि कविराज के घनिष्ठ मित्र डॉ० मेला राम मलहोत्रा पुत्र-सुख की आकांक्षा मन में लिये हुए परलोक सिधार गये, किन्तु एक बार छोड़, तीन बार अपनी पत्नी को 'पुत्र-दाता' का विधिवत, सेवन कराने के बावजूद, उन्हें वह सुख प्राप्त न हुआ। उनके घर पाँच लड़कियाँ उत्पन्न हो चुकी थीं जब उन्होंने कविराज जी से परामर्श लिया। जब दो बार 'पुत्र दाता' के सेवन कराने का फल भी विपरीत ही हुआ और उन्होने कविराज जी से शिकायत की तो उन्होंने कहा, "आप कदाचित विधिवत सेवन नही कराते, ज़रूर असावधानी से काम लेते हैं, पूरा परहेज नही कराते। नहीं तो यह कैसे सम्भव है कि 'पुत्र दाता' का फल न हो। लिखित आदेश मे जो दिन अथवा समय दवाई देने के लिए निश्चित है, उसी दिन और समय दवाई खिलाइए, अनुपात और परहेज़ का ध्यान रखिए। मेरे पास हजारों सर्टिफिकेट हैं कि 'पुत्र दाता' अचूक औषधि है।" तब आठवीं बार डा० महोदय ने फिर दाँव लगाया। दाँव को सफल बनाने के लिए पूरे ध्यान से दिन और समय का ख़याल रखते हुए 'पुत्र दाता' का सेवन कराया। स्वयं भी पूरा-पूरा परहेज रखा। पर इस बार उनके यहाँ जुड़वा लड़कियाँ पैदा हुईं और सम्भावित पुत्र संतति के साथ-साथ डॉ० महोदय की पत्नी भी चली गयीं। इसी ग़म मे दो वर्ष बाद उन्होने स्वयं प्राण त्याग दिये।

०

कविराज जी का यह दूसरा पुत्र अपनी माँ को अतीव पीडा देने के पश्चात उत्पन्न हुआ था। यद्यपि कविराज शैशव ही से उसे प्रतिभा-सम्पन्न और कुशाग्र-बुद्धि समझते थे, किन्तु उसकी माँ उसके हाथों बड़ी दुखी थी। जन्म के अवसर पर होने वाले कष्ट के अतिरिक्त उसके जन्म के बाद बीबी जी की आँतों मे निरन्तर पीड़ा रहने लगी थी। फिर यह कुशाग्र-बुद्धि शिशु अपनी माँ के दुख को न समझ कर निरन्तर रिरियाया

करता जिससे बीबी जी की चिड़चिड़ाहट बढ़ कर हिस्टीरिया बन जाती थी और उनके मस्तक की लकीरों मे वृद्धि हो जाती थी और उन लकीरो और उस चिड़चिड़ाहट के कारण कविराज जी की शान्ति भंग हो जाती थी।

उन्हीं दिनों यादराम ने बच्चे के जन्म की खुशी में अपनी पगार बढाने की माँग की, "मेरी मेहरिया गाँव से आ गयी है सरकार, इत्ते पैसे से हम दो की गुजरान नही हो सकती," उसने एक दिन कविराज जी का रुख पा कर कहा, "भगवान ने आपके घर लाल दिया है। कुछ हम ग़रीबों पर भी दया करें।"

कोई हाजतमन्द अपनी हाजत प्रकट करे, और कविराज पूरा न करें, यह भला कैसे सम्भव था। उन्होंने उसकी सहायता करने की सूरत सोच निकाली, बड़ी चतुराई से (उस पर कृतज्ञता का बोझ लादते हुए) उन्होंने उसे इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह मन्नी को उनके बच्चे को खिलाने और घर का छोटा-मोटा काम करने के लिए तैयार कर दे। उन्होने उसे समझाया कि इस प्रकार खाने-कपड़े की बचत हो जायगी और तीन रुपये वे उसे जेब खर्च के लिए दे दिया करेंगे। "अरे भाई तुम दवाखाने मे काम करते हो तो वह घर मे बैठी उदास हो जाती होगी।" उन्होने उससे कहा, "घर के काम-काज और बच्चे को खिलाने-पिलाने मे उसका दिल भी लगा रहेगा, तुम्हे पैसे भी ज्यादा मिल जायँगे,!....और तुम्हे क्या चाहिए ?... मै तो तुम्हारे हित के लिए कह रहा हूँ, नहीं मेरा क्या है, मैं कोई आया रख लूँगा।"

यादराम ने उनका यह परामर्श कृतज्ञता के साथ मान लिया था और उनके एहसान के बोझ तले दब कर सोलहो आने मशीन बन गया था।

किन्तु मन्नी उतनी खुश न थी। उसके हृदय मे एक इच्छा धीरे-धीरे उद्विग्न हो कर आकांक्षा का रूप धारण करने लगी। कविराज जी के इस बच्चे को खिलाते-पिलाते, हँसते-खेलते, उसका हृदय अपने बच्चे—अपने

रक्त-माँस के बच्चे को अपनी बाँहों में भरने, हँसाने-खेलाने, हवा में उछालने को आतुर हो उठता था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसकी यह आकांक्षा दबी रह कर भी ऊपर उठती गयी। लेकिन वह शायद वन्ध्या थी और जैसा कि चेतन को बाद में मालूम हुआ आपरेशन के बिना उसके बच्चा न हो सकता था।

वह तो शायद आपरेशन के लिए तैयार हो जाती और शायद यादराम भी तैयार हो जाता, किन्तु कविराज तैयार न थे। वे इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि उनका बच्चा इतना बड़ा हो जाय कि उसे मन्नी की आवश्यकता न रहे। वह मन्नी से हिल गया था और इतने सस्ते मे दिन भर के लिए नौकरानी न मिल सकती थी। इसलिए वे मन्नी को आशा बँधाये रखते थे कि आपरेशन के बिना ही वे उसका इलाज कर देंगे। मन्नी इसी आशा पर न केवल और भी ध्यान से उनके बच्चे की देख-रेख करती, बल्कि ज़रूरत पड़ने पर रसोई के कई छोटे-मोटे काम भी कर देती।

और शायद मन्नी के इसी अभाव के कारण चेतन के प्रति उसके आकर्षण मे मातृत्व की भावना भी मिली हुई थी। हो सकता है कि जिस प्रकार चेतन उसे अपने मन की बातें सुना कर हल्का हो जाना चाहता था उसी प्रकार मन्नी भी उसमें एक हमदर्द को पा कर उसकी चौखट पर आ बैठती हो, किन्तु चेतन को मन्नी से जो सहानुभूति थी, उसकी अपेक्षा उसके प्रति मन्नी की समवेदना कहीं अधिक तरल, कहीं अधिक स्निग्ध थी। उस रात गाड़ी के डिब्बे में बैठे-बैठे जो मन्नी सहसा उसके निकट आ गयी थी तो उसे भ्रम हुआ था कि शायद उसके प्रति मन्नी का आकर्षण भी शारीरिक ही है और उसने इसी भ्रम मे एक दो हरकतें भी की थी, किन्तु शिमले में आ कर मन्नी के व्यवहार से चेतन को भली-भाँति ज्ञात हो गया कि वह तब भी ऐसा न था। उसमे वासना से कहीं अधिक सम्वेदना और सहानुभूति थी। चेतन के उस अस्वस्थ शरीर; उसके पीले, ज़र्द मुख, उसके लम्बे, रूखे बाल और मैल से सने पाँव देख कर क्षण भर के लिए

अनायास ही शायद उसके हृदय की माता सजग हो उठी थी और उसके मुँह से निकल गया था—'नीद नहीं आती बाबू जी !' उसके इस आदर और संकोच का कारण शायद वर्ग-विषमता, अजनबीपन और वयस की बराबरी थी। यदि कही वह आयु मे बड़ी होती तो कहती, 'तुम्हे नीद नहीं आती बेटा !' और वह उसके होंटों की मुस्कान ! चेतन ने उसका जो अर्थ लगाया था, वह शायद उसके अपने हृदय की मुस्कान का प्रतिरूप था। नही तो मन्नी के होंटों पर शायद वह संकोच ही की परिचायक थी। शिमले मे आ कर जब वह संकोच दूर हो गया तो भी उसकी उस मुस्कान मे कभी वासना का रंग नही आया। हाँ चेतन के प्रति उसकी सहानुभूति अधिक स्निग्ध, करुण और तरल होती गयी। वह जब बाहर गया होता, मन्नी बिना कहे उसका कमरा झाड़ देती; उसकी पुस्तकें करीने से लगा देती और चेतन—जिसे कभी न पूरे तौर पर माँ का प्यार मिला था और न बहन का—धीरे-धीरे इस प्यार की महत्ता समझने लगा था। उसे अपने भ्रम का पता चल गया था और क्योकि मन्नी आयु मे उसके बड़े भाई की आयु के बराबर थी इसलिए वह उसे बड़ी बहन की तरह मानने लगा था।

मन्नी उसकी बातों को कुछ अधिक समझ न पाती थी। उसे उचित सान्त्वना भी न दे पाती थी। बस सुन भर लेती थी। किन्तु इतने ही से चेतन के हृदय का बोझ हल्का हो जाता, उसकी खिन्नता मिट जाती और वह स्वस्थ हो कर काम मे जुट जाता।

०

लेकिन मन्नी का आना कुछ निश्चित न था। वह उस समय आती जब उसे आने की सुविधा होती, न कि उस समय जब चेतन चाहता, और कई बार चेतन अपने एकाकीपन से उकता जाता। वह चाहता मन्नी आ जाये, उससे दो बातें करके वह हल्का हो जाय, पर वह न आती और उसका यह एकाकीपन उसके लिए असह्य हो उठता।

चेतन वास्तव मे एक घरेलू व्यक्ति था। अपने पास माँ, भाई, बीवी,

अथवा किस घनिष्ठ मित्र की उपस्थिति उसे अनिवार्य-सी लगती थी। अपने बड़े भाई से वह इस तरह प्यार करता आया था जैसे वे उसके छोटे भाई हों। उसके साथ निरन्तर रहने के कारण वे उसके जीवन का अंग बन गये थे। बचपन के कुछ वर्षों को छोड़ कर वह सदा उनके संग रहा था। उनके दोष छिपाता रहा था। उन्हें हर प्रकार की सहायता देता रहा था। किन्तु उसने यह कभी न सोचा था कि उसके इस निकम्मे बड़े भाई का अस्तित्व उसके लिए कितना ज़रूरी है। वह कभी उद्विग्न होता था, अपने उन्ही बड़े भाई के पास जाता। अपनी सब उद्विग्नता उनके सामने रख देता। कई बार वे उसे सलाह देते, कई बार न भी दे पाते, किन्तु उनको सुना कर ही वह अपने दुख के भार से हल्का हो जाया करता था। फिर जब वह प्रसन्न होता, महत्वाकांक्षाओं के पंखों पर उड रहा होता और अपनी सब स्कीमें, अपने सब इरादे किसी के सामने रखने को आतुर होता, वह अपने उन्ही भाई साहब के पास जाता और अपनी महत्वाकांक्षाएँ उनके सामने रख कर आत्म-विश्वास, साहस और जीवन संघर्ष मे जूझने की शक्ति, पा लेता। वे सदा उसका साहस बढ़ाते, सदा उसे प्रोत्साहन देते, उसकी महत्वाकांक्षा का समर्थन करते। शिमले के अपने प्रवास से पहले चेतन ने कभी यह जाना था कि उसके बड़े भाई की सहानुभूति, सम्वेदना, प्रोत्साहन और परामर्श उसके लिए कितने मूल्यवान हैं।

अपने इस एकाकीपन से कई बार वह इतना ऊब उठता कि अनन्त को पत्र लिखने की सोचता। पहले भी जब भाई साहब पास न होते या किसी कारणवश वह उनसे बात न कर पाता था तो वह अनन्त ही के पास जाता था। वह निकट न होता तो उसे पत्र लिखता। किन्तु शिमला आ कर चेतन ने अनन्त को कोई पत्र न लिखा था। उसे कई बार इच्छा भी हुई, कई बार उसने संकल्प भी किया, किन्तु सदैव एक भारी संकोच उसके मार्ग की दीवार बन गया। एक बार अपने पत्र मे कविराज जी की अत्यधिक प्रशंसा करने के बाद अब सच्ची बात वह किस तरह लिखे?

वह अपने-आपको मूर्ख न सिद्ध करना चाहता था । ऐसा करने में कदाचित उसके अहं को ठेस पहुँचती थी ।

वह चन्दा को पत्र लिख सकता था, लिखता भी था । किन्तु चन्दा उत्तर देने में बड़ी सुस्त थी । स्वभाव के इस लक्षण मे वह भाई साहब से मिलती थी । चेतन जब कभी भाई साहब को पत्र लिखता तो उत्तर की प्रतीक्षा करते-करते थक जाता । उत्तर न पाने पर चिढ़ कर वह दूसरा पत्र लिखता और क्रोध मे दो-एक कटु बातें भी लिख देता और आशा करता कि अब तो बस लौटती डाक से उनका पत्र आ जायगा; किन्तु कई-कई दिन और कई-कई सप्ताह बीत जाते जब उनकी ओर से उत्तर मिलता । वह भी एकदम नीरस और व्यावहारिक । सिर्फ़ काम की दो एक बातो के सम्बन्ध मे चंद वाक्य होते—जल्दी-जल्दी घसीटे हुए । उनके पत्र को देख कर ऐसा मालूम होता जैसे लिखने वाले को बड़ी जल्दी है, उसकी गाडी छूटी जा रही है और उसे शीघ्रातिशीघ्र पत्र लिख कर गाड़ी पकड़नी है । कई बार चेतन इतना खीझ उठता कि पत्र पढते ही उसे फाड़ कर, उसके टुकडे-टुकडे करके खिडकी के बाहर फेंक देता ।

चन्दा उत्तर मे इतनी देर तो न करती, किन्तु उसके पत्रों को पढ़ कर भी उसे कम खीझ न आती । भाई साहब के पत्रों को तरह उनमें भी चंद गिनी-चुनी सतरें होतीं और बस ! भाई साहब के पत्र मे लिखावट तो सुन्दर होती, चन्दा के पत्र मे वह भी नही । शुरू-शुरू मे यद्यपि उसे निराशा होती, पर वह इस हद तक खीझता न था । कई बार जब बड़ी प्रतीक्षा के बाद उसका पत्र पाता तो उसे रख छोडता । पढ चुकने के बाद भी कई बार पढ़ता । चन्दा के किसी ऐसे ही पत्र के बारे मे किसी भावुक क्षण में उसने एक छोटी-सी कविता भी लिखी थी :

कुछ उल्टे-सीधे खत में
ये चार पंक्तियाँ प्यारी
हैं भाव न जिनमें विकसित
जिन पर लज्जा-सी तारी

जिनका हर शब्द अधूरा
टेढ़े मेढ़े से अक्षर
सिमटे फीकी स्याही में
जो रूखे से काग़ज़ पर
मैं फूल उठा हूँ सहसा
जाने क्यों इनको पा कर
पढ़ता हूँ, फिर पढ़ता हूँ
पढ़ चुकता हूँ जब जी भर

किन्तु अब वह ऐसे पत्र पा कर एकदम जल उठता था। सोचता—चन्दा अब पढ़-लिख गयी है, उसे पत्र लिखने की, अपने भावों को व्यक्त करने की तमीज होनी चाहिए। और जब वह उसका रूखा-फीका पत्र आता, तोड़-मरोड़ कर फेंक देता और खिन्न-सा हो कर बैठ रहता।

और नीला! उसका ध्यान आ जाने पर एक लम्बी साँस अनायास उसके अन्तर की गहराई से निकल जाती। उसे पत्र लिखने की प्रबल इच्छा कई बार उसके मन मे होती, उसका हाल-चाल जानने को उसका मन आतुर हो उठता। कई बार जब वह चन्दा को पत्र लिख रहा होता तो चाहता कि नीला के सम्बन्ध मे कुछ पूछे। किन्तु वह क्या पूछे? किस मुँह से पूछे? उधर का मार्ग तो वह स्वयं बन्द कर आया है। उस मार्ग पर उसने अपने-आप जो पत्थर रख दिया, उसे कैसे उठाये। उसके लिए साहस की आवश्यकता है, कुछ ढीठ बनने की आवश्यकता है। वह ढीठपना चेतन कहाँ से लाये? यदि वह उस पत्थर को न हटा सका तो उसे कितनी लज्जा आयगी? और वह नीला को पत्र लिखने की अथवा चन्दा के पत्र मे उसका हाल-चाल पूछने की इच्छा को दबा जाता। वह बैठा रहता, अपने उसी अँधेरे कमरे मे और उसके सामने अगणित चित्र बन-बन कर मिटते रहते। उसे लगता जैसे एकाकीपन अपने इस्पाती घेरे को उसके गिर्द क्षण-प्रतिक्षण कसता जा रहा है और किसी दिन यह क्षण-क्षण परिमित होता हुआ घेरा उसका दम घोंट देगा। और वह चाहता कि

पुस्तक को ले जा कर कविराज के सामने पटक दे और उसी क्षण लाहौर भाग जाय। लाहौर ! जो अपने कूड़े-करकट, गर्द-गुबार, धुएँ और धुन्ध के बावजूद जिन्दा है; जिन्दगी के स्पंदन से क्षण-क्षण धड़कता है। जहाँ इतनी सफाई चाहे न हो, पर इतना शून्य भी नहीं। इतनी नीरवता और निस्तब्धता भी नहीं। जहाँ कमरे के मौन मे बैठे हुए भी इस अनुभूति से मन सन्तुष्ट रहता है कि पास ही कही मित्र है, चाहे फिर उनसे महीनों न मिला जाय; पास ही कही भाई है; शोरोगुल है; गाली-गलौज है; कारों की पो-पो और ताँगों की खट-खट है; पास ही कही जुलूस निकल रहे है; जल्से हो रहे है, धर्म चर्चा हो रही है; दंगा-फ़िसाद हो रहा है। कही कुरूपता पास है तो निकट ही कही सौन्दर्य और सुघड़ता भी है; मन और आँखो को व्यस्त रखने के लिए यथेष्ट साधन हैं। शिमले ऐसी नीरवता और मौन तो नही। माना शिमले मे माल है और माल पर संध्याएँ रंगीन, मादक, मदिर होती हैं; सुन्दर स्वरों का कल-हास सुनने को, सुन्दर आकृतियो की बनावट निरखने को मिलती है; किन्तु माल पर एक-दो बार जा कर ही चेतन को उसके परायेपन का आभास मिल गया था। उसमे अनारकली का-सा अपनाव कहाँ? वह इस अजनबीपन से एकदम भाग जाना चाहता था। न भाग सकता था तो उन्मन और उदास अपने कमरे मे बैठा रहता था। और कुछ बस न चलता तो चुपके-चुपके रो दिया करता था।

०

किन्तु एक ही महीने बाद राजकुमार आ गया—कविराज जी का बड़ा लड़का। और यद्यपि चेतन ने उसे एक क्षण के लिए भी पसन्द नही किया, किन्तु उसके आने की घड़ी अपनी समस्त कटुता के बावजूद चेतन के लिए एक नया जीवन ले आयी। उसे परिचित मिल गये, मित्र मिल गये, कई व्यक्ति आप-से-आप उसके जीवन मे चले आये। शिमले में वह परायापन न रहा, माल में वह बेगानगी न रही और उसके ठहाके माल और लोअर बाज़ार मे गूंजने ल ।

चौवन

कई दिनों से चेतन राजकुमार के आगमन की चर्चा सुन रहा था। कविराज जी जिस समय अपने इस पुत्र का उल्लेख करते, उनकी आँखों में चमक आ जाती। जब भी उनका कोई मित्र उनके सामने अपने लड़के की बात चलाता तो कविराज जी उसकी बात पूरी तरह सुने बिना—'हमारे राजकुमार का तो यह विचार है कि'....'हमारे राजकुमार के सम्बन्ध में अध्यापक कहते हैं कि'....'हमारा राजकुमार तो ऐसा नहीं करता कि'....'हमारा राजकुमार तो यही पसन्द करता है कि'....किसी ऐसे ही वाक्य से आरम्भ करके अपने राजकुमार का ज़िक्र छेड़ देते और फिर उसकी बुद्धि, उसके ज्ञान, उसके साहस, बल-पराक्रम, अध्यवसाय, निष्ठा और परिश्रम की इतनी बातें सुनाते कि मित्र बेचारा मुँह तकता रह जाता। उनके भाग्य से उसे ईर्ष्या होने लगती जिनकी सन्तान ऐसी नेक, समझदार, साहसी और बुद्धिमान थी।

राजकुमार के आने से बहुत दिन पहले कविराज जी ने उसके रहने-सहने, खाने-पीने, पढ़ने-लिखने के बारे में प्रोग्राम बनाने शुरू कर दिये थे। आते ही उसे अपने उपयुक्त मित्र मिल जायँ, इस विचार से उन्होंने अपने पड़ोस के लोगों और उनके बच्चों से मेल-जोल पैदा कर लिया था। उनके घर के सामने पूरब की ओर मि० चावला रहते थे। उनका लड़का एफ़० ए० में और लड़की 'भूषण' मे पढ़ती थी। स्वयं वे सेक्रेटेरियेट में हेडक्लर्क थे। कविराज जी ने उनको उनके बीवी बच्चों सहित खाने पर बुला कर उन पर अपने लड़के की योग्यता का सिक्का बैठा दिया था। बायीं ओर दक्षिण की तरफ़ लाला मुकुन्द लाल ऐसिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट अपने लड़के और दो लड़कियों के साथ रहते थे। लड़का उनका मैट्रिक में पढ़ता था। पत्नी मर चुकी थी। उनके घर खाने पर निमन्त्रित हो कर वे अपने लड़के के लिए वहाँ उपयुक्त वातावरण पैदा कर आये। इसी प्रकार रुद्र

भट्टे की नीचे की गली मे रहने वालों के साथ भी, जहाँ-जहाँ राजकुमार के समवयस्क लड़के थे, कविराज जी ने मेल-जोल बढ़ा लिया। चेतन पर भी उनका कृपा-भाव उन दिनों कुछ बढ़ गया। रात को सोते समय मन्नी के हाथ भेजने के बदले वे स्वयं चेतन के लिए दूध ले आते; उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे पूछते; उसके भाई की प्रैक्टिस का हाल-चाल जानते; उसके उपन्यास की गति-विधि के सम्बन्ध मे एक-आध प्रश्न करते कि कितना लिखा गया है और क्या-क्या वह उसमे लिखना चाहता है। कभी-कभी उससे कोई परिच्छेद सुनाने की फरमाइश भी करते। इन समस्त कृपाओं के बदले मे उन्होंने चेतन से वादा ले लिया था कि वह एक दो घंटे राजकुमार को अंग्रेजी पढ़ा दिया करेगा। जयदेव को उन्होने उसे गणित पढ़ाने के लिए पहले ही राजी कर लिया था।

"हमारा राजकुमार बेहद सीधी-साधी तबीयत का लड़का है," उसके आने से कुछ ही दिन पहले उन्होंने चेतन को अच्छे मूड मे पा कर कहा। "मै वास्तव मे उसे ब्रह्मचारी बनाना चाहता हूँ। शुरू ही से मैं उसे प्रातः उठने की, ठंडे पानी से स्नान करने की और धरती पर सोने की आदत डालना चाहता हूँ।" और फिर चेतन का रुख पा कर मूँछों मे हँसते हुए उन्होने प्रस्ताव किया, "मेरा विचार है कि वह यहाँ तुम्हारे पास ही धरती पर सोये। अपने कॉलेज की मैगज़ीन मे वह नियमित रूप से लेख और कहानियाँ लिखता है। गत वर्ष उसे सबसे अच्छी कहानी लिखने पर प्रथम पुरस्कार मिला था।" और फिर उन्होने बड़े प्यार के स्वर मे चेतन से पूछा, "तुम्हें तो कोई आपत्ति नही?"

चेतन को भला और क्या चाहिए था। वह अपने-आपको बुरी तरह एकाकी अनुभव कर रहा था। राजकुमार के आने से न केवल उसका यह एकाकीपन दूर हो जायगा, बल्कि वह अपने इरादे, अपनी स्कीमें, अपनी कहानियों के प्लाट, अपने उपन्यास के परिच्छेद, भविष्य के अपने स्वप्न उसे सुना सकेगा। यह सोच कर उसने बड़े हुलास के साथ कहा, "नही जी, मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? मै स्वयं धरती पर सोने का

आदी हूँ। कॉलेज के चार बरस मैंने धरती पर सो कर ही गुजारे हैं। मैं भी धरती पर सो रहा करूँगा।"

कविराज जी इस समस्या का हल करके सन्तुष्ट हो, चले गये और चेतन राजकुमार के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। कॉलेज से निकलते ही वह छः महीने के लिए अपने ही स्कूल में अध्यापक रहा था और यद्यपि स्कूल के घटिया वातावरण से उकता कर वह लाहौर भाग गया था तो भी पढ़ाने का उसका शौक़ खत्म न हुआ था। यह जान कर कि वह राजकुमार को पढ़ायेगा, उसे एक तरह का सुख मिला। फिर इतनी-सी आयु में उसका अपना एक शिष्य होगा, जिसे वह लेख अथवा कहानी लिखना सिखायेगा, इस बात की कल्पना कर, अपने गुरुत्व के महत्व का खयाल करके, उसके अहं को तुष्टि का आभास मिला और उसका हीन-भाव कुछ अर्से के लिए मिट गया। शायद उन दिनों वह कविराज जी से भी अधिक राजकुमार की प्रतीक्षा कर रहा था।

एक सुबह जब चेतन कविराज जी की पुस्तक के लिए एक परिच्छेद का खाका तैयार कर रहा था, यादराम ने आ कर खुशी से झूमते हुए सूचना दी, "बड़े काका आ रहे ।"

चेतन उठ कर खिड़की मे खड़ा हो गया। तब जिस लड़के को उसने सीढ़ियों पर चढ़ते हुए देखा, उसकी आकृति से किसी प्रकार भी उन गुणों का आभास न मिलता था जिनका बखान बड़े गर्व से कविराज इतने दिनों से कर रहे थे।

आनेवाला लड़का मँझोले क़द का था। उसका शरीर यद्यपि स्थूल न था, किन्तु स्थूलता की ओर उसका निश्चित झुकाव था। छोटी ठोड़ी, भरे-भरे गाल और चौड़ा मस्तक! नाक जरूरत से ज्यादा लम्बी और मोटी। न आँखों में कोई गहराई थी, न चमक। न होंटों पर मन की सरलता का प्रतिबिम्ब था और न भवों पर अध्यवसायी, परिश्रमी और निष्ठावान होने का चिह्न! उसे देख कर चेतन को भली-भाँति पले हुए दुम्बे की याद हो आयी।

"मूर्ख, भरा-पुरा दुम्बा !" चेतन ने मन-ही-मन हँस कर व्यंग्य से सिर हिलाया। राजकुमार अन्दर कमरे में जा चुका था। वह फिर बैठ गया और पुस्तकों को पढ़ कर अपने परिच्छेद के लिए नोट लेने लगा।

०

वह पंजाब पब्लिक लायब्रेरी से पाँच पुस्तकें चुन लाया था। उन सब को पढ़ कर उसने पुस्तक के पहले परिच्छेदों का खाका तैयार किया था। पहला अध्याय वह लिख चुका था। उसमे उसने प्राक्कथन के रूप में अन्य देशों की अपेक्षा भारत मे बच्चों के स्वास्थ्य, उनकी असामयिक मृत्यु, उनका मरे हुए उत्पन्न होना, जन्म लेने के बाद मर जाने या जीना तो सदा रोगी रहना और ऐसी ही दूसरी बातों का उल्लेख किया था। यौन-सम्बन्ध में माता-पिता की अज्ञता पर भी उसने प्रकाश डाला था। लिखने की शैली यद्यपि वह 'विवाह के भेद' जैसी सस्ती, घटिया और भावुकतापूर्ण न रख सका था तो भी उद्देश्य उसका भी वही था जो 'विवाह के भेद' का—पुस्तक पढ़ते ही बच्चों के माता-पिता जरा-सी बीमारी पर कविराज जी के दवाखाने भागे आयें अथवा 'रोग परीक्षा पत्र' भर के डाक से उनकी औषधियाँ मँगायें। वह इस प्रवंचना के विरुद्ध था, पर कविराज ऐसा चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने उसे 'विवाह के भेद' पढने को दी थी और जिस शैली का नमूना उसे दिखाया वह कुछ यों थी :

'....प्यारो ! जवानी मे एक प्रकार का मद है, इसमे एक अद्‌भुत उमंग है। परन्तु जिन्होने उसके नैकटच का आभास पाने से पहले ही उसे नष्ट कर दिया हो, वे इन बातों को क्या जानें ?

मै क्या जानूँ चमन कहते हैं किसको आशयाँ कैसा
खुली आँखें तो मेरी खाना-ए-सय्याद में आ कर

'मेरे पास जब ऐसे युवक आते है जो जवानी का सम्पर्क पाते ही उसे गँवा कर अपने पाँवो पर कुल्हाड़ा मार चुके होते है तो मेरा मन बडा दुखी होता है। रोगी बड़ी आतुरता से हाथ जोड़ता है, पाँव पकड़ता

है, ठंडी साँस भरता है और कहता है—वैद्य जी अब अधिक संताप नही सहा जाता । मेरी जवानी....मुझे दिला दो । उसके वियोग मे मैं दीवाना हो रहा हूँ—जवानी....जवानी....जवानी ! अपनी चमक-दमक और मधुर-मदिर आभा के साथ तुम कहाँ हो ? मुझसे क्यों रूठ गयी हो ? एक भूल तो परमात्मा भी क्षमा कर देता है । आओ, आओ, आओ ! मै शपथ ले कर कहता हूँ कि फिर तुम्हारा निरादार न करूँगा । मुझ पर दया करो ।

'यारो ! इन युवकों की दशा को देख कर सावधान हो जाओ । अपनी जवानी को बर्बाद न करो ! यदि भूल भी कर बैठे हो तो बीती बात पर मत आँसू बहाओ । मै आपकी जवानी आप से मिला देने का पूरा यत्न करूँगा । परन्तु प्रतिज्ञा करो कि फिर वह अनर्थ न करोगे ।'

०

'विवाह के भेद' की (जिसे कविराज वैज्ञानिक पुस्तक बताते थे और जिसके सम्बन्ध मे चेतन ने 'ट्रंक गुम हो गया' का विज्ञापन लिखा था) इस लेखन-शैली को पढ़ कर चेतन को एक साथ हँसी और क्रोध आता था किन्तु चेतन को मालूम था कि इन्ही पंक्तियों को पढने वाले युवक दूसरे ही दिन उनके पास पहुँच जाते थे । और कविराज पहले रक्त साफ़ करने और फिर गयी जवानी को वापस ला देने के बहाने उनसे चालीस-पचास रुपये झटक लेते थे ।

कविराज ने चेतन से इस पुस्तक में भी इसी सीधी-सादी शैली का अनुकरण करने के लिए कहा था और उस पर जोर दिया था कि जहाँ-तहाँ उर्दू 'शेरों' के नगीने भी जड़ दे, परन्तु चेतन को इस शैली से सख्त नफ़रत थी । उसने अपने प्राक्कथन मे कोई शेर आदि न लिखा था । शैली को गम्भीर कर दिया था, यद्यपि उसकी इबारत का मतलब भी वही था ।

अध्याय के अन्त मे उसने लिखा था :

'मेरे पास सहस्रों माता-पिता दुर्बल और कंकाल-मात्र बच्चों को ले

कर आते है। (चेतन दिल-ही-दिल मे हँसा था। वह भली-भाँति जानता था कि आज तक कविराज गुप्त रोगो के चिकित्सक रहे है—बच्चों की बीमारियो का उन्होने कभी उपचार नही किया।) गिड़गिड़ाते है कि उनके लाल को किसी तरह भी स्वस्थ कर दिया जाय। धनी माता-पिता अपने खज़ानों के मुँह खोल देना चाहते है और निर्धन मेरे बच्चों की जान को दुआएँ देते है। मै यथाशक्ति उनके बच्चों का उपचार करता हूँ। किन्तु मुझे दुख से कहना पड़ता है कि अधिकाश बीमारियाँ माता-पिता की असावधानी, अनुचित लाड और अज्ञानता का फल होती है और कई उनकी अपनी बदचलनी का। कुचरित्रता का बुरा प्रभाव उसी पर नही पडता जो उसका अपराधी होता है, बल्कि कुचरित्र पिता के पापो का दंड प्रायः उसके बच्चो को भोगना पड़ता है। माता-पिता के दुर्व्यसनों के कारण कई बार शिशु माँ के गर्भ ही में भयानक व्याधियो का शिकार हो जाता है....'

चेतन ने इस अध्याय को फिर से पढा और कविराज जी की लेखनी से उसकी तुलना करके स्वयं अपनी पीठ ठोकी और दूसरे परिच्छेद का खाका बनाने लगा।

इस परिच्छेद मे वह माता-पिता के असंयम, चरित्र-हीनता और गर्भ मे बच्चे पर उसके प्रभाव आदि विषयों पर प्रकाश डालना चाहता था। परिच्छेद का शीर्षक तो बना बनाया ही था—'माता पिता का असंयम और उसका परिणाम!' उपशीर्षको मे उसने मदपान—अफ़ीम, भाँग, चरस का प्रयोग, सिगरेट अथवा तम्बाकू-पान—सम्भोग मे असंयम; तमाशबीनी; मुख्य-मुख्य विषय रखे। यह खाका बना कर वह परिच्छेद लिखने मे व्यस्त हो गया। उसे राजकुमार के आगमन का जो चाव था, वह उसे एक नज़र देख कर ही उतर चुका था, इसलिए दूसरे कमरे में कितना शोर मच रहा है, राजकुमार की क्या खातिरें हो रही है, उस ओर से अन्यमनस्क हो कर वह अपने काम में डूबा रहा।

०

किन्तु वह अधिक लिख नहीं पाया। उस परिच्छेद के लिए उसने जो पुस्तकें चुनी थीं, उन्हे पढ़ने ही में व्यस्त रहा। उन सब को पढ़ते-पढ़ते पहली बार उसे कई ऐसी बातें मालूम हुईं जिनके सम्बन्ध मे बचपन से अब तक उसकी जिज्ञासा बनी हुई थी....सड़क के किनारे बैठे हुए, अत्यन्त दयनीय दशा में अपने कोढ़ से गलित अंगों को हिला-हिला कर भीख माँगने वाले भिखारियों को देख कर उसका मन एक दुर्निवार दुख और दया से भर आया करता था। माँ से पूछता तो वह उनके कोढ़-जनित दुख को उनके पिछले कर्मो का फल बताती, उसे समझाती कि भगवान अच्छे कर्मो का फल अच्छा और बुरे कर्मो का फल बुरा देता है। ये जो राजे-महराजे, धनी-मानी लोग है, ये पिछले जन्म मे अच्छे कर्म करके आये है और अब स्वर्ग भोग रहे है और ये कोढ़ी अपने पिछले जन्म के पापों का फल यह नरक पा रहे है। माँ उसे समझाती कि इस जन्म में अच्छे कर्म करो कि दूसरे जन्म मे अच्छा फल मिले....

लेकिन चेतन की समझ में यह बात न आती थी कि कौन-सा दुख पिछले जन्म का फल है और कौन-सा इस जन्म का? फिर यह भी कैसे पता चले कि इस हद पर पिछले जन्म के कर्म खत्म हुए और अब इस जन्म के कर्म आरम्भ होंगे—एक आदमी दूसरे की हत्या करता है और फाँसी पाता है। हो सकता है कि मृत ने हत्या करने वाले का वध गत जन्म में किया हो, जिसका बदला उसे इस जन्म मे मिला हो—फिर फाँसी कैसी?....और उसके विचार उलझ जाते। माँ उसे कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे पाती। वह जब उन कोढ़ियों को देखता, धर्म-कर्म की समस्या अपने समस्त उलझाव के साथ उसके सम्मुख आ जाती।...

प्राय: जब मुहल्ले मे कोई बच्चा मरा हुआ जन्मता अथवा जन्मते समय उसके शरीर पर फोड़े आदि होते तो अपनी उसी जिज्ञासा के कारण वह माँ से उसका कारण पूछता। माँ उन्हें 'घोर पातकी' बताती और समझाती कि हमारे शास्त्रों मे लोहू और पीब की जिन नदियों का उल्लेख है, वे यही तो है। इनमे घोर पातकी अपने गत जन्म के पापों का फल

भोगते है—नौ महीने लोहू-पीव में रह कर जन्म पाते ही मर जाते हैं और फिर किसी अन्य कोख में जा पड़ते हैं और यह क्रम उस समय तक रहता है जब तक कि उनके दंड की अवधि समाप्त नही हो जाती....लेकिन चेतन सन्तुष्ट न होता । माँ की कोख में अचेतावस्था में बच्चा आराम से पडा रहता होगा, वह सोचता, इसके विपरीत रोज-रोज़ भूख बेकारी और भीख का अपमान सहने वाले कोढ़ी उसकी उपेचा उसे कहीं ज्यादा कष्ट पाते दिखायी देते । 'माँ को मालूम नही,' वह सोचा करता, 'ये कोढी उन बच्चों की अपेचा कही बडे गुनहगार है ।'

इन पुस्तको को पढ कर चेतन को ज्ञात हुआ कि जहाँ उन कोढियों में से कुछ स्वयं अपने कर्मों का फल भोगते है, अधिकांश अपने माता-पिता के कर्मों का फल भुगतने को विवश है । प्रकृति अपने विरुद्ध किये गये अनाचारो का बेहतर प्रतिशोध लेती है । उसने पढा कि उपदंश और प्रमेह यदि रोग कई पीढियों तक असर करते है और जो बच्चे मरे हुए अथवा लुजे, लँगडे, कोढ़ी पैदा होते है, उनमे से अधिकांश अपने माता-पिता के किसी-न-किसी व्यवसन के फलस्वरूप ऐसे पैदा होते हैं । उपदंश और प्रमेह ऐसे रोग है जो देश की आगामी नस्लों को घुन की तरह खोखला किये जा रहे हैं ।

और चेतन के सामने सहसा अपने मुहल्ले का चित्र घूम गया । उन पुस्तको को पढ़ते-पढते उसका सारे का सारा मुहल्ला अपनी समस्त गरीबी, गन्दगी, रोग,;शोक, दुश्चरित्रता, अपढता, मूर्खता, संकीर्णता के साथ उसकी आँखों के सामने आ गया । उसके मुहल्ले मे कोई ही ऐसा भाग्य वाला घर होगा, जिसमे कोई-न-कोई व्यक्ति किसी-न-किसी मैथुन-सम्बन्धी या संक्रामक या किसी और गुप्त रोग से वंचित न हो । यद्यपि बीसवीं सदी अपने आधुनिक विचारो के साथ उन्नति के पथ पर त्वरित गति से अग्रसर थी, पर कल्लोवानी मुहल्ले के वासी अपनी पुरानी लीक पर अपनी उसी चिर-मन्थर गति से चले जा रहे थे । कुछेक व्यक्तियों को छोड़ कर शेप सब अपढ थे । मिडिल से आगे कभी ही कोई जाता । जो

मैट्रिक पास कर लेता, वह बाहर नौकरी पर चला जाता। शिक्षित होने के साथ जो लोग सम्पन्न और सुसंस्कृत भी हो जाते, वे बाहर कोठियों में चले जाते। शेष मुहल्ला अपनी उसी अशिक्षा, गरीबी और गन्दगी मे पड़ा किलबिलाया करता।

चेतन के घर के सामने, मुहल्ले के चौक की दूसरी ओर जो घर था, उसमे माई जीवाँ रहती थी। बड़ी धर्मात्मा और नेक-बख्त। प्रातः चार बजे उठ कर कुएँ को धोती; सर्दी हो या गर्मी, वहीं नहाती और फिर वहीं बैठ कर बड़ी देर तक पूजा-पाठ मे रत रहती। सत्संग उसके यहाँ सदा लगता। 'गुरु बिना (क्योंकि) गति नहीं' इसलिए युवावस्था ही से एक महात्मा को उसने गुरु बना रक्खा था। (मुहल्ले मे जितनी विधवा अथवा सधवाएँ थीं, उनमें अधिकांश के कोई-न-कोई गुरु था) इसके अतिरिक्त सदैव उसके यहाँ कोई-न-कोई साधु-संत आया रहता। उसका इकलौता लड़का था और जायदाद काफ़ी थी। जब युवा हुआ तो माँ के इस आचरण पर उसने आपत्ति की। जीवाँ ने परमार्थ के मार्ग मे रोड़ा अटकाने वाले इस पुत्र का विवाह कर दिया और उसे पुत्र-वधू के साथ अलग कर एकनिष्ठ हो कर अपना परलोक सुधारने मे निमग्न हो गयी। पड़ोसियों मे बड़ी निन्दा होती और जब कोई जवान हट्टा-कट्टा साधू बड़ी मस्ती से जटाएँ चेहरे पर बखेरे, अपने ब्रह्मचर्य का तेज चारों ओर फैलाता हुआ माई जीवाँ के घर को पवित्र करता तो ये काना-फूसियाँ बढ़ जाती। लोगों में क्योंकि बड़ी निन्दा होती थी, इसलिए पुत्र ने एक दो बार फिर झगड़ा किया। किन्तु वह भला लोक के डर से अपना परलोक बिगाड़ लेती। जब यह धर्मपरायण माई जीवाँ मरी थी तो सात दिन तक मुहल्ले में कोई पूरी नीद सो न सका था। इतना चीखती-चिल्लाती थी वह। चेतन तब स्कूल मे पढ़ता था। वह स्वयं भी एक रात जागता रहा था। अपनी माँ से उसने पूछा था, "माँ इसे क्या कष्ट है!"

"गर्मी का रोग था बेटा, वही बिगड़ गया है शायद ?"

तब उसने समझा था कि गर्मी का रोग भी लू लगने की तरह का

कोई रोग होगा—आदमी को लू लग जाती होगी और वह मर जाता होगा। किन्तु अब उसे मालूम हुआ कि यह क्या व्याधि है। माँ ने उसे बताया था कि उसके पति की मृत्यु भी इसी रोग से हुई थी। बीमारी दूर करने के लिए उसने किसी महात्मा की दवाई खायी थी। बीमारी तो क्या दूर होती, उल्टा अधरंग हो गया और जीवन ही से मुक्ति मिल गयी।

और चेतन समझ गया कि क्यों माई जीवाँ के पोते, पिता के किसी प्रकार के दुराचार के बिना, मरे हुए पैदा होते थे या हो कर मर जाते थे और बडे इलाज-उपचार के बाद बचने शुरू हुए थे।

माई जीवाँ के घर के बराबर उधर को एक सुनार रहता था। अच्छे दिनो मे उसके यहाँ शादी-विवाह पर वेश्याएँ आती थीं और मुहल्ले के चौक मे बडे सुन्दर वितान के नीचे उनका सगीत अथवा नृत्य हुआ करता था। उसके यहाँ बड़ी कठिनाई से एक लड़का बचा था। लडके होते थे, पर बीमार पैदा होते थे, अथवा रोग का प्रतिरोध करने की शक्ति पर्याप्त मात्रा मे अपने अन्दर न रखने के कारण शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास बन जाते थे। और उस समय जब उसके पति को कुछ इंजेक्शनो की आवश्यकता थी, गृहिणी दुनिया भर के देवी-देवता, पीरो-फकीरों को पूजती फिरती, मजारो पर न्याज़ें चढ़ाती और टोने-टोटके करती।

चौक के दूसरी ओर चेतन के मकान के ऐन सामने, एक खत्री (क्षत्री) घराना रहता था। इसमें कुछ बुजुर्ग सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हो गये थे और इस गन्दगी से बाहर निकल कर कोठियो मे जा बसे थे। उनके प्रायः खंडहर मकान मे घराने के अवशेष मात्र जो वंशज रह गये थे, उनमे एक की विधवा ने अपने छोटे देवर से रिश्ता जोड़ लिया था और फलस्वरूप एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति की थी, अन्त में देवर को अपना पति भी बना लिया था और उसी अपने देवर पति की बदौलत अपने समस्त शरीर को उपदश के घातक विष से भर लिया था। उन दिनों भी उसकी दायी जाँघ पर एक बड़ा घाव-सा फोडा था जो भरने ही मे न आता था। पिछली बार जब चेतन गया था तो उसे मालूम हुआ था कि माई जीवाँ का स्थान

मैट्रिक पास कर लेता, वह बाहर नौकरी पर चला जाता। शिक्षित होने के साथ जो लोग सम्पन्न और सुसंस्कृत भी हो जाते, वे बाहर कोठियों में चले जाते। शेष मुहल्ला अपनी उसी अशिक्षा, ग़रीबी और गन्दगी मे पड़ा किलबिलाया करता।

चेतन के घर के सामने, मुहल्ले के चौक की दूसरी ओर जो घर था, उसमे माई जीवाँ रहती थी। बड़ी धर्मात्मा और नेक-बख्त। प्रातः चार बजे उठ कर कुएँ को धोती; सर्दी हो या गर्मी, वहीं नहाती और फिर वहीं बैठ कर बड़ी देर तक पूजा-पाठ मे रत रहती। सत्संग उसके यहाँ सदा लगता। 'गुरु बिना (क्योकि) गति नहीं' इसलिए युवावस्था ही से एक महात्मा को उसने गुरु बना रक्खा था। (मुहल्ले मे जितनी विधवा अथवा सधवाएँ थी, उनमे अधिकांश के कोई-न-कोई गुरु था) इसके अतिरिक्त सदैव उसके यहाँ कोई-न-कोई साधु-संत आया रहता। उसका इकलौता लड़का था और जायदाद काफ़ी थी। जब युवा हुआ तो माँ के इस आचरण पर उसने आपत्ति की। जीवाँ ने परमार्थ के मार्ग में रोड़ा अटकाने वाले इस पुत्र का विवाह कर दिया और उसे पुत्र-वधू के साथ अलग कर एकनिष्ठ हो कर अपना परलोक सुधारने मे निमग्न हो गयी। पड़ोसियों में बड़ी निन्दा होती और जब कोई जवान हट्टा-कट्टा साधू बड़ी मस्ती से जटाएँ चेहरे पर बखेरे, अपने ब्रह्मचर्य का तेज चारों ओर फैलाता हुआ माई जीवाँ के घर को पवित्र करता तो ये काना-फूसियाँ बढ़ जाती। लोगों मे क्योंकि बड़ी निन्दा होती थी, इसलिए पुत्र ने एक दो बार फिर झगड़ा किया। किन्तु वह भला लोक के डर से अपना परलोक बिगाड़ लेती। जब यह धर्मपरायण माई जीवाँ मरी थी तो सात दिन तक मुहल्ले मे कोई पूरी नीद सो न सका था। इतना चीख़ती-चिल्लाती थी वह। चेतन तब स्कूल मे पढता था। वह स्वयं भी एक रात जागता रहा था। अपनी माँ से उसने पूछा था, "माँ इसे क्या कष्ट है!"

"गर्मी का रोग था बेटा, वही बिगड़ गया है शायद?"

तब उसने समझा था कि गर्मी का रोग भी लू लगने की तरह का

कोई रोग होगा—आदमी को लू लग जाती होगी और वह मर जाता होगा। किन्तु अब उसे मालूम हुआ कि यह क्या व्याधि है। माँ ने उसे बताया था कि उसके पति की मृत्यु भी इसी रोग से हुई थी। बीमारी दूर करने के लिए उसने किसी महात्मा की दवाई खायी थी। बीमारी तो क्या दूर होती, उल्टा अधरंग हो गया और जीवन ही से मुक्ति मिल गयी।

और चेतन समझ गया कि क्यों माई जीवाँ के पोते, पिता के किसी प्रकार के दुराचार के बिना, मरे हुए पैदा होते थे या हो कर मर जाते थे और बड़े इलाज-उपचार के बाद बचने शुरू हुए थे।

माई जीवाँ के घर के बराबर उधर को एक सुनार रहता था। अच्छे दिनो मे उसके यहाँ शादी-विवाह पर वेश्याएँ आती थीं और मुहल्ले के चौक मे बड़े सुन्दर वितान के नीचे उनका संगीत अथवा नृत्य हुआ करता था। उसके यहाँ बड़ी कठिनाई से एक लडका बचा था। लडके होते थे, पर बीमार पैदा होते थे, अथवा रोग का प्रतिरोध करने की शक्ति पर्याप्त मात्रा मे अपने अन्दर न रखने के कारण शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास बन जाते थे। और उस समय जब उसके पति को कुछ इंजेक्शनों की आवश्यकता थी, गृहिणी दुनिया भर के देवी-देवता, पीरों-फकीरों को पूजती फिरती, मज़ारो पर न्याज़ें चढाती और टोने-टोटके करती।

चौक के दूसरी ओर चेतन के मकान के ऐन सामने, एक खत्री (क्षत्री) घराना रहता था। इसमे कुछ बुजुर्ग सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हो गये थे और इस गन्दगी से बाहर निकल कर कोठियों मे जा बसे थे। उनके प्रायः खंडहर मकान मे घराने के अवशेष मात्र जो वंशज रह गये थे, उनमे एक की विधवा ने अपने छोटे देवर से रिश्ता जोड़ लिया था और फलस्वरूप एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति की थी, अन्त मे देवर को अपना पति भी बना लिया था और उसी अपने देवर पति की बदौलत अपने समस्त शरीर को उपदश के घातक विष से भर लिया था। उन दिनो भी उसकी दायी जाँघ पर एक बड़ा घाव-सा फोड़ा था जो भरने ही मे न आता था। पिछली बार जब चेतन गया था तो उसे मालूम हुआ था कि माई जीवाँ का स्थान

अब उसने सम्हाल लिया है। बड़े तड़के उठ कर वह कुएँ की सफाई करती है और उसके यहाँ अब नियमित रूप से सत्संग होने लगा है।

चौक के बायें कोने मे जो गली अन्दर को गयी थी, उसमे क्षत्रियों का एक और ब्राह्मणों के दो घर थे। क्षत्री महोदय बिसाती की दुकान करते थे, बीवी मर चुकी थी, पुत्र भी थोड़ा-बहुत पढ़-पढ़ा कर नौकर हो गया था और वे अधिकतर दुकान ही पर रहते थे। सदा एक न एक सुन्दर छोकरा अपने साथ रखते थे। कभी वे उसे अपना शिष्य और कभी अपना नौकर बताते और मुहल्ले भर के माता-पिता अपने लड़कों को उनके यहाँ कोई चीज़ लाने के लिए भेजने मे संकोच करते थे। ब्राह्मणों के दोनों घरों में केवल दो व्यक्ति मैट्रिक तक पढ़ पाये थे। एक दिल्ली के ऑडिट आफ़िस मे नौकर हो गया था और दूसरा कुसंगति में पड़ कर क्षीण से क्षीणतर होता तपेदिक का शिकार हो गया था। दोनों घरों मे कुल मिला कर छः कुटुम्ब रहते थे जिनमे से दो में उपदंश और प्रमेह ने अपना घर कर लिया था, तीन मे यक्ष्मा का आधिपत्य था और जो छठा था उसमे इन रोगों के ग्रास बड़े पैमाने पर तैयार हो रहे थे। इस कुटुम्ब के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रामधन जी अपनी पैंतीस वर्ष की आयु में आठ सन्तानें पैदा कर चुके थे और आय के नाम पर बीस-पच्चीस रुपये महीने से अधिक न कमाते थे!

इनके अतिरिक्त जो दूसरे लोग मुहल्ले मे रहते थे, उनकी दशा भी इनसे अच्छी न थी।

और ये तमाम लोग शिक्षा के विरोधी; मज़ारों, कब्रों और समाधियों को पूजने वाले; कुओं की जगतों और मन्दिरों के चबूतरों को सुबह-शाम नियमित रूप से धोने वाले; गीता, रामायण, महाभारत तथा भागवत का पाठ (बिना उनके अर्थों को समझे) प्रतिदिन करने वाले और इस जन्म के समस्त कष्टों को पिछले जन्म के कुकर्मों का फल मान कर अगला जन्म सुधारने के लिए इस जन्म मे कष्ट पाने वाले थे। इन्हीं लोगों और उनकी अशिक्षित सन्तान ही के कारण यह सम्भव था कि मुन्शी गिरिजाशंकर और कविराज जी जैसे सहस्रों वैद्य, हकीम और डाक्टर अपने-आपको पुरुष

और स्त्रियों के गुप्त रोगों का विशेषज्ञ बता कर उन्हे और उनके साथ ही आगामी नस्लों को खराब किये जा रहे थे।

सोचते-सोचते क्रोध का एक बवंडर-सा चेतन के मन मे उठा। उसका जी चाहा कि यदि कही उसे अधिकार हो तो वह सारे-के-सारे मुहल्ले को धराशायी करा दे। उसकी नीवें तक खुदवा डाले जिनमे सदियो से बीमारियों के कीड़े पल रहे हैं। नये सिरे से स्वस्थ लोगों का मुहल्ला बसाये। किन्तु दूसरे क्षण उसे खयाल आया कि एक मुहल्ला खोदने से क्या होगा। अशिक्षा, गरीबी, बेकारी ने तो गरीबों का प्रत्येक मुहल्ला ऐसा बना रखा है। सारे देश की जीर्ण-पुरातन दीवारों को गिरा कर नये देश, नये समाज, नयी नस्ल का आविर्भाव करना होगा।

०

पुस्तक उसके सामने खुली पड़ी थी और वह अपने विचारों मे कहीं का कही भटक गया था। तभी कविराज जी ने अन्दर का दरवाज़ा खोला। उनके पीछे-पीछे राजकुमार ने प्रवेश किया। उसे अपनी बाँह मे भर कर अपनी मुस्कराहट को तनिक और फैलाते हुए उन्होंने दोनों को एक-दूसरे का परिचय दिया। फिर राजकुमार के सामने चेतन की बड़ी प्रशंसा की और उससे कहा, "आज से तुम यहीं सोना। समय निकाल, घंटा-दो-घंटा इनसे अंग्रेज़ी पढ़ लिया करना।" और यादराम को बुला कर उन्होंने कहा, "बड़े काका का बिस्तर इधर इनके कमरे में फ़र्श पर लगा दो।"

तब चेतन उछल कर उठा। उसने यादराम से कहा कि उसकी चारपाई उठा कर बाहर सीढ़ियों मे रख दे और उसका बिस्तर भी वही फ़र्श पर बिछा दे।

कविराज जी ने उसको शाबाशी दी। धरती पर सोने के लाभ पर एक छोटा-सा भाषण दिया और चले गये।

०

जब बिस्तर धरती पर बिछ गया, चेतन ने अपनी पुस्तकों को फर्श ही पर एक ओर करीने से चुन लिया और बैठ कर फिर काम करने लगा तो उसे

लकड़ी के उस फ़र्श पर बैठने में दिक्कत हुई । खिड़की से बहुत नीचे होने के कारण प्रकाश की और भी कमी हो गयी । किन्तु जब यादराम निकट ही फ़र्श पर राजकुमार का बिस्तर बिछा रहा था तो वह शिकायत कैसे करता ।

उस रात चेतन ने राजकुमार को कुछ अधिक नहीं पढ़ाया । बातें भी बहुत नहीं हो सकीं । ट्रेन मे आने के कारण राजकुमार थका हुआ था, इसलिए वह सो गया ।

चेतन दिन भर पूरा काम न कर सका था, वह लिखने की अपेक्षा सोचता अधिक रहा था । फिर कमरे की व्यवस्था बदलनी पड़ी थी इसलिए खाना खा कर आने के बाद वह काम पर बैठ गया और राजकुमार के सो जाने और कविराज जी के अपने प्रिय पुत्र को आराम से सोया हुआ देख जाने के बाद बड़ी रात तक काम करता रहा ।

सुबह वह जरा देर से जागा और बिना लिहाफ़ से मुँह निकाले दोनों हाथ अपने चेहरे पर फेरते हुए उसने राजकुमार को 'नमस्ते' कही । जब उसे कुछ उत्तर न मिला तो उसने लिहाफ़ से मुँह निकाला कि देखें राजकुमार अभी सोया पड़ा है या जाग रहा है । किन्तु वह चकित रह गया । न वहाँ राजकुमार था न उसका बिस्तर । यह भी न मालूम होता था कि वहाँ कभी किसी का बिस्तर बिछा भी है ।

क्षण भर वह उसी रीति जगह की ओर देखता रहा । फिर उसने सोचा—कविराज दुकान को जायँगे तो उनसे पूछेगा कि राजकुमार चला क्यों गया । किन्तु कविराज जाते समय उससे नहीं मिले । वे तेजी से निकले और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गये । कदाचित उन्हें जल्दी थी ।

तब चेतन ने सोचा कि शायद राजकुमार वहाँ न सोयेगा, शायद ब्रह्मचर्य-व्रत उसके लिए उतना आकर्षण नहीं रखता । उसे भी अपनी चारपाई वापस ले आनी चाहिए । उस अँधेरे मे काम कर आँखें फोड़ने की क्या ज़रूरत है । वह सीढ़ियों की ओर बढ़ा, लेकिन चारपाई वहाँ से ग़ायब थी ।

वह दिन भर असमंजस मे पड़ा रहा। उससे काम न हो रहा था। उसे ऐसा लगता था जैसे वह फिर ठगा गया है। तभी मन्नी उधर से गुजरी। चेतन ने उससे पूछा :

"मेरी चारपाई कल यादराम ने वहाँ रखी थी, कहाँ गयी ?"

"रात को बड़े काका के लिए वैद्य जी ले गये।"

"पर उन ब्रह्मचारी जी को तो धरती पर सोना था," क्रोध से जलते हुए चेतन ने कहा।

मन्नी हँस दी, "एक ही रात मे बिलबिला उठे पिस्सुओं के मारे। उठ कर भाग आये आधी रात को। चारपाई तो और घर मे थी नहीं, वही ला कर वैद्य जी ने उनके नीचे बिछा दी।"

चेतन ने चाहा ऐसी फुफकार मारे कि सामने का कमरा जल कर राख हो जाय। किन्तु वह केवल विष घोल कर रह गया।

०

सारा दिन वह कोई काम न कर सका। बेचैनी के मारे लेटता, उठता, बैठता कमरे मे चक्कर लगाता रहा।

पचपन

ब्रह्मचारी जी का धरती पर सोना तो चेतन से चारपाई लेने का बहाना मात्र था। सोचने पर चेतन अच्छी तरह समझ गया। चारपाइयाँ शिमले मे महँगी थी। फिर सीज़न के खत्म हो जाने पर उन्हे बेच कर, नीलाम करके अथवा किसी मित्र को दे कर जाना पड़ता था। इसलिए शायद कविराज जी ने सोचा कि जब घर मे एक नयी चारपाई है तो दूसरी बाज़ार से क्यों लायी जाय। और क्योंकि वे दवाखाने से चेतन को इसी चारपाई का लालच दे कर लाये थे, इसलिए अब उसे लेने के लिए

उन्होंने यह आडम्बर रचा था ।

कविराज जी का यह क़ायदा था कि वे कटु-से-कटु बात को भी मीठे से-मीठे ढंग से करने का प्रयास करते थे । चेतन को शिमले लाने से पहले यदि वे उससे कहते, 'मै बच्चो के सम्बन्ध मे एक पुस्तक चाहता हूँ, तुम उसे मेरे नाम से लिख दो,' तो चेतन शायद कभी तैयार न होता । किन्तु उन्होंने बड़े मीठे, प्यारे ढंग से अपना वांछित काम भी करा लिया और खर्च भी कम-से-कम किया था । और वह भी काम करने वाले पर एहसान का बोझ लादते हुए, क्योंकि प्रकट चेतन को उनके विरुद्ध किसी प्रकार की उचित शिकायत न हो सकती थी ।

कविराज जी इस कला मे सिद्धहस्त थे । दूसरे पर एहसान करते हुए (अथवा उसे इस बात का आभास दिलाते हुए कि उस पर एहसान किया जा रहा है) अपना काम कराने अथवा अपनी इच्छा के अनुसार किसी समस्या को सुलझाने मे कविराज को अपूर्व सिद्धि प्राप्त थी ।

छः वर्ष से उनके यहाँ औषधियाँ कूटने पर एक व्यक्ति नौकर था । यादराम को पाने पर कविराज ने उसे निकालने का फ़ैसला कर लिया । बात यह थी कि एक तो वह बूढा था, उतना काम न कर पाता था, दूसरे पुराना नौकर होने के कारण उसे वेतन अधिक देना पड़ता था । किन्तु यह निश्चय करने के बाद उन्होने उसे तत्काल छुट्टी नहीं दी । कई दिन पहले वे उससे कहते रहे कि उसका स्वास्थ्य खराब दिखायी देता है, वह दिन-प्रतिदिन दुबला होता जा रहा है , उसे कुछ दिन के लिए आराम करना चाहिए । जब उसे अपने स्वास्थ्य की खराबी के सम्बन्ध मे विश्वास हो गया तो उसे उन्होने वेतन सहित पन्द्रह दिनों की छुट्टी दे दी । वह चला गया तो उन्होने यादराम को अस्थाई रूप से उसकी जगह लगा लिया । जब पन्द्रह दिन बाद वह लौटा तो कविराज जी ने उससे कहा कि बाबा तुममे अब इतना कठिन काम करने की हिम्मत नही, तुम्हे तो अब कोई ऐसा काम करना चाहिए जिसमे कम जान खपानी पड़े । मैंने एक मित्र से तुम्हारी सिफ़ारिश कर रखी है, तुम वहाँ जाओ । रुपये तो शायद दो

एक कम मिलें, पर काम आराम का होगा। मैं तुम्हे सिफ़ारिशी चिट्ठी लिख देता हूँ। और उन्होने अपने मित्र को लिखा :

'तुम कोई बात कहो और हम न मानें यह कैसे हो सकता है। नौकर भेज रहा हूँ। मेरे यहाँ छः वर्ष से काम कर रहा है। दयानतदार और परिश्रमी है। मुझे कष्ट तो होगा, पर मैं जानता हूँ, तुम्हारा कष्ट मुझसे ज्यादा है। एक बार काम सिखा दो, फिर तुम इसे बड़ा उपयुक्त पाओगे।'

और यह सिफ़ारिशी चिट्ठी दे कर उन्होंने उसके हाथ पर दो रुपये इनाम रखा और उसे विदा किया।

कविराज जी नौकरों ही से छल करते हों यह बात न थी। छल-कपट (जिसे वे जीवन को सुख से व्यतीत करने का एक अत्यावश्यक साधन मानते थे) उनकी प्रकृति का एक अंग बन चुका था। अपने नौकरो से, ग्राहको से, मित्रों से, बच्चों से, बीवी से यहाँ तक कि वे अपने-आप से छल करते थे। दिन रात झूठ बोलते हुए, जनता को ठगते हुए वे साथ-साथ अपने परलोक सुधारने की भी चिन्ता मे निरत रहते थे। आर्य-समाज के प्रसिद्ध उपदेशक स्वामी शुद्धदेव उनके घर नियमित रूप से वर्ष मे एक बार गीता की कथा करते थे, हर महीने हवन-यज्ञ होता था। इसके साथ ही वे कई सभा-सोसाइटियों को दान देते थे और कई धर्मार्थ संस्थाओं के संचालन का बोझ अपने कन्धों पर उठाये हुए थे और समझते थे कि इह लोक के साथ वे अपना परलोक भी सुधार रहे है। किन्तु चेतन ने भली-भाँति देखा था कि चाहे प्रकट रूप से ये सब कार्य वे परमार्थ के हेतु ही करते हों, किन्तु अर्ध-चेतन मे उनका व्यापारी-अपने समस्त परोपकार का हिसाब रखता था। कथा कराते समय अथवा चंदा देते समय वे सदा इस बात का ध्यान रखते थे कि बदले मे उन्हे क्या मिलता है—कितनी सभा-सोसाइटियों के वे प्रधान अथना उप-प्रधान चुने जाते है, उनके कितने मित्रों अथवा रिश्तेदारों का काम बनता है, उन्हें कितनी ख्याति मिलती है। कई सभाओं की ओर से उनको (आयुर्वेद सम्बन्धी सेवाओ के सिलसिले मे) स्वर्ण-पदक मिले

थे (जिनका विज्ञापन वे अपनी पुस्तक 'विवाह के भेद' के सम्बन्ध में निरन्तर करते) कितनी सोसाइटियों के कोष पर उनका अधिकार था। उन्हें देख कर चेतन को कभी-कभी पंजाबी भाषा की एक लोकोक्ति याद आ जाती थी:

अहरन दी कीती चोरी सुई दा कीता दान
कोठे ते चढ़ देखन लग्गा औह आये विमान

लेकिन चेतन को कविराज जी के इस ढंग, उनकी इस व्यवहार-कुशलता से सख्त नफ़रत थी। वह स्पष्ट-वादी था। साफ़ बात पसन्द करता था। इस घुमाव-फ़िराव में उसे छल की गन्ध आती थी। यदि कविराज उससे साफ़ कह देते—'राजकुमार आ रहा है भाई, चारपाई अब उसके लिए चाहिए,' तो वह तत्काल दे देता। उसे तनिक भी दुख न होता क्योंकि कविराज जी ने शिमला आने से पहले उससे कह दिया था कि वे सोने के लिए उसे दुकान या मकान का कोई कोना दे देंगे। यह भी उन्होंने उससे कह दिया था कि शायद उसे धरती पर सोना पड़े और चेतन इस बात के लिए तैयार भी हो कर आया था। किन्तु उसे इस झूठ और फ़रेब से चिढ़ थी। हर बार नया झूठ। उस झूठ को छिपाने के लिए फिर झूठ और इस प्रकार झूठ का यह सारे का सारा जीवन उसके लिए असह्य था। स्पष्ट बात सुनने पर पहले धक्का जरूर लगता है, किन्तु आदमी उसे शीघ्र ही भूल जाता है, अथवा उसे यथार्थ जान कर उससे समझौता कर लेता है। लेकिन यह कपट! यह ऊपर से उतना कटु मालूम नही होता, पर जो व्यक्ति इस कपट का शिकार बनता है, जब उस पर इसकी यथार्थता खुलती है तो उससे जो झटका लगता है, छले जाने का जो खेद उसे होता है, वह हृदय मे घाव बना देता है और वह घाव समय पा कर नासूर बन जाता है और कपटी के क्षमा माँग लेने पर भी, उससे बदला ले लेने पर भी, नही मिटता।

और चाहे उसने उनके लिए पुस्तक लिखने का निर्णय कर लिया था और वह पूरे श्रम से पुस्तक लिख रहा था, लेकिन उस समस्त छल-कपट के लिए उसने उन्हे क्षमा न किया था और वह उस घाव को धीरे-धीरे

पाल रहा था।'

चेतन के जीवन की ट्रैजेडी उसकी यही बढ़ी हुई भाव-प्रवणता और उससे जनित क्षोभ था। यदि अनजाने मे उससे स्वयं छल बन आता तो दूसरे ही क्षण अपने छल को जान कर आत्म ग्लानि से उसका हृदय भर जाता। प्रतिक्रिया उसे दूसरे किनारे ले जा फेंकती। निम्न-मध्य-वर्ग में जो 'मोटी खाल' पैदा होती है—जो मान-अपमान को सह जाती है और बिना महसूस किये झूठ बोलती है, खुशामद करती है, रिश्वत लेती-देती है और धोखा-फ़रेब करती है, वह चेतन के पास न थी। उसकी खाल बड़ी पतली थी। मस्तिष्क की नसें उसकी नाजुक थी। छोटी-सी बात भी उन्हे बेतरह झनझना देती थी।

उसे चारपाई के इस तरह छीने जाने का बहुत दुख हुआ था। कुछ क्षण के लिए क्रोध का लावा उसके अन्तस्तल मे पूरे वेग से खौल उठा था और लगता था कि वह एकदम फट पड़ेगा। उसने चाहा था कि उसी क्षण कविराज जी के पास जाय। उनसे कहे: 'मुझे अभी चारपाई ले दीजिए! इसी क्षण! रुपये आप मेरे वेतन से काट लीजिए। क्या मेरे सहयोग का मूल्य एक चारपाई भी नहीं? क्या आप ने मुझे यादराम या जयदेव समझ लिया है?'

यद्यपि वह भली-भाँति जान गया था कि कविराज की दृष्टि मे उसका महत्व यादराम या जयदेव से अधिक नही, उसने अपनी इस स्थिति से समझौता भी कर लिया था, किन्तु बार-बार इसकी याद दिलाये जाने पर उसे, उसकी वर्ग-चेतना को, उसके अहं को दुख पहुँचता था। उस क्रोध के क्षण मे उसने यह भी सोचा था कि उसी समय कही से तीन-चार रुपयों का प्रबन्ध करके एक चारपाई ले आये। किन्तु ज्यों-ज्यों वह सोचता गया, उसके क्रोध का वेग शांत होता गया। कविराज जी से और कुछ चाहे उसने न सीखा हो लेकिन क्रोध मे सोचना अवश्य सीख लिया था। 'कोई भी बात क्रोध मे न करो'—यह उनका मॉटो था। एक बार भाई साहब की ओर से एक कटु पत्र आया था और वह उसी समय उसका उत्तर

देना चाहता था, लेकिन कविराज जी ने उसे सलाह दी थी कि गुस्से में कभी पत्र न लिखो। यदि लिखे विना कुछ और काम न हो सके तो लिख कर रख लो और दो दिन वाद डालो। निश्चय ही तुम उसे फाड़ दोगे। यदि न फाड़ सको तो दोवारा पढ़ने पर तुम उसे ज़रूर वदल दोगे। चेतन वहुतेरा चाहता था कि अपनी पुरानी आदत के अनुसार वह दनदनाता हुआ कविराज जी के पास जाय, किन्तु अज्ञात रूप से उस पर उनका प्रभाव हो गया था। उनकी वहुत-सी वातों से घृणा करने, मन में उनका मज़ाक उड़ाने के वावजूद, उसने उनके स्वभाव का यह गुण अपना लिया था। क्रोध के होते भी, एक ओर अपने वांछित भावी कृत्य और दूसरी ओर उसके औचित्य-अनौचित्य पर वह अपने मन मे विचार करता जा रहा था। उसे लगता था कि अभी कविराज जी के पास जाना तो उसकी मूर्खता होगी। वह जायगा, शोर मचायेगा, कविराज उलटा उसे लज्जित करेंगे और एहसान का वोझ लादते हुए चारपाई ले देंगे। न, वह इस प्रकार चारपाई न लेगा। उसे और किस वात का आराम है, जो वह चारपाई ले कर कृतज्ञ हो? वह अभी तक नौकरों की वे-छत की टट्टी में शौचादि से निवृत्त होने के लिए जाता है, उस सर्दी में कमेटी के नल से नहाता है, ब्राह्मण होता हुआ भी, उनके घर में रहता हुआ भी, अछूत-सा वना हुआ है तो फिर यदि धरती पर सो लेगा तो उसका कौन-सा अपमान हो जायगा? जव असत्य उनके जीवन का स्वभाव वन गया है, जव उस असत्य को अच्छी तरह पहचान कर, समझ कर वह उनके लिए पुस्तक लिखने को तैयार हो गया है, तव उसी असत्य का एक दूसरा रूप सामने आने पर इतनी आकुलता क्यों? क्यो न सदा के लिए उसी रूप को उनका यथार्थ रूप मान ले। जिस काल्पनिक व्यक्ति के नाम उसने भावुकता-वश पुस्तक समर्पित की थी, उसे क्यों न भूल जाय। उन कवि-राज को उसकी भावुकतामय कल्पना ने देखा था; इनको उसके अनुभव ने। तो फिर अपने अनुभव को ही पथ-प्रदर्शक क्यों न माने, क्यो कल्पना का भुलावा खाये और वार-वार उसके मिथ्या होने पर दुख पाये।

और यह सब सोच कर चेतन स्वस्थ हो गया था। उसका क्रोध तूफान नहीं बना, बवंडर नहीं बना, एक घुमड़न-सी बन कर अन्दर-ही-अन्दर मिट गया। लेकिन वह घाव, जो चेतन के मन में इस कपट के कारण हो गया था, नहीं मिटा, इस घटना से वह कुछ और गहरा ही हुआ।

कविराज जी सुबह उससे आँखें मिलाये बिना गुज़र गये थे, लेकिन शाम को जब वे आये तो सीढ़ियो की खिडकी मे से झाँक कर उन्होंने पूछा कि वह मजे में तो है और उसे पिस्सुओं ने तो नहीं काटा। "राजकुमार तो भाग आया उठ कर," उन्होंने कहा, "बच्चा है न आखिर!" और वे हँसे।

तब चेतन ने कहा कि वह बड़े मजे मे है, उसके रक्त मे इतना विष भरा है कि पिस्सू उसे काटें तो मर जायँ।

इस पर कविराज जी ने खीसें निपोर दीं और अन्दर चले गये।

छप्पन

राजकुमार उसके कमरे मे सोया न था, लेकिन दूसरे दिन समय पर उसके पास पढने के लिए आ गया। चेतन चाहता था उससे कह दे कि वह पुस्तक लिख रहा है, उसके पास समय नही पर वह कुछ भी न कह सका और चुपचाप उसे पढाने लगा।

o

बात वास्तव मे यह थी कि उस नीम-अँधेरे कमरे में, सारा दिन पढ़ते, नोट लेते, और लिखते-लिखते वह इतना थक जाता था कि किसी की सूरत देखने को, किसी से दो बातें करने को उसका जी तरस उठता था।

कविराज जी के यहाँ उसकी स्थिति नौकरो की-सी थी, इसलिए पड़ोसियो से वह कभी खुल न पाया था। वह सदा उनसे खिंचा-खिंचा-सा

रहा। यद्यपि वह कविराज जी के लिए पुस्तक लिख रहा था, लेकिन उसने किसी पड़ोसी को यह बात न बतायी थी। यदि कभी ने पूछा भी तो उसने यही बताया कि पुस्तक लिखने में वह कविराज की सहायता कर रहा है। कविराज भी उसका ज़िक्र चलने पर यही कहते कि, 'बच्चा बीमार रहता था। मैं उसे ले आया हूँ, इसका स्वास्थ्य सुधर जाय।' और यह कहते हुए वे कुछ ऐसे सरपरस्ताना ढंग से बात करते थे कि चेतन को वे ही नहीं, उनके सभी मित्र अपने सरपरस्त दिखायी देते।

उन्हीं दिनों सामने के मकान में रहने वाले बाबू चरणदास से उसकी झपट हो गयी, जिस कारण वह और भी अपनी कोठरी में बन्द रहने लगा था।

०

ये बाबू चरणदास मिलिट्री ऐकाउंट्स में हेड-क्लर्क थे। उनकी दो लड़कियाँ थीं। और यद्यपि बाबू जी का अपना रंग कुछ ऐसा काला न था, पर उनकी इन पुत्रियों का रंग तो तवे की स्याही को मात करता था। बड़ी लड़की के बायें गाल के ऐन मध्य एक बड़ा-सा, गोल, कदाचित लाहौरी फोड़े का चमकता-सा दाग भी था। उनके इस रंग और उस पर घुँघराले बालों को देख कर चेतन ने पहले उन्हें मद्रासी समझा था, लेकिन बाद में जब उसे मालूम हुआ कि वे मद्रासी नहीं, पंजाबी ही हैं तो उसे ख़याल आया था कि उनके माता-पिता अवश्य ईसाई होंगे—ईसाई, जो भंगी चमारों में से ईसाई हो जाते हैं और पढ़-लिख कर बड़े पदों पर नियुक्त हो जाते हैं। उसके आश्चर्य की सीमा न रही थी, जब उसे पता चला था कि यह बाबू साहब न केवल पंजाबी हैं, बल्कि उसी के ज़िले के रहने वाले हैं। चेतन के मन में उनकी उन दोनों लड़कियों को देख कर घृणा-सी पैदा हो उठती थी। जब उनकी बड़ी लड़की अपने काले रंग, मोटे घुँघराले बालों और गाल के उस बदनुमा दाग को यथेष्ट न समझ कर नीले-पीले रंगीन कपड़े पहन लेती थी तो चेतन के लिए उसकी उप-स्थिति असह्य हो जाती थी। इस पर बाबू चरणदास भाँप कर उस

सौन्दर्य-घन की रखवाली करते थे। बरामदे मे उन्होंने मोटी चिकें लगवा रखी थी, चिकों के पीछे पर्दे थे और वे स्वयं आठों पहर चौकस रहते थे।

उनकी इस सन्देहशीलता को देखते हुए चेतन जब व्यायाम करता था तो अपने कमरे के किवाड़ लगा लेता था। लेकिन कमरे मे कोई वातायन नही था (और खिड़की भी क्योंकि उनके बरामदे के सामने खुलती थी, इसीलिए वह उसे भी बन्द कर लेता था) इस कारण कई बार उसका दम घुटने लगता था और वह कभी-कभी किवाड़ खोल लेता था। एक दिन वह लँगोट बाँधे मालिश करके व्यायाम कर रहा था कि उसका दम घुटने लगा। उसने किवाड खोल दिये। बाबू चरणदास चिक के बाहर मुँह किये दातौन कर रहे थे। क्रुद्ध हो कर बोले :

"Why are you making an ostentation of your thighs ?"

चेतन ने कुछ उत्तर दिया, लेकिन शब्द उसके होंटो ही मे रह गये थे। स्तम्भित-सा वह पीछे हट गया। उसने जल्दी से किवाड़ फिर लगा लिये। किन्तु लगाते ही उसका सारा क्रोध उसके हृदय मे खौल उठा। पड़ोसी का वह अयाचित व्यंग्य तीर की तरह उसके हृदय मे लगा था। तब बदन पोंछ कर स्नान किये बिना उसने कपड़े पहन लिये और ऑक्सफ़र्ड का शब्द-कोष ले कर 'ostentation' शब्द के अर्थ देखे। जब उसे तसल्ली हो गयी कि अर्थ वही है जो उसने समझे हैं तो उसने बड़े परिश्रम से, बार-बार शब्द-कोष की सहायता ले कर, अंग्रेज़ी ही मे पत्र लिखा :

Dear Sir,

You have just accused me of making an ostentation of my thighs. The accusation is wrong, unjust, sinister and unwarranted. It has injured my feelings to a great extent, as it is totally wrong and baseless.

The word ostentation (as given in the oxford Dictionary) means a display, a showing off. This presupposes an intention of doing so, which, in my case, was conspicuous by its absence. I always take my exercise, in a closed room (which I close because of your convenience only.) To-day also, the room was closed, but it became so stuffy that I was forced to open it to have a breath of fresh air and when, I was just opening the door you made that sinister remark of yours.

I am perfectly sure that you never meant what you uttered. You probably meant that I should not come in the open, with only a loincloth on my body. I will try to do so in future. In the mean while I would expect you to take your remarks unreservedly back.

Yours truly
CHETAN ANAND

यह पत्र उसने अत्यन्त साफ़ अक्षरों में लिख कर पड़ोस के एक लड़के के हाथ बाबू चरणदास को भिजवा दिया और अपनी इस नुक्ता-रसी पर बड़ा प्रसन्न हुआ।

बाबू साहब ने उससे माफ़ी माँग ली थी, लेकिन उन्होंने कविराज जी से शिकायत कर दी थी और कविराज जी ने कहीं से एक पर्दा ला कर दरवाज़े पर लटका दिया था।

यह घटना प्रकट में बड़ी साधारण थी, पर चेतन के अति-भाव-प्रवण और हस्सास मन पर इसका बड़ा प्रभाव हुआ था। इसके बाद उसका एकाकीपन और भी गहन हो गया था। इसलिए यह जान लेने पर भी

कि राजकुमार के जिन गुणों की प्रशंसा कविराज नित्य-प्रति किया करते थे, वे उनकी वाणी मे हैं, राजकुमार के अस्तित्व मे नही, चेतन ने उसका स्वागत किया था। वे पुरस्कार और पदक, जो राजकुमार को अपने स्कूल की पत्रिका मे सुन्दर लेख लिखने पर मिले थे, शायद उन स्वर्ण-पदकों की ही तरह थे जो स्वयं कविराज जी को उनके आयुर्वेद-सम्बन्धी ज्ञान के सिलसिले मे प्रदान किये गये थे। राजकुमार एकदम असाहित्यिक था और बुद्धि की कुशाग्रता उसे छू तक न पायी थी। कुछ ही दिनों मे चेतन को इस बात का पता चल गया। तो भी वह उसे नियमित रूप से पढाने लगा था। कहानी लिखना सीखने वाला न सही इतिहास-अँग्रेजी सीखने वाला ही सही, शिष्य तो उसे मिल गया था। वह उसी को पा कर संतुष्ट था। उसके आगमन से, उससे बातें करके उसका थोड़ा बहुत विनोद हो जाता था और उस स्थिति मे चेतन के लिए वही यथेष्ट था।

०

अपने आने के बाद तीसरे दिन ही जब राजकुमार पढ़ने आया तो अपने साथ आबनूस की एक सुन्दर बाँसुरी भी लाया। जब वह पढ़ चुका तो उसने चेतन को बाँसुरी बजा कर सुनायी। चेतन बड़ा प्रसन्न हुआ। पढाई खत्म कर वह राजकुमार के साथ ईदगाह गया और दोनों बड़ी देर तक वहाँ बाँसुरी की धुनों मे मस्त रहे।

०

चेतन को स्वयं बाँसुरी बजाने का बड़ा शौक था। जब वह बहुत छोटा था तो हरलाल पंसारी की दुकान पर एक रँगरेज आया करता था। वह इतनी सुन्दर बाँसुरी बजाता था कि चेतन, जहाँ कहीं भी हो, उसकी बाँसुरी का स्वर सुनते ही भाग आता था। पहले-पहल शायद उसी की बाँसुरी सुन कर चेतन के मन मे बाँसुरी बजाने का शौक पैदा हुआ था। वह मेने से एक अढ़ाई आने की बाँसुरी लाया भी था, किन्तु उससे फूंक ही न देते बनी थी। हार कर बाँसुरी छोड़ वह अपने दूसरे मशगलों में व्यस्त हो गया था। फिर भी, जब कभी कोई मदारी मुहल्ले मे आता

और एक हाथ से डुगडुगी और दूसरे से बाँसुरी बजाता हुआ तमाशा देखने वालो के घेरे मे घूमता तो चेतन का शौक़ फिर दुगने वेग से उमड़ उठता। वह फिर पैसा-पैसा जोड़ कर बाँसुरी ख़रीद लाता और तब तक उसमे फूँकता रहता जब तक उसका सिर दर्द न करने लगता। धीरे-धीरे उसे बाँसुरी मे फूंक देना आ गया। तब वह महावीर दल में भरती हो गया ताकि दल के बैंड वालों से बासुरी को ट्यूनें सीख ले। बैंड वालो की बाँसुरियो को देख कर उसे स्वयं आबनूस की एक बाँसुरी ख़रीदने की इच्छा हुई थी। लेकिन जालन्धर मे तब ऐसी कोई दुकान न थी जहाँ से सब तरह के वाद्य-यंत्र खरीदे जा सकें। इसलिए यह इच्छा कई वर्ष तक उसके अन्तर मे दबी रही थी। लेकिन पहला अवसर पाते ही उसने बाँसुरी ख़रीदी।

१९२९ की बात है। मैट्रिक करने के बाद कॉलेज मे प्रवेश किये उसे कुछ ही महीने हुए थे कि लाहौर कॉंग्रेस का अधिवेशन आ गया। अनन्त के साथ चेतन भी उसे देखने गया। वे तो कदाचित कभी जा न पाते। लाहौर जाने, वहाँ रहने, खाने, पीने और कॉंग्रेस का अधिवेशन देखने की व्यवस्था वे कैसे करते? इतना धन कहाँ से पाते? पर उनके साथ ही, उन्ही की श्रेणी मे, जालन्धर की कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान का पुत्र पढ़ता था। उसने उनको राह सुझा दी। स्थानीय कॉंग्रेस कमेटी ने कॉंग्रेस के अवसर पर स्वयं-सेवक भेजने का निश्चय किया था और कुछ स्वयं-सेवकों की वर्दियों तथा एक ओर के किराये का प्रबन्ध अपने जिम्मे ले लिया था। प्रधान का लड़का खास तौर पर लाहौर के ट्रेनिंग कैम्प से ट्रेनिंग ले कर आया था और उसने जालन्धर मे ट्रेनिंग कैम्प खोला था। उसी की सहायता और सिफ़ारिश पर वे दोनों यह सुविधा पा गये। चंद दिन उन्होने ट्रेनिंग ली और बड़े धड़ल्ले से लाहौर कॉंग्रेस का अधिवेशन देखने चले गये।

अनन्त के पिता तो क़ानूनगो थे, दूसरे वह अपने पिता का इकलौता लड़का था, इसलिए उससे पास तो पर्याप्त कपड़े और जेब-ख़र्च के लिए

काफ़ी रकम थी। किन्तु चेतन के पास केवल पाँच रुपये थे (जो उसने बड़े अनुनय-विनय के बाद माँ से लिये थे, या यों कहिए कि उसके अनुनय-विनय पर माँ ने किसी से ला कर दिये थे) और वर्दी के कपड़ों के अतिरिक्त केवल वही ओवरकोट था। वास्तव में उस समय वह भाई साहब के पास था और चेतन ने उनसे माँग लिया था।

दिसम्बर का महीना था। कड़ा जाड़ा पड़ रहा था। प्रधान के जलूस से तीन-चार दिन पहले वे वहाँ पहुँचे। उन्हें ख़ेमे में उतारा गया जिसमें नीचे पुआल बिछी हुई थी। चेतन को पहली रात सर्दी लगती रही, लेकिन काँग्रेस नगर पहुँच कर महज खुशी से ही वे पहली रात न सोये थे। दूसरी सुबह जब प्रातः ही उन्हें परेड के लिए जाना पड़ा और सर्दी के मारे उनके हाथ-पाँव सन्न हो गये, तब उन्हें पता चला कि काँग्रेस अधिवेशन में 'देखना' और 'मौज उड़ाना' ही नहीं, कुछ करना भी है। सर्दी के मारे एक लड़का परेड ग्राउँड ही में बेहोश हो गया था। अनन्त तो पहले दिन ही खिसक गया। चेतन दो दिन परेड करने जाता रहा, किन्तु यह सब उसके बस का रोग न था। उसमें इतनी शक्ति ही न थी कि ठंडी वर्दी में वह इतनी सर्दी में निकल सके। इसलिए तीसरे दिन वह भी कन्नी काट गया। प्रधान के जलूस में वे दोनों शामिल हुए। जुलूस काँग्रेस नगर (अथवा लाजपत राय नगर) से (जो रावी के तट पर बनाया गया था।) पैदल स्टेशन तक गया और पण्डित जवाहरलाल नेहरू के आने पर फिर बाज़ारों में से होता हुआ चला।

जुलूस से एक दिन पहले वर्षा भी हुई थी। बाज़ारों में बड़ा कीचड़ था। चेतन कभी इतना पैदल न चला था। फिर तीन दिन से (अपने नये-नये जोश में) वह लगातार ड्यूटी दे रहा था। उसके जूते पुराने और खुले थे। इन सब कारणों से खड़े-खड़े उसकी पिंडलियाँ दुखने लगी थीं, चलते-चलते तलुवे दर्द करने लगे थे और नारे लगाते-लगाते उसका गला बैठ गया था। निरन्तर अपने आगे के वालेंटियर की गर्दन के भोंडे, खरखरे बालों को देखते रहना, कभी चल पड़ना, कभी खड़े हो जाना और कभी

नारा लगा देना ! कई घंटे से यही करते-करते यह बुरी तरह ऊब गया था। वह उस बहिया की एक लहर की तरह बहाव में बढ़े जाना न चाहता था। किनारे हो कर उस वेग की बहार देखना चाहता था। जब वे एक अपेक्षाकृत तंग बाज़ार में पहुँचे, जहाँ सहस्रों लोगों के चलने से कीचड़ ऐसी चिकनी मिट्टी-सा हो गया था कि जूते चिपकने लगे थे तो वहाँ एक बार चेतन का जूता ऐसा चिपका कि उतर गया। तब इस अवसर को उपयुक्त जान वह धारा से अलग हो गया। मार्च करते हुए स्वयं-सेवकों के पैरों के नीचे से उसने बड़ी कठिनाई से जूते को निकाला। उसके एक पाँव का मोजा कीचड़ के लथपथ हो गया। इसलिए पहले जूते को हाथ ही में थामे उसने बराबर की एक दुकान के तख्ते पर खड़े हो कर सारा जुलूस देखा। फिर उसने दोनों मोज़े उतारे और पट्टियों को वैसे ही नंगी टाँगो पर कस कर बिना मोज़ों के जूते पहन वह धीरे-धीरे सजे हुए बाजारों की बहार देखता हुआ चल पड़ा।

अनारकली में एक दुकान पर उसे हारमोनियम और दूसरे साज रखे हुए दिखायी दिये। एक शीशे की आलमारी में आबनूस की बाँसुरियाँ भी थी। चेतन वहाँ रुक गया। सब कुछ भूल कर वह दुकान में दाखिल हो गया। उसने भिन्न-भिन्न बाँसुरियों की क़ीमतें पूछीं। उसे जो सबसे अच्छी लगी, उसकी कीमत पाँच रुपये थी। वह दो हिस्सों में विभक्त हो जाती थी और उसमें एक कुंजी भी थी। वह यही खरीदेगा, इस बात का निश्चय करके वह दुकान से उतर गया।

इसके बाद पाँच दिन तक वह और वहाँ रहा। अगणित चीजें वहाँ देखने की थी—प्रदर्शनियाँ, तमाशे, विषय-निर्धारिणी समिति की बैठकें, अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन और कांग्रेस से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी कई संस्थाओं के जल्से; हजारों चीजें खरीदने की थीं, सहस्रों खाने की थीं। कई ऐसी भी थी, जो उसने कभी पहले न चखी थी, न देखी ! कई बार उसका हाथ अपनी जेब की ओर जाता, पर उसकी आँखों के सामने आबनूस की वही सुन्दर बाँसुरी घूम जाती और वह अपने मन तथा

जीभ की लालसा दबा देता।

टिकट के दाम खर्च किये बिना वह काँग्रेस की बैठकों तथा दूसरी नुमाइशों को देख सके, इस विचार से उसने बड़ी कड़ी ड्यूटियाँ दी। रात-रात भर वह ड्यूटी देता रहा। और उसने बिना पैसा खर्च किये सब देखने वाली चीजें देखी। खाना वह (स्वयं-सेवक होने कारण) काँग्रेस के लंगर से खाता रहा और 'अप अप विद माश की दाल, डाउन डाउन विद मूंग की दाल' और ऐसे ही दूसरे नारों का आनन्द (जो मन पसन्द चीजों के मिलने अथवा न मिलने पर लगाये जाते थे) मुफ्त मे लेता रहा। नहाने-धोने के लिए साबुन-तेल काँग्रेस के स्नान-गृहो मे मिल जाता था। इस तरह उसने अपने पाँच के पाँच रुपये बचा लिये थे। वापस जाने का किराया उसने अनन्त से उधार ले लिया और जब वे वहाँ से चले तो उसने जाते-जाते ताँगे से पाँच मिनट के लिए उतर कर वही बाँसुरी खरीद ली।

बाँसुरी पा कर उसे इतनी खुशी हुई कि उसका जी चाहा कि वह स्टेशन तक उसे बजाता ही चले। किन्तु सामान के अधिक होने के कारण ताँगे मे इस बात की सुविधा न थी। इसलिए उसने रास्ते मे बाँसुरी बजाने का लोभ संवरण किया और उसे अपने ओवरकोट के अन्दर की जेब में रख लिया।

स्टेशन पर भी भीड़ इतनी थी कि टिकट लेना चेतन के बस की बात न थी, इसलिए यह भार अनन्त ने अपने कन्धों पर लिया और चेतन सामान की रखवाली करने लगा। जब अनन्त उस बेपनाह भीड़ घुस गया और सामान उतार कर चेतन ने गिन लिया तो वह बिस्तर पर मजे से बैठ कर बाँसुरी के दोनो हिस्सो को जोड़ कर मस्त हो उसे बजाने लगा। वह भूल गया कि वह स्टेशन के मुसाफिरखाने मे बैठा है; भूल गया कि स्टेशन पर बेपनाह भीड़ है; टिकट मिलेगा या नही; उन्हे रात उसी मुसाफ़िर-खाने में तो न बितानी पड़ेगी—वह सब कुछ भूल गया और अपने चिर-परिचित गीत एक-एक करके बजाने लगा। कितनी सुरीली थी वह आबनूस की बाँसुरी!

वह उसकी स्वर लहरी में गुम था कि अनन्त टिकट ले कर घबराया हुआ आया। साँस उसकी फूली हुई थी, कपड़े अस्त-व्यस्त थे, "तुम यहाँ बैठे हो और वहाँ गाड़ी चलने ही वाली है!" उसने चीख़ कर कहा और गेट की ओर लपका।

चेतन ने घबराहट में बाँसुरी दो हिस्सों मे किये बिना, उसी तरह कोट के अन्दर की जेब में रखी और कुली के सिर पर सामान उठवा कर वह भी उसके पीछे भागा। जब बड़ी कठिनाई के बाद वह गाड़ी मे सवार हुए और उन्हे अपने बिस्तरों को रखने और उन्हीं पर बैठने की जगह मिल गयी तो चेतन ने अपने बिस्तर पर बैठ कर, डिब्बे की दीवार के साथ अपनी पीठ लगा, इस बात का ख़याल किये बिना कि वह शौचालय के दरवाज़े से पीठ लगाये बैठा है, बाँसुरी निकालने के लिए ओवरकोट के अन्दर की जेब में हाथ डाला। उसका दिल धक से रह गया। बाँसुरी ग़ायब थी शायद सामान उठाते समय झुकने के कारण जल्दी मे गिर गयी थी। या भीड़ मे किसी ने खींच ली थी। गाड़ी चलने ही वाली थी। अनन्त ने कहा भी कि बैठे रहो और ख़रीद लेना; पर चेतन अंधाधुंध लाइनें फलाँगता हुआ वापस वहाँ गया जहाँ वे बैठे थे। लेकिन बाँसुरी वहाँ होती तो भी उस जल्दी मे उसे न मिलती और फिर इतना भीड़ मे वह धरती पर पड़ी ही कैसे रह पाती। चेतन की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उद्भ्रान्त-सा वह वापस पलटा।

वह इस तरह पागलों की तरह इधर-उधर भटक रहा था कि अनन्त यदि बाहर खिड़की मे न खड़ा होता तो चेतन अपना डिब्बा कभी न ढूंढ़ पाता। रात के एक बजे जब गाड़ी ज़ालन्धर पहुँची और किसी-न-किसी तरह रेलवे रोड, पंजपीर और चौरस्ती अटारी पार कर वह घर के दरवाजे पर पहुँचा तो अन्दर प्रवेश करते ही माँ के पैर छूते-छूते आँसू अनायास उसकी आँखों से बहने लगे।

"क्या बात है बेटा?" माँ ने दुश्चिन्ता से पूछा।

"माँ मेरी बाँसुरी खो गयी।" वह इतना ही कह सका। उसके आँसू

मुखर हो उठे और माँ के सीने से लगा, वह फफक-फफक कर रो पड़ा।

०

राजकुमार की बाँसुरी को देख कर चेतन के हृदय में एक टीस-सी उठी थी। कांग्रेस अधिवेशन के उन सात दिनो का कठिन संयम और उस संयम के बाद का वह क्षणिक उल्लास और लम्बी निराशा उसके सामने घूम गयी। किन्तु समय ने उस घाव को काफ़ी हद तक भर दिया था! आबनूस की बाँसुरी तो वह फिर खरीद न सका था, पर बाँस की पोरी उसके ट्रंक मे अब भी पड़ी थी, जिसे वह कुछ बीबी जी के भ्रू-भंग, कुछ पडोसियो, के गुस्से और कुछ बाबू चरणदास की सन्देहशीलता के कारण बाहर न निकाल पाया था। राजकुमार के साथ बाँसुरी बजाने का अधिकार पा कर उसने सोल्लास वह बाँस की पोरी फिर निकाल ली थी।

०

कुछ दिनों के लिए चेतन अपने एकान्त को बिलकुल भूल गया। अपने अवकाश के समय वह राजकुमार के साथ नीचे घाटियों मे उतर जाता और वे दोनो इकट्ठे मिल कर बाँसुरी बजाते।

सत्तावन

चेतन का यह नया स्वर्ग चंद दिन ही रहा। उन चंद दिनों में उसके अवकाश का सारा समय राजकुमार के साथ बाँसुरी बजाने और घूमने-फिरने मे बीतता।

बाँसुरी बजाने मे राजकुमार कोई विशेषज्ञ न था। स्कूल मे वह अपने स्काउट बैंड का साधारण सदस्य था। इसलिए उसे मार्च की दो-एक तर्जें ही आती थी। उनके अतिरिक्त वह एक पंजाबी गीत बाँसुरी पर बजा लिया करता था:

ओह् ताँ जान करन कुरबान, जिन्हाँ ने दर्शन पा लये ने

ये सब तर्जें उसने चेतन को सिखा दीं। स्वयं चेतन को भी बहुत-से गीत न आते थे और जो आते भी थे, वे कई वर्ष पुराने थे। एक गीत था :

मेरे मौला बुला लो मदीने मुझे

इसकी तर्ज पर महावीर दल ने दो गीत बनाये थे :

१. कृष्ण, मुरली की टेर सुना दे मुझे
२. मुरली वाले बुला ले मथुरा मुझे

मथुरा मे एक मात्रा कम हो जाती थी पर वे अपने जोश मे लम्बी तान खींच कर और कभी मथुरा के साथ 'जी' लगा कर इसे पूरा कर लिया करते थे। इसे बजाते-बजाते चेतन तन्मय हो जाया करता था।

दूसरा गीत था :

तूम्बा वजदा ना
तार बिना
रेंहदी ना
यार बिना
बाबा वे
कला मरोड़
पोतरिए
है नईं जोर
नाले बाबा रात रह गया
नाले दे गया दवानी खोटी
तूम्बा वजदा ना....

न जाने इस गीत का रचयिता कौन था ? न जाने पहले-पहल इसे किसी मीरासिन, किसी किस्सा-गो अथवा कर्तारपुर की बैसाखी मे आये हुए किसी नव-वय के जाट ने गाया था। लेकिन जब यह गीत शुरू हुआ तो अपनी यथार्थता, मौलिकता और सेक्स-अपील के कारण कुछ दिनों ही मे प्रान्त भर मे फैल गया था। नगरों से ले कर गाँवों और दूरस्थ पहाड़ी प्रदेशों तक

(कुछ संशोधन अथवा परिवर्धन के साथ) गाया जाने लगा था। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार लोगों ने इसकी तर्ज पर सहस्रों बोलियाँ रच डाली। इनमे अश्लील बोलियों की संख्या ही अधिक थी। तब इस अश्लीलता और अनैतिकता के प्रचार को देख कर प्रान्त के आचार-विचार के ठेकेदार जैसे गहरी नीद से चौंके और उन्होंने सभ्य घरों मे इसके गाये जाने का एकदम निषेध कर दिया। नैतिक कवियों ने इसके विरुद्ध कविताएँ लिखीं। अमृतसर के एक कवि ने यह गीत गाने वाली स्त्रियों पर इन पंक्तियों के रूप में व्यंग्य किया :

हत्थ विच लैके कैंसरील बाजा
आखे धी, 'झाई गाउँदी चज्जदा नहीं,
मै ते पयी गंधर्वां नूं मात करदी
गाँवाँ कोल वांगो तूम्बा[1] वजदा नहीं !'

और तब महावीर दलों, सेवा समितियों, आर्य-समाजों और खिलाफ़त कमेटियों ने इस तर्ज पर अपने-अपने मतों के अनुसार गीत ईजाद किये। कुछ काल के लिए लोगो ने उन्हे गाया, लेकिन उन गीतों मे वह मौलिकता, वह यथार्थता, वह बेबाकी, मानव की भावनाओं का वह नैसर्गिक प्रस्फुटन न था—थोथी नकल थी—इसलिए वे शीघ्र ही भुला दिये गये और उनके साथ ही यह गीत भी विस्मृति के महागर्त मे जा पड़ा।

चेतन इन दोनों गीतो को बाँसुरी पर अच्छी तरह बजा लेता था। इनके अतिरिक्त जो गीत वह बजाता था (जैसे 'बाज़ार विकेन्दी तर वे' अथवा 'वल्लिए, नी रोवेंगी चपेड़ खावेंगी') वे बाँसुरी के छिद्रों के बदले मुंह की फूंकों ही से निकालता था। उसने सहर्ष राजकुमार को सभी की ट्यूनें सिखा दी और चूंकि इन गीतो को गाने की मनाही थी, विशेषकर

---

१. हाथ में कैंसरील पर्दो वाला हारमोनियम बाजा ले कर लड़की कहती है कि माँ अच्छा नहीं गाती, मै तो जब कोयल ऐसे स्वर में 'तूम्बा' गाती हूँ तो गंधर्व मात खा जाते हैं।

कविराज जी के सुपुत्र के लिए, जो ब्रह्मचारी होने जा रहा था, इसलिए चेतन ने उनकी तर्ज पर उसे समाजी गीत भी लिख दिये ताकि यदि कभी कविराज पूछें, 'यह क्या गा रहे हो?' तो वह तत्काल बता सके—जी मैं 'मौला बुला लो मदीने मुझे' नही गा रहा, मैं तो ऋषि दयानन्द से यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि :

दयानन्द बना ब्रह्मचारी मुझे
पालन करना है कर्तव्य भारी मुझे
वासनाओं ने ठगा है आज हिन्दुस्तान को
कर दिया है खोखला बल-वीर्य की इस खान को
यह चोट लगी ऋषि कारी मुझे
दयानन्द बना..................

'तूम्बा वजदा ना' की तर्ज पर चेतन ने जो गीत लिखा वह यों था :

सिद्धी मिलदी नाँ
ज्ञान .बिना !
धार कदों
सान बिना !
बन्दिया ओए
वक्त न रोहड़
ज्ञान दियाँ
कलाँ मरोड़ !
असी आँ शिष्य दयानन्द दे
तुसी सुन लओ जमाने वालो
सिद्धी मिलदी नाँ............

न केवल उसने ये गीत राजकुमार को लिखवा दिये, बल्कि उसे याद भी करवा दिये। राजकुमार ने शीघ्र ही सब ट्यूनें और उनके गाने सीख लिये और कुछ दिन तक दोनों बड़े प्रसन्न रहे। नीचे खड्ड के किसी पत्थर पर, ईदगाह के जँगले पर या रिज के हवा घर में बैठ कर दोनों मस्त हो,

एक दूसरे से सीखी हुई ट्यूनें बजाते रहे। इस हद तक कि उनमें कोई नयापन न रहा और बाँसुरी बजाते-बजाते उनके सिर दर्द करने लगे। तब दोनों का उन्माद कुछ कम हुआ और किसी दूसरी ओर मन लगाने को जी चाहने लगा। राजकुमार इस बीच मे अपने नये मित्रों से भली प्रकार खुल गया और चेतन ने फिर अपने साहित्य की शरण ली।

कुछ दिन तक उसने अवकाश के समय मे उपन्यास लिखने का प्रयास किया, लेकिन जाने क्यों हजार कोशिश करने पर भी उपन्यास आगे न चला। उसने अधिक उपन्यास न पढ़े थे, उपन्यासों के सम्बन्ध में उसका ज्ञान प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों, बंगाली से अनूदित कुछ उपन्यासों अथवा उन दो-एक अंग्रेज़ी उपन्यासो तक ही सीमित था जो उसने-पाठ्य पुस्तकों के रूप मे पढ़े थे और इतनी पूँजी के साथ अच्छा उपन्यास लिखना उसके बस की बात न थी। पर इस यथार्थता को समझे बिना वह लिखे जा रहा था। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की प्रबल इच्छा उसके अन्तर में निरन्तर अँगड़ाइयाँ लिया करती थी और वह लिखे जाता था, पर उपन्यास कला पर क्योंकि उसका कोई अधिकार न था, इसलिए उसका उपन्यास बार-बार अटक जाता। अड़ियल टट्टू की तरह आगे बढने से इन्कार कर देता। जब बीसियों स्लिपें काली करने पर भी उपन्यास ने सन्तोषजनक प्रगति न की तो एक दिन हार कर उसने सब-की-सब स्लिपें उठा कर एक ओर रखीं और फ़ैसला किया कि वह पहाड़ी लोगों के जीवन पर कहानियाँ लिखेगा।

लेकिन पहाड़ी लोगों के जीवन का उसे कुछ भी ज्ञान न था। कल्पना की सहायता से उसने जो कहानी लिखी, वह उसे एकदम बोगस और असम्भव लगी।

तब कहानी छोड़, उसने कविताएँ लिखने का प्रयास किया, किन्तु न जाने उसकी कविता के सोते को क्या हो गया था? यत्न करने पर भी कोई कविता उससे न बन पड़ी। कॉलेज के दिनो में जब वह कुन्ती के घर के नीचे से हो कर गुजरता था, या उससे भी पहले जब उसका एक नया

कविराज जी के सुपुत्र के लिए, जो ब्रह्मचारी होने जा रहा था, इसलिए चेतन ने उनकी तर्ज़ पर उसे समाजी गीत भी लिख दिये ताकि यदि कभी कविराज पूछें, 'यह क्या गा रहे हो?' तो वह तत्काल बता सके—जी मैं 'मौला बुला लो मदीने मुझे' नही गा रहा, मैं तो ऋषि दयानन्द से यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि :

दयानन्द बना ब्रह्मचारी मुझे
पालन करना है कर्तव्य भारी मुझे
वासनाओ ने ठगा है आज हिन्दुस्तान को
कर दिया है खोखला बल-वीर्य की इस खान को
यह चोट लगी ऋषि कारी मुझे
दयानन्द बना..................

'तूम्बा वजदा ना' की तर्ज़ पर चेतन ने जो गीत लिखा वह यों था :

सिद्धी मिलदी नाँ
ज्ञान बिना !
धार कदों
सान बिना !
बन्दिया ओए
वक्त न रोहड़
ज्ञान दियाँ
कलाँ मरोड़ !
असी आँ शिष्य दयानन्द दे
तुसी सुन लओ जमाने वालो
सिद्धी मिलदी नाँ............

न केवल उसने ये गीत राजकुमार को लिखवा दिये, बल्कि उसे याद भी करवा दिये। राजकुमार ने शीघ्र ही सब ट्यूनें और उनके गाने सीख लिये और कुछ दिन तक दोनो बड़े प्रसन्न रहे। नीचे खड्ड के किसी पत्थर पर, ईदगाह के जँगले पर या रिज के हवा घर में बैठ कर दोनो मस्त हो,

एक दूसरे से सीखी हुई ट्यूनें बजाते रहे। इस हद तक कि उनमे कोई नयापन न रहा और बाँसुरी बजाते-बजाते उनके सिर दर्द करने लगे। तब दोनो का उन्माद कुछ कम हुआ और किसी दूसरी ओर मन लगाने को जी चाहने लगा। राजकुमार इस बीच मे अपने नये मित्रो से भली प्रकार खुल गया और चेतन ने फिर अपने साहित्य की शरण ली।

कुछ दिन तक उसने अवकाश के समय में उपन्यास लिखने का प्रयास किया, लेकिन जाने क्यो हजार कोशिश करने पर भी उपन्यास आगे न चला। उसने अधिक उपन्यास न पढे थे, उपन्यासों के सम्बन्ध मे उसका ज्ञान प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासो, बंगाली से अनूदित कुछ उपन्यासो अथवा उन दो-एक अंग्रेज़ी उपन्यासो तक ही सीमित था जो उसने-पाठ्य पुस्तकों के रूप मे पढ़े थे और इतनी पूंजी के साथ अच्छा उपन्यास लिखना उसके बस की बात न थी। पर इस यथार्थता को समझे बिना वह लिखे जा रहा था। अपनी भावनाओ को व्यक्त करने की प्रबल इच्छा उसके अन्तर में निरन्तर अँगडाइयाँ लिया करती थी और वह लिखे जाता था, पर उपन्यास कला पर क्योकि उसका कोई अधिकार न था, इसलिए उसका उपन्यास बार-बार अटक जाता। अडियल टट्टू की तरह आगे बढने से इन्कार कर देता। जब बीसियो स्लिपें काली करने पर भी उपन्यास ने सन्तोषजनक प्रगति न की तो एक दिन हार कर उसने सब-की-सब स्लिपें उठा कर एक ओर रखी और फ़ैसला किया कि वह पहाडी लोगों के जीवन पर कहानियाँ लिखेगा।

लेकिन पहाडी लोगों के जीवन का उसे कुछ भी ज्ञान न था। कल्पना की सहायता से उसने जो कहानी लिखी, वह उसे एकदम बोगस और असम्भव लगी।

तब कहानी छोड़, उसने कविताएँ लिखने का प्रयास किया, किन्तु न जाने उसकी कविता के सोते को क्या हो गया था? यत्न करने पर भी कोई कविता उससे न बन पडी। कॉलेज के दिनो में जब वह कुन्ती के घर के नीचे से हो कर गुजरता था, या उससे भी पहले जब उसका एक नया

सहपाठी व्रज उसे बहुत सुन्दर लगा करता था, न जाने कहाँ से कविताएँ उडती-सी, बहती-सी उसके मस्तिष्क मे आ जाती थी । चलता-चलता जब वह गुनगुनाता तो किसी-न-किसी कविता की पंक्ति बन जाती । लेकिन अब वह यदि कुन्ती का ध्यान करता (व्रज के ध्यान से अपनी उस आसक्ति पर उसे हँसी आ जाती थी) तो कविता के स्थान पर स्मृति के भूले-बिसरे क्षणों से कई सुखद-दुखद दृश्य उसके सामने एक-एक करके आने लगते.... जब वह परीक्षा के दिनो मे पढता-पढ़ता न जाने क्यों, पुस्तक को मेज़ पर खुली छोड़ कर पुरियाँ मुहल्ले का चक्कर लगा आता और आ कर नये उत्साह और नव-स्फूर्ति से पढ़ाई मे निमग्न हो जाता ।....जब उसे नीचे गुज़रते देख कर कुन्ती छत से उतर आती और उसके पीछे-पीछे अथवा उससे आगे-आगे सहेलियो से चुहलें करती हुई उसे सुना कर फब्तियाँ कसती हुई उसे गली के मोड़ पर छोड़ आती....जब वह कुएँ पर पानी भर रही होती और चर्खी से घड़ा या गागर खीचते हुए उसके वक्ष का उभार अपने समस्त आकर्षण के साथ आँखों को मोह लेता अथवा उसके गालों को गुलाब बनाती हुई उसकी लजीली मुस्कान दिल मे समा जाती ....जब वह अपने विवाह के दिन उस ओर गया था और उसे मालूम हुआ था कि कुन्ती तो विधवा हो गयी है और वह उसके पति की अर्थी के साथ गया था और श्मशान में उसने उसकी मूक मर्माहत व्यथा को देखा था और जब उसकी वे चंचल आँखें अपनी तमाम चौकड़ियाँ भूल कर बेबसी से बैठ गयी थी ।....उसके मूक प्रेम की वेदनामयी, पीड़ामयी घड़ियो के ऐसे कई दृश्य उसके सामने घूमने लगते और कविता की पंक्तियाँ पंख लगा कर न जाने किन दुर्गम घाटियों मे उड जाती ।

सिर को झटक कर उन दृश्यो को फिर विस्मृति के महागर्त में ढकेल-कर वह नीला का ध्यान करता और चाहता कि कोई सुन्दर-सी कविता लिखे । लेकिन इस बार पहले दृश्यो से भी कटु-मधु दृश्य उसकी आँखों के सामने घूमने लगते (भूत के दृश्यों की अपेक्षा भविष्य के कल्पना-जनित दृश्य) जिनमें वह देखता कि नीला तनी बैठी है....देखता कि वह उसे

मना रहा है....देखता कि उसके पिता ने तत्काल उसका विवाह कर दिया है और वह कहीं सुदूर प्रदेश को जा रही है....उसके हृदय को प्रबल आघात-सा लगता। वह सिहर उठता, चौंक उठता और कविता की पंक्तियाँ उसकी पहुँच से कहीं दूर—कहीं बहुत दूर उड़ जाती।

और वह सोचने लगता कि आखिर नीला के विवाह की बात सुन कर उसे दुख क्यों होता है? वह स्वयं विवाहित है, अपनी पत्नी से घृणा भी नहीं करता। स्वयं ही उसने पण्डित वेणी प्रसाद से नीला का विवाह कर देने को कहा है! फिर यह पीड़ा कैसी? और वह अपने मन में लड़ता-झगड़ता कविता लिखने का विचार छोड़ देता। कभी कविराज जी की पुस्तक लिखने में मग्न हो जाता और कभी माल रोड को चल देता।

अट्ठावन

जब चेतन बार-बार उपन्यास या कहानी या कविता लिखने का विफल प्रयास कर थक गया और माल, मिडिल या लोअर बाज़ार अथवा जाकू के चक्कर उसकी उदासी और एकाकीपन को कम करने के बदले बढ़ाने लगे तो एक दिन सहसा उसे पता चला कि वह साहित्य के पीछे योंही लट्ठ ले कर पड़ा हुआ है, वह तो संगीतज्ञ बनने के लिए पैदा हुआ है।

वह पाँच नम्बर की सीढ़ियों से हो कर खाना खाने जा रहा था कि मिडिल बाज़ार के कोने के एक रेस्तराँ से उसे गाने की मधुर ध्वनि सुनायी दी:

कौन देस गया पिया मोरा बालम रे
मैं तो वाहु देस की बलिहारी

वहीं सीढ़ियों पर मन्त्र-मुग्ध-सा वह खड़ा रह गया। इतना तरल, मधुर, करुण संगीत था कि उसके पाँव वहीं जमे रह गये। जब वह ध्वनि

बन्द हुई तो वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरने लगा, पर उसे महसूस हुआ जैसे वह करुण-मधुर-ध्वनि बराबर उसका पीछा कर रही है।

गाना पक्का था और जैसा कि उसे बाद में मालूम हुआ 'ख़याल मुल्तानी' में गाया जा रहा था। न जाने रागिनी ही सुन्दर थी अथवा गाने वाले के स्वर में जादू था, उस समय जब वह फिर अपने-आपको एकाकी महसूस कर रहा था, इस गाने ने उसके एकाकीपन को मिटा दिया, उसकी कल्पना को फिर पंख लग गये और वह फिर नयी बस्तियों में घूमने लगा और जा कर जब वह लेटा तो उसके कानों में वही ध्वनि गूँजती रही।

दूसरे दिन दोपहर को फिर वह उसी गली से हो कर खाना खाने गया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने रेस्तराँ के बाहर एक ओर पूरी-की-पूरी दीवार को अपनी लम्बाई में लिये एक बडा भारी बोर्ड लगा हुआ देखा जिस पर बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा था :

PROFESSOR G. SINGH'S

MUSIC COLLEGE

इस कॉलेज का दरवाज़ा शायद अन्दर की ओर था। बाहर की ओर सिर्फ़ एक खिड़की दिखायी देती थी, जिस पर बडा सुन्दर पर्दा पडा हुआ था। चेतन का जी चाहा कि अन्दर जा कर देखे, पर उसे साहस न हुआ। उस समय भी अन्दर कोई गा रहा था, किन्तु स्वर वह न था जो उसने पहले दिन सुना था। चेतन कुछ पल खड़ा रहा। फिर जैसे अपनी ग़रीबी की विवशता से बेचैन हो कर वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गया।

उस दिन के बाद चेतन का नियम हो गया कि वह खाने के लिए दोनों समय माल के ऊपर से हो कर उसी गली से नीचे उतर कर जाता। नीचे सुरंग को पार करके जाना उसने छोड़ दिया। दोपहर और शाम दोनों समय उसे उस रहस्यमय कमरे के अन्दर से कभी हारमोनियम के मन्द और कभी मध्यम सप्तक के साथ उठता हुआ मीठा मादक स्वर सुनायी देता। कभी तबला भी बजता। यों तो उसके अन्दर से कई

आवाजें आती, लेकिन एक स्वर चेतन को बडा मनमोहक लगता । उसके हृदय को कुछ होने-सा लगता । जी चाहता कि उसे अनवरत सुनता जाय । जब तक वह स्वर आता, वही सीढियों पर खडा वह मुग्ध सुनता रहता । उसे विश्वास हो गया कि यह गाने वाला प्रो० जी० सिंह के अतिरिक्त कोई दूसरा नही, किन्तु स्वर किसी बडे युवा कंठ का मीठा मदभरा था । ज्यो-ज्यो दिन गुज़रते जाते थे, उसकी उत्सुकता बढती जाती थी ।

एक दिन जब वर्षा हो रही थी और वह अपना वही पुराना ओवरकोट छाती से कसे खाना खाने के लिए जा रहा था, उसे फिर रेस्तराँ के उस कमरे से वही मादक स्वर सुनायी दिया । चेतन चलना भूल गया । नन्ही-नन्ही बूंदो मे निरन्तर भीगता सीढियो के एक ओर खडा गाना सुनता रहा । जब गाना-समाप्त हो गया तो एक लम्बी साँस भर कर वह चल पडा । ध्यान उसका उधर ही था और कल्पना में वह उस म्यूज़िक कॉलेज के उस रहस्यमय कमरे का भेद जानने का प्रयास कर रहा था कि उसका पाँव फिसला और वह कई सीढियाँ फिसलता हुआ नीचे लोअर बाजार मे आ रहा ।

तभी सामने के हलवाई की दुकान मे गर्म-गर्म इमरतियाँ खाते हुए चंद महानुभावो ने ठहाका लगाया । किसी ने कहा :

"कोई बात नही बाबू जी, किसी ने देखा नही," और वे फिर हँसे ।

चेतन खिन्नता से दाँत निपोरता हुआ उठा और कपडे झाड कर जल्दी-जल्दी उस दुकान के सामने से निकल गया । यदि उसने ओवरकोट न पहना होता तो निश्चय ही उसकी कमर छिल जाती । ओवरकोट के कारण यद्यपि उसकी कमर तो न छिली, पर उसके चोट काफी आयी । किन्तु उस समय अपनी चोट को भूल कर उन इमरतियाँ खाने वालो की उपहासमयी दृष्टि से शीघ्रातिशीघ्र ओझल हो जाना ही उसने श्रेयस्कर समझा ।

चेतन ढाबे की ओर चला । उसके मस्तिष्क से क्षण भर के लिए

प्रो० जी० सिंह का मादक संगीत और उसकी स्वर लहरी सब हवा हो गयी। उन हँसने वालो पर उसे बडा क्रोध आया। लेकिन जब दूसरे क्षण जरा ठंडे दिल से उसने सारी घटना पर पुनः विचार किया तो उसके सामने कई घटनाएँ आ गयी जब अपने मित्रो के साथ मिल कर वह स्वयं गिरने वालो पर हँसा था—साइकिल से गिरने वालों पर, साइकिल से बचने की कोशिश मे गिरने वालो पर, बाजार के कीचड़ में फिसल कर गिरने वालो पर! 'मानव का यह कैसा स्वभाव है?' उसने सोचा, 'दूसरो को दुख मे देख कर उसे खुशी क्यो होती है, गिरतों पर हँसने की अपेक्षा वह उन्हे उठा क्यो नही लेता?'

खाना खाने के बाद चेतन जब लौटा तो उसने कनखियों से हलवाई की दुकान की ओर देखा। न जाने क्यो उन लोगो के सामने जाने मे उसे झिझक-सी हो रही थी। खाना खाने मे भी उसने रोज की अपेक्षा अधिक समय लगाया था।

वे लोग जा चुके थे। वर्षा बन्द हो चुकी थी और बादल कही जाकू की ओर उड़ गये थे। चेतन तनिक स्वस्थ हो कर फिर चल पडा।

म्यूजिक कालेज मे फिर कोई गा रहा था—कौन देस गया पिया मोरा बालम रे? गीत वही था, पर स्वर मे वह मादकता कहाँ? चेतन कुछ क्षण तक खड़ा सुनता रहा। फिर साहस बटोर कर अन्दर चला गया। शायद सीढियो से गिरने में जहाँ एक ओर उसके मन में संकोच पैदा हो गया था वहाँ दूसरी ओर साहस का भी उद्रेक हुआ था।

प्रो० जी० सिंह का म्यूजिक कॉलेज लखनऊ के म्यूजिक कॉलेज जैसा शानदार न था, यद्यपि बोर्ड उस पर बहुत लम्बा और अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से लिखा हुआ लगा था। लाहौर मे किसी बाजार के चौबारे अथवा किसी मकान के एक ही कमरे मे सीमित 'संगीत महाविद्यालयों' की तरह यह कॉलेज भी, रेस्तराँ के एक ही कमरे की परिधि मे सीमित था और वह कमरा भी जैसा कि चेतन को अन्दर जाने पर ज्ञात हुआ, लम्बाई मे बाहर लगे हुए बोर्ड से कम ही था।

सारे-के-सारे मकान मे तीन कमरे थे। इनमे से पहला किचन का काम देता था। इसमें रेस्तराँ के ग्राहको के लिए चाय आदि बनती थी और चूंकि खाना खाने की इच्छा रखने वालो के लिए खाना भी पकता था, इसलिए ऊँची बनी हुई अँगीठियो पर सदैव कोर्मा, कोफ़्ता, रोगनजोश, मछली आदि पकती रहती थी। इसके साथ (अर्थात बीच के कमरे में) प्रो० सिंह कॉलेज के विद्यार्थियों को संगीत की शिक्षा देते थे। तीसरे कमरे मे रेस्तोराँ के ग्राहक चाय आदि पीते या खाना आदि खाते। यहाँ तीन चार तिपाइयाँ लगी थी, एक बडा-सा मेज भी था, जिसके इर्द-गिर्द कुर्सियाँ लगी थी। तिपाइयाँ और मेज़ कैसे थे, इसका अनुमान मेजपोशों पर पडे हुए सालन आदि के बडे-बडे धब्बो को देख कर ही लगाया जा सकता था। लेकिन यह सब बाहर से दिखायी न देता था। बाहर से तो इन तीनो कमरो की खिडकियो पर लगे हुए पर्दे ही दिखायी देते थे जो इनको विचित्र रहस्यमयता प्रदान कर रहे थे। इन तीनों कमरो के दरवाज़े एक छोटी और अपेक्षाकृत अँधेरी गैलरी में खुलते थे जो रेस्तराँ के किचन के बराबर से शुरू हो कर डाइनिंग रूम में समाप्त हो जाती थी। सिर्फ़ इसी गैलरी का दरवाजा बाहर से दिखायी देता था।

चेतन इसी दरवाज़े से अन्दर दाखिल हुआ। किचन से उठने वाली घटिया घी और प्याज की दुर्गन्ध से उसका दिमाग भन्ना उठा। नाक पर रूमाल रखे किचन के सामने से घूम कर वह म्यूजिक कॉलेज के दरवाज़े के सामने आ खडा हुआ।

चिक को थामे-थामे उसने देखा—एक छोटा लेकिन साफ़-सुथरा कमरा है, फर्श पर दरी बिछी हुई है जिस पर एक हारमोनियम और तबले की जोडी पडी है। मेटलपीस पर कमरे की दीवारो के रंग से मेल खाता हुआ एक कपडा बिछा है जिस पर एक कैलेंडर, चीनी के फूलदान और दो चीनी ही के चूहे करीने से रखे हैं। तबले और हारमोनियम के अतिरिक्त कमरे मे कोई साज नही।

उस कमरे के मध्य एक बारह-चौदह वर्ष का लड़का वही हारमोनियम

लिये बैठा था। शायद वही मुल्तानी का ख़याल गा रहा था, और यद्यपि वह खादी का एक धुला साफ़ पायजामा, छपी हुई खादी ही की अचकन और सिर पर रागियों जैसा साफ़ा पहने था, पर सूरत-शक्ल से वह ओवर मालूम होता था। (और चेतन का अनुमान ग़लत नहीं था क्योंकि बाद में उसे मालूम हुआ कि ओवर ही था) उसे बैठे हुए देख कर चेतन आश्वस्त-सा हो अन्दर दाखिल हुआ।

"आइए!" किवाड़ के पीछे से आवाज़ आयी। मतलब था कि कहिए, कैसे कृपा की?

चेतन ने चौंक कर देखा। दरवाज़े की ओट में दीवार के साथ तीन लोहे की कुर्सियाँ रखी थीं। उनमें से एक पर क़ीमती और नफ़ीस सूट पहने एक सुन्दर सिख युवक शर्माये हुए मेहमान-सा बैठा था।

"बैठिए!"

चेतन को यह आवाज़ बड़ी मीठी लगी—दोपहर की निस्तब्धता में सहसा बज उठने वाली किसी बैल के गले में बँधी घंटी के स्वर-सी! चेतन कुर्सी पर बैठ गया।

"फ़रमाइए!" उस युवक ने फिर कहा।

"प्रो० साहब कब आयेंगे?" कुछ और कह सकने में अपने-आपको अशक्त-सा पा कर चेतन ने पूछा।

"फ़रमाइए!"

उस स्वर में मिठास के साथ कुछ ऐसा आत्मविश्वास था कि चेतन पूछा, "आप ही प्रो० सिंह हैं?"

उस युवक ने सिर हिला कर उत्तर दिया कि 'हाँ'। तब चेतन निमिष भर के लिए चकित-सा उसे देखता रहा। उसका विचार था कि प्रो० सिंह कोई ईसाई होंगे अथवा कोई केश रहित सिख। उम्र भी प्रो० साहब की उसने चालीस-पचास के ऊपर ही लगायी थी और रागियों जैसी बड़ी-सी पगड़ी की भी उसने कल्पना की थी। किन्तु उस काल्पनिक व्यक्ति के स्थान पर इस चौबीस-पच्चीस वर्ष के कोमल-कान्त सिख युवक को देख कर

वह चकित रह गया। इन प्रोफेसर महोदय का कद न बहुत लम्बा था, न बहुत छोटा (पाँच फुट पाँच-छः इंच होगा) शरीर छरहरा और रंग गेहुँआँ था। मसें अभी भीग रही थी। होट पतले और गुलाबी थे। जबडो की हड्डियाँ हल्की-सी उभरी हुई थी जिनसे कल्लों मे हल्के-हल्के सुन्दर गढ़े बन गये थे। आँखें बडी-बडी, हैरानी और रौशन थी। मस्तक चौड़ा और प्रशस्त। सिर पर उन्होने बडे श्रम और सफ़ाई से दस्तार सजा रखी थी। सुन्दर कंठ मे सूट मे मेल खाती टाई थी और कुल मिला कर उनके मुख पर हल्की-सी स्त्रैणता की झलक थी। जब वे मुस्कराते थे तो उनकी मुस्कान संकोच के पर्दे मे लिपटी हुई बड़ी भली लगती थी। चेतन को विश्वास हो गया कि जो मादक स्वर लहरी वह सीढ़ियों पर खड़ा नित्य सुनता रहा है, वह इसी सुन्दर कंठ से निकली होगी। उसका जी चाहा कि किसी प्रकार सामने बैठ कर उनका गाना सुने, किन्तु उसके मुँह से तो शब्द भी न निकल रहा था। आखिर प्रोफ़ेसर साहब ने उसकी मुश्किल हल कर दी, "कहिए कैसे आये ?"

"इधर खाना खाने आया करता हूँ।" चेतन ने साहस बटोर कर कहा। "आपका बोर्ड पढा। आप से मिलने का शौक़ पैदा हुआ। गाना सुनने और सीखने का मुझे शौक है, इसलिए चला आया।"

प्रोफेसर साहब खुश हुए, क्योकि वे मुस्कराये। चेतन भी खुश हुआ, क्योकि उसे उनकी मुस्कान बड़ी भली लगी। कुछ और साहस पा कर उसने पूछा, "आप यही गाना सिखाते है ?"

प्रश्न कुछ निरर्थक-सा था, इसलिए प्रोफ़ेसर साहब सिर्फ मुस्कराये।

वे इतना अच्छा मुस्कराते थे कि चेतन शायद फिर कोई ऐसा ही निरर्थक प्रश्न करता, लेकिन उसी समय प्रो० साहब ने अपनी टाई की गिरह को ठीक किया और चेतन को उनके और अपने कपड़ो के अंतर का ध्यान आ गया। वह ज़रा घबरा भी गया। हकलाते हुए उसने पूछा।

"यहाँ सिखाने की फ़ीस आप क्या लेते हैं ?"

"पाँच रुपये।"

चेतन पूछने वाला था कि घर पर सिखाने की फ़ीस आप क्या लेते हैं, लेकिन उसे यह प्रश्न निहायत बेमानी लगा। वह घर पर कहाँ सीख सकता है? कुछ सोच कर उसने पूछा, "आप किस समय सिखाते हैं?"

"सुबह दस से एक बजे तक, फिर शाम को चार बजे से छः बजे तक।"

चेतन जानना चाहता था कि जो गाना वह सुना करता था वह किसका है? निश्चय ही वह उस भीवर लड़के का ,तो नही हो सकता। वह चाहता था कि वह किसी तरह प्रोफ़ेसर साहब का गाना सुने। लेकिन प्रोफ़ेसर साहब चुप थे। बस प्रोफ़ेसर बने बैठे थे। तब चेतन कुछ और न कह सका। वह उठा। चलते-चलते उसने केवल इतना और पूछा कि फ़ीस तो वे पहले ही लेते होंगे। जब उत्तर में प्रोफ़ेसर साहब फिर मुस्कराये तो चेतन ने इतना और कहा कि वह शिमले में कविराज रामदास के साथ आया हुआ है, उन्ही के साथ काम कर रहा है। पहली को वेतन मिलेगा तो वह उनकी सेवा में उपस्थित होगा।

प्रोफ़ेसर साहब की मुस्कान ज़रा देर तक फैली रही। चेतन स्वाभावानुसार 'नमस्ते' और फिर ज़रा घबरा कर 'सत श्री अकाल' कह कर चला आया।

उनसठ

चेतन म्यूज़िक कॉलेज से चला तो अकेला न था, बल्कि अगनित राग-रागनियाँ उसके साथ थी। उसे बचपन से संगीत का शौक़ था। बचपन में जब वह 'हरवल्लभ' के प्रसिद्ध मेले में भारत के बड़े-बड़े संगीताचार्यों के गाने सुनता था तो यद्यपि वह उनके तान-पलटे और आलाप-विलाप न समझ पाता, लेकिन उसके मन मे सहस्रों पुलक जाग उठते और वह चाहा

करता कि स्वर और लय की इस दुनिया पर उसका अधिकार हो जाय। किन्तु संगीत-शिक्षा पर आज के सभ्य संसार मे फीस लग गयी है। या तो बेतहाशा रुपया खर्च किया जाय, या घर-घाट छोड कर चौबीसो घंटे उस्तादो की शागिर्दी की जाय, और रात-दिन उनकी चिरौरी करके कला के समुद्र से दो चुल्लू पानी पिया जाय—दो चुल्लू हो। पूरी प्यास वे बुझा सकेंगे इसकी आशा आज के गुरुओ से नही।

चेतन के पास न पहली बात के लिए पैसे थे न दूसरी के लिए समय। घर के कामो और पढ़ाई-लिखाई के बाद उसके पास बहुत समय न बचता था। फिर उसे एक ही साथ कई बातो का शौक था। वह एक साथ ही अच्छा कवि, लेखक, चित्रकार संगीतज्ञ, अभिनेता, वक्ता, सम्पादक और न जाने क्या-क्या बनना चाहता था।

वास्तव मे घर के घुटे-घुटे वातावरण और अत्यधिक दबाव के कारण बचपन ही से उसके अन्तर मे कुछ जमाव-सा जो था, वह तनिक उन्मुक्त होने पर, सहसा पिघल कर सहस्र धाराओ मे वह निकलना चाहता था।

०

जब माँ उन्हे जालन्धर ले आयी थी और पिता का उतना डर न रहा था तो चेतन के सहमे डरे बचपन ने नव-जात मृग शावक की भाँति जैसे पहली बार आँखें खोल कर अपने इर्द-गिर्द देखा था। पर उसकी दशा उस मृग शावक की-सी थी, जिसकी टाँगें जन्म ही से निर्बल हो और जो अपने मन की समस्त चंचलता के बावजूद दुनिया की रंगीनी को मुटर-मुटर तकता और कुलाँचे भरने की इच्छा को मन-ही-मन दबा कर रह जाय!

मुहल्ले के बेशुमार लड़के नंगे सिर, नंगे शरीर, चचल-चपल बन्दरों की तरह दिन भर हुडदंग मचाते थे; गिल्ली-डंडा, तंग-गोली, ठैया-टापू गेंद-बल्ला, कबड्डी आदि खेलते रहते थे, लेकिन चेतन अपने इन समवयस्कों के खेलो मे कभी भाग न ले सका। वह हृष्ट-पुष्ट न था। यदि उसे कोई पीट देता अथवा साथ न खेलाता तो उस प्रतिकार उससे न होता।

'खिलाओ नही तो खेलने न देंगे !' या, 'न खेलेंगे न खेलने देंगे'—इन स्वर्ण सिद्धान्तों पर दूसरे लड़को की तरह वह अमल न कर सकता। वह तो बस अलग हो जाता। आहत हो कर उसका अहं उनसे परे खिंच जाता। जब कभी लड़के उसे न खेलाते तो वह अपने पुराने मकान की कच्ची छत पर जा बैठता और सामने डिप्टी साहब के मकान की खिडकियों पर बने हुए मोर और तोते देख कर उन्हे उँगली से कच्ची छत पर बनाया करता। कभी-कभी आटे मे भिन्न रंग मिला कर वह उससे उन खाकों में रंग भी भर देता। वह इस चित्रकारी मे इतना मग्न हो जाता कि उसे लड़को का खेल, अपना अपमान, मुहल्ले का शोर सब कुछ भूल जाता।

उन्ही दिनो उसकी मित्रता बराबर की गली के एक अपने ऐसे कलाकार बालक से हो गयी।

यह कलाकार उनके मुहल्ले मे पानी भरने वाले दलाराम कहार का लड़का महंगा राम था। ऊँची जात के हिन्दू राम के पवित्र नाम को उन नीचो के नाम के साथ लगाना पाप समझ कर बाप को केवल दला और उसके लड़के को केवल महंगा कहकर पुकारते थे। यह महंगा यद्यपि चेतन से डेढ़ एक वर्ष छोटा था, लेकिन बड़े ऊँचे दर्जे का कलाकार था। मिट्टी के ऐसे सुन्दर खिलौने बनाता कि चेतन उसकी कारीगरी को देख कर मन्त्र-मुग्ध रह जाता। शीघ्र ही उसने उससे मित्रता पैदा कर ली। खाना-खेलना छोड़ कर चेतन उसके साथ घूमता रहता। उसके छोटे-मोटे काम करता ताकि प्रसन्न हो कर वह कला के कुछ अमूल्य भेद उसे बता दे। धीरे-धीरे उसने चिड़ियाँ, तोते, कुत्ता, बिल्ली आदि बनाना सीख लिया। छोटे-छोटे सुन्दर खिलौने बना कर ऊपर चौबारे को उनसे पाट दिया।

जब वह कुछ और बडा हुआ तो इन्ही कुत्ते बिल्लियो को रेखाओं में अंकित करने लगा। उसकी तख्ती-स्लेट और बाद मे उसकी कापियाँ इन्ही चित्रो से भरी रहती। आज-कल निचले-मध्य-वर्ग की स्त्रियाँ बालों में जहाँ सूइयाँ या क्लिप लगाती है, वहाँ उस ज़माने में सोने की चिड़ियाँ या तोते लगाये जाते थे और बाजियाँ वाले बाज़ार के काने सुनार धर्मनाथ

को चिड़ियाँ और तोते बनाने मे अपूर्व दक्षता प्राप्त थी । चेतन चचा धर्मनाथ की मिन्नत-समाजत करके उससे नयी-नयी तरह के तोते और चिडियो के खाके कागज पर बनवा लाता और फिर बुरजी कागज़ ले कर कापी पर उनकी नकल कर लेता और फिर उनमे रंग भरा करता । उसे भूगोल जरा भी न रुचता । विभिन्न जिलो, प्रान्तो, प्रदेशो की सीमाओ, प्राकृतियो विभागो, बनावटो और दूसरी ऐसी बातो को याद करना उसे एकदम विरस लगता । किन्तु नदियो, रेलो, समुद्रो, बन्दरगाहो, जन-सख्या आदि के मानचित्र बनाना, उनमे भिन्न-भिन्न रंग भरना, उसे बडा रुचता था । विज्ञान मे उसे ज़रा भी दिलचस्पी न थी, लेकिन विभिन्न प्रयोगो के चित्र वह बड़े चाव से बनाता ।

बचपन ही से उसे कविता का भी शौक था । उसकी पाठ्य-पुस्तको मे जो कविताएँ होती थी, उन्हे वह कंठस्थ कर लेता था । 'आता है याद मुझको गुजरा हुआ ज़माना,' 'अरे 'यारे लड़को बहादुर बनो तुम !' 'तारीफ उस खुदा की जिसने जहाँ बनाया' और दूसरी कई ऐसी कविताएँ उसे जबानी याद थी । वह घर मे अपने दादा, माँ, भाभी अथवा भाई के सामने अभिनय के साथ उन्हें सुनाया करता था ।

वह पाँचवी जमात में पढता था जब पहली बार 'आर्य भजन पुष्पांजलि' प्रकाशित हुई । स्कूल के वार्षिकोत्सव पर चेतन ने उसे भजन-मंडली के मुखिया के हाथ मे देखा और फिर किसी-न-किसी तरह पैसे जोड़ कर वह एक प्रति खरीद लाया । वह भजन पुष्पाजलि उसे इतनी अच्छी लगी कि उसके प्रसिद्ध भजन उसने एक दूसरी कापी मे बडे सुन्दर अक्षरो मे लिखे । इसके बाद प्रति वर्ष भजन पुष्पाजलि का परिवर्धित संस्करण निकलता रहा और प्रति वर्ष वह उसे खरीद कर अपनी उस कापी मे सुन्दर-सुन्दर भजनो की वृद्धि करता रहा । वह उन्हे कंठस्थ करता रहा और बिना इस बात की चिन्ता किये कि उसका स्वर अच्छा है या नही, उन्हें गाता भी रहा ।

धीरे-धीरे वह उन भजनो की तर्ज़ पर अपने भजन लिखने लगा ।

उसे मात्राओं अथवा छन्दो का ज्ञान न था। बस गा कर ही वह देख लेता था और तुक के साथ तुक मिला लेता था।

वह कभी भजन रचने का प्रयास न करता, केवल उन्हे नकल करने पर ही सन्तुष्ट रहता, यदि उनके मुहल्ले मे एक महत्वपूर्ण घटना न घटती।....

बाजार मे सुर्खे (लाल मुनियें) और बिजडे (बये) बिकने आये थे। उनके सामने जो सुनार रहता था, उसने आठ-दस सुर्खे खरीद कर एक छोटे से पिंजरे मे बन्द कर दिये थे। यह पिंजरा वह रोज शाम को दुकान से ला कर खिड़की मे लटका देता था। अपनी बैठक में बिस्तर पर लेटा-लेटा चेतन अनवरत उन्हे तकता रहता और उन नन्ही-नन्ही बन्दी चिडियो को देख कर उसका मन दुख से भर आता। वह कई दिन तक ऊँचे स्वर से—'आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना, वह झाड़ियाँ चमन की वह मेरा आशयाना!' गाता रहा। लेकिन जब इससे भी उसके मन को शाति न मिली तो उसने पुष्पाजलि के एक भजन—'हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिए!' की तर्ज पर एक भजन लिखा और अपनी ओर से उससे इस भजन मे अपने पडोसी सुनार को सम्बोधित किया :

हे महाशय बन्द चिड़ियों को रिहाई दीजिए
मन पे उनके बीतती जो ध्यान उसका कीजिए

भजन लम्बा था और इसी रंग में उसने उस क्रूर सुनार से कहा था कि यदि तुम्हें कोई दूसरा कैद कर ले तो तुम्हारे दिल पर क्या बीतेगी। उस अपनी दशा का खयाल करके इन बन्दी चिडियो को छोड दो। यदि तुम इन्हे न छोडोगे तो अगले जन्म में तुम चिडिया बनोगे और ये चिड़ियाँ व्याध बन कर तुम्हे बन्दी बनायेंगी।

इस भजन को वह बड़े ऊँचे स्वर से गाता। नीचे बैठक की खिडकी मे, (उनके पुराने मकान की जगह अब नया मकान बन गया था) ऊपर छत की शहनशीन पर, मुहल्ले के कुएँ की जगत पर बैठ कर, वह यही भजन गाता। तभी सहसा एक दिन जब सुनार आया तो उसका पिंजरा

खाली था। सुर्खों को उसने एक दूसरे व्यक्ति के हाथ कुछ लाभ पर बेच दिया था। चेतन ने यही समझा कि उसके गीत से प्रभावित हो कर उस सुनार ने सुर्खों को मुक्त कर दिया है और इस विचार से जहाँ उस सहृदय सुनार के प्रति उसकी सब घृणा एक तरह की श्रद्धा मे परिणत हो गयी, वहाँ अपनी सृजन-शक्ति के प्रति उसके मन में आत्मविश्वास भी पैदा हो गया और इस घटना से प्रोत्साहित हो कर उसने कई और भजन लिखे।

जब वह ज़रा बडा हुआ तो कविता के साथ-साथ उसके मन मे संगीत का भी शौक पैदा हो गया। वास्तव में जालन्धर के हर लड़के को किसी-न-किसी हद तक संगीत का शौक अवश्य होता है। चेतन संगीतज्ञ तो क्या बनता (दोआबा के दूसरे तरुणो की तरह) बैतबाज़ बन गया और पंजाबी बैत[1] लिखने लगा। जालन्धर के लडको मे कविता और संगीत का शौक़ वास्तव में वहाँ प्रति वर्ष होने वाले 'हरबल्लभ'[2] के संगीत-सम्मेलन के कारण होता है। हरबल्लभ के सगीत-सम्मेलन मे गाये जाने वाले पक्के गाने, उसके अन्तर को झंकृत करने पर भी, उसकी समझ से बाहर की चीज़ थे। इसलिए वह दूसरे बेगिनती युवको की तरह संगीतज्ञो के मंडप को छोड़, 'पोने' के बैतबाज़ो मे जा शामिल होता। बैत सुनते-सुनते वह स्वयं बैत कहने लगा।

हरबल्लभ का मेला बडे दिनो की छुट्टियो मे लगातार तीन दिन तक जालन्धर के देवी तालाब पर लगता है? भारत भर में यह अपनी तरह का एक ही आयोजन है। देश के दूरस्थ प्रदेशो से संगीतज्ञ आते है और वर्ष भर से सोयी, देवी तालाब की लहरें जैसे उनके स्वर्गिक संगीतो से जाग कर, मनोमुग्धकारी तानो को स्मृतियो मे भर, फिर वर्ष भर के लिए सो जाती है।

उन दिनो मेले के आयोजनकर्ता हरबल्लभ के शागिर्द पण्डित तोलाराम

---

१. बैत पंजाबी भाषा में चार पंक्तियों की कविता को कहते हैं। यह हिन्दी के चौपदों की भाँति होती है।

२. जालन्धर का प्रसिद्ध संगीतज्ञ जिसकी याद में मेला लगता है।

थे। वे स्वयं गुणी व्यक्ति थे। जिस लगन, जिस निष्ठा से मेले का प्रबन्ध वे करते वैसा कोई न कर पाता। उनके समय में संगीत-सम्मेलन पर टिकट भी न लगता। मेले से कई दिन पहले वे खाने की सुध-बुध भुला कर गवैयों को ठहराने, उनके लिए तम्बू लगवाने, उनके खाने-पीने और दूसरी सुविधाओं का प्रबन्ध करने में तल्लीन हो जाते। हरवल्लभ की एक कमेटी भी थी, किन्तु उसकी जान वही थे। दूर-दूर से लोग इस संगीत समारोह को देखने के लिए आते। प्रातः से ले कर रात के एक बजे तक देवी तालाब पर रौनक रहती। रात के समय बड़े-बड़े संगीताचार्यों का गाना होता, जो दिन की भीड़ में गाना पसन्द न करते। लोग गाना सुनते, किनारों पर लगी हुई दुकानों से खाते-पीते, सफ़री थियेटरों, जादूगरों, मदारियों के करतब देखते और नहीं तो पोले में जा कर बैतबाजों के बैत सुनते।

चेतन के पास खाने-पीने अथवा थियेटर आदि देखने के लिए तो पैसे न होते—हाँ वह पोले की बैतबाज़ी का आनन्द प्रति वर्ष लूटता।

पोला वास्तव में एक पर्दे का स्थान है और देवी तालाब में स्त्रियों के स्नानार्थ बनाया गया है। तालाब के दक्षिण की ओर काफ़ी जगह बड़ी ऊँची दीवारों ने घेर रखी है। दो दरवाज़े हैं। एक छोटा-सा बरामदा है ताकि वर्षा हो तो उसके नीचे आश्रय ग्रहण किया जा सके। उसके सामने खुली जगह है, फिर सीढ़ियाँ हैं और फिर पानी। तीन ओर दीवारें हैं और इन दीवारों के साथ ऊपर की पहली सीढ़ी की सतह पर एक मेंड़-सी बनी हुई है। वास्तव में पोले की दीवार पानी के नीचे चौहरी और ऊपर केवल दोहरी ईंटों से बनी है। इसी से यह मेंड़-सी बन गयी है। इससे लाभ भी है। इस पर बैठ कर पानी के कूलों को साफ़ किया जाता है और तालाब की कीचड़ निकाली जाती है। यह मेंड़ इतनी चौड़ी है कि इस पर आदमी बड़ी आसानी से खड़ा हो सकता है अथवा टाँगें नीचे लटका कर बैठ सकता है।

हरवल्लभ के दिनों में वहाँ स्त्रियों के जाने की मनाही होती है। सर्दियों में तालाब का पानी काफ़ी उतर चुका होता है। सीढ़ियों पर बैठने के लिए

काफी स्थान होता है और दिन भर मे पंजाबी बैतबाजों की कई मजलिसें वहाँ लग जाया करती हैं।

दोआबा के पंजाबी बैतबाज़ उन दिनो (और बहुत हद पाकिस्तान बनने तक) अधिकतर नेचेबन्द, रँगरेज, मोटर-ड्राइवर, खोंचे वाले और इसी वर्ग के आदमी थे। यह 'अब्र' साहब है—'अब्र' का काम पानी बरसाना है और ये भी कम्पनी बाग के फूलों पर पानी बरसाते है—भिश्ती है, इसी नाते इन्होने अपना उपनाम 'अब्र' रख लिया है। कई सी-र्हफियाँ लिख चुके है। यद्यपि इनमे से किसी के छपने की नौबत नही आयी, किन्तु उस्ताद माने जाते है और इनके शिष्यों की संख्या सब से अधिक है।

यह रहमत साहब है—पतले-दुबले शरीर पर उटुंग पायजामा, गबरून की कमीज और खाकी जीन का कोट पहने और सिर पर बिजली-रँगा साफा बाँधे। पेट और कल्ले अन्दर को धँसे हुए है; जबड़ो की हड्डियाँ उभरी हुई है; दाढी बढी हुई है; हाथ-पाँव इतने रंगो मे डूब चुके है कि उनका असली रंग बताना कठिन है। रँगरेज है। पहुँचे हुए कवि हैं और जालन्धर की नयी पौध के उस्ताद माने जाते है।

यह वजीर साहब है—तहमद लगाये, कुर्ता पहने और सिर पर उल्टी-सीधी पगडी बाँधे। कपडे मैले और काले, हाथ-मुँह उनसे भी मैले और काले। कोयले बेचते है और बैत कहते है। आशु कवि हैं और अखाड़ों मे बडे-बडों को सामने नही बैठने देते। यह फेरू साहब है—जालन्धर से अमृतसर जाने वाली एक लारी के क्लीनर। अश्लील बैत कहने और उनके फलस्वरूप सिर फोडने-फोडवाने मे कोई इनका सानी नही।

यह शौकत साहब हैं—इश्किया बैत कहते है, जिसका आलम्बन (मुखातिब) स्कूलो के हसीन छोकरे होते है। बेकार है। स्कूल को आने-जाने वाले लडकों को तंग करते है और इसके फलस्वरूप कई बार जूते खा चुके हैं। यह शाम साहब है—किस्से बनाते, छपवाते और बेचते है। जब पैसे खत्म होते है तो एक किस्सा बना लेते है। उधार छपवा लेते है और इमाम नासरुद्दीन के चौक अथवा लाल बाज़ार या बाजार शेखाँ के मोड़

पर खड़े हो कर गाना शुरू कर देते हैं। फिर वहाँ से गाते, किस्से बेचते भीड़ के आगे-आगे सब बाजारो में घूमते है। शाम तक किस्सा बेच देते है। प्रेस की छपवाई देते हैं और जब तक पैसे रहते हैं, लौंडों को लिए कम्पनी बाग में घूमते रहते है। बड़े फक्कड़ शायर है। कई बार अपने किस्सों मे ऐसे नश्तर लगाते है कि लोग तिलमिला कर रह जाते हैं। बुरके वालियों के विरुद्ध उनका एक प्रसिद्ध किस्सा है, जो इन पंक्तियो से आरम्भ होता है :

इह बुरका ऐवें चट्टी ए।
इस बुरके दुनिया पट्टी ए!

और फिर बुरके की बुराइयो को दिखाते हुए उस किस्से में वे ऐसी भेद-भरी बातें कह गये कि पुराने खयाल के मुसलमान बिगड़ गये लेकिन लट्ठमार शायर है, मुसलमान है, किसी की हिम्मत न हुई कुछ कहने की।

यह हरदयाल है—थियेटरो, सरकसो और सफरी सिनेमा कम्पनियों के विज्ञापन बाँटते है। जब जोश में आते है तो आशु कविता करते है और हर बैंत की अन्तिम पंक्ति में 'हरदयाल ने बैंत तैयार कीती' कहना नही भूलते है; इसलिए भी कि कवि हरदयाल की प्रतिभा का पता चल जाय और इसलिए भी कि इससे कविता को पूरा करना सुगम हो जाता है; जैसे :

समझन अकल दी गल्ल ओह कदों यारो
साले यार होवन जेहड़े छित्तरां दे
गल्लां नाल ना मन्नदे कदीं वी ओह
भूत होन जेहड़े यारो लित्तरां दे
मारो दो मुक्के, ओहना पओ पुट्ठे
जुत्ते सौ मारो नाले चित्तड़ां दे

हरदयाल ने बैत तयार कीती
विच्च बैठ के यारां ते मित्तरां दे[1]

यह सब कवि समुदाय हरबल्लभ के इस मेले के लिए साल भर बैत तैयार करता रहता है। सुबह ही ये लोग अपने चेले-चाँटो को ले कर पोने मे इकट्ठे होना शुरू हो जाते है। कविगण दीवार की मेड पर बैठ जाते है और श्रोता सीढियो पर जमा होने लगते है। मुकाबिला सदैव दो व्यक्तियो में ही होता है। कवियो को जरा सुस्ताने का अवसर देने के लिए कभी-कभी उनका उस्ताद या उनका कोई उस्ताद भाई भी एक-आध बैत कह देता है।

आरम्भ मे सदैव मुसलमान कवि रसूले-पाक और हिन्दू दुर्गा माता की स्तुति मे बैत कहते है, लेकिन जल्दी ही वे इश्किया बैतो पर आ जाते है। यहाँ खूब डट कर मुकाबिला होता है। दोनो अपनी-अपनी कला के चमत्कार दिखाते है। जब यह मैदान भी तंग होना शुरू हो जाता है तो वे गालियो पर उतर आते है। दूसरे शब्दो मे जब किसी के बैतो का कोष समाप्त होने लगता तो वह बैत ही में दूसरे पक्ष को कोई गाली दे देता है और विवश हो, दूसरे को गाली ही मे उत्तर देना अथवा चुप हो जाना पड़ता है। चेतन को ऐसी एक बैत सदैव याद रही थी—गाली इतनी पूर्ण और अलंकार इतना सुन्दर था कि वह सुनते ही उसे याद हो गयी थी :

खोता अकल दा अलिफ़, बे, ते पढ़ के
करन लगा बराबरी क़ारियाँ दी
गंजी चूही चँबेली दा तेल ला के
महफ़िल पुच्छदी फिरे कुँवारियाँ दी

---

१. यारो वे साले अकल की बात कब समझें, जो जूतों के यार हों। बातो से वे कभी नही मानते जो लातो के भूत हों। दो घूंसे इनको जमाओ, उलटे ज़मीन पर दे मारो, चूतड़ों पर सौ जूते लगाओ। हरदयाल ने यह बैत तैयार की है (अभी-अभी) दोस्तों और मित्रों में बैठ कर ।

बैठ गया बन के बैंतल बाज भारा
धूड़ फक्कदा फक्कदा लारियाँ दी
इक सुंड दी गंडी लब्भी ऐस बान्दर
हट्ट पा' बैठा एह पँसारियाँ दी[1]

और क्रमशः यह गालियाँ इतनी तीव्र, इतनी कटु, इतनी स्पष्ट और अश्लील हो जाती है कि दोनो में से कोई, अथवा दोनो में से किसी का सहायक, गाली देने वाले पर जूता उतार फेंकता है। तब फिर कविगण अपनी कला के चमत्कार दिखाने के बदले अपने भुज-बल के चमत्कार दिखाने लगते हैं; हो-हल्ला मच जाता है। किसी की पगडी उतर जाती है, किसी की टोपी उछल जाती है। श्रोता बीच-बचाव करते है और सभा भंग हो जाती है। दो-तीन घंटे तक कवि भी और तमाशाई भी दोनो मेला देखने अथवा पक्के गाने सुनने की कोशिश करते है। किन्तु जिस प्रकार छत्ते के हिल जाने अथवा टूट जाने पर मधु-मक्खियाँ इधर-उधर उड कर फिर उसी जगह आ बैठती है, श्रोता और बैंतबाज वही इकट्ठा होना शुरू हो जाते है और किसी दूसरी पार्टी में मुकाबिला शुरू हो जाता है।

चेतन पक्के गाने न समझ सकता था, न गा सकता था; किन्तु बैंत उसके लिए ज्ञेय भी थे और एक भजन को देख कर दूसरा भजन लिखते-लिखते वह एक बैंत की तर्ज पर दूसरा बैंत लिखने लगा था। वह आठवी

१. यह गधा (सम्बोधन सामने मुकाबिले में बैठे कवि की ओर है) अलिफ-बे पढ़ कर हम जैसे क़ारियों (कारी कुरान पढ़ने वाले आलिमो को कहते हैं। यहाँ अभिप्राय सिर्फ आलिमों—बुद्धिमानों से है) के मुकाबिले का दम भरता है। बिलकुल वैसे ही जैसे गंजी चूही चमेली का तेल लगा कर कुमारियों की सभा मे जाने का प्रयास करे। लारियो की धूल फाँकता फाँकता (प्रतिपक्षी, कदाचित मोटर क्लीनर था) यह बड़ा बैंतबाज बन गया है। इस बन्दर को एक सोंठ की गाँठ मिली तो यह पंसारी की दुकान ही सजा बैठा।

श्रेणी मे पढता था जब उसने पहली बार पंजाबी मे एक लम्बी कविता लिख कर पब्लिक मे सुनायी ।

जन्माष्टमी का अवसर था और महावीर दल की ओर से एक सम्मेलन का आयोजन किया गया था और समस्या भी दी गयी । चेतन एक लम्बी कविता लिख कर ले गया और यद्यपि काव्य-कला की दृष्टि से उसमे कई त्रुटियाँ थी, लेकिन उसकी कम वयस के खयाल से उसे एक विशेष पुस्कार मिला था । उस सम्मेलन मे प्रथम पुरस्कार 'अन्न' साहब ने पाया था । उन भिश्ती महोदय को कृष्ण से कोई श्रद्धा हो, यह बात न थी । बैंत कहना और कवि-सम्मेलनो मे पढ कर इनाम पाना, पानी छिडकने के स्थान पर धीरे-धीरे उनका व्यवसाय बनता जा रहा था । उन्होंने चेतन की बडी प्रशंसा की और उसे कविता लिखते रहने का आदेश दिया ।

जब प्रथम पुरस्कार पाने वाले, दोआबा पंजाबी कवि सम्मेलन के प्रधान, उस्ताद 'अन्न' ने उसकी प्रशंसा की तो चेतन के उल्लास और उत्साह की सीमा न रही । वह कई महीने लगातार बैंत लिखता रहा था । यहाँ तक कि माया और मोक्ष पर उसने एक 'सी हरफी'[1] लिख डाली और महावीर दल के कवि-सम्मेलनो मे पढता रहा ।

वह जरा बडा हुआ तो उसका झुकाव उर्दू कविता की ओर हो गया (हिन्दी कविता तब दोआबा में कोई न जानता था । उर्दू पहली श्रेणी से पढायी जाती थी और उर्दू कविता का रिवाज था) बात यह थी कि कविता का शौक मन में उत्पन्न होते ही वह कवि सम्मेलनों मे जाने लगा और जालन्धर में पंजाबी के कवि-सम्मेलनो के साथ उर्दू मुशायरे भी होते थे । वह उधर भी कभी-कभी चक्कर लगाने लगा । वहाँ की अपेक्षाकृत सभ्य तथा सुसंस्कृत वातावरण उसे अच्छा लगा और उसके मन में उर्दू मे शेर कहने का शौक पैदा हुआ और वह धडाधड़ गजलें लिखने लगा । इस प्रकार

---

१. सी-हरफी = बैंतो की ऐसी पुस्तक जिसका हर बैंत क्रमशः उर्दू वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर से आरम्भ होता है ।

उसका संगीत प्रेम जो हरवल्लभ के मेले मे शुरू हुआ था, उसी के कारण काव्य प्रेम मे परिणत हो गया।

०

लेकिन उसका यह शौक मरा न था। इसी शौक के आधीन वह तंगदस्ती में भी पैंतिस रुपये का वाजा खरीद लाया था और न केवल उसने चन्दा को गाने सिखाये थे, वरन स्वयं भी उसने दो-एक महीने पण्डित नत्थूराम से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी और संगीत विद्या पर दो-चार पुस्तकें खरीद कर पढ डाली थी। अब प्रो० सिंह से मिलने पर उसे लगा कि वस अब वह अपनी चिर-अभिलाषा पूरी कर सकेगा। उसके पास हारमोनियम था। उसे थोड़ा-वहुत स्वर-ज्ञान भी था। राग और रागनियो के नाम भी उसे आते थे। कौन सम्पूर्ण है और कौन अपूर्ण; किसमे कौन-कौन-से स्वर शुद्ध और कौन-से कोमल और कौन-से तीव्र लगते हैं; किस राग का क्या प्रभाव मन पर पडता है; कौन-सा राग सुवह, कौन-सा दोपहर, कौन-सा शाम और कौन-सा रात को गाया जाता है; राग रागनियो के रूप क्या है और किस ऋतु में गाये जाते हैं? यह सव किताबी ज्ञान उसे था, किन्तु अभ्यास का अवसर उसे न मिला था। और वास्तव मे वह पुस्तकें खरीदने से पहले जहाँ था, वही अब भी था।

प्रो० सिंह से मिलने पर उसने सोचा कि यहाँ से वह यथेष्ट निपुणता प्राप्त करके जायगा। लाहौर जा कर गन्धर्व-महाविद्यालय मे दाखिल हो जायगा। पहले स्वयं निपुणता प्राप्त करेगा फिर चन्दा को निपुण वनायगा... वस और क्या चाहिए! वह गीत लिखेगा, वह गायेगी। जीवन का सव कलुप, सारी मलिनता, समस्त कटुता, आत्मा की निर्मल निर्भरनी में शरावोर हो कर धुल जायगी। वला से उन्हें धन प्राप्त न हो, संगीत की अमूल्य निधि तो उन्हे प्राप्त होगी। वे नदी पर जाया करेंगे, रावी के तट पर घूमा करेंगे। लहरो की कल-कल छल-छल वाद्य यन्त्रो का काम देगी और वे देश, काल और सुधि के वन्धनों को भूल कर, विसुध और तन्मय हो कर, स्वरो के पंख लगा कर संगीत की दुनिया के

विशाल, विस्तीर्ण, अनन्त प्रसार में उड़ते फिरेंगे ।

साठ

वेतन मिलने मे अभी देर थी । चेतन कविराज जी से बीस रुपये के लगभग पेशगी ले चुका था—दस उसने भाई साहब को भेज दिये थे । पाँच ढाबे वाले को भेंट किये थे और पाँच इधर-उधर खर्च हो गये थे—अब और रुपये माँगने में उसे संकोच हो रहा था । किसी-न-किसी तरह साहस बटोर कर वह माँग भी लेता, लेकिन उसके मन के किसी अज्ञात कोने मे यह डर भी बैठा हुआ था कि कविराज जी कही मितव्ययता पर छोटा-मोटा भाषण झाड़ कर संगीत-सम्बन्धी उसके उत्साह को ठंडा न कर दें ।

दूसरे दिन जब वह फिर म्यूज़िक कॉलेज के पास से गुजरा और संगीत की मीठी-मादक ध्वनि उसके कानो मे पड़ी तो गाना सीखने और प्रो० सिंह से गाना सुन सकने की प्रबल आकांक्षा उसके मन में पुनः उद्वेलित हो उठी । खाना खाने के लिए जाते, खाते और वहाँ से आते समय वह इस समस्या का हल सोचता रहा और इसमे सफल भी हो गया ।

उसने दो-तीन दिन निरन्तर राजकुमार के सामने प्रो० सिंह के कॉलेज का उल्लेख किया, उनके सिखाने के ढंग की, उनके कंठ के माधुर्य, उनके स्वर की मिठास की प्रशंसा की और राजकुमार से कहा कि उसे तो अवश्य बाजा सीखना चाहिए ।

"बाँसुरी तो गले को खराब कर देती है," चेतन ने कहा, "तुम्हारा स्वर इतना सुन्दर है कि तुम्हे फौरन बाँसुरी छोड़ देनी चाहिए । मैंने स्वयं फ़ैसला कर लिया है कि अब बाँसुरी को हाथ न लगाऊँगा ।" इस तरह उसने राजकुमार को तैयार कर लिया कि प्रो० जी० सिंह से बाजा

सीखने की आज्ञा वह जितनी जल्दी हो, अपने पिता से माँग ले।

गाना सीखने के लिए अपने प्रिय पुत्र के अनुरोध पर जब कविराज जी ने चेतन से पूछा तो उनके सामने भी उसने प्रो० सिंह की प्रशंसा की और अवसर को उपयुक्त जान कर उसने यह भी कह दिया कि वह स्वयं उनसे गाना सीखना चाहता है और दोपहर को खाना खाने के लिए जाते समय एक-डेढ घंटा वह संगीत की शिक्षा लिया करेगा। कविराज जी ने उसे आज्ञा दे दी और राजकुमार से कहा कि वह भी चेतन ही के साथ दोपहर को जा कर गाना सीख आया करे और उसकी फ़ीस के पाँच रुपये भी उन्होंने चेतन के हाथ मे दे दिये।

प्रो० सिंह के पास राजकुमार को ले जाने से पहले, वह स्वयं उनके पास गया और उसने उनसे कहा कि वह उनका बड़ा प्रचार कर रहा है। कविराज जी से उसने उनकी बडी प्रशंसा की है और उनके लड़के को गाने का वह प्रयास कर रहा है।

प्रो० सिंह ने मुस्करा कर उसे धन्यवाद दिया और कुर्सी से उतर कर नीचे आ बैठे और उन्होंने जैसे उमंग में आ कर बाजा सामने खीच लिया और इकबाल की एक गज़ल धीरे-धीरे गुनगुनाने लगे :

कुशादा दस्ते करम जब वह बेन्याज़ करे
न्याज़मन्द न क्यों आजिज़ी पें नाज़ करे।

धीरे-धीरे उनकी आवाज़ ऊँची होती गयी और वे तन्मय हो कर गाने लगे। उनके स्वर की मिठास और उनके उच्चारण की शुद्धता ने चेतन को मुग्ध कर दिया। मुशायरो में उर्दू की कविताएँ सुनने और स्वयं रचने के कारण उसे उच्चारण आदि का बडा ध्यान रहता था। यदि उच्चारण शुद्ध न हो, तो गाने वाले ने कितना ही सुन्दर गला क्यो न पाया हो, चेतन उकता जाता था....

०

....वह कॉलेज ही मे पढता था और उसके अवकाश का अधिकांश समय शेर कहने और मुशायरो में गज़लें पढने मे व्यतीत होता था, जब

हरबल्लभ के आकाश में एक नये सितारे का उदय हुआ और इस बात की चर्चा नगर भर मे होने लगी। 'इतना सुन्दर गला पाया है उसने....' 'इतना अच्छा गाता है वह....,' 'इस उम्र में तान और लय का इतना ज्ञान है उसे....,' आदि-आदि बातें चेतन ने सुनी थी और यद्यपि उसे अब भी पोने के पंजाबी कवियो के बैंत सुनने मे अधिक आनन्द आता था, किन्तु जब उसने सुना कि यह नया संगीतज्ञ गजल बहुत अच्छी गाता है, यहाँ तक सुना कि गजल गाने मे उसका कोई सानी नही तो वह भी सुनने का लोभ सम्वरण न कर सका।

तेरह-चौदह वर्ष का सलोना-सा लड़का, चुस्त काली अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहने स्टेज पर बैठा था। इर्द-गिर्द उसके प्रशंसकों का जमघट था। भीड इतनी थी कि चेतन बडी कठिनाई से मंच के पास पहुँच पाया। उस भीड में बैठने से उसका दम घुटा आ रहा था, किन्तु उस लड़के का गाना सुनने के लिए वह घुटा-दबा बैठा रहा। गाने से पहले गुनगुनाते हुए तरुण गायक ने जो तान खीची तो चेतन के हृदय के तार झंकृत हो उठे। कितना सुन्दर गला पाया है इस लड़के ने—उसने सोचा, लेकिन जब उसने पहला ही शेर पढ़ा तो चेतन का दिल बैठ गया। दूसरे मिसरे मे एक शब्द ही वह खा गया था। 'दाग' की गजल थी :

शमशीर खिंच के पंजा-ए-कातिल मे रह गयी
बिस्मिल की आर्जू दिले-बिस्मिल में रह गयी

और वह उसके मिसरे को यो गाता था :

बिस्मिल की आर्जू -ए-बिस्मिल में रह गयी

चेतन ने पहले समझा था कि शायद 'दिल' शब्द वह जल्दी में भूल गया है, लेकिन जब वह बार-बार—बिस्मिल की आर्जू-ए-बिस्मिल मे रह गयी—बिस्मिल की आर्जू-ए-बिस्मिल मे रह गयी—गाता हुआ सिर मारने लगा और लोग भी 'वाह-वा!' करते हुए झूमने लगे तो उन अरसिको मे बैठना उसे अपना अपमान लगा। वह पहला शेर ही सुन कर उठ आया था।

०

लेकिन प्रो० सिंह के सुन्दर कंठ के साथ उनका शुद्ध उच्चारण सोने में सुगन्ध भर रहा था। उनकी गज़ल सुनने पर यद्यपि चेतन को इस बात का पता चल गया था कि पहले दिन उसने जो आवाज सुनी थी वह किसी और की आवाज थी, किन्तु प्रोफेसर साहब का स्वर उससे कम मीठा न था। चेतन उनका गाना सुन कर इतना प्रसन्न हुआ कि वह उसी समय जा कर राजकुमार को साथ ले आया और फ़ीस के पाँच रुपये पेशगी दिला कर उसने एक महा-कर्त्तव्य से छुट्टी पा ली।

इसके बाद राजकुमार तो दो ही चार दिन में स रे ग, रे ग म, ग म प से ऊब कर अपने मित्रों में जा मिला, किन्तु चेतन बराबर दोपहर और शाम दोनो समय आता रहा।

शाम के समय प्रोफेसर साहब प्रायः रोज़ ही गाया करते, क्योंकि उस समय कुछ-न-कुछ सुनने वाले जरूर ही वहाँ आ उपस्थित होते। एक दिन ऐसे ही वक्त चेतन ने प्रोफ़ेसर साहब को जो दाद दी, उससे वे बड़े प्रसन्न हुए और श्रोताओ पर उनका दुगना प्रभाव पड़ा। प्रोफेसर साहब प्रायः ग़ालिब और इक़बाल की ग़जलें गाते। एक तो उन महाकवियों की ग़ज़लें, दूसरे इतना सुन्दर गला और शुद्ध उच्चारण! चेतन झूम उठता और शेर का काफिया प्रोफ़ेसर साहब से तनिक पहले ही इस अन्दाज में बोलता कि श्रोताओं पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता। प्रोफेसर साहब गाते :

भरी बज़्म में राज़ की बात कह दी
बड़ा बे अदब हूँ....

और चेतन झूमता हुआ प्रोफेसर साहब के होटों पर मुस्कान के फैलने के साथ ही कहता—सजा चाहता हूँ—और श्रोता 'वाह-वा!' कर उठते। इस प्रकार चेतन बिना फ़ीस दिये प्रो० सिंह के शागिर्दों में शामिल हो गया और प्रो० सिंह उसे मन से सिखाने भी लगे।

चेतन जो कुछ वहाँ से सीखता उसका अभ्यास करने मे उसे बड़ी कठिनाई होती और इसलिए वह प्रयास करता कि कॉलेज ही में प्रो०

साहब के बाजे पर उसका अभ्यास भी कर लिया करे। किन्तु यद्यपि वे चेतन पर प्रसन्न थे और वह चाहे जितनी देर वहाँ बैठे, जितनी बार वहाँ जाय, बुरा न मानते थे, पर चेतन को जल्दी ही इस बात का आभास मिल गया कि जब-जब वह उनके बाजे पर अभ्यास करना चाहता, उनके मस्तक पर हल्की-सी लकीर बन जाती। चेतन परेशान था कि वह क्या करे। तभी एक दिन अचानक उसे इस समस्या का भी हल सूझ गया।

दोपहर के समय वह कॉलेज पहुँचा तो प्रोफेसर साहब कमरे मे न थे। पूछने पर मालूम हुआ कि साथ के कमरे मे है। उसने समझा कि शायद चाय आदि पी रहे है, किन्तु जब पर्दा हटा कर वह अन्दर पहुँचा तो उसने देखा कि वे एक तिपाई पर बैठे कुर्सी पर पाँव रखे एक दिलरुबा बजा रहे है। चेतन को उनके बजाने के ढंग से ऐसा लगा जैसे वे दिलरुबा बजाना सीख रहे हैं अथवा उसका अभ्यास कर रहे है। पर जब उसने पूछा कि दिलरुबा वे किससे सीख रहे है तो उन्होने उसे बताया कि वे लखनऊ के म्यूजिक कॉलेज मे शिक्षा पाये हुए है और सभी वाद्य यंत्र एक-सी निपुणता से बजा सकते है। दिलरुबा बिकाऊ है और वे चाहते है कि कॉलेज के लिए उसे खरीद लें।

"कैसा है ?" चेतन ने पूछा।

बड़े विशेषज्ञों के अन्दाज मे माथे को तनिक सिकोडते हुए प्रोफेसर साहब ने कहा, "उतना सुरीला नही, मै उससे दूसरा बनाने को कहूँगा।"

"यहाँ कोई साज़ बनाने वाला भी है ?" चेतन ने चकित हो कर पूछा।

"हाँ मिडिल बाज़ार मे एक आदमी है। बना कर लाया था कि मै खरीद लूँ, पर उतना सुरीला नही।"

चेतन को ऐसा आभास मिला कि वे खरीदना तो चाहते है, पर किसी कारणवश खरीद नही सकते। उसका जी चाहा कि उसी समय दिलरुबा खरीद कर उनके चरणो मे रख दे कि लीजिए इसे मेरी ओर से कॉलेज

के लिए रख लीजिए। कुछ क्षण चुप रह कर उसने पूछा,

"लेकिन आपके पास तो साज़ होंगे।"

"यहाँ नही घर पर हैं," उन्होंने बड़ी वेपरवाही से कहा, "बात यह है कि मैं यहाँ पहली बार आया हूँ। मैं तो सदा कश्मीर जाया करता था पर मेरे कुछ शागिर्द इस बार शिमले आये हैं और मुझे भी साथ घसीट लाये हैं।"

"यदि आप कहें तो मैं यह दिलरुबा खरीद लूँ!" चेतन ने झिझकते हुए कहा। "आखिर मुझे ये सब साज़ खरीदने तो हैं ही, दो-अढ़ाई महीने मैं अभी और यहाँ रहूँगा, उतने दिन आप इसे काम में लाइए।"

प्रोफ़ेसर साहब के मस्तक की भृकुटी ढीली हो कर फैली और मुस्कान बनती हुई होंटो पर आ गयी।

"अभी तो तुम्हें हारमोनियम ही सीखना चाहिए," वे बोले, "जब स्वर पर तुम्हें पूरा अधिकार प्राप्त हो जायगा और राग-रागनियों की समझ आ जायगी तो फिर बेला क्या, दिलरुबा क्या और सितार क्या, जो साज़ चाहे सीख लेना।"

हतोत्साह हुए बिना चेतन ने कहा, "तो क्या हर्ज है, पड़ा रहेगा, मेरी पत्नी सीख लेगी।"

प्रोफ़ेसर साहब जैसे अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा गये। तनिक और मुस्करा कर उन्होंने कहा, "'खरीद लो! लेकिन उसकी दुकान पर एक दूसरा है। मेरे विचार में वह ले लो तुम। यह उतना अच्छा नहीं।"

उस दिन चेतन ने जब उन्हीं के बाजे पर अभ्यास किया तो प्रो० सिंह की भृकुटी नहीं तनी, बल्कि पास बैठ कर उन्होने एक दो बार उसका सुधार भी किया।

इकसठ

संध्या का समय था और पश्चिम में अस्त होता हुआ सूरज तेज आग में चमकते हुए पिघले सोने के-से रंग का हो रहा था। लगता था जैसे किसी अदृश्य आतप ने साँझ के उस सोने को पिघला दिया है और उसका पीला रंग लाल होता-होता आँच की तीव्रता मे उन्नावो लग रहा है। जाकू के ऊपर बादल गुलानारी हो रहे थे और माल की दुकानो के कंगूरो पर उस जलते हुए सोने का अन्तिम प्रतिबिम्ब झलक रहा था। बगल मे अपनी नयी खरीदी सितार दबाये चेतन रिज पर से होता हुआ माल की ओर जा रहा था। सितार पर गहरे नीले रंग की खादी का गिलाफ चढा हुआ था, जिसके सिरे पर लाल रंग का फूल बना था। गिलाफ का नेफा और डोरी भी फूल ही के रंग की थी। अपने तीसरे महीने के वेतन से चेतन ने सितार खरीदी थी और जो पैसे बचे थे उनसे गिलाफ बनवा लिया था। सारा महीना कैसे बसर होगा, इस बात की उसे चिन्ता न थी। कलाकार के गर्व से सिर उठाये वह चला जा रहा था। उसे लग रहा था जैसे उसके पाँव धरती पर नही पड़ रहे, हवा मे पड रहे हैं। उस काली कठोर सड़क से वह ऊपर उठ गया है और राग-भीनी साँझ के उस रंगीले सौन्दर्य मे उडा जा रहा है।

उस समय ही क्यो, प्रायः महीने भर से, प्राय' उसी क्षण से जब उसने पाँच नम्बर की सीढियो पर खडे हो कर सुना था—कौन देस गया पिया मोरा बालम रे—वह धरती से ऊपर उठ गया था। उसके क्षण उन्मन और एकाकी न रहे थे। उसके स्वप्न उसे मिल गये थे।

उसे सपनो ही की आवश्यकता थी—सदा सपनो ही की आवश्यकता रही थी—फिर वे स्वप्न चाहे नीला का प्रेम पाने के हो; चन्दा के साथ सफल-सुखद जीवन व्यतीत के हो; महान चित्रकार, वक्ता, अथवा लेखक बनने के हों; या फिर एक बार पुनः कॉलेज में दाखिल हो कर लाहौर के

विद्यार्थी जीवन का आनन्द लूटने के हो। वे स्वप्न ही उसका जीवन थे, जीवन की स्फूर्ति थे। उसी के क्यों, शायद मानव-मात्र के जीवन की स्फूर्ति यही स्वप्न है। शास्त्र कहते हैं—जीवन सपना है, किन्तु जीवन शायद सपना नही। जीवन तो सडक है—काली और कठोर! और स्वप्न वह स्फूर्ति है, जो मानव को इस सडक की कठोरता, इसकी कालिमा, इसकी तपिश अथवा ठंडक भुला कर इससे ऊपर उठा देती है और मानव हवा मे तैरता हुआ-सा अनुभव करता है। ये स्वप्न जितने रंगीन होते है, उतनी ही लगन से वह इस कठोर काली सडक पर भागा जाता है।

चेतन के सपने भी उन दिनो आषाढ के बादलो की तरह उमडे आते थे और चेतन की गति भी उनके साथ तीव्र हो रही थी। काम करने मे अब उसका जी लगता था। इस एक डेढ महीने से वह प्राय: रोज पुस्तक का एक परिच्छेद लिखता और उसका सशोधन करता आ रहा था। वह इतनी तेजी से काम कर रहा था कि पुस्तक तीन-चौथाई लिखी जा चुकी थी। इसी तेजी से वह संगीत की शिक्षा ग्रहण कर रहा था स्वर-अध्याय को पार करके और विभिन्न सरगमो को पकाने के बाद अब उसने एक दो रागनियो के बोल भी सीख लिए थे। किन्तु उसके स्वप्न सदा की तरह उससे कही आगे भाग रहे थे। कारण था कि यद्यपि उसका संगीत सम्बन्धी ज्ञान अभी न होने के बराबर था और यद्यपि उसका हाथ अभी ठीक ढंग से हारमोनियम के पर्दों पर चला भी न था, पर उसने दिलरुबा और सितार खरीद लिये थे और तबला लेने की चिन्ता मे था। उसके पास धन का अभाव था, नही उसका बस चलता तो वह सारे-के-सारे बाजे एक ही बार खरीद लेता।

दोनो बाजे खरीद लेने पर चेतन ने बस नही की। दिलरुबा के लिए प्लाईवुड का खोल और सितार के लिए यह गिलाफ उसने बनवाया। दिलरुबा तो खैर कॉलेज ही मे पडा रहता था; किन्तु, यद्यपि उसे सितार ले कर बैठना भी न आता था, वह प्रतिदिन संध्या के समय सितार ले कर कॉलेज जाता और जाते अथवा आते समय सितार को बगल मे दबाये

माल अथवा लोअर बाज़ार का एक चक्कर लगाना न भूलता। इसके अतिरिक्त वह सारा दिन मिज़राब पहने रहता और जब किसी से बात करता तो अनजाने ही में मिज़राब वाली उँगली एक दो बार ज़रूर दिखाता।

यह मिजराब छोटी थी, अथवा क्योंकि उसने पहले कभी न पहनी थी, इसलिए इससे चेतन की उँगली पर निशान बन गया था, पीड़ा होने लगी थी और अब वह मिडिल बाज़ार के साजवाले की दुकान पर जा रहा था कि अपेक्षाकृत कुछ बड़ी मिज़राब ले आये।

०

माल और लोअर बाजार की तरह मिडिल बाज़ार एक-सा लम्बा नही। माल से लोअर बाजार को निरन्तर उतरने वाली सीढ़ियो के कारण कटा-छँटा—दो बहुत मोटे व्यक्तियो मे दबे हुए दुबले-पतले आदमी-सा है। न उतना विशाल, न आबाद। न उतनी दुकानें, न वह रौनक। बस एक कटी-फटी, कही-कही गन्दी और कही-कही साफ, पर संकीर्ण गली-सी है। नम्बर पाँच की सीढियो से आरम्भ हो कर नम्बर नौ की सीढियों पर खत्म हो जाती है। माल मे और इसमे मकानो की एक पंक्ति का अंतर है, जिनकी दुकानें माल पर है और तहख़ाने अथवा गोदाम इस गली में। यदि जड़ पदार्थो का भी कोई व्यक्तित्व है तो शिमले के ये मकान सच ही भवनो में जनक है। उनका मस्तिष्क माल की ऊँचाइयों पर उडता है और पाँव इस गली की गन्दगी में पड़े सडते है और उस राजर्षि की भाँति अडिग, अडोल, अविचल वीतरागी से ये खडे है।

माल पर खुलने वाले इन मकानो की पाँच-पाँच मंज़िलें कही-कही मिडिल बाजार की संकीर्णता को उसी प्रकार प्रकट करती है जिस प्रकार बायी ओर छोटे-छोटे मकानो की एक ही मंज़िल इस बाज़ार की अकिंचनता को। माल की ओर के मकानो की निचली मंज़िलें प्रायः बन्द ही रहती हैं, दरवाज़ो और खिडकियो के शीशो पर धूल की बड़ी मोटी परत जमी रहती है और यदि किसी खिडकी का कोई शीशा टूट जाता है तो वह उसी

प्रकार अपनी कानी आँख से तारा देवी के टीले की ओर ताकता रहता है। गोदामो और तहखानो के अतिरिक्त इस पंक्ति में जो कमरे हैं, वे भी या तो वन्द ही रहते हैं और यदि कही-कही खुले भी हैं तो उन्हें किसी क़लईगर, ढावे वाले, अथवा किसी चाय-फ़रोश ने दूसरों से भी बदतर वना दिया है। वायीं ओर जो एक-मंज़िले छोटे-छोटे मकान हैं, वे नीचे लोअर बाज़ार तक चले जाने वाले मकानो के ऊपर के भाग है। जर्जरता और अपरूपता में वे अपने सामने के पड़ोसियों से किसी दर्जे कम नहीं, शायद कुछ बढ़े हुए ही हैं। इनमें सफ़ेदी कराने का कष्ट वर्षों से किसी ने नही किया। दरवाज़ो और खिड़कियों का रोग़न भी, जो कभी मकानो के निर्माण के समय हुआ होगा, निरन्तर वर्षा-ताप सहने के कारण फीका पड़ चुका है। छतों पर टीन के परनाले हैं जिनका टीन इतना गल गया है कि पानी कई धाराओं में हो कर बहता है। इन दुकानों के जँगले बूढ़े आदमी के दाँत बने हुए हैं।

मिडिल बाज़ार के रहने वालो का इन मकानों और दुकानों के साथ गहरा साम्य है। दुकानो मे अधिकांश रँगरेज़ों, नानवाइयों, क़लईगरों' धोवियो, दर्जियो की हैं। इन दुकानो के ग्राहकों में मज़दूरों, कश्मीरी कुलियो, होटल के बैरो और इसी ढंग के लोगो का बाहुल्य है। अधिकांश दुकानदार मुसलमान हैं। यों एक-दो हिन्दू होटल भी है और एक शिवालय भी है। शिवालय की कुल परिधि एक ही तंग, अँधेरे कमरे तक सीमित है। इसी में शिव लिंग, नान्दी, घंटे, घंटियाँ, चन्दन की सिल और चनाठी धरी है। एक वातायन भी है जिससे आने वाले प्रकाश में वृद्ध पुजारी पुस्तक खोले अनवरत कुछ-न-कुछ गुनगुनाता रहता है।

०

शिवालय के पास से हो कर चेतन मिडिल बाज़ार में दाखिल हुआ। नानवाइयों की दुकानो से धुआँ उठ रह था। साँझ के धूमिल प्रकाश को और भी धूमिल बनाने वाले उस धुएँ मे कुछ हातो अपने मैले गन्दे शरीरों पर कीचड़-से चीथड़े लपेटे खाना खा रहे थे। चेतन अपने ध्यान में मग्न

पथरीली गली में चलता-चलता साज़ों की दुकान पर पहुँचा और उसने एक मिज़राब माँगी ।

उस समय वहाँ एक और व्यक्ति चेतन ही की तरह पुराना ओवर-कोट पहने खड़ा था । चेतन के सामने उसने भी मिज़राब खरीदी । चेतन ने उस व्यक्ति को एक नज़र देखा । उसके सिर पर एक तुर्की टोपी थी, किन्तु गंजेपन की हद को पहुँचे हुए उसके मस्तक को छिपाने में वह सर्वथा अशक्त थी । उसके गले में मोटी मलमल की चुन्नटदार कमीज़ और टाँगों मे मैला-सा पायजामा था । 'कोई पहुँचा हुआ कलाकार है,' चेतन ने मन-ही-मन सोचा । प्रो० सिंह सितार के उतने विशेषज्ञ न थे, यह उसने सितार खरीदते ही जान लिया था और यद्यपि चेतन का दिलरुबा भी उन्होंने बड़ी शान से अपने कॉलेज मे रख छोडा था, पर उसे बजाने का अवसर न आता था । धीरे-धीरे चेतन को यह भी मालूम हो गया था कि प्रोफेसर साहब की गज़लों और गीतो का कोष भी अपरिमित नही है और लखनऊ कॉलेज मे उनके पाँच साल लगाने का किस्सा भी शायद कल्पित ही है । उनके गले मे रस था और हारमोनियम वे बड़ी निपुणता से बजा लेते थे, बस इससे अधिक वे कुछ न जानते थे । इसलिए चेतन बहुत दिनों से किसी ऐसे व्यक्ति की खोज मे था जो उसे सितार की शिक्षा दे सके । इस कलाकार को देखते ही उसने तत्काल फैसला कर लिया कि वह अवश्य ही उससे सितार बजाना सीखेगा । जब वह व्यक्ति मिजराब ले कर चलने लगा तो चेतन ने उसके साथ चलते हुए पूछा, "आप भी सितार का शौक रखते है ?"

कलाकार के होटो पर एक थकी-सी मुस्कान फैल गयी, "जी योंही कुछ बजा लेता हूँ !"

चेतन ने समझा अजनबी कलाकार-सुलभ-विनम्रता से काम ले रहा है । उसने अपना परिचय दिया, प्रो० सिंह से अपने सम्बन्ध का उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि यदि वे अपना निवास-स्थान दिखा दें तो वह कभी-कभी आ जाया करेगा । और जब उस अपरिचित कलाकार ने

किसी प्रकार की आपत्ति प्रकट न की तो चेतन उसी तरह बगल मे सितार लिये उसके साथ चल पड़ा ।

मिडिल बाज़ार को पार करके वे माल पर चढे और वहाँ से स्टेशन को जाने वाली सडक की ओर मुड गये । सूरज कब का छिप गया था । अंधकार मे बिजली के लैम्प किसी गरीब की आशाओं-से द्युतिमान थे । कलाकार चुप था । चेतन भी चुप था । वातावरण भी चुप था । उस बढते हुए अंधकार मे चेतन को दिशा अथवा मार्ग का कोई ज्ञान न रहा ! उसे लगा जैसे वे कई मील चले आये हो, जैसे उन्हें चलते घंटो बीत गये हो । उसका जी वापस होने को व्यग्र हो उठा । यदि उसे मालूम होता, अपरिचित कलाकार इतनी दूर रहता है तो कभी न आता । उसे तो दस बजे घर पहुँच जाना चाहिए । पर अब इतनी दूर आ कर वापस लौटने को उसका मन न हुआ । वह चुपचाप चलता गया ।

सीधी सड़क से हट कर कई दूसरी सडको और टेडी-मेढी पगडंडियो को पार करके वह अपरिचित उसे जिस कमरे में ले गया, वह किसी कोठी का किचन था—अत्यन्त गन्दा और दुर्गन्ध-भरा । पत्थर के कोयले की दुर्गन्ध, अँगीठी के जल चुकने के बाद भी, अभी तक कमरे में बसी हुई थी । चेतन का दम घुटने-सा लगा । कुछ क्षण बाद उसे लगा कि रसोई-घर में केवल पत्थर के कोयले की दुर्गन्ध ही नही, बल्कि न जाने कितने प्रकार के माँस-मछली की दुर्गन्ध भी मिली है—इस तरह कि उसका विश्लेषण करना कठिन है । चेतन को म्यूज़िक कॉलेज के बराबर वाले रेस्तराँ की याद हो आयी । उसके पास से गुजरने पर भी उसके किचन से ऐसी ही बू नाक में प्रवेश कर दम घोटने लगती थी । किचन की दशा देखने पर चेतन को लगा जैसे साहब को कभी स्वप्न में भी खयाल नही आता कि जो खाने धुली-धुलायी प्लेटो मे लग कर, अत्यन्त स्वादिष्ट हो कर उसके सामने पहुँचते है, वे अपने पीछे कितनी दुर्गन्ध छोड आते है । चेतन का अपना बचपन अत्यन्त स्वच्छ वातावरण मे बीता था । उनका रसोई-घर निहायत साफ-सुथरा था । फर्श धुला, चूल्हा-चौका पुता और

बर्तन टोकरे में पड़े चमचमाते रहते थे। स्वच्छता की सुगन्धि-सी वहाँ से आया करती थी। वह क्षण भर भी उस किचन में रहना न चाहता था, किन्तु जब उस कलाकार ने एक कोने में पड़े हुए मैले-से सन्दूक की ओर संकेत किया तो वह बिना कुछ कहे विमूढ़-सा उस पर बैठ गया।

तब वह कलाकार वहीं एक खूँटी पर टँगा हुआ एक छोटा-सा धुआँसा कछुआ उठा लाया जिसकी चिनगारियाँ टूटी हुई थी और जिसके तूम्बे पर धुएँ की इतनी मैल जमी हुई थी कि असली रंग ही लुप्त हो गया था। तब वहीं एक मैले-से स्टूल पर बैठ कर उस कलाकार ने चेतन को सितार का पहला पाठ पढाया :

दिर दा रा, दा रा, दा दा रा

चेतन की समझ में कुछ न आया। उसने पूछा, "आप क्या बजा रहे हैं ?"

"मेरी भैंस के डंडा क्यों मारा !"—कलाकार ने सितार बजाते हुए कहा।

चेतन स्तम्भित-सा उसके मुंह की ओर देखने लगा।

"हमारे उस्ताद ने हमें पहले यही सिखाया था," पहुँचे हुए कलाकार ने कहा, "जरा अपनी सितार निकालो।"

चेतन का जी वहाँ से भाग जाने को हो रहा था। पर उसने अपनी सितार निकाली। तब कलाकार ने चेतन को बताया कि तार पर मिजराब की चोट से 'दा' कब बजता है 'रा' कब और 'दिर' कब और उसने बजाया :

दिर दा रा, दा रा, दा दा रा

और गाया :

मेरी भैंस के डंडा क्यों मारा

चेतन ने यह पाठ कागज़ पर लिख लिया, एक-दो बार सितार पर बजा भी लिया, किन्तु उसे लगा कि यदि वह कुछ और देर उस बावर्चीख़ाने में बैठा तो उसके सिर में असह्य पीडा होने लगेगी। उसकी

कनपटियों मे दर्द होने लगा था और जी घबरा रहा था, इसलिए उसने जाने की आज्ञा माँगी ।

किन्तु उस समय वह कलाकार, जो न जाने साहब का बैरा था, जमादार था या धोबी, तन्मय हो कर सितार बजाने में लीन था। खानसामा, फ़्राइंग पैन मे न जाने किस चीज को छौक रहा था कि धुएँ से चेतन की आँखों मे पानी निकल आया और वह खाँसने लगा। बेबसी की नज़रों से उसने उस कलाकार की ओर देखा—आँखें बन्द थी और मिजराब तारों पर चल रही थी ।

आखिर जब उस कलाकार ने गाना खत्म करके आँखें खोलो तो चेतन ने भरे हुए गले से फिर जाने की आज्ञा चाही। कलाकार अपने उस कछुए को साथ ही लिये हुए उस किचन से बाहर निकल आया और चेतन को अपने निवास-स्थान पर ले गया, जो अत्यन्त अँधेरी, सील भरी, दिये की लौ से प्रकाशित, उस कोठी के सर्वेण्ट्स क्वार्टर्ज की एक कोठरी थी—नौकरो के ये क्वार्टर एक दो मंज़िले छप्पर को सूरत मे थे। इस छप्पर में तीन-चार कोठरियाँ नीचे और तीन-चार ऊपर थी। लकडी की एक हिलती-सी सीढी से चढ कर उस कलाकार के पीछे-पीछे चेतन ऊपर उसकी कोठरी मे पहुँचा। और चूंकि उसे वापस जाने का मार्ग मालूम न था और उस कलाकार को उस जैसे प्रशंसक के आगे अपनी कला के प्रदर्शन का शायद पहला ही मौका मिला था, इसलिए उस सील भरे कमरे के मद्धिम प्रकाश मे एक पुरानी-सी चटाई पर बैठ कर चेतन को दो-चार गतें और सुननी पडी। उसके हृदय में उस समस्त वातावरण के प्रति कुछ ऐसी खीझ और घृणा उत्पन्न हो रही थी कि उस कलाकार ने क्या गाया, उसने कुछ भी नही सुना। उसका जी तो उस समय उस कलाकार को एक-दो बार झकझोर, उसके कछुए को उसके सिर पर पटक, उस कोठरी, उस किचन, उस घुटन, उस अंधकार से एकदम भाग कर बाहर की स्वच्छ; स्वच्छन्द वायु में साँस लेने को व्यग्र हो रहा था।

लेकिन जब उसे वह स्वच्छ वायु साँस लेने को मिली तो न जाने क्या बजा था। सड़क पर दूर-निकट एक भी व्यक्ति दिखायी न देता था। आकाश पर से चाँद की एक फाँक धूमिल प्रकाश फेंक रही थी। चेतन को लगा जैसे वह उसकी विवशता पर वक्र हँसी हँस रही है और समस्त तारे उस हँसी में सहयोग दे रहे हैं। उसकी आँखों मे आँसू छलक आये और उसके जी मे आया कि सितार को पूरे ज़ोर से किनारे के पत्थर पर पटक कर टुकडे-टुकडे कर दे, घुमा कर खड्ड में फेंक दे, ज़ोर-ज़ोर से उस पहुँचे हुए कलाकार को गालियाँ दे और सरपट घर की ओर भागे। लेकिन उस समय उसके सामने छः महीने पहले की एक घटना घूम गयी जब उसने स्वयं उस कलाकार का-सा व्यवहार किया था....

. वह चंगड मुहल्ले मे रहता था और उसकी कुछ कहानियाँ उसके दैनिक पत्र मे छपी थी। तभी एक दिन प्रातः एक युवक उससे मिलने आया। चेतन उस समय कमरे की सफाई करके दातौन मुँह में दबाये मेज के कागज ठीक कर रहा था। जब उसे पता चला कि आगंतुक उनके समाचार-पत्र का प्रतिनिधि है, उसे कविता और कहानी लिखने का शौक है और चेतन की नयी कहानी उसने पढी है, जो उसे बहुत अच्छी लगी है तो चेतन ने अपनी पुरानी कहानियो का उल्लेख किया। वह अपनी फाइल उठा लाया, दातौन उसने एक ओर रख दी और एक कहानी सुनाने लगा। इसके बाद बिना अपने सुनने वाले के भावों को जाने, वह एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी कहानी सुनाता गया था। जब उसकी सब लिखी हुई कहानियाँ खत्म हो गयी तो दो बजे थे और बेचारे पत्र-प्रतिनिधि के होंटो पर भूख-प्यास के कारण पपडियाँ जम गयी थी। उस प्रतिनिधि की आकृति चेतन की आँखो मे घूम गयी और उसके आँसू एक हल्की-सी मुस्कान में बदल गये। फिर वह जरा हंसा और फिर उस सडक पर खडे-खडे उसने अपनी और उस कलाकार दोनों की मूर्खता पर और भी जोर से ठहाका लगाया और सितार को उसी प्रकार बगल में लिये

हुए चल पड़ा।

०

जब वह घर पहुँचा तो रात बहुत बीत चुकी थी। वह इतना थक गया था कि वही सीढियो पर बैठ गया। चारो ओर शान्ति थी। चेतन ने चाहा किवाड खटखटाये, किन्तु उसे साहस न हुआ। कल्पना-ही-कल्पना मे बीबी जी के मस्तक के तेवर उसकी आँखो के सामने घूम गये। वह कई बार उठा और कई बार बैठा, पर उसे किवाड़ खटखटाने का हौसला न हुआ। फिर न जाने कब नीद उस पर गालिब आ गयी और सीढियो के कोने मे, दरवाजे और दीवार का सहारा लिये, टाँगो को सिकोड़ कर ओवरकोट मे छिपाये वह सो गया।

बासठ

यद्यपि वह सारी रात बाहर शीत में पडा ठिठुरता रहा था, किन्तु इससे उसके संगीत प्रेम में किसी प्रकार की कमी न आयी थी। कलाकारो को प्राय: ऐसी परिस्थितियो का सामना करना पडता है, उसने मन मे सोचा था और संगीत मे निपुण होने का निश्चय उससे हृदय मे दृढ से दृढतर हो गया था।

स्वर का यह जादू भी कैसा जादू है। लय और तान मे बँधा हुआ, सुन्दर कण्ठ से निकला स्वर न जाने कैसा मन्त्र फूंक देता है कि आदमी तन्मय हो कर सुध-बुध बिसरा कर, मन्त्र-मुग्ध-सा हो जाता है। चेतन चाहता था, उसके स्वर मे भी ऐसी ही मोहिनी उत्पन्न हो जाय और वह भी अपने स्वर की सरसता से श्रोताओ को मुग्ध कर सके। कैसा होगा वह दिन जब वह तन्मय हो कर गायेगा और श्रोता उस स्वर के सम्मोहन से विमुग्ध सुनेंगे। उस दिन को निकट लाने के लिए वह कटिबद्ध हो

गया ।

उसकी इस सनक में सहयोग देने और उसके उत्साह को दुगना करने के लिए एक साथी भी उसे मिल गया—दुर्गादास ।

एक दिन चेतन इतना उदास और विक्षुब्ध था कि कमरे में बैठना उसके लिए दुष्कर हो रहा था । बात कुछ भी न थी । सुबह दुकान को जाते समय कविराज ने चेतन से कहा था कि वह बाहर सीढियो पर बैठ कर काम न किया करे । बीबी जी को बाहर आने-जाने मे असुविधा होती है और फिर सामने कोने की फ्लैट मे रहने वाले हिन्दुस्तानी बाबू साहब को भी कुछ आपत्ति है ।

चेतन के कमरे की सीढियो पर इतना स्थान था कि एक चारपाई बडी सुगमता से वहाँ बिछायी जा सकती थी । कमरे मे अपेक्षाकृत अँधेरा होने के कारण वह बाहर आ बैठा करता था । उसके वहाँ बैठने से बीबी जी को असुविधा हो या न हो, पर उन बाबू साहब को अवश्य थी । उनकी एक बहन थी । चेतन से तीन-चार वर्ष बड़ी ही होगी । विवाहिता भी थी । शायद मेरठ अथवा मथुरा मे उनका पति क्लर्क था । गर्मियो मे अपने भाई के पास शिमले चली आयी थी । मुख पर हल्के-हल्के शीतला के दाग थे, पर इससे उसके सौन्दर्य मे कुछ अधिक अंतर न पडा था । उसकी आँखो मे चंचलता और होटो पर मुस्कान की एक अस्पष्ट-सी लकीर सदैव बनी रहती थी । यद्यपि उसने स्वयं कभी कुछ न कहा था, चेतन ने उसे कभी कुछ बोलते भी न सुना था, किन्तु चापल्य और स्मिति की उन क्षीण-सी रेखाओ से उसे पता चल गया था कि बाह्य सौम्यता के बावजूद उसके अन्तर मे कही एक अतृप्त प्यास अवश्य विद्यमान है । अपने इस प्रवास-काल मे चेतन उसका नाम भी जान न पाया था, किन्तु जब भी वह बाहर आ कर बैठता, वह अपने बारजे की रेलिंग के साथ आ खड़ी होती । चेतन जब अन्दर कमरे में खिड़की के आगे बैठा होता तो भी वह कभी-कभी उसे अपनी ओर देखते हुए पाता । वह क्षणिक-दृष्टि-विनिमय चेतन को अपने वातावरण की समस्त विरसता भुला देता । किसी सुन्दर युवती

की स्निग्ध-दृष्टि उस फूल की सुवासित मुस्कान-सी है जो अनायास ही मन को हर लेती है और जिसकी सुगन्धि आप-से-आप दर्शक की धमनियों मे रक्त के प्रवाह की गति कुछ और तीव्र कर देती है। लेकिन फूल तो अब बागो, वाटिकाओं मे ऊँची-ऊँची प्राचीरों के अन्दर खिलते है, उन्हें तोड़ने की मनाही है; तोड़ना तो दूर रहा, कई जगह तो उन्हे देखने तक की मनाही है। चेतन जब कभी उसे देखता, उसके हृदय से सम्वेदना की एक उसाँस-सी निकल जाती—बेचारे फूल, इस बन्धन मे वे क्या खिल पाते होगे? खिलने से पहले ही कई तो मुरझा जाते होगे? कविराज जी का संकेत शायद उन बाबू साहब की इसी बहन की ओर था, क्योकि उन्होने कहा था कि उस महाशय के घर मेहमान आये हुए है और उसके वहाँ बैठने के कारण उन्हें अन्दर-बाहर आने-जाने में असुविधा होती है।

चेतन मन-ही-मन हँस दिया था, क्योकि असुविधा मेहमान को न थी, बल्कि मेज़बान को थी। कविराज जी की निचली मंज़िल मे एक ड्रगिस्ट का परिवार रहता था। उनकी एक लड़की थी—मँझले क़द और गदराये शरीर वाली। उसकी जवानी जैसे बढ़िया की तरह उमड़ उठी थी। वे बाबू महाशय उससे ताक-झाँक किया करते थे। उनके अपनी पत्नी थी, जो सुन्दर भी थी। किन्तु ऊँची प्राचीरों में बन्द, स्वच्छ जलवायु के अभाव मे, फूल मुरझा गया था। चेतन ने उसके होंटों पर कभी मुस्कान न देखी थी। उसके मस्तक पर सदैव तेवर चढे रहते थे और उसके होटों की सिकुडन से एक विचित्र प्रकार का असन्तोष झलकता रहता था। जब उनकी पत्नी अन्दर काम मे निमग्न होती, वे महाशय उस यौवन माती से ताक-झाँक किया करते थे। वे सुन्दर थे, हृष्ट-पुष्ट थे, उनकी वह भी अधिक न थी, और उनकी आँखो में उस कुटिल चातुर्य की झलक थी जो दफ्तरो के षड़यन्त्रो में निरन्तर भाग लेने वाले क्लर्कों की आँखो मे अनायास आ जाता है। चेतन ने कई बार उन्हें उस लड़की से इशारेबाज़ी करते देखा था और इस बात का उन्हें पता भी चल गया था।

अपनी बहन का बरामदे में आना उन्हें शायद उतना न अखरता था,

जितना चेतन का वहाँ बैठ कर उनकी भाव-भंगियो को देखने का अवसर पाना । इसीलिए वहन का बहाना ले कर उन्होने कविराज जी से शिकायत कर दी थी ।

चेतन को अपनी हीनता का एक बार फिर आभास मिला । लेकिन इस बार उसके पाँव नही उखडे । कविराज जी ने जब मीठे शब्दो मे उससे अन्दर बैठने के लिए कहा और उसे दिन भर बत्ती जलाने की आज्ञा दे दी तो वह मन-ही-मन हँस दिया ।

परिस्थितियो को उनके यथार्थ रूप में लेना उसने सीख लिया था । वह अन्दर उठ आया था और इस घटना को उस परिस्थिति मे घटने वाली एक अति साधारण घटना समझ कर उसने पूर्ववत काम भी करना आरम्भ कर दिया था ।

आरम्भ तो कर दिया था, लेकिन कोशिश करने पर भी वह उसे आगे न बढा सका था । जब वह चारपाई उठा कर अन्दर ला रहा था तो क्षण भर को वे पड़ोसी महाशय बरामदे मे आये थे और चेतन की निगाहें उनसे चार हुई थी । उस कुटिल चातुर्य के साथ विजय के उल्लास की एक हल्की-सी रेखा उनकी आँखो से निकल कर चेतन को उनके होटो पर फैलती हुई दिखायी दी थी । यही रेखा काम करते-करते अनजाने ही उसके सामने आ जाती । एक बेबस क्रोध से पीडित हो कर वह मन-ही-मन घायल साँप की तरह बल खाने लगता । सिर को झटक कर, उस आकृति को मस्तिष्क के पर्दे से हटा कर, वह काम बढाने का प्रयास करता पर घूम-फिर कर वही विजय के उल्लास से खिली पड़ती उनकी आकृति उसके सामने उभरने लगती—वही कुचित, कुटिल, हास-व्यग्य-युक्त आकृति ! और एक तीव्र आक्रोश से भर कर वह चाहता कि उस प्रसन्न मुख पर तेज छुरे से ऐसी गहरी लकीर खीच दे कि वह प्रसन्नता एक झुलसे हुए फूल की तरह मुरझा कर स्याह पड़ जाय । कल्पना-ही-कल्पना मे चेतन के आक्रोश ने कई बार वह गहरा घाव वहाँ बनाया, पर वह

आकृति रक्त-स्राव के कारण श्वेत और फिर काली पड़ने के बदले और भी प्रसन्न, और भी उत्फुल्ल बन-बन उसके सामने आयी ।

तब सिर को एक जोर का झटका दे और कागज़ कलम-दवात पटक कर चेतन उठा, उसने किवाड़ लगाये और चल पड़ा । किधर जाय ? वह निश्चय न कर सका । निरर्थक और निरुद्देश्य माल पर घूमने को उसका मन न हुआ । वह चुपचाप कमेटी के नल के निकट, नीचे को जाने वाले मार्ग के जँगले पर जा खड़ा हुआ । कितना देर तक वही कुहनी टिकाये अन्यमनस्क खड़ा रहा । नीचे घाटी में चीड़ के वृक्षो को अनिमेष तकता रहा । ऊपर से आने वाला नाला सूखा पड़ा था । उसे देख कर सहसा उसे विचार आया कि नीचे, कही बहुत नीचे, उपत्यका मे, जहाँ पहाड़ो से रिस-रिस आने वाली पानी की धाराएँ मिल कर कल-कल बहती सरि का रूप धर लेती होगी, वह जरूर बह रहा होगा । 'तो क्यों न आज वह नीचे खड्ड मे जाय', उसने सोचा, कुछ क्षण के लिए नीचे द्रोणी की गोद मे लेटे किसी एकाकी झरने के किनारे, किसी पत्थर या चट्टान पर जा बैठे; प्रकृति के विशाल सुख-भरे अंक में क्षण भर के लिए अपने-आपको विसर्जित कर दे; पत्तों की 'मर-मर' और पानी की 'कल-कल' अपने संगीत से उसके मन का समस्त कलुष, सारा क्रोध सब आक्रोश हर दे; उसके दुख को, हीन-भाव को मिटा दे; एक स्वप्निल तन्द्रा, एक तन्द्रिल व्यामोह, शीतल ठंडे लेप सरीखा उसके शरीर को परिलुप्त कर, उसके समस्त भावो को भर दे !. . और वह नीचे की ओर चल पड़ा ।

इतने दिन उसे यहाँ आये हो गये थे, लेकिन वह कभी नीचे की ओर न उतरा था । उसे उधर जाने का कभी ध्यान न आया था । उत्साह से भरे उसके पग जब भी उठे थे, ऊपर ही की ओर उठे थे । नीचे की ओर भी कुछ है, उसने कभी न जाना था । चलते-चलते चेतन को मालूम हुआ कि रुल्दू भट्टा उतना ही नही जितना वह समझता था । आठ-दस मकान और उनसे घिरा हुआ एक चौक—उस स्थान की कुल परिधि को वह इतने तक ही सीमित समझता था । लेकिन उस निचले मार्ग पर चलते

हुए उसने देखा—मकानों की दो पंक्तियाँ उस मार्ग के दोनो ओर भी बनी हुई है । दायी ओर की पंक्ति कुछ ऊपर को है और बायीं ओर की कुछ नीचे को । चेतन अपने ध्यान में मग्न चला जा रहा था कि उसे एक बडा मँडुवा दिखायी दिया—बिलकुल ऐसा-ही जैसा पुराने ज़माने मे सफ़री थियेटरो के लिए बनाया जाता था । अंतर केवल इतना था कि यह पक्का था । उस मँडुवे के परे मकानो की पक्तियाँ खत्म हो गयी थी और मार्ग नीचे खड्ड को उतर जाता था । मँडुवे को देख कर चेतन को बडा कुतूहल हुआ और नीचे की ओर जाने के बदले वह उसके अन्दर चला गया । उसने देखा कि नीचे एक बहुत बडा हॉल है और वह उसकी बालकनी मे खड़ा है ।

उस हॉल का नाम (जैसा कि चेतन को बाद मे मालूम हुआ) 'विश्वकर्मा हॉल' था । उसके बनाने वाले अपने-आपको देवराज इन्द्र के उस प्रवीण शिल्पी के वंशज बताते थे, जिसने भक्त सुदामा के घर पहुँचने से पहले भगवान कृष्ण की इच्छानुसार उसके झोपडे की जगह एक अपूर्व भव्य प्रासाद निर्मित कर दिया था । यह और बात है कि विश्वकर्मा के ये वंशज इस कलि काल मे निरे बढ़ई हो कर रह गये थे । किन्तु फारसी भाषा मे किसी ने कहा है 'हर कमाले रा जवाले' शायद इस लोकोक्ति का उल्टा भी सत्य है । अवनति के बाद उन्नति भी निश्चित है । १९१४ के महायुद्ध मे जब बढ़इयो मे से कुछेक को सरकारी ठेके मिल गये और उन्होंने राशि-राशि धन संचित किया और धन के साथ-साथ उनकी जाति-चेतना भी बढी तो वे विश्वकर्मा के वंशज बन गये । अपनी जाति को संगठित करके उन्होंने एक समाज की नीव रख दी ! फिर उस समाज के मिल बैठने के लिए एक भवन का भी निर्माण हो गया ।

हॉल मे जाने का मार्ग नीचे से था । ऊपर का मार्ग तो एक छोटी-सी बालकनी मे खुलता था, जो चारो ओर बनी हुई थी । इसी ऊपर के मार्ग से हो कर चेतन बालकनी में पहुँचा था । यह मार्ग साधारणतः महिलाओ के लिए था, जो वार्षिक अधिवेशन पर बालकनी में बैठ कर

तमाशा देखती थीं। लेकिन वह तमाशा तो साल में एक बार होता था, इसलिए बालकनी खाली पड़ी थी, उसमे एक ओर को दो टूटी चारपाइयाँ खडी थी और कुछ लकड़ी का टूटा-फूटा फर्नीचर पडा था। इस बालकनी के साथ दक्खिन की ओर दो कमरे बने हुए थे। उत्सुकता चेतन को वहाँ ले गयी। एक कमरे मे केवल एक साफा बाँधे, नंगे शरीर एक महाशय चूल्हे मे फूँकें मार रहे थे। चेतन के पाँवों की चाप सुन कर उन्होने सिर उठाया—मँझला कद, छरहरा शरीर, गोरा रंग, पीठ और वक्ष पर हल्के-हल्के बाल; उम्र शायद कम, लेकिन देखने पर बत्तीस-पैंतीस की; कल्ले धँसे, चुंधी आँखों के गिर्द गढ़े और उन पर चश्मा—चेतन को देख कर नमस्कार के रूप मे जरा से हँसते हुए वे उसके पास आये तो चेतन ने देखा कि उनके मुख पर अभी से झुर्रियाँ पडने लगी है और इस हँसी मे एक विचित्र प्रकार का नम्र-भाव है।

"बैठिए, बैठिए!" उन महाशय ने चारपाई की ओर संकेत करते हुए कहा।

चेतन वहाँ बैठ गया और फिर दो घंटे तक बैठा रहा। जब वह उन महाशय के खाना पकाने, नहाने, खानें, गाना सुनने-सुनाने, कपड़े पहनने, किवाड़ बन्द करके दफ़्तर चलने तक साथ-साथ बातें करने के बाद कमेटी के नल पर उनका साथ छोड़ कर घर आया तो वह अपना प्रातः का अपमान और उसके फल-स्वरूप प्रकृति के अंक में जा सोने की बात सर्वथा भूल चुका था। एक नये उत्साह, एक नयी स्फूर्ति से उसके पाँव जैसे धरती पर न पड़ रहे थे।

इन्ही महाशय का नाम दुर्गादास था।

तिरसठ

दुर्गादास जन्म से बढई थे, किन्तु अपने जन्मजात कर्म को छोड कर, मैट्रिक पास करके, वे शिमले के बडे डाकखाने में क्लर्क हो गये थे। चूंकि वे अपने साथियो से अधिक पढे-लिखे थे, इसलिए उस सभा के अवैतनिक उप-मन्त्री भी बन गये थे और सभा ने उनके रहने के लिए बालकनी के साथ बने हुए दो कमरे दे रखे थे।

वे अपना खाना स्वयं पकाते थे और विचारो से आर्य-समाजी होने के कारण प्रातः-सायं संध्या-वन्दन भी करते थे चेतन को उनसे यह भी ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका है; उन्हे उससे बहुत प्यार था और उसकी खातिर उन्होने अपना आध सेर रक्त दिया था।

अपनी वयस से जो वे कुछ अधिक लगते थे, तो उसका कारण दूसरी बातो के अतिरिक्त उनकी वेष-भूषा भी थी। सिर पर पगडी, गले मे गबरून की कमीज और कोट और टाँगो मे उटुग पायजामा। यह लिबास उनकी आँखो और कल्लो के गढों और उनके गालो पर पडने वाली झुर्रियों के साथ मिल कर उनकी वयस को बढ़ा देता था। जब भी उनके स्वास्थ्य की चर्चा चलती, वे अपनी पत्नी के मर्मान्तिक रोग और उसके हेतु किये गये अपने रक्तदान का सविस्तार बखान करते। उस जमाने मे अस्पतालों मे ब्लड-बैंक नही थे। जब डॉक्टर ने कहा कि उनकी पत्नी के शरीर में रक्त बेहद कम हो गया है। यदि कोई रक्त देनें को तैयार हो जाय तो उसकी जान बच सकती है तो उन्होने झट अपने-आपको पेश कर दिया। हर बार जब वे अपने उस त्याग का उल्लेख करते तो रक्त की मात्रा को कुछ-न-कुछ बढा देते। उनके स्वर मे अपने-आपको सन्तोष देने का कुछ ऐसा प्रयास था कि चेतन को कभी-कभी लगता, मानो उन्हे अपने इस त्याग पर पश्चात्ताप है और मानो बार-बार उसका बखान वे अपने-आपको उस त्याग की महिमा जताने के लिए ही करते है। चेतन को

लगता था जैसे उनके अन्तर में सदैव कोई कहता रहता है—'तुम मूर्ख हो, निरे गधे! भला एक मरने वाली नारी के लिए कोई यों प्राण देता है ?' और जैसे उस आवाज़ को झुठलाने के लिए वे सदा दुगने उत्साह से इस घटना का बखान करते हुए अपने त्याग की महिमा को सिद्ध करते थे।

जब भी चेतन उनके त्याग का यह बखान सुनता, उसे एक बुड्ढे मियाँ की याद आ जाती :

एक बार वह बडे डाकखाने में टिकट लेने गया। भीड़ अधिक थी। टिकट देने वाला युवक कुछ खोया-खोया-सा काम कर रहा था। न जाने उसके घर में कोई मृत्यु हो गयी थी अथवा किसी युवती ने उसके अकुंचित, छल-रहित प्रेम को ठुकरा दिया था या फिर कोई दूसरी बात थी—कुछ भी हो, उसका ध्यान अपने काम मे न था। खोया-खोया-सा वह दाम ले लेता और टिकट आदि खिडकी से बढा देता। उन मियाँ जी को उसने बारह आने के टिकट ज्यादा दे दिये थे। मियाँ जी ने जब उन्हे गिना तो निमिष भर के लिए उनके मन मे द्वन्द्व हुआ—बारह आने! वे गरीब थे और बारह आने उनके लिए कम महत्व न रखते थे। हो सकता है यदि वे कुछ अधिक सोचते तो बारह आने रख ही लेते, लेकिन उन्होने सोचा नही और उस बाबू से पूछा कि उसने हिसाब ठीक कर लिया है कि नही। जब उसने अन्यमनस्कता से 'हाँ' कहा तो वे हँसे और उन्होने फिर एक बार (सब को सुना कर) उससे हिसाब जोडने को कहा। उनका स्वर जैसे कह रहा था—'मियाँ साहबजादे, इस बेपरवाही से काम करोगे तो कै दिन चलेगा? कुछ मन लगा कर काम किया करो, नही नौकरी से हाथ धो बैठोगे या सारा वेतन घाटे में भर दोगे!' पर जब इस पर भी उस युवक ने उनकी ओर ध्यान न दिया तो कुछ खिन्नता और कुछ क्रोध से हँसते हुए उन्होने उसे बताया कि बारह आने के टिकट बाबू साहब तुमने ज्यादा दे दिये हैं। इस पर जब उस युवक ने अनमनी-सी मुस्कान के साथ होंटों ही मे उन्हें धन्यवाद दे कर टिकट वापस ले लिये तो उन मियाँ जी को लगा कि उन्होंने बेकार ही उस एहसान-फरामोश को बारह आने के टिकट लौटाये। बारह

आने से उनकी एक दिन की रोटी चल जाती । लेकिन फिर शायद उन्होने अपने-आपको समझाया कि उनका मजहब तो दयानतदारी है, कोई शुक्र-गुजार हो या न हो । और वे बाकी लोगो को सुना कर अपनी ईमानदारी का बखान करने लगे कि बेईमानी की सारी से ईमानदारी की आधी भली । इस तरह बददयानती से क्या बरकत होती है? बरकत तो उसी मे है, जो मौला देता है! आदि-आदि....।

नेकी कर और दरिया मे डाल—जिसने भी मानवो को यह परामर्श दिया उसे मानव मन का ज्ञान शायद लेश-मात्र भी नही था। मानव अपने किये का प्रतिकार चाहता है, पुरस्कार चाहता है। यह प्रतिकार वैसे ही किसी काम के रूप में हो अथवा कृतज्ञता के दो मधुर शब्दो के रूप मे, यह प्रतिकार ही उसके कृतित्व को स्फूर्ति प्रदान करता है। जहाँ नेकी करके दरिया मे डाली जाती है, या जहाँ बदला नही मिलता, वहाँ धीरे-धीरे वह लुप्त हो जाती है। या फिर नेकी करने वाले जीवन भर अपने मन को, अपने मित्रो को, उसकी महत्ता बताते रहते है और इस प्रकार स्वयं ही उस अभाव की पूर्ति कर लेते है। अपनी पत्नी के लिए दुर्गादास ने जो रक्त दिया था, उसके लिए कृतज्ञ होने वाली इस संसार मे रही ही नही थी और शायद इसीलिए उस कृतज्ञता की भूख भी उनमे प्रबल थी।

०

पत्नी के देहावसान के बाद दुर्गादास ने अभी तक दूसरा विवाह न किया था। जिस दिन चेतन पहले-पहल उनसे मिला, उसे मालूम हुआ था कि विवाह की ओर से वे वीतराग-से हो गये है। उन्हे इच्छा ही नही होती। लेकिन धीरे-धीरे, ज्यो-ज्यो चेतन की घनिष्ठता उनसे बढती गयी, उसे लगा कि प्रकट विवाह के प्रति वे जितनी उदासीनता दिखाते है, परोक्ष मे वे उसके लिए उतने ही लालायित है। जब भी उनकी बिरादरी के लोग आते तो किसी-न-किसी तरह अपनी स्वर्गीया पत्नी की बात चला कर उस समस्त सेवा तथा त्याग का वर्णन वे बडे उत्साह से करते ताकि लड़की वालो को आभास मिल जाय कि उनकी लड़कियो के लिए उनसे

अच्छा वर मिलना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है । अपनी पत्नी की इतनी सेवा, उसके लिए इतना त्याग कोई विरला ही कर सकता है । लेकिन न जाने उनकी आकृति में, उनके पहनावे में, उनके समस्त व्यवहार में क्या बात थी कि लड़कियों वाले मतलब की बात पर मौन साध जाते । वे सहर्ष उनका आतिथ्य ग्रहण कर लेते, उनसे उनकी जमा-पूंजी उधार लेने में भी संकोच न करते; उनके घर ठहर कर उनके हाथों पकायी हुई खीर, दलिया, खिचड़ी या परांठे स्वाद ले-ले कर खाते, लेकिन जब मतलब की बात आती तो ऐसे उड़ा जाते मानो जिस लड़की की ओर दुर्गादास संकेत करते, वह उनकी नहीं किसी दूसरे की रिश्तेदार हो ।

और दुर्गादास अभी विधुर बने हुए थे। उनकी स्वर्गीया पत्नी के गुणों में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही थी और उसके लिए उन्होंने जो रक्त दिया था उसकी मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ रही थी ।

०

अपने एकान्त का समय दुर्गादास रोटी पकाने अथवा बाजा बजाने में बिताते थे । आठ वर्ष पहले उनके विवाह पर एक साधारण-सा हारमोनियम बाजा भी दहेज़ में आया था । एक दो आर्य-समाजी गीत उनकी पत्नी जानती थी, वही उससे उन्होने सीख लिये थे । जब उनका मन उदास होता तो वे चारपाई के नीचे से हारमोनियम निकाल कर गाया करते :

तुम हो प्रभु चाँद मै हूँ चकोरा

या :

प्रभु प्रीतम जिसने बिसारा

गाते-गाते वे तन्मय हो जाते । भूल जाते कि उनका स्वर बाजे के स्वर से मिलता है या नही । वे आँखें बन्द किये, तन्मय हो कर झूमते हुए, भक्ति भाव से गाते । उन्होने भजन पुष्पांजलि से स्वयं भी कुछ गीत सीखे थे, यद्यपि पत्नी से सीखे हुए ये दो गीत उनको अत्यन्त प्रिय थे । जब चेतन से उन्होंने सुना कि वह प्रो० सिंह के कॉलेज में गाना सीखता है तो उन्होंने उसे अपने सारे गीत सुनाये :

दयानन्द के आवाहन का गीत :

वेदां वालिया ऋषिया ओ तेरे आवन दी लोड़ !

महाराणा प्रताप के त्याग का गीत :

आया जब अकबर का कासिद वक्त था वह शाम का !

मांसाहार के निषेध का गीत :

है भला तेरा इसी में मांस खाना छोड़ दे

ये सब और ऐसे ही एक-दो गाने और सुना कर उन्होंने चेतन से भी कुछ सुनाने को कहा।

"मैं तो पक्के गाने ही पसन्द करता हूँ," उन आर्य-समाजी भजनो पर नाक-भौं चढ़ाते हुए चेतन ने कहा, बडी शान से बाजा अपने सामने खींचा और यह कह कर कि अब दस बजे है इसलिए वह भैरव के बोल ही सुनायेगा, उसने :

स ध, प ध, मप, गम, गा रे गम, ग रे स स

बजाया और जब दुर्गादास ने पूछा कि भाई गीत के बोल भी सुनाओ तो एक वेत्ता की-सी मुस्कान के साथ 'प्रसिद्ध गाना है' की भूमिका देते हुए चेतन ने गाया :

जागियो गोपाल लाल, जागियो गोपाल लाल !

चेतन को तान और पलटो का अभ्यास न था, लय और ताल का भी उतना ज्ञान न था, इसलिए उसने एक-दो बार अस्थायी और अन्तरा और बीच मे केवल सरगम गा कर बाजा रख दिया, लेकिन इतने ही से दुर्गादास पर उसका रोब जम गया और वही यह तय हो गया कि चेतन प्रो० सिंह से जो सीखेगा, उसका अभ्यास दुर्गादास के यहाँ आ कर करेगा। दुर्गादास ने यह प्रस्ताव भी किया कि वह चाहे तो काम भी वही किया करे—एकान्त जगह है, शोर-गुल किसी तरह का है नहीं और दूनी एकाग्रता से काम हो सकता है। और चेतन ने यह प्रस्ताव स्वीकार भी कर लिया।

धीरे-धीरे दुर्गादास ने भी वे सब रागिनियाँ सीख ली जो चेतन को

स्थान नही, लेकिन जिस तरह वे मोटरो, गाडियों, सिनेमा, थियेटरो को इस दुनिया मे गुरुकुल स्थापित करके प्राचीन ब्रह्मचारी तैयार करने के प्रयत्न मे संलग्न है, उसी प्रकार अपनी सामाजिक पद्धति मे इन दोनों कलाओं के लिए स्थान न रह जाने पर भी, इसके पुनरुद्धार का बीड़ा उठाये हुए है।

०

संगीत-सम्मेलन से पहली रात कवि-सम्मेलन के लिए नियत थी। प्रधान थे कविराज रामदास। चेतन ने उन्हें बीस वर्ष पुराने गीत गाते तो सुना था पर कविता से उन्हे कुछ दिलचस्पी है, यह बात उसके लिए नयी थी। किन्तु वे कविराज थे—कवियों के राजा—और इसीलिए शायद उन्होंने अपने-आपको अथवा आयोजको ने उन्हें इस पद के योग्य समझा था। चेतन समझ न पाता था कि वैद्यो को कविराज की उपाधि क्यों प्रदान की जाती है? लेकिन शायद कविराज के प्रधान बनने में उनकी इस कविराज की डिग्री के बदले उस चन्दे का अधिक हाथ था, जो वे आर्य-समाज को दान देते थे।

नियत समय पर अधिवेशन आरम्भ हुआ। चेतन ने एक बार कोट के अन्दर की जेब में टटोल कर देख लिया कि उसकी कविता वहाँ सुरक्षित पडी है—न घर भूली है, न कही गिरी है—और यों आश्वस्त हो कर मन-ही-मन उसने एक-दो बार उसकी आवृत्ति भी कर ली। तभी मन्त्री के प्रस्ताव पर कविराज सभापति की कुर्सी पर जा बैठे और उन्होंने पहले कवि का नाम पुकारा, "वंसीलाल मतवाला!"

एक फक्कड-सा युवक स्टेज पर आ खडा हुआ। एक अत्यन्त असंगत-सा भाषण उसने भारत की दुर्दशा पर दिया, जिसमें लडकियों की आजादी से ले कर लडको के लड़कियाँ बनने तक पर घोर शोक प्रकट किया और इस दुर्दशा से भारत को उबारने के लिए भगवान कृष्ण को अपना प्रण—यदा-यदा हि धर्मस्य....याद दिलाते हुए बडी सुरीली, ऊँची आवाज़ मे कविता पढनी आरम्भ की:

आज लो भगवान फिर अवतार !

किन्तु अभी उसने पहली पंक्ति ही पढी थी कि रुद्र-रूप धारण किये एक युवक स्टेज पर चढ आया । (चेतन को बाद मे पता चला कि वे महाशय लाहौर आर्य-समाज के युवक उप-मन्त्री, दयानन्द वैदिक कॉलेज के ग्रेजुएट और किसी आर्य गजट के यशस्वी सम्पादक थे ।) आवेश मे, बिना प्रधान की आज्ञा लिये, वे गरजे कि आर्य-समाज के सिद्धान्तो के विरुद्ध वे किसी कविता को सहन न करेगे । कृष्ण को भगवान कहना और उन्हे अवतार मानना आर्य-समाज के सिद्धान्तो की घोर अवमानना है ।

कवि भी थे 'मतवाला' । शायद कुछ पिये हुए भी थे । उन्होंने आर्य-समाजियों की असहिष्णुता पर आक्रोश प्रकट किया और कहा कि सच्चे कलाकारो का कोई धर्म नही । वे तो मानव-धर्म मे विश्वास रखते है और अन्त मे ललकारा कि जो सच्चा कलाकार होगा, उस मंच से कविता न पढेगा ।

इस पर वह कोलाहल मचा कि कविराज जी की 'बैठिए, बैठिए' नक्कारखाने मे तूती की आवाज बन कर रह गयी । एक ओर आर्य-समाजी उठ खडे हुए, गरजे कि चाहे कवि-सम्मेलन हो या न हो, वे इस तरह की कविता कदापि न होने देंगे, दूसरी ओर कविगण अड गये कि यदि 'मतवाला जी' को न पढने दिया गया तो वे भी न पढेंगे ।

कवि कुछ पुरस्कार पा कर तो आये न थे । सम्पन्न लोग धर्म-यज्ञों में चदा देते है । कवियो का धन था उनकी कविताएँ, उन्ही को आहुति-स्वरूप इस धर्म-यज्ञ मे डालने वे चले आये थे । जब यज्ञ के पुरोहितों को वह आहुति स्वीकार नही तो फिर उनका दोष कैसा ? और फिर उस कवि की ललकार के बाद उस मंच पर कविता पढ कर झूठा कलाकार बनना किसे पसन्द होता ? हाल मे दो पार्टियाँ बन गयी । सभी अपने-अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए उतावले हो उठे । एक तीसरी पार्टी भी थी जिसे कविताओ की अपेक्षा यह कौतुक कही अधिक पसन्द था और उसका यह

प्रयास था कि किसी तरह समझौता न हो पाय :

अन्त को इसी तीसरी पार्टी की जीत हुई और रात के साढे बारह बजे कविराज जी को सभा विसर्जित करनी पड़ी।

सभा के इस प्रकार विसर्जित होने का दुख जितना कविराज जी को था, चेतन को उससे कम न था। वह अपनी एक कविता बडे यत्न से सुन्दर अक्षरों में मोटे-से कागज़ पर लिख कर और कमरे के एकान्त मे भाव-भंगियो सहित रिहर्सल करके ले गया था। उसकी वह कविता उसकी जेब ही मे पड़ी थी और श्रोताओ पर अपनी कवित्व-शक्ति का प्रभाव डालने की लालसा भी उसके मन-ही-मन मे दबी रह गयी थी।

आधी रात के सन्नाटे मे जब कविराज और वह घर को लौटे तो मार्ग में कोई भी एक दूसरे से न बोला। मौन-रूप से अपनी-अपनी असफलता पर विचार करते हुए दोनों चलते गये। चेतन को केवल एक सन्तोष था कि यद्यपि वह आज जनता पर अपना सिक्का नही जमा सका, पर कल संगीत-सम्मेलन के अवसर पर अवश्य जमायेगा। इसी आश्वासन से भर कर उसने एक दया भरी दृष्टि कविराज जी पर डाली जो सर झुकाये अपने ध्यान में मग्न चले जा रहे थे।

०

दूसरी रात संगीत समारोह हुआ।

०

यद्यपि इस समारोह मे कोई बहुत बड़े संगीतज्ञ न आये थे, पर भीड़ काफी थी, क्योंकि विज्ञापन में कई लडकियो के नाम भी थे, निम्न-मध्यवर्गीय घरानो की लडकियो को, जिन्हे वर-प्राप्ति के लिए गाने की शिक्षा लेनी पड़ती है, अपनी कला के प्रदर्शन का सुअवसर इन धार्मिक सम्मेलनो के अतिरिक्त कही और नही मिलता। इस वर्ग के बेकार युवको के लिए, बिना टिकट अपनी अतृप्ति मिटाने का सुअवसर भी ये संगीत-सम्मेलन ही उपस्थित करते है। आम के आम, गुठलियो के दाम—धर्म का काम भी हो गया और आंखो और कानो की भूख भी मिट गयी! बेकार समय का

इससे अधिक अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है। इसीलिए समाज के साधारण अधिवेशनो से कही अधिक भीड़ संगीत-सम्मेलन मे थी।

रात चेतन देर से सोया था; पर प्रातःकाल ही उठ कर वह दुर्गादास के यहाँ पहुँचा और निरन्तर कई घंटे तक दोनो इकट्ठे मिल कर गाने का अभ्यास करते रहे थे। दुर्गादास को आते समय संकोच हो रहा था, लेकिन चेतन उन्हें अपने संग घसीट लाया था।

सब से पहले कुछ लडकियों ने 'वन्दना' गायी। इसके बाद प्रोग्राम आरम्भ हुआ। किन्तु किसने क्या गाया, चेतन ने कुछ नही सुना। मौन रूप से अपने गानो की रिहर्सल करने के साथ-साथ वह इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब प्रो० सिह और उनके छात्रो की बारी आती है और कब वह उनसे कुछ क्षण अपने और दुर्गादास के लिए ले पाता है।

जब आर्य-समाजी भजनीक (जो अपने गाने के साथ भाषण की पुट भी देते रहे) और लड़कियाँ (जिनकी प्रशंसा उनके सौन्दर्य और कंठ की मधुरता के परिमाण से कम या अधिक हुई) और दूसरे गवैये गा चुके तो प्रो० सिह और उनके साथियो की बारी आयी। पहले उनके शिष्यो ने अपनी-अपनी कला के जौहर दिखाये। फिर प्रो० साहब ने स्वयं बाजा खीचा। तभी चेतन ने प्रार्थना की कि उसे और दुर्गादास को गाने का अवसर दिया जाय। 'तुम अभी सभा मे गाने योग्य नही हुए!' इतना कह कर प्रो० सिह स्वयं गाने लगे। वे बहुत अच्छा गाये। उन्हें कई चीज़ें गानी पडी। वही उनके गले का जादू, जिसने चेतन को गली की सीढियो पर जाते-जाते बाँध लिया था, सारे-के-सारे श्रोताओ को बाँधे हुए था। सीधे-सीधे गाने, कम तान पलटे, सुन्दर गला और शुद्ध उच्चारण! और एक गाने के खत्म होते ही लोग दूसरे की फरमाइश करते। कई गीत गाने के बाद प्रोफेसर साहब थक गये, लेकिन समय अभी बहुत न हुआ था। आयोजक चाहते थे कि वे और कुछ देर तक गायें। तभी चेतन ने एक बार फिर साहस करके अपनी प्रार्थना दुहराई और उस जल्दी और घबराहट मे जब श्रोता तालियाँ पीट रहे थे, 'एक और, एक और' के नारे लगा

रहे थे और आयोजक उनसे कम-से-कम एक गाना और गाने का अनुरोध कर रहे थे प्रो० सिंह ने चेतन की ओर संकेत करते हुए कहा—"अब कुछ क्षण के लिए ये गायेंगे, मेरे ही शागिर्द हैं, मैं जरा साँस ले लूं।" तब आयोजक महाशय ने सोल्लास इस बात की घोषणा कर दी कि अब प्रो० साहब के दो नये शागिर्द गायेंगे, जिसके बाद वे स्वयं अपने संगीत से हमें मुग्ध करेंगे। और अपने उस उल्लास मे संयोजक महोदय ने चेतन और दुर्गादास को संगीत-विद्या मे विशारद बना डाला।

घोषणा को सुन कर दोनो धड़कते हुए दिलों के साथ आगे आये। दुर्गादास ने वाजा आगे खीचा। दोनो की आँखें मिलीं—कौन-सा गाना गाया जाय और जैसे आँखो ही आँखो में दोनों ने निश्चय कर लिया :

मोरी बैंय्याँ पकर झकझोरी

वाजा वजने लगा और वे गाने लगे।

दोनों तन्मय भाव से गा रहे थे कि चेतन की दृष्टि सामने बैठे दो गवैयों की ओर गयी। वे हँस रहे थे। उसने प्रो० सिंह की ओर देखा। उनका माथा सिकुड गया था और वे तिलमिला रहे थे। चेतन को लगा कि उनका स्वर नही मिल रहा। वह आनन्द नहीं आ रहा, जो उन्हें सदा इस गीत को गाने में आया करता था। उसने दुर्गादास की ओर देखा। वे आँखें बन्द किये तन्यमता से झूमते हुए आधी रात को भैरवी गा रहे थे। अचानक सामने बैठे हुए गवैये ज़ोर से हँस पड़े। इसके बाद जैसे हँसी छूत की तरह फैल गयी। तभी चेतन को ध्यान आया कि उन्हे तो खम्माच गाना था। उसने चाहा दुर्गादास से कहे कि दूसरा राग लगाओ :

बैंय्याँ न पकर मोरी....

किन्तु उसी क्षण प्रोफेसर सिंह ने आगे हो कर बाजा थाम लिया और उनका प्रिय शिष्य वही झीवर कुमार अपनी सुरीली तान से गाने लगा।

कौन देस गया पिया मोरा बालम रे

दर्शकों की हँसी एकदम थम गयी। चेतन को इतनी शर्म आयी कि वहाँ एक क्षण भी ठहरना उसके लिए असम्भव हो गया। दुर्गादास को कुछ भी समझ में न आ रहा था। अपनी गढों में धँसी हुई आँखों की पलकें, मरती हुई तितली के पंखों-सी फटफटाते हुए, वे आश्चर्यचकित-से चारों ओर देख रहे थे। लेकिन चेतन बिना किसी से आँख मिलाये पिछले दरवाजे से निकला और रात के अँधेरे में चोरों की तरह घर की ओर भाग चला।

चौंसठ

तीन दिन तक चेतन बाहर न निकला था। उसे लगता था जैसे सारा नगर उसकी असफलता को जान गया है। वह बाहर निकलेगा तो लोग उँगलियाँ उठायेंगे कि यही वे संगीत विशारद हैं, जो रात के ग्यारह बजे भैरवी गा रहे थे। कमरे के एकाकीपन से उकता कर वह एक दिन दोपहर को सीढियों के छज्जे पर आ खड़ा हुआ था, पर जाने क्यों सामने के बरामदे में खड़ी बाबू चरणदास की वही साँवली लड़की उसे देख कर मुस्करा दी और वह हड़बड़ा कर मुड़ा। उस गरीब ने चाहे उसका गाना सुना भी न हो, लेकिन चेतन को लगा, जैसे वह मुस्कान उस घटना की ओर ही संकेत कर रही है। घोंघे की तरह वह अपने खोल में आ बैठा और माल अथवा लोअर बाजार तक जाना तो दूर रहा, वह रुल्दू भट्टे के चौक तक जाने का भी साहस न कर पाया था। रात के पिछले पहर मुँह अँधेरे ही वह उठता, शौचादि से निवृत्त हो कर व्यायाम करके नल पर हाथ मुँह धो कर या स्नान करके अपने कमरे में जा बैठता, कविराज जी की पुस्तक लिखता या अपने उपन्यास का कोई परिच्छेद लिखने का प्रयास करता, या फिर अन्यमनस्क लेटा रहता।

न जाने वह कब तक इस प्रकार उस अँधेरे कमरे में पड़ा रहता, यदि चौथे दिन उसे नारायण न जा पकड़ता ।

"अरे भई क्या हो गया तुम्हें, जो छुट्टी के दिन भी इस अँधेरी कोठरी में बन्द पड़े हो ?" नारायण ने कहा :

चेतन ने कुछ उत्तर देने का प्रयास किया, पर अस्फुट बड़बड़ाहट के अतिरिक्त उसके होटों से कुछ भी न निकल सका ।

तब चश्मे के पीछे से अपनी आँखो की चमकती रेखा को कटाक्ष के रूप मे चेतन पर डाल कर नारायण ने कहा : "बाहर तो आओ । देखो तो कैसे बादल घिर आये हैं । ऐसे में कोई भलामानुष कमरे में बैठा रह सकता है ? ऐसे में तो जी चाहता है दिन भर शिमले की सड़कों पर घूमते रहें ।" और दफ़्तर के वातावरण में सूख जाने वाला रस जैसे इन बादलो को देख, नव-जीवन पा कर नारायण की आँखों में उमड़ा आता था ।

"मेरी तबीयत कुछ ठीक नही !" चेतन ने कहना चाहा, लेकिन नारायण जैसे उसे बरबस घसीटता हुआ-सा बाहर ले आया । कमरे के किवाड़ लगा कर दोनों नीचे उतरे और सच ही दिन भर शिमले की सड़को और बाज़ारो में घूमते रहे ।

बादल सामने घाटियो से उठते; धीरे-धीरे बढ़ते हुए, धुनकी हुई रुई की तरह ऊपर चढते; समीप की घाटियों मे रेंगते; चोटियो पर लटकते; दुकानो, मकानो पर छाते, बरसते और हल्के हो कर और भी ऊपर उठ जाते । दिन भर दोनो ने उस सैर का आनन्द लूटा । वर्षा होने लगती तो वे किसी हवाघर मे बैठ जाते या किसी दुकान के बरामदे में हो जाते और थमने पर फिर चल पड़ते । उन्हें भूख भी खूब लगी थी और न केवल उन्होंने नारायण के घर जा कर स्वादिष्ट, खस्ता मठरियाँ, अत्यधिक पुराने और मन्दाग्नि को प्रज्वलित करने वाले नीबू के आचार के साथ चटख़ारे ले कर खायी थी, बल्कि लोअर बाज़ार के हलवाई की दुकान से गर्म-गर्म इमरतियाँ भी चट की थी और मशोबरे के सेब भी खाये थे । इसी बीच मे उन्होंने जी भर कर बहस की थी और आत्मा-परमात्मा ऐसे

सूक्ष्म आध्यात्मिक विषयो से ले कर समाजवाद, यथार्थवाद आदि स्थूल सासारिक विषयो पर तर्क-वितर्क भी किया था । दोनो इन विषयो मे पारंगत हो, यह बात न थी। बहस करने के लिए वे उलझते रहे थे और संध्या को जब चेतन नारायण को उसके होटल—कश्मीर हिन्दू होटल—के सामने छोड कर अपने ढाबे की ओर जाने लगा तो नारायण ने उसे भी अपने साथ ऊपर खीच लिया था।

चेतन उस होटल के सामने प्रायः रोज़ गुज़रता था। कई दिनो से वह नारायण को वहाँ तक छोड़ने भी जाता था, लेकिन उसे स्वयं कभी उससे ऊपर जाने का साहस न हुआ था। बात असल मे यह थी कि शुरू ही मे कविराज जी के व्यवहार, शिमले की माल और उस माल के वासियो की तडक-भडक, दर्प और अभिमान ने उसके हृदय में कुछ ऐसा हीन-भाव भर दिया था कि वह अपने-आपको एकदम हेय समझने लगा था। और जब कविराज जी के साथ खाना खाने का उसका स्वप्न टूटा और किसी दूसरी जगह भोजन पाने की समस्या उसके सामने उपस्थित हुई तो सीधे लोअर बाजार के किसी होटल वाले से जा कर पूछने का साहस उसे न हुआ। (माल के किसी होटल की ओर तो वह बाहर से देख ही सकता था, अन्दर जाने तक की कल्पना न कर सकता था।) उसके इस संकोच का एक और भी कारण था कविराज जी से वह कुछ रुपये पेशगी ले चुका था, अब और अधिक रुपये वह माँगना न चाहता था और होटल वाले, उसने सुन रखा था, महीने के रुपये पेशगी माँगते है। न जाने वे कितने रुपये माँग लें! यदि उसके पास उतने रुपये न निकले तो उसे खिसियाना-सा मुँह बना कर लौटते हुए शर्म आयगी। यही सोच कर किसी होटल मे जाने की अपेक्षा उसने यादराम से पूछा था कि कही कोई ढाबा आदि नही क्या?

यादराम उसे सहर्ष नीचे चोर बाजार के एक अत्यन्त घटिया-से ढाबे पर ले गया था। "सात रुपये महीने पर जितनी चाहो रोटी खाओ," उसने सोल्लास चेतन से कहा था, "ये होटल वाले तो चोर है, मुझसे

बारह रुपये माँगते थे, हरामी कहीं के।"

चेतन और भी सहम गया था। लाहौर मे शुरू-शुरू मे वह जिस तंदूर पर खाना खाया करता था, उस पर बडी कठिनाई से उसका बिल चार रुपये महीने तक पहुँचता था। जब यादराम से (जो साधारण घरेलू नौकर था) वे बारह रुपये माँगते थे तो उससे तो पन्द्रह-बीस ही माँगेंगे—उसने सोचा था—यदि उसे मालूम होता कि शिमला इतनी महँगी जगह है तो वह कभी ५० रुपये मासिक पर वहाँ न आता और उसने उसी ढाबे पर खाना खाना आरम्भ कर दिया था।

ढाबा चाहे घटिया था, पर वहाँ सफ़ाई काफ़ी थी और जब वह टाट पर बैठ कर थाली में से खाना खाता तो उसे कुछ परायापन न लगता। चंगड़ मुहल्ले में रहने वाले चेतन के लिए वह ढाबा जैसे कुछ अपनत्व का भाव लिये हुए था। फिर ढाबे का स्वामी उसे कुछ सभ्य समझ कर शाम-सबेरे उसकी तरकारी और दाल मे दो पैसे का घी छौंक दिया करता था। खाते समय चेतन को तेल और घी का मिला-जुला-सा स्वाद आया करता था, लेकिन होटलो के परायेपन की अपेक्षा उसे वह कही अधिक सह्य था। वह सन्तुष्ट था और उसने कही दूसरी जगह जाने की इच्छा तक भी न की थी।

'कश्मीर हिन्दू होटल' के नीचे सोडावाटर का एक कारखाना था। बोतलो की पेटियो में से होते हुए वे एक बड़े तंग लकडी के जीने से ऊपर पहुँचे। चेतन ने देखा कि सीढियाँ जिस कमरे में खुलती है उसमे चार मेज़ लगे हुए है, जिन पर सफेद मेजपोश बिछे है। मेज़पोश वास्तव में इतने साफ न थे, लेकिन उस गन्दे सील भरे ढाबे की फटी मैली चटाइयो की अपेक्षा ये गन्दे मेज़पोश भी चेतन को साफ़ लगे।

वे दोनो जा कर सामने की मेज पर बैठ गये। चेतन दीवार से पीठ लगा कर सीढियों की ओर को मुँह करके बैठा और नारायण मेज के दूसरी ओर उसके सामने। बायी ओर एक छोटे-से कमरे के बाद तनिक ऊपर को रसोई-घर था। खाने के कमरे और रसोई-घर के मध्य यह छोटा-सा

कमरा था और रसोई के धुएँ के कारण काला भी पड गया था। दीवार के साथ ही, मैल की मोटी परत के कारण काला स्याह पड जाने वाला, एक मेज पडा था। इसके साथ एक कुर्सी भी लगी थी। वरावर की आलमारी का आधा भाग ही वहाँ से दिखायी देता था। आलमारी के शीशे टूटे हुए थे और उसमे घी के डिब्बे पडे थे, जो कदाचित होटल के स्थायी ग्राहको के थे। चिकनाई के कारण आलमारी के किवाड, उसके तख्ते, शीशे, सव मैल की मोटी, काली परत से ढँके हुए थे और दूर से काले वारनिश से रँगे दिखायी देते थे।

उधर से दृष्टि हटा कर, चेतन ने तनिक मुड कर दायी ओर को देखा। दोनो ओर से लटकते हुए पर्दे और बीच मे एक छोटा-सा मार्ग दिखायी दिया। जव हाथ धोने के लिए उस मार्ग से गुजर कर वह बारजे पर गया और उसने मुड कर कमरे का निरीक्षण किया तो उसने देखा कि कमरा तो वास्तव में एक ही है। उसी मे प्लाईवुड के स्थान पर लम्वी-लम्वी सलाखो से पर्दे लटका कर केविन-से वना दिये गये है। उसने यह भी देखा कि उनकी मेज पर भी, जहाँ नारायण वैठा था, एक लम्वी लोहे की सलाख दूर सामने की दीवार तक चली गयी है और उसे काटती हुई एक और सलाख दूसरी ओर गयी है। छत के साथ सलाखो का जाल-सा विछा था और उनसे पर्दे लटक रहे थे। चेतन ने देखा कि उनकी और उनके सामने की दीवार के साथ लगी मेज के इर्द-गिर्द भी पर्दे लटक रहे है। उस समय वे पर्दे खुले हुए न थे, वल्कि सिमटे-से केबिनो के पर्दो के अंग हो रहे थे। उस मध्यवर्ती रास्ते के दोनो ओर तीन-तीन केविन थे जिनके दरवाजो पर पर्दे पडे थे। जव वे केविन भर जाते थे और पीने-पिलाने वालो को वाहर मेजो पर वैठाना पडता तो उन पर्दो को खोल कर उन मेजो के इर्द-गिर्द भी केविन-से बना दिये जाते थे।

अन्दर के केविनो मे उस समय शायद वोतलें खुल चुकी थी, क्योकि वहकी-वहकी वातो की ध्वनि आ रही थी और कई लडखडाती रुद्ध आवाजें यदा-कदा 'व्वाय, व्वाय' पुकार उठती थी। उधर से दृष्टि हटा कर उसने

बारजे को देखा । बाजार की ओर को बढ़ी हुई उस छोटी-सी बालकनी में एक ओर हाथ-मुँह धोने के लिए नल लगा था, दूसरी ओर अत्यधिक छोटा-सा शौचगृह था । खिड़कियों के पट बाजार की ओर को खुलते थे । चेतन क्षण भर के लिए खिड़की में जा खड़ा हुआ ।

बाहर बाजार में बादल घुस-आये थे । बत्तियों के सिमटे, धुँधले प्रकाश में नीचे बहती हुई भीड़ चेतन को कुछ अजीब-सी लगी । उस बहिया में सभी भारतीय थे । निम्न-मध्य-वर्ग अथवा बीच के मध्य-वित्त के लोग ! अंग्रेज या उच्च-वर्ग के भारतीय लोअर बाजार में दिखायी नहीं देते । उनके लिए माल और माल की वैभवशाली दुकानें और ऐसे शानदार होटल हैं, जहाँ दिन में खाने के छै-छै कोर्स आते हैं और जहाँ ऊँचे दर्जे के मध्य-वर्गीय का मासिक वेतन एक ही दिन की भेंट हो सकता है । माल वालों में से लोअर बाजार की सैर को तभी कोई आता है, जब उसकी जेबों में माल की दुकानों के नाज़ उठाने की शक्ति नहीं रहती । गोरी चमड़ी का ऐसा ही कोई जोड़ा कभी-कभी लोअर बाजार में दिखायी दे जाता है—जैसे नदी की धारा में कमल का पत्ता—उस धारा का हो कर भी उससे अलग । चेतन भी प्रतिदिन उस बहती भीड़ का अंग बनता था । वह 'कश्मीर हिन्दू होटल' की खिड़कियों को मध्य-वर्ग के उन सैकड़ों लोगों की तरह अरमान भरी दृष्टि से देखता था, जो माल से गुजरते हुए वहाँ के बड़े होटलों को देख कर सोचा करते हैं कि शीघ्र ही वे उनमें जाने के योग्य हो सकेंगे । उस बालकनी की खिड़कियों पर पड़े हुए पर्दे सदैव उसके सामने कल्पनालोक बसा देते थे और वह भीड़ में ठिलता हुआ दिवा-स्वप्नों में खो जाता था । वह जब भी नारायण को छोड़ने जाता, कई बार उसे इच्छा होती कि वह उसके साथ होटल के ऊपर चला जाय, पर संकोच सदैव उसके पैरों की बेड़ी बन जाता और वह उसे छोड़ कर अपना स्वप्न बनाता-मिटाता नीचे चोर बाजार के उसी घटिया-से ढाबे की ओर चल पड़ता । आज उसी बालकनी में खड़ा वह कुछ अजीब-सी अनुभूति से अभिभूत था । कुछ हल्का, कुछ उत्फुल्ल, छलकने के डर से मदिरा को

अपने किनारो मे सयत्न समेटने वाले प्याले की तरह वह उस उल्लास को अन्तर मे सँजोये था। विमोहित-सा वह नीचे के उस धुंधले, शीतल प्रकाश में अनवरत बहती उस जन-सरिता की ओर देख रहा था....तभी नारायण ने उसे आवाज दी।

नल पर जल्दी-जल्दी हाथ धो और खूंटी से लटके हुए, बार-बार हाथो के पोछे जाने के कारण निचुडते-से तौलिये से हाथ पोछ कर, जब वह वापस मेज पर पहुँचा तो खाना आ चुका था। नारायण ने उसे बताया कि होटल वाले स्थायी ग्राहको से आठ रुपया मासिक लेते है और आठ रुपये मे एक दाल, तरकारी और रोटियाँ देते है।

"कितनी रोटियाँ ?" चेतन को जैसे विश्वास न आया।

"जितनी भी कोई खा ले," नारायण ने थाली उसकी ओर बढाते हुए कहा, "हाँ यदि कोई दाल-तरकारी मे तडका लगवाना चाहे तो घी उसका अपना।" फिर कुछ क्षण ठहर कर उसने कहा, "मै तो नही खाता, लेकिन यहाँ गोश्त हर किस्म का पकता है और दो पैसे को सलाद की प्लेट मिलती है।"

और चेतन के 'न, न' करने पर भी नारायण ने सलाद की प्लेट मँगा ली। दाल और तरकारी बडी स्वादिष्ट थी। दोनो को घी का तड़का लगा हुआ था। सलाद का स्वाद चेतन ने जीवन मे पहली बार चखा। प्लेट मे टमाटर भी थे, प्याज़ भी और सलाद के कतले भी। शिमले के अपने इस निवास-काल मे चेतन ने पहली बार पेट भर कर खाना खाया। उसी दिन नारायण की सिफारिश पर बिना कुछ पेशगी दिये वह 'कश्मीर हिन्दू होटल' का स्थायी ग्राहक बन गया।

खाना खाने के बाद तत्काल नारायण से छुट्टी ले कर वह भागा-भागा औषधालय गया कि यादराम को अपने इस आविष्कार की सूचना दे। यादराम औषधालय बन्द करके जा चुका था। तब चेतन ढाबे की ओर भागा। यादराम खाना खा कर कुल्ला कर रहा था कि चेतन ने उसे जा पकड़ा।

"तुम तो महामूर्ख हो," वह दूर ही से चिल्लाया, "इस घटिया-से ढाबे पर खाना खा रहे हो। वहाँ कश्मीर हिन्दू होटल में केवल आठ रुपये महीने लेते हैं और इतना बढ़िया खाना मिलता है कि वाह! पतले-पतले लुच्चियों-से फुल्के, स्वादिष्ट तरकारियाँ और सिर्फ दो पैसे में सलाद की प्लेट! मैं कहता हूँ, दो पैसे में सलाद की प्लेट! कभी खाया भी है तुमने सलाद!" और सलाद और उसमें निहित विटामिनों पर (नारायण द्वारा सुना हुआ) एक छोटा-सा भाषण देते हुए उसने यादराम से अनुरोध किया कि कल से वह भी होटल ही में खाना खाया करे।

लेकिन यादराम ने निराश-भाव से केवल इतना कहा, "अरे बाबू जी, हम कहाँ होटलों में जायेंगे।"

चेतन बेसब्र हो कर बोला, "अरे भाई कल तुम मेरे संग चलना, आखिर तुम क्यों होटल में न खाओ। अपने पैसों का खाओगे, कोई मुफ़्त तो खाओगे नहीं," और फिर यादराम के असमंजस को देख कर उसने कहा, "वे एक थाली के तीन आने लेते हैं, न होगा मेरे हिसाब में खा लेना।"

और यादराम को यह संदेशा दे कर चेतन इस प्रकार माल की ओर चल पड़ा जैसे अचानक अलादीन का चिराग उसके हाथ आ गया हो।

पैंसठ

दूसरे दिन शाम को यादराम ने घर की धुली कमीज़ और कुछ साफ नेकर पहनी और चेतन के साथ चल पड़ा।

यादराम को ऊपर बैठा कर अपनी इस कारगुज़ारी की दाद मैनेजर से पाने के लिए चेतन नीचे आया और उसने सहर्ष मैनेजर से कहा, "लीजिए आपके लिए एक और ग्राहक ले आया हूँ।"

मैनेजर ने खीसें निपोर दीं—"आपकी किरपा है महाराज!"

"वह भी स्थायी ग्राहक बन जायगा," अपने जोश मे चेतन ने कहा और वह ऊपर पहुँचा । तब तक यादराम डट कर एक मेज़ पर बैठ गया था । लेकिन उस लम्बे-तड़गे, हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति के लिए वह मेज़-कुर्सी बहुत छोटी मालूम होती थी । लगता था, जैसे कोई बडा आदमी बच्चो की मेज़-कुर्सी पर बैठ गया हो । उसकी लम्बी अधनंगी टाँगें मेज के नीचे आ न रही थी और वह उन्हे कुर्सी के दोनो ओर फैलाये अकडा बैठा था ।

चेतन ने अन्दर रसोई-घर मे रसोइए को आवाज़ दे कर कहा कि यादराम भी खाना खायेगा ।

रसोइए ने किचन के दरवाज़े से गर्दन बढा कर यादराम की ओर देखा और फिर सिर हिलाते हुए विचित्र-सी मुद्रा बना कर चेतन से कहा, "पहले आप खा लीजिए !"

चेतन को उसका यो मुँह बनाना बडा बुरा लगा । लेकिन तभी नारायण बारजे से हाथ पोछता हुआ वहाँ पहुँच गया और बोला, "आओ पहले हमी निबट लें, एक साथ वे किस प्रकार इतने आदमियो के लिए रोटियाँ पका सकते हैं ? यह बाद मे खाता रहेगा ?"

थालियाँ परोस कर आ गयी और यद्यपि चेतन के लिए यादराम को खिलाये बिना खाना दुष्कर हो रहा था, लेकिन वह नारायण के साथ खाने लगा । जब वे खाना खा चुके तो नारायण ने घूमने का प्रस्ताव किया । तब रसोइए को ताकीद करके कि वह यादराम को खाना खिलाये और अपने आदेश के महत्व को जताते हुए इतना और कह कर कि वह स्थायी ग्राहक बनेगा, चेतन नारायण के साथ नीचे उतरा ।

जब वे बाहर जाने लगे तो मैनेजर ने उन्हे रोक लिया और उपालम्भ-भरे स्वर मे उसने कहा, "यह होटल है बाबू साहब, यहाँ शरीफ आदमी खाना खाने आते है, यहाँ दफ्तरो के बाबू आते है, मजदूरों का खाना खाने का ढाबा नही यह !"

जब वे खाना खा रहे थे तो शायद बैरा नीचे आ कर मैनेजर से शिकायत कर गया था । उसकी बात सुन कर चेतन किंकर्तव्य-विमूढ-सा

खड़ा रह गया। अब वह यादराम से जा कर कैसे कहे कि उसे खाना नहीं मिलेगा। क्षण भर सोच कर उसने कहा, "अच्छा उसे आज तो खाना दीजिए, फिर वह नही खाया करेगा। अब तो मै ले आया हूँ उसे। उसका आज का खाना मेरे हिसाब में लिख लेना।"

यह कह कर वह नारायण के साथ चला। लोअर बाज़ार मे जीवन की नदी अपने यौवन पर थी। चेतन इस बहती इठलाती नदी मे अपने-आपको पेड़ से टूट कर गिरी हुई किसी निर्जीव डाली-सा अनुभव कर रहा था। लहरो के थपेडों से इधर-से-उधर होता, वह बहा जा रहा था। लेकिन नारायण री में था। लोअर बाजार मे आर्य-समाज के प्रसिद्ध उपदेशक स्वामी शुद्ध देव की कथा कई दिनो से हो रही थी और उसका इरादा था कि माल का एक चक्कर लगाते और कुछ विचार-विनिमय करते वहाँ पहुँचा जाय। उसने 'त्रिगुणातीत' की बात चलायी। लेकिन चेतन को 'त्रिगुणातीत' के आध्यात्मिक आदर्श से किसी तरह की दिलचस्पी न थी। उसका मन तो 'कश्मीर हिन्दू होटल' के उस खाने के कमरे की ओर लगा हुआ था। वह सोच रहा था कि यादराम को खाना मिल रहा होगा कि नही। नारायण की गम्भीर, पाण्डित्य-पूर्ण-व्याख्या को प्रकट सुनता और 'हूँ,' 'हाँ' करता हुआ वह वास्तव मे उन होटल वालो की असभ्यता पर आग-बबूला हो रहा था, मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर रहा था कि वह भी उनके यहाँ खाना न खायेगा। कितने बदतमीज हैं ये लोग! वह उनके लिए एक ग्राहक लाया और इसके बदले कि वे उसको धन्यवाद देने, उलटे ऐसे पेश आये जैसे उससे कोई अपराध बन पडा हो। 'साले हाटल लिये फिरते हैं!' मन-ही-मन उपेक्षा से उसने कहा, 'चार पर्दों या चार साफ चादरो से ढँकी मैली-कुचैली मेजो से कोई ढाबा होटल तो नही बन जाता। वह होटल ही क्या जिसके खाने के कमरे में बैठें तो किचन अपनी समस्त कुरूपता के साथ दिखायी दे और हवा के हल्के-से झोके के साथ लहसुन-प्याज़ की तीखी गन्ध नथुनों मे समा जाय। हरामजादे! इतने गन्दे और मैले बैरे हैं कि हलवाई के नौकर भी न होगे और दम यह

है कि शरीफो का होटल है !....'

वह मन-ही-मन उबल रहा था। लेकिन नारायण अपने साथी की मानसिक स्थिति से अनभिज्ञ उसके कानों में अनवरत गीता का विशद ज्ञान उँडेल रहा था।

"...ज्ञान उसका स्वभाव है, स्वरूप है। उसी का प्रकाश सारी इन्द्रियो को प्रकाशित करता है। स्वामी शुद्धदेव ने कितना सुन्दर, मौलिक और अति आधुनिक दृष्टात दिया है। जैसे एक ही विद्युत-धारा अनेक बत्तियो के एक गुच्छे को एक ही बार प्रकाशित कर देती है, ठीक उसी प्रकार, एक ही आत्म-ज्योति सारी इन्द्रियों को ज्योति प्रदान करती है। मनन और बोधन का प्रकाश भी उसी का है, वह स्वतः प्रकाश है...."

वे लोअर बाजार पार करके ऊपर माल को मुडने लगे थे कि चेतन ने अचानक नारायण की वक्तृता का क्रम तोडते हुए कहा, "मैं तो वापस जाऊँगा नारायण।"

"तो क्या स्वामी शुद्धदेव की कथा सुनने न जाओगे। अभी शुरू होगी नौ बजे। कथा क्या करते है अमृत बरसाते है।"

"नही इस समय अमृत भी पीने को जी नही चाहता !" और उसने विदा लेने को हाथ आगे बढाया।

लेकिन नारायण ने उसके हाथ को अपने हाथ मे ले कर वापस मुडते हुए कहा, "चलो मै इधर ही से समाज-मन्दिर चला जाऊँगा।"

होटल के पास पहुँच कर चेतन ने कहा, "मै ज़रा देख आऊँ, उन्होने यादराम को रोटी दी है या नही।" और वह चला। मैनेजर नीचे नही था। वह जीने की ओर बढा। नारायण भी उसके पीछे-पीछे तग ज़ीना चढने लगा।

जब वह ऊपर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि यादराम पूर्ववत सीना ताने कुर्सी पर डटा बैठा है और मैनेजर से झगड रहा है।

"क्या बात है ?" चेतन ने क्रोध को बरबस दबाते हुए कहा, "जब मैने कहा था कि पैसे मेरे हिसाब मे लिख लेना...."

"बाबू जी अट्ठाइस रोटियाँ खा चुका है, आटे की सारी लोई खतम कर दी।"

"जब पैसे मै दूँगा...."—'मै' शब्द पर जोर देते हुए चेतन ने कहना चाहा।

"लेकिन रोटी ही का सवाल नही। दाल सारी खतम हो गयी। हम आदमियो के लिए खाना पकाते है, दैत्यों के लिए नही। अट्ठाइस रोटियाँ....!"

फुफकारता हुआ यादराम उठा, "इन दो तोले के फुल्कों को रोटियाँ कहते होगे," बडबडाते और धमधमाते हुए बारजे में पहुँचा। हाथ धो कर, भीगे हाथो से मुँह पोछ, उन्हें सिर के बालो पर फेरता हुआ वह उनके पास से धमधमाता हुआ सीढियाँ उतर गया—"वाह! बाबू जी किन मूजियो के यहाँ ले आये मुझे"—सीढियों से चेतन को उसके यही शब्द सुनायी दिये।

तब मैनेजर साहब भी बड़बडाते नीचे चले गये और धम से जा कर अपनी गद्दी पर बैठ गये। नारायण ने चेतन के कन्धे को छुआ। "चलो अब छोड़ो इस किस्से को," उसने कहा।

चेतन का मन अत्यन्त खिन्न था। वह उस होटल से किसी तरह का सम्वन्ध न रखना चाहता था। उसने जा कर मैनेजर के सामने अपने दोनो जून खाने के पैसे रख दिये और कहा, "यह लो तीन आने यादराम के।"

मैनेजर ने व्यंग्य से दाँत निपोरते हुए पैसे वापस कर दिये—"अट्ठाइस फुल्के तो वह खा गया। सात आने तो सिर्फ रोटियो के हो जाते है।"

"पर एक थाली के जब तीन आने लेते हो तुम!" चेतन चिल्लाया।

"तीन आने लेते है!" गद्दी पर उकड़ूँ बैठ कर मैनेजर चेतन से भी ऊँची आवाज मे चिल्लाया, "तीन आने आदमियो की खुराक के लेते है, जन्म से भूखे जानवरो के नही।"

झगडे को सुन कर बाजार मे भीड इकट्ठी होने लगी थी। बड़ी

मुश्किल से नारायण ने और आठ आने चेतन से दिलवा कर मैनेजर को शात किया और दोनो समाज-मन्दिर को ओर चल पडे ।

बायी ओर घाटी पर तैरती हुई, जल-बिन्दुओ से भरी बोझीली बयार अज्ञेय रूप से हल्के-हल्के वह रही थी । अदृश्य फुहार जैसे नि.स्वन पंखो के सहारे उड रही थी । उसके स्पर्श के गाल, नाक, मुंह, आँख सब ठंडे हुए जा रहे थे । सहसा बादल बाजार मे बढ आये । बाजार की रोशनियाँ सिमट कर बत्तियो के गिर्द छोटे-छोटे वृत्तो मे समा गयी और चलते-फिरते लोग छायाएँ बन कर रह गये । अचानक चेतन की ऐनक के दोनो शीशे धुंधले हो गये । ऐनक उतार कर उसने कमीज़ के छोर से उन्हे पोछा किन्तु शीशे अच्छी तरह साफ न हुए और जब उसने ऐनक को फिर नाक पर रखा तो सब चीज़ो पर विचित्र-सा झीना, झिलमिला पर्दा छा गया । बिजलियाँ और बत्तियाँ सब झिलमिलाती-सी दिखायी देने लगी ? उसने फिर ऐनक को साफ किया, किन्तु वह साफ न हुई । उसकी कमीज़ शायद गीली हो चुकी थी और उसकी ऐनक के नमदार शीशो से छू कर उड़ता हुआ वाष्प पानी बन जाता था । हार कर उसने ऐनक उतार ली और अन्धो की तरह चलने लगा । उसकी आँखो पर दोहरा अँधेरा छा गया था —क्रोध का और 'मायोपिया' का ।

नारायण के कोट की जेब मे रूमाल अभी सूखा था । उससे अपनी ऐनक को साफ करते हुए फिर नाक पर रख कर उसने कहा, "यह ऐनक भी एक मुसीबत है कम्बख्त !"

चेतन ने उत्तर नही दिया । उसके सामने स्पष्ट वस्तुएँ भी अस्पष्ट हो रही थी । पानी मे डुबकी लगाने के बाद जैसे आँखो पर पानी का पर्दा छा जाता है, वैसा ही पर्दा-सा उसकी आँखो पर छा गया । उसे अपनी इस ऐनक पर बडा क्रोध आया, उसके जी मे आया कि जोर से घुमा कर उसे घाटी मे फेंक दे । उसने उसे धीरे से घुमाया भी, पर घाटी मे फेंकने के बदले उसने उसे कोट के अन्दर की जेब मे रख लिया । उसके होटो से एक लम्बी साँस निकल गयी और उसे अपनी उस मूर्खता पर खेद हुआ

जब हँसी-हँसी में उसने केवल फ़ैशन के तौर पर अपने बड़े भाई की पढ़ने की ऐनक आँखों पर लगा ली थी !

भाई साहब की आँखें बचपन से ख़राब थीं । जब वे कॉलेज में दाख़िल हुए थे तो पिता को उनकी आँखों पर ऐनक लगवानी पड़ी थी । डॉक्टर ने एक दूर की और एक समीप की ऐनक दी थी । दूर की हर समय लगाने के लिए और समीप की केवल पढ़ते समय लगाने के लिए । यह पढ़ते समय लगाने वाली ऐनक सुनहरे फ्रेम और छोटे-छोटे शीशों वाली थी । दूर की ऐनक का नम्बर -४ था और इस छोटी ऐनक का -१ था । भाई साहब को उन दिनों पढ़ने वाली ऐनक की उतनी ज़रूरत न पड़ती, उनका अधिकांश समय तो ताश शतरंज खेलने में गुज़रता और जो थोड़ी-बहुत पढ़ाई उन्हें करनी होती, वह तब वे इस ऐनक की सहायता के बिना भी कर लेते । इसलिए यह सुन्दर ऐनक अपने स्वर्ण-फ्रेम और सुन्दर डिब्बे के साथ इधर-उधर विस्मृत-सी पड़ी रहती । जब भाई साहब अथवा कोई दूसरा व्यक्ति समीप न होता तो चेतन इस ऐनक को डिब्बे से निकाल कर अपनी नाक पर रख लेता और शीशे में अपनी सूरत देखा करता । अपनी नाक पर यह सुन्दर ऐनक उसे बहुत अच्छी लगती । एक-दो बार अपने मित्रों में भी उसने उसे पहना और जब उन्होंने भी उसकी तारीफ़ की और फ़तवा दिया कि ऐनक के साथ चेतन सुन्दर लगता है तब, यद्यपि उसकी दृष्टि बहुत अच्छी थी, उसने चोरी-छिपे उसे लगाना शुरू कर दिया । इस ऐनक के लगाने से उसे कोई विशेष कष्ट भी न होता था । शब्द कुछ छोटे अवश्य हो जाते पर उनकी चमक बढ़ जाती । धीरे-धीरे उसे इस ऐनक का स्वभाव पड़ गया और एक दिन जब उसने मित्रों में बैठ कर दूर से कैलेंडर पढ़ने का मुकाबिला किया तो उसे पता चला कि ऐनक की सहायता से वह पाँच पग पीछे से कैलेंडर की बारीक-से-बारीक पंक्ति पढ़ सकता है । बस फिर क्या था, माँ से उसने कह दिया कि उसकी नज़र भी कमज़ोर हो गयी है, अनन्त ने उसकी गवाही दी और चेतन ने अपने भाई की ऐनक पर अधिकार जमा लिया । भाई साहब ने भी इस पर आपत्ति नहीं की और

चेतन ने दो-चार महीनो से जो पैसे जोड रखे थे, वे सब उससे ले कर भाई साहब ने उसे सुनहरे .फ्रेम की वह ऐनक लगा कर छैला बने घूमने का हक प्रदान कर दिया ।

अब उस सुनहले .फ्रेम की ऐनक के स्थान पर सेलोलाइड के मोटे बेडौल .फ्रेम की ऐनक चेतन की नाक पर थी जो गर्मी मे फिसल कर नाक की कोठी पर आ जाती थी और सर्दी मे सिकुड कर कानो पर चुभने लगती थी । चेतन की यह चौथी ऐनक थी और इसका नम्बर भी अब-४ था । उसने कई बार उसे छोड देने का प्रयास किया था, पर वह असफल रहा था और सदैव उसे इसका नम्बर बढाना पडा था ।

बाजार मे अन्धो की तरह चलते-चलते चेतन को अपनी उन दिनो की मूर्खता पर बडा क्रोध आया । लेकिन ऐसा क्रोध उसे कई बार आया था । बादल ऊपर को निकल गये थे, इसलिए उसने जेब से ऐनक निकाल कर फिर आँखो पर लगा ली । सिमटा हुआ प्रकाश फैल चुका था, दुकानो और बिजली के खम्भो की बत्तियाँ ठीक आकार मे दिखायी देने लगी और आने-जाने वालो के खाके भी स्पष्ट हो गये थे ।

चेतन ने लम्बी साँस ली । वे दोनो सुरंग के पास से गुजर कर चोर बाजार को जाने वाले मार्ग के समीप पहुँच गये थे । तभी नारायण ने कहा—"छोडो भी अब इस किस्से को, अन्दर-ही-अन्दर क्यों विष घोलते हो । तुमने उसे वहाँ ले जा कर गलती की । इन लोगो का काम तो ढाबे-तंदूरो पर ही चलता है ।"

"पर यदि कोई पेटू अमीर वहाँ आ जाता तो क्या उसके साथ भी यह लोग ऐसा ही व्यवहार करते ?" चेतन ने कहा ।

लेकिन उसके स्वर की कटुता दूर हो चुकी थी । देने को तो उसने यह युक्ति दे दी थी, पर अन्तर मे उसे कही अपनी मूर्खता का आभास मिल गया था और मैनेजर के दुर्व्यवहार की अपेक्षा उसे अपनी इस मूर्खता पर अधिक क्रोध था । वह इतना बडा हो गया है । बी० ए० पास करके एक समाचार-पत्र के सम्पादन विभाग मे काम कर चुका है । अभी तक उसे

इतनी समझ नही कि उसे यादराम को उस होटल में न ले जाना चाहिए था । इस पुण्य भूमि मे जब जाति-जाति, वर्ण-वर्ण, और वर्ग-वर्ग ही में भेद नही, बल्कि हर जाति, हर वर्ण के अन्दर अगनित भेद-प्रभेद है, तब होटलो और ढाबों में क्यो न अंतर हो ? तनिक साफ-सुथरे ढाबे का स्वामी, जिसके ग्राहको मे चालीस रुपये मासिक से सौ रुपया तक पाने वाले है, उस ढाबे को उपेक्षा की दृष्टि से क्यो न देखे, जहाँ चालीस रुपया मासिक से कम पाने वाले लोग जाते है ? और यह 'डेविको,' 'वेंगर,' 'इम्पीरियल' और 'क्लार्क'—ये अपने अहं मे महान माल के होटल—ये लोअर बाज़ार के इस 'कश्मीर हिन्दू होटल' को क्यो न हेय समझें ? यदि चेतन या नारायण अपने इन कपडो से उनमे चले जायँ तो खाना खिलाना तो दूर रहा, शायद उन्हे कोई अन्दर भी न घुसने दे ।

वे समाज-मन्दिर के पास पहुँच गये थे । बाहर अहाते ही से स्वामी शुद्ध देव का गहरा गम्भीर स्वर हाल में गूँजता हुआ आ रहा था । उनकी कथा शायद आरम्भ हो चुकी थी । चेतन अपनी उन मानसिक उलझनों मे इस हद तक उलझा हुआ था कि नारायण कब उसका हाथ थामे उसे हाल में ले गया, उसे मालूम नही हुआ । वह तब चेता जब वह नारायण के साथ पीछे ही दीवार से लगी बेंच पर बैठ गया ।

स्वामी जी तब बडे मनोयोग से भक्ति की महिमा का बखान कर रहे थे :

"जो मनुष्य भगवान के योग से दूर है, भक्ति-धर्म मे रत नही है, उसकी बुद्धि स्थिरता को नही लाभ कर सकती । निश्चयात्मका बुद्धि ही को स्थिर-बुद्धि कहा गया है और वह निश्चय तब तक होना कठिन है जब तक आत्म-परमात्म-स्वरूप की उपलब्धि न हो जाय•!"

चेतन ने पहले के शब्द नही सुने । आत्म-परमात्म शब्द से वह तनिक चौंका । स्वामी जी कह रहे थे :

"आत्म-परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति केवल धर्म-मय-भक्ति-योग से होती है । भक्ति-रहित जन को भावना भी नही मिलती । शुद्ध भावो का

उसके भीतर भारी अभाव बना रहता है। ध्यान मे, विचार, मे मनन मे, श्रद्धा और विश्वास मे वह डाँवाँडोल बना रहता है। एक बात मे उसकी चित्तवृत्ति नही ठहरती। ऐसे भावना-हीन मनुष्य को शाति नही मिलती। वह सदा अशात, चंचल-चित्त रहता है। उसे सुख कहाँ मिलेगा? शाति कैसे मिलेगी?"

शाति—शाति—शाति—चेतन ने बेजारी से सिर हिलाया और उठ खडा हुआ। इतनी कटुताओं, विषमताओं, भूख, बेकारी, गरीबी, अवहेलना, उपेक्षा, निरादर, शोषण, उत्पीडन मे घिरा कोई स्वाभिमानी स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति शाति-लाभ कैसे कर सकता है? और फिर यादराम जैसे करोडो अपढ अशिक्षित लोग इस गहन दर्शन को समझ कर उस पर कैसे चल सकते है? उनके पास इस मनन-बोधन और चिन्तन के लिए बुद्धि, विवेक और समय ही कहाँ है?

और समाज-मन्दिर से निकल कर वह बड़ी रात तक जलता, सुलगता शिमले की सड़को पर घूमता रहा। वह क्यो इस दुनिया मे आ गया, क्यो इन विषमताओ मे फँस गया? उसके सरल, अबोध, शिशु कवि को तो कही सुदूर वन्य-कुजो मे सीधा सरल-सा जीवन चाहिए था, और वह फँस गया इन उलझनो मे। जीवन जैसे वह डोर है, जिसकी गुजलको का अन्त ही नही। चेतन को याद आया—बचपन में जब कोई पतंग कट जाती थी और उसकी डोर उनकी छत पर आ गिरती थी तो वे उसे दोनो हाथो से बेतहाशा खीचने लगते थे। छत पर घूमते जाते थे और डोर खीचते जाते थे। सारी छत पर डोर फैल जाती थी। फिर जब पतंग हाथ मे आ जाती और वे बिखरी हुई डोर को दायें हाथ से समेटते हुए बायें हाथ के अँगूठे और छँगुली पर उसकी गुच्छी बनाने लगते थे तो उसमे गुजलक पड जाती थी। एक निकालते कि दूसरी पड़ जाती। यह जीवन भी तो उसी डोर की तरह है। पतंग चेतन को नही मिलती। बस डोर है। उसकी गुजलकें, गाँठें है और उलझनें है।

छाछठ

चेतन भागना चाहता था और वह भागा, लेकिन भाग कर वह कही वन-कानन में नही गया। उसने किया बस इतना कि शिमले की एक ए० डी० सी० का सदस्य बन गया। ए० डी० सी० का पूरा नाम 'यंगमेन्स ऐमेचर ड्रामेटिक क्लब' था। उसके सदस्यो में सभी युवक हो, अथवा उनके हृदय युवा हो, ऐसी बात न थी। क्लब के सदस्यो की अधिकाश संख्या चालीस की वयस को पार कर जाने वालो की थी। जीवन से उकताये हुए भी वे कम न थे, लेकिन यौवन के लिए जो एक तरह की लालसा-लोलुपता अधेड आयु वालो में होती है, वही उनमे भी थी। और फिर नाटक खेलना ही क्लब का एकमात्र काम न था। उसके अधिकाश सदस्य तो अपने गृह-जीवन की कटुताओ को दस-दस, ग्यारह-ग्यारह बजे रात तक उसकी मेज-कुर्सियो पर बैठ कर ब्रिज और मदिरा के साहचर्य मे भुलाया करते थे।

यह क्लब चार नम्बर की सीढियो के एक मकान मे था। प्रवेश करते ही बायी ओर को मेज-कुर्सियाँ पडी दिखायी देती थी, जिन पर सदैव कुछ व्यक्ति दीन-दुनिया से बेखबर ब्रिज मे निमग्न रहते थे और 'वन नो ट्रम्प,' 'टू क्लब्ज,' 'टू स्पेड्ज़,' 'थ्री हार्ट्स' आदि के अतिरिक्त उनके मुँह से कुछ न निकलता। इस कमरे के बराबर में एक बडा कमरा था जिस पर एक दरी बिछी हुई थी और दीवार के साथ एक कौच का सेट लगा था। यहाँ नाटको की रिहर्सलें होती थी। पहले कमरे के लोग इस ओर से बेपरवाह 'गेम' और 'रबर' के चक्कर में फँसे रहते थे। मदिरापान यहाँ बहुत न था। क्योकि यद्यपि क्लब के अधिकाश सदस्यों को इस विभूति से उपेक्षा न थी, लेकिन उनकी जेबें सदैव इसके रसास्वादन मे बाधक बन जाती थी। वे मध्य-वर्ग से सम्बन्ध रखते थे और क्लब के संरक्षको को छोड़ कर किसी का भी वेतन डेढ-दो सौ से

अधिक न था । और कोई बिरला ही ऐसा होगा, जिसके घर मे चार-चार छ:-छ: बच्चे न हो ! फिर यह ब्रिज भी तो मदिरा ही का रूप था । 'छुटती नही है मुँह से यह काफिर लगी हुई' की सूक्ति ब्रिज पर भी तो लागू होती है । इसका चस्का वही, इसके रसास्वादन का आनन्द वही और इसकी विस्मृति वही । होता यो कि जब कोई ब्रिज में गहरी रकम जीत जाता तो सब उसे पिलाने पर विवश करते और उस रात ब्रिज-ग्रुप मे 'संगतरे' या 'भट्टी' की दो-चार बोतलें खुल जाती । साल मे कभी एक दो बार 'जिन' या 'स्कॉच' भी आ जाती । इतने सदस्यो मे एक-एक डेढ-डेढ पेग से नशा तो क्या होता (विशेषत: जब कि सोडा अधिक और ह्विस्की कम होती) लेकिन उन्होने 'अंग्रेजो' पी है, इस बात का नशा उन्हे महीनो रहता ।

०

चेतन को तो शायद इस क्लब के अस्तित्व का भी पता न चलता यदि नारायण को एक शाम वहाँ किसी से मिलना न होता और वह चेतन को भी साथ न ले जाता ।

दोनो वहाँ पहुँचे तो नाटक की रिहर्सल हो रही थी । पूछने पर चेतन को मालूम हुआ कि क्लब 'ताज' साहब (इमत्याज़ अली 'ताज') का नाटक 'अनारकली' खेलने जा रहा है और उसके एक सीन की रिहर्सल हो रही है । चेतन ने वह नाटक पढा न था, पर उसकी बडी प्रशसा सुनी थी । एक बुक-स्टाल पर उसे देखा भी था । मुख-पृष्ठ पर बनी हुई चगताई की कलाकृति भी देखी थी । मिस हिजाब इस्माईल के नाम (जो बाद श्रीमती 'ताज' बनी) उसका सुन्दर पर साकेतिक समर्पण भी देखा था । सुन्दर लिखायी-छपायी को देख कर उसका जी उसे खरीदने को चाहा था, पर वह उसे खरीदने के लिए कभी पैसा न जुटा पाया था । वह नाटक यहाँ खेला जा रहा है, यह जान कर उसके मन मे प्रबल आकाक्षा हुई कि उसे देखे, उसकी रिहर्सलो मे भाग ले, उसमे अभिनय करे । उस पुस्तक की कई प्रतियाँ वहाँ पड़ी थी । उसे इच्छा हुई किसी-न-किसी प्रकार उनमे

से एक प्राप्त करके उसे पढ डाले ।

चेतन जब भी जीवन से भागता था, उसे प्रकृति अथवा कला की गोद ही में शांति मिलती थी। बचपन में वह कला से परिचित न था, तब प्रकृति ही का विशाल आँचल अपने मे छिपा कर उसे सान्त्वना देता था। पिता के साथ उसका बचपन प्रायः ऐसे स्टेशनों पर बीता था जिनके इर्द-गिर्द मीलो तक विशाल खेत, बाग़, वीराने फैले होते थे। प्रकृति का विशाल आँचल सदैव लहराया करता था और जब भी वह जीवन की कटुताओं से भागता, उस आँचल की ओट मे जा छिपता । लेकिन होश सम्हालते ही वह नगर आ गया था और नगरों मे, जहाँ आकाश, आकाश और धरती, धरती नही रहती; जहाँ मीलो तक मकानो, तंग गलियों और कोलाहलपूर्ण बाजारो के अतिरिक्त कुछ दिखायी नही देता; जहाँ आकाश धुएँ और धूल से धूमिल हो जाता है और चाँद-सूरज भी बड़े-बडे मकानों की ओट से निकलते हैं, प्रकृति की वह छटा कहाँ? और जालन्धर के अपने उस पुराने खँडहर मकान मे (जहाँ पिता की क्रूरता के डर से माँ उसे ले आयी थी) उसने प्रकृति की इस प्रतिमूर्ति—कला से परिचय प्राप्त कर लिया था।

कला प्रकृति ही की तो बेटी है। प्रकृति के विशाल लहलहाते खेतो, लम्बे-चौड़े निर्जन वीरानो, ऊँचे हिममंडित शिखरों, गहरी अँधेरी घाटियों, वनों-उपवनो, चाँद-सितारो, उमड-घुमड़ कर छाने वाले मेघो, नित्य नवीन रंग बदलती दिशाओ को देख कर मानव का मन अनेक सुन्दर, सुखद, करुण, मृदुल, भावनाओ से भर जाता है। तभी कवि की वाणी, कलाकार की कूची, लेखक की लेखनी, गायक का स्वर और मूर्तिकार की छेनी उन भावनाओं को सजीव करने के लिए विकल हो उठती है। कला जन्म पाती है और जिस प्रकार प्रकृति मानव के सुख-दुख मे उसे सान्त्वना देती है, कला भी उसका मन बहलाती है।

नगर मे आ कर चेतन ने कला ही से वह सब कुछ चाहा था जो उसे प्रकृति से मिलता था। उसका खिलौने बनाना, उसका चित्र खींचना,

उसका भजन लिखना, कहानी कहना, अभिनय करना सब अपने कटु-वातावरण से उसके पलायन ही का द्योतक था। फिर कला के संसर्ग में उसे वह वस्तु मिली थी, जो प्रकृति की संगति मे अलभ्य थी। वह वस्तु थी आत्माभिव्यक्ति। बचपन में जब वह दुखी होता, प्रकृति की रंगीनियों मे अपने-आपको खो देता। किन्तु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता, वह अपने-आपको खो देना भर ही न चाहता था, वरन उस प्रतिक्रिया को व्यक्त भी करना चाहता, जो उस दुख और कटुता से उसके मन में उत्पन्न होती। आत्माभिव्यक्ति की यह अदम्य इच्छा कभी किसी रूप में प्रकट होती कभी किसी में। उस अभिव्यक्ति का ठीक माध्यम क्या है, यह उसने अभी तक न जाना था। लेकिन अभिव्यक्ति वह चाहता था। अपने वातावरण की कटुता के विरुद्ध प्रतिक्रिया और प्रतिशोध—यहाँ तक कि घोर प्रतिहिंसा भी उसकी कला ही मे प्रस्फुटित होना चाहती और प्रकट एक निरीह, अनाथ-सा दिखलायी देने वाला वह बालक अन्तस्तल में प्रबल झंझाओं के झँकोरे सहता। धीरे-धीरे वह प्रकृति से दूर और इस नयी संगिनी के समीप होता गया। वह प्रतिदिन अपनी इस नयी संगिनी के किसी-न-किसी रूप पर मुग्ध होता था। उसकी संगति में बिताने के लिए उसके पास यथेष्ट समय था। जब भी वह उसका कोई नया रूप देखता, उसे पाने के लिए विह्वल हो उठता।

हिजाब इस्माईल के नाम

इतना मुख्तसर खत न इससे पेश्तर लिखा न आइन्दा लिखूंगा। लेकिन जिन मुखलिसाना जज्बात का इजहार मकसूद है वह एक लफ्ज में भी अदा हो सकते हैं। इस मुख्तसर अरीजे को शर्फे-कुबूलियत बख्शिए। किताब का पढ़ना चन्दाँ जरूरी

नहीं । इसे एक ज़मीमा समझिए । तवील मगर बेमानी ।

इमत्याज़[१]

कोई बुद्धिजीवी अथवा यथार्थवादी इस समर्पण को पढ़ कर व्यंग्य से हँस देता और इसी से पुस्तक के विषय और शैली को जान जाता । (न जाने स्वयं लेखक भी अपने वैवाहिक-जीवन की वास्तविकताओं में इस अरमान भरे समर्पण को पढ़ कर कितनी बार हँसा होगा और इस समर्पण को उसने नयी दृष्टि से देखते हुए कितना बेमानी समझा होगा ।) लेकिन चेतन इस पर मुग्ध था । और परिशिष्ट—वह लेखक की दृष्टि में निरर्थक हो, चेतन की दृष्टि में अमूल्य था । जब नारायण अपने मित्र से मिल चुका तो चेतन ने अनुरोध किया कि किसी-न-किसी तरह वह उसे पुस्तक की एक प्रति रात भर के लिए ले दे ।

नारायण ने उसे पुस्तक ले दी थी और चेतन ने उसे रात भर में पढ़ डाला था ।

०

जब रात को अढ़ाई-तीन बजे उसने नाटक समाप्त किया तो उसकी आँखों में नींद उड़ चुकी थी । न जाने यह दुखान्त नाटक वास्तव में कभी घटा भी था या नहीं । पर दन्तकथा को ले कर, लेखक ने जो नाटक रचा था, उसने एक दन्तकथा को मूर्तिमान सत्य बना दिया था । चेतन अपने सामने प्रेम और निराशा का वह दुखद खेल देख रहा था । वह उसका नायक बन गया था । वह सलीम बन गया था और सारी रात बन्दीखाने से आने वाली दुखिनी अनारकली की आवाज़ें—'सलीम—सलीम, शाहज़ादे—शाहज़ादे !'—उसके कानों में गूँजती, हृदय को भेदती रही थीं ।

१. इतना संक्षिप्त पत्र न इससे पहले कभी लिखा न अब लिखूँगा । किन्तु जिन भावों की अभिव्यक्ति मेरा उद्देश्य है, वे एक शब्द में भी अदा हो सकते हैं । इस संक्षिप्त पत्र को स्वीकार कीजिए । पुस्तक का पढ़ना कोई ज़रूरी नहीं । इसे एक परिशिष्ट समझिए—लम्बा पर बेमानी । (इमत्याज़)

उसकी आँखों में अनारकली आ गयी थी—पन्द्रह-सोलह वर्ष की तन्वी, जिसके चम्पई रंग में ललाई की हल्की-सी आभा न होती तो बीमार समझी जाती। सजल आँखें जिनमे आकाक्षाएँ बैठी झाँक रही थी। और चेतन—कोई उसका हृदय कचोट रहा था। अनारकली उसके सामने दीवार मे जीवित चुनी जा रही थी और वह कुछ न कर पाता था। और उसने अपने-आपको रानी की गोद मे पडे और महाबली को 'शेखू, शेखू'[१] पुकारते सुना।

उसने आँखों को मला और सोने का प्रयास किया। लेकिन वह तो नाटक का नायक बना हुआ था, उसकी एक प्रतिमूर्ति सलीम बनी उसके सामने अभिनय कर रही थी। सारे-के-सारे सम्वाद उसके कानो मे गूँज रहे थे और उसे उनकी आवाज़ तक सुनायी दे रही थी।

'...तुम नही जानती तुमने क्या कर दिया। मै खुद नही जानता। सब नही जानता अनारकली। (क्षण भर चुप रहने के बाद) तुमने मेरी तमाम आसाइशो,[२] तमाम राहतो[३] को अपनी हस्ती मे समेट लिया। तुमने मेरी तमाम कायनात[४] का रस चूस लिया। तुम एक मोजज़े[५] की तरह मेरे सामने आयीं और मेरी आर्जुओ[६] की नीद टूट गयी। तुमने अपनी हैरान नजरो से मुझे देखा और मेरी रूह[७] मे लामुतनाही[८] मुहब्बत के शोले भड़क उठे। तुम चली गयो और मेरी तमाम दुनिया, तमाम आर्जुएँ धडकती रह गयी।'

(अनारकली चुप रहती है।)

'...,तुम अब भी चुप हो अनारकली'

'....फिर मै क्या समझती। हिन्दुस्तान का नया चाँद चकोर

---

१. अकबर सलीम को प्यार से 'शेखू' कह कर बुलाया करते थे।

२. आसाइश = आराम, चैन। ३. राहत = खुशी। ४. क़ायनात = सृष्टि (हस्ती)। ५. मोजज़ा = चमत्कार। ६. आर्जू = आकांक्षा। ७, रूह = आत्मा। ८. लामुतनाही = निरन्तर, अन्तहीन।

को चाहता है। कैसी हँसी की बात है ? आह तुम शाहज़ादे हो। बडे। बहुत बड़े और मै कनीज़[1] हूँ, नाचीज, बेहद नाचीज़।'

'....अब भी तेरे दिल में शुबा[2] मौजूद है, तो ऐ अनार-कली ! ले हिन्दुस्तान को अपने क़दमों में झुका देख !'

'....आह। आह !'

०

चेतन चारपाई पर उठ कर बैठ गया, लेकिन उसकी आँखों मे घूमने वाले दृश्य और उसके कानो मे गूँजने वाले सम्वाद लगातार चलते रहे। उसके सामने महारानी आ गयी और सलीम बना वह चिल्ला उठा :

'....अगर माँ-बाप अपनी औलाद[3] के लिए अपनी कुर्बानियो को भूलना नही जानते तो उनका अपनी औलाद की आर्ज़ुओं पर अपनी आर्ज़ुओ को मुक़द्दम[4] समझना बेमानी है।'

'....आज तू क्या कह रहा है बच्चे ? इस नन्हे-से दिल में माँ-बाप के खिलाफ इतना ज़हर भर गया है। सिर्फ इसलिए कि वह नही चाहते कि हरम की एक कनीज़ से शादी कर ले और दुनिया की नज़रो में अपने-आपको सुबक[5] बना ले।'

'....मै जानता हूँ—यह दुनिया किस तरह देखने की आदी है (क्रोध से मुड़ कर) जाइए, दुनिया की अज़ीम-तरी सल्तनत[6] को मेरे पहलू की ज़ीनत[7] बना दीजिए और मै फिर भी दुनिया की यह सरगोशियाँ[8] आपके कानो तक पहुँचा दूँगा—इस अहमक[9] को देखो। इसने सयासत[10] के पीछे अपने-आपको बेच डाला।'

---

१. कनीज = दासी। २. शुबा = सन्देह। ३. औलाद = सन्तान। ४. मुक़द्दम = क्रम मे पहले (अपनी आर्जुओं को पहला दर्जा देना)। ५. सुबक = हल्का। ६. अज़ीम-तरीं सल्तनत = महानतम साम्राज्य। ७. पहलू की ज़ीनत = पहलू की शोभा। ८. सरगोशियाँ = काना-फूसियाँ, फुसफुसाहटें। ९. अहमक = मूर्ख। १०. सयासत = राजनीति।

'....लेकिन सलीम हम इसी दुनिया के खादिम[1] हैं। यह दुनिया हमारे एक-एक फेल को ताड रही है। हम इस दुनिया से कैसे वेपरवा हो सकते हैं।'

'....अकबरे आज़म[2] और दुनिया के तअल्लुकात[3] पर कोई दूसरा फरजन्द[4] कुर्बान कर दीजिए।'

'....सलीम तू जो कह रहा है, समझ नही रहा।'

'....मैं समझ रहा हूँ। खूब समझ रहा हूँ। ले लीजिए, मुझसे सब कुछ ले लीजिए। इन महलो की इशरत[5], हिन्दुस्तान की सल्तनत, दुनिया की हुकूमत—सब कुछ ले लीजिए और मुझको और अनारकली को एक वीराने मे अकेले छोड दीजिए।'

'....और अगर तेरे बाप यूँ न मानें।'

'. ..तो उनसे कह दीजिए कि अगर वो बादशाह हैं तो मैं बादशाह का बेटा हूँ। अगर उनकी रगो मे मुगलिया खून दौड़ रहा है तो मेरी रगो मे राजपूतो का लहू बेताब है और मैं जानता हूँ तलवार से क्या काम लिया जा सकता है।'

o

चेतन उठ कर कमरे में घूमने लगा। लेकिन उसे शांति न मिली, उसके सम्मुख फिर नाटक होने लगा। वह फिर सलीम बन गया। इस बार वह बन्दीखाने के दारोगा को रिश्वत दे कर अनारकली को देखने गया। उसने देखा वह तन्वंगी, वह कान्त-कामिनी, बन्दीखाने के नंगे फर्श पर अचेत पडी है। लम्बे सुन्दर बाल किसी आकाशगामी के कटे हुए पंखों की तरह बिखरे हुए हैं, मुख और भी पीला पड गया है और आँखें बन्द हैं। उसका हृदय कंठ मे आ गया। वह उसे होश में लाने का प्रयास करने

---

१. खादिम = नौकर। २. अकबरे-आजम = महान अकबर। ३. तअल्लुक = सम्बन्ध। ४. फरजन्द = पुत्र। ५. इशरत = सुख।

लगा। उसने देखा, वह उसे जगाना चाहता है, वह नहीं जागती और उसके कानो मे अपने ही मूक शब्द जैसे गूँजने लगे :

'....अनारकली ! अब तक बेहोश हो। जागो, मेरी रूह, जागो !'

'....जाग गयी। तुमसे बोल नही रही ? तुम्हारी आवाज़ सुन नही रही ? मेरे होशोहवास तो तुम हो। तुम्हारे होते मैं क्या बेहोश होने लगी।'

'....अनारकली ! तुम दीवानी हो गयी हो।'

'तुमसे किसने कहा। जुल्म के उन पुर्ज़ों ने, जो मेरे रोने पर हँसते थे, खिलखिलाते थे, कहकहे मारते थे, दरिन्दे[1] ! वीरान नीद मे इनके कहकहो की गूँज आ रही है—मेरे पास से न जाना साहिबे आलम[2]। वे मुझे जीता न छोड़ेंगे। मार डालेंगे। छुरी भोक कर, गला घोंट कर, घूर कर, सिर्फ खिलखिला कर !

०

चेतन का कमरा उसका दम घोटने लगा, उसी बन्दीगृह का-सा लगने लगा। वह बाहर निकल आया और सीढियो की रेलिंग का सहारा ले कर खडा हो गया।

बाहर, मकान-चौक, पेड़-पौधे—सब निशीथ नीरवता की गोद मे लिपटे पडे थे। ठंडी हवा चल रही थी और चाँद किसी बादल के पीछे से अपनी उदास, सजल ज्योत्सना से धरती को भिगो रहा था।

चेतन रेलिंग पर झुक गया। जैसे वही रानी की गोद हो—ठंडी, सुखद, स्निग्ध और वह सलीम बना अनारकली के जीवित दीवार मे चुन दिये जाने के बाद विवश, लाचार, निराश और हताश उसमें आ लेटा हो। तभी महाबली अकबर के दुख और पश्चात्ताप से भरे शब्द उसके

---

१. दरिन्दे = हिंस्र पशु। २. साहबे आलम = बड़े साहिब (सलीम को नौकर और मुसाहब इसी नाम से पुकारते थे)।

कानो मे गूँजने लगे ।

'....खुदाविन्दा[१] क्या मालूम था यो होगा ? शेखू ! मेरे मजलूम[२] बच्चे, मेरे मजनून[३] बच्चे, अपने बाप के सीने से चिमट जा । अगर जालिम बाप से दुनिया में एक राहत[४] भी पहुँची है, तेरे सिर पर उसका एक एहसान भी बाकी है तो मेरे बच्चे इस वक्त मेरे सीने से चिमट जा ।'

'... मान जाओ शेखू ! मान जाओ ! !'

'....मुझे छू मत, एक दफा बाप कह दे । सिर्फ अब्बा कह कर पुकार ले (रुद्ध कंठ से) मैं तुझे खंजर तक ला दूँगा । मगर बेटा यह बदनसीब बाप, जिसे सब शहन्शाह कहते हैं, अपना सीना नंगा कर देगा । खंजर उसके सीने मे भोक देना । फिर तू देखेगा और दुनिया भी देखेगी अकबर बाहर से क्या है और अन्दर से क्या है ? अकबर का कहर[५], अकबर का सितम[६] और अकबर का जुल्म क्यो है ? उसके खून मे बादशाह का एक कतरा नही । एक बूंद नही । वह सब-का-सब शेखू का बाप है । वह बादशाह है तो तेरे लिए, वह मजदूर है तो तेरे लिए । वह काहिर और जाबिर[७] भी है तो तेरे लिए । वह तेरा गुलाम है और मेरे जिगरगोशे[८], गुलामो से गलतियाँ भी हो जाती है ।'

चेतन की आँखें सजल हो गयी । कितनी बडी ट्रैजेडी थी—कितनी महान ट्रैजेडी ! वही खडे-खड़े चेतन इस ट्रैजेडी के विभिन्न पहलुओ पर विचार करने लगा और सहसा उसकी सजल आँखें और भी सजल हो

---

१. खुदाविन्द=भगवान । २. मजलूम=जिस पर जुल्म किया गया हो । ३. मजनून=पागल । ४ राहत=आराम, सुख । ५ कहर=कोप ६. सितम=अत्याचार । ७. क़ाहिर और जाबिर=जुल्म और जबरदस्ती करने वाला । ८. जिगरगोशे=जिगर के टुकड़े ।

गयी। किन्तु उसकी यह नयी सम्वेदना अकवर या सलीम के प्रति न थी, वल्कि स्वयं अपने प्रति थी। उसे लगा जैसे यह ट्रैजेडी न अकबर की थी, न सलीम की, यह तो उसकी अपनी ट्रैजेडी थी। अपने-आपको सलीम अथवा अकवर के स्तर पर ले जाते-ले जाते, कल्पना ही मे उनके पार्ट करते-करते उसे सहसा अपनी स्थिति का ध्यान हो आया और उसके अपने अभाव दुगने हो कर उसके सामने आ गये और आँसू उसके गालों पर ढुलक चले।

अकवर—उसे क्या हासिल न था ? सलीम की उस दुर्बल-उपेक्षा के वावजूद वह महावली था, भारत का सम्राट था और कदाचित उस समय भी, जव वह भग्न-हृदय सीढ़ियों पर चढा चला जा रहा था, अर्ध-चेतन में उसे इस बात का विश्वास था कि सलीम की यह दुर्बलता दूर हो जायगी। चेतन के सामने इतिहास के कई दृश्य घूम गये। इस काल्पनिक घटना पर उसने इतिहास का आवरण चढा दिया और दोनो के समावेश में जव उसने अकवर की इस ट्रैजेडी को देखा तो वह अत्यन्त हल्की, अत्यन्त साधारण दिखायी दी।

और सलीम ! उसका क्या गया ? अनारकली के स्थान पर उसने नूरजहाँ पा ली। फिर उसके पास माँ थी, जो उसे दुखी देख कर गोद मे ले सकती थी; उसे पिता प्राप्त था, जो कह सकता था—'और मेरे जिगरगोशे गुलामों से गलतियाँ भी हो जाती है।'

लेकिन चेतन के पास क्या था ? उसके माता-पिता कैसे थे ? और उसके आँसू उमड़ चले। उसके कन्धे, उसका सारा शरीर झुनझुना उठा। टप-टप रेलिंग पर आँसू गिरने लगे। कितनी देर तक वह वह उसी दशा में खडा रहा। फिर जव भादो के वादलो-सा उसका हृदय वरस चुका तो अपने कुर्ते के छोर से आँसू पोछ, नाक साफ कर वह धीरे-धीरे सीढियाँ उतरा।

रुल्दू भट्टे के मकान, घाटी के पेड़, ईदगाह का अखाड़ा—सब

नीरव ज्योत्स्ना की चादर ओढे सो रहे थे ! ठडी बयार नि.स्वन चल रही थी, बादल बे-आवाज उडे जा रहे थे ! किसी झींगुर अथवा टिटिहरी का स्वर भी सुनायी न देता था। केवल चेतन के पैरों की चाप इस महान निस्तब्धता को भंग कर रही थी।

आँसुओ से चेतन के हृदय का बोझ हल्का हो गया था, पर उसके मस्तिष्क की नसो का तनाव कम न हुआ था। रात की उस धवल-शीतल-नीरवता मे अपना दुख भूल कर उसका मन फिर मुगल रनवास मे पहुँच गया। वह फिर कभी सलीम, कभी बख़्त्यार, कभी सुरैया, कभी अनारकली, कभी दिलाराम और कभी महाबली का अभिनय करने लगा। उसे महसूस हुआ जैसे वह सब का अभिनय करना चाहता है। कर सकता है।

सड़सठ

लेकिन जब नारायण की सिफारिश से (नारायण के अनुरोध पर उसके मित्र की सिफारिश से) वह किसी प्रकार का शुल्क दिये बिना क्लब का सदस्य बन गया तो उसे न सलीम का पार्ट मिला, न अकबर का, वह न अनारकली बना, न दिलाराम—वह महज जॉफ़रान बना।

०

चेतन को अपने अभिनय-कौशल के सम्बन्ध मे बडा गर्व था। जब वह थर्ड ईयर में पढता था तो आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर 'श्रीमती मंजरी' खेला गया था। चेतन ने उसमे राय बहादुर जानकीनाथ का पार्ट किया

था । उसमें उसे जो सफलता मिली थी, वह अभी तक उसके मस्तिष्क में बनी हुई थी ।

आर्य-समाज के किसी कॉलेज और विशेषकर जालन्धर के उस कॉलेज में किसी नाटक और फिर ऐसे नाटक का अभिनय होना, जिसका आर्य-धर्म, अछूतोद्धार, अथवा किसी ऐसे ही धार्मिक विषय से दूर का भी सम्बन्ध न हो, उस समय लगभग असम्भव था । उस अवसर पर जो नाटक खेला जा सका तो उसके दो कारण थे ।

पहला तो यह कि उस वर्ष आर्य-समाज (कॉलेज सेक्शन) के वार्षिकोत्सव पर डी० ए० वी० स्कूल तथा डी० ए० वी० कॉलेज के प्रिंसिपल की (जिनके नाम के साथ 'त्यागमूर्ति' की नयी-नयी उपाधि लगी थी) सिल्वर जुब्ली मनायी जा रही थी । ये त्यागमूर्ति पहले डी० ए० वी० स्कूल के हेड मास्टर बने, फिर अपनी दान लेने, स्कूल पर तानाशाही नियन्त्रण रखने और उसे राजनीतिक आन्दोलनों की सर्दी-गर्मी से बचाने और अवसर पड़ने पर राजनीति में भाग लेने वाले छात्रों को उनकी योग्यता और उनके भविष्य का विचार किये बिना स्कूल से निकाल देने की अपूर्व क्षमता के कारण न केवल स्कूल को इंटरमीडिएट स्टैंडर्ड तक ले गये थे, बल्कि उसके प्रिंसिपल भी बन गये थे । चेतन ने जिस वर्ष एफ० ए० पास किया, उसी वर्ष कॉलेज में डिग्री कक्षाएँ खोली गयी थी और चूँकि कॉलेज की यह अभिवृद्धि उन्हीं के त्याग, परिश्रम, संयम, निष्ठा, आत्मविश्वास और दृढ़-प्रतिज्ञा के कारण हुई थी, इसलिए स्वयं बी० ए० होने पर भी वे उस डिग्री कॉलेज के (ऑनरेरी) प्रिंसिपल बने रहे । वे आर्य-समाज के आजीवन सदस्य थे, इसलिए अपने रहने-खाने के अतिरिक्त उन्होंने अधिक की वाञ्छा नहीं की । यह और बात है कि उनके साधारण बुद्धि के पुत्रों ने अपने इस त्यागमूर्ति पिता की बदौलत बड़ी-बड़ी कोठियाँ बनवा ली और स्वयं वे त्यागमूर्ति होने पर भी कॉलेज होस्टल के 'गवर्नर' कहलाना पसन्द करते रहे और अपनी कोठी पर 'गवर्नर्ज़-कॉटेज' का बोर्ड लगाये रहे ।

उस वर्ष इन त्यागमूर्ति की सिल्वर जुब्ली मनायी जा रही थी, क्योंकि आर्य-समाज की निष्काम, निस्वार्थ, नि:स्वन सेवा करते-करते उन्हे पच्चीस वर्ष हो गये थे। दूसरे शब्दों मे हर बरस बीसियो की संख्या मे किताबों के कीडे, रट्टू, स्वार्थी, निर्जीव, सरकार के दफ्तरो मे क्लर्की की कुर्सियों को सुशोभित करने वाले, या अध्यापक बन कर ऐसे ही साम्प्रदायिक स्कूलों मे शिक्षार्थियो पर अत्याचार करने वाले, अनुदार, सकुचित विचारो के अथवा जुनूनी छात्र पैदा करते-करते उन्हें पच्चीस वर्ष हो गये थे। उनके छात्रो मे से कुछ अपने रट्टू स्वभाव अथवा अत्यधिक परिश्रमी होने की योग्यता के बल पर ऊँचे दर्जे के क्लर्क भी हो गये थे, अर्थात भिन्न-भिन्न प्रतियोगिताओ मे सफल हो कर सरकार के दफ्तरों मे सुपरिंटेंडेंट, रजिस्ट्रार, हेड-क्लर्क, और जज तक बन गये थे। अपने इन छात्रो का (अथवा इने-गिने उन छात्रों का जो अपने कलुषित वातावरण के बावजूद अपनी जन्मजात प्रतिभा के कारण महान हुए) नाम ले-ले कर ये त्यागमूर्ति चंदा इकट्ठा करते थे। इन्ही द्वितीय श्रेणी के छात्रो मे से कुछ उनकी इस सिल्वर जुब्ली पर उन्हे एक थैली पेश कर रहे थे। इसलिए ये 'त्यागमूर्ति' अत्यधिक प्रसन्न थे।

दूसरा कारण यह था कि यद्यपि डिग्री क्लासें खुलने पर अधिकांशतः वही पुराने प्रोफेसर बी० ए० की कक्षाओ को भी पढाने लगे थे, जो किसी जमाने मे मैट्रिक और फिर एफ० ए० को पढाते थे, लेकिन यूनिवर्सिटी के सम्मुख सुर्खरू होने के लिए एक दो नये प्रोफेसर भी रखे गये थे। इन्हीं मे से एक गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर से नये-नये एम० ए० पास करके आने वाले युवक भी थे। इन प्रोफेसर महोदय के आने से कॉलेज मे कुछ नयी जिन्दगी आ गयी थी। कॉलेज की एक यूनियन बन गयी थी, एक ड्रामेटिक क्लब और डिबेटिंग सोसाइटी भी खुल गयी थी। और यद्यपि मन से प्रिंसिपल इन सब के विरुद्ध थे, लेकिन वे कुछ कह न पाते थे। ये प्रोफेसर बडे चतुर थे और कॉलेज की व्यवस्था के विरुद्ध छात्रो के विरोध को इन नयी दिलचस्पियो से दबाये रखते थे। दूसरी ओर इन त्यागमूर्ति

को समझाते रहते थे कि अब जब आपका कॉलेज डिग्री स्टैंडर्ड तक उठ गया है तो आपको लाहौर के डिग्री कॉलेजों की कुछ परम्पराओं को अवश्य अपनाना चाहिए ।

इन्ही प्रोफेसर महोदय ने 'श्रीमती मंजरी' का खेल चुना था। प्रिंसिपल की सिल्वर जुब्ली के अवसर पर स्कूल के छात्र 'त्यागमूर्ति' के नाम से एक नाटक खेल रहे थे, इसलिए प्रिंसिपल महोदय ने कॉलेज के छात्रों को भी नाटक खेलने की आज्ञा दे दी थी । उनका यह अनुरोध था कि नाटक स्वामी दयानन्द या स्व० लेखराम की जीवनी या अछूतोद्धार अथवा विधवा विवाह के सम्बन्ध में खेला जाय । लेकिन एक तो उनके कॉलेज में कोई भी ऐसा न था, जो नाटक लिख सके और दूसरे स्वामी दयानन्द की जीवनी पर कोई नाटक तैयार न था, फिर उन प्रोफ़ेसर महोदय ने बडी चतुराई और नीति से काम ले कर प्रिंसिपल को यह बात समझा दी कि यदि कोई धार्मिक नाटक खेला जायगा तो वह आर्य-समाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा, क्योकि अधिकांश नाटक राम, कृष्ण, शिव, गौरी आदि को अवतार मान कर लिखे गये है । एक 'श्रीमती मंजरी' ही ऐसा नाटक है जो सामाजिक है और जिसका स्कूल अथवा कॉलेज के छात्रो के चरित्र पर बुरा प्रभाव नही पडता । फिर उन्होने प्रिंसिपल को यह भी समझाया था कि आपके कॉलेज में मुसलमान छात्र भी पढते है और 'श्रीमती मंजरी' ही एक ऐसा खेल है, जिसमे हिन्दू-मुस्लिम मिलाप पर ज़ोर दिया गया है और वे मान गये थे ।

चेतन ने नाटक मे राय बहादुर जानकीनाथ का पार्ट किया था । वह तो उसमे नायक का पार्ट करना चाहता था, पर उस पार्ट के लिए प्रोफेसर साहब ने हमीद को चुना था । हमीद, गोरा, लम्बा, सुन्दर युवक था और जब शलवार-कमीज पर तुर्की टोपी पहनता तो नाटक का स्वाभाविक हीरो दिखायी देता। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर साहब का वह प्रिय छात्र था, डिबेटिंग सोसाइटी का मन्त्री था और नाटक-क्लब का भी संचालक था । इसलिए चेतन ने राय बहादुर जानकीनाथ का पार्ट लेने पर ही

सन्तोष किया था। शराबियो की तरह डगमगाने और लडखड़ाने की नकल वह अपने पिता को देख कर बडी अच्छी तरह कर लिया करता था और फिर उसका यह भी खयाल था कि वह 'आशिकाना पार्ट' करने हो के लिए उपयुक्त है और यही सोच कर उसने अपने मन को तसल्ली दे ली थी। उसकी अभी मसें भी न भीगी थी। इसलिए जत पाउडर लगा कर उसने पिसे हुए कोयलो की कालिख से आधी-आधी मूंछें बनायी, सिर पर लटकेदार पगडी और कमर मे धरती को छूती हुई धोती बाँधी तो शीशे में अपना रूप देख कर स्वयं झूम गया था।

यद्यपि नाटक की पूरी रिहर्सल न हुई थी और पर्दे भी भगियो की उस नाटक समिति से माँगे गये थे, जिनका मन्त्री कॉलेज का जमादार था, तो भी नाटक बुरा न हुआ था। अथवा यो कहना चाहिए कि कम पसन्द न किया गया था। चेतन को अर्से तक उसके मित्र 'जानकीनाथ' के नाम से पुकारते रहे थे और उस सफलता से प्रोत्साहन पा कर उसने साल भर मे कई स्थानीय नाटक-समितियो मे भाग लिया था। महावीर दल की ओर से खेले जाने वाले नाटक 'अभिमन्यु वध' में वह जयद्रथ बना, सेवा समिति की ओर से अभिनीत होने वाले नाटक 'बिल्व मंगल उर्फ सूरदास' मे वह 'राम भरोसे' बना। सिर घुटा कर, गेरुए वस्त्र धारण करके जब उसने साधुओ का कनटोप पहना तो उसके मित्र भी उसे न पहचान सके।

लेकिन जब अनारकली मे अभिनय करने की इच्छा से नारायण को ले कर चेतन क्लब पहुँचा था तो उसे मालूम हुआ था कि सब बडे-बड़े पार्ट बँट चुके हैं, केवल चंद कनीजो के पार्ट शेष रह गये है। डायरेक्टर तो उसकी गरीब, मिसकीन, अनाथो की-सी सूरत देख कर उनमे से भी कोई पार्ट उसे देने को तैयार न थे, पर जब नारायण ने बताया कि वह बडा उदीयमान लेखक और कवि है और पहले कई नाटको मे पार्ट कर चुका है तो उन्होने चेतन को 'जॉफरान' का पार्ट देना स्वीकार कर लिया। उनकी स्वीकृति का एक कारण यह भी था कि क्लब के पास लडकियो का पार्ट करने वाले पात्रो का अभाव था।

चेतन पल भर के लिए असमंजस में पड़ गया था। क्या पुरुष हो कर उसे नारी का पार्ट करना चाहिए। क्या उसे इतना साधारण-सा पार्ट करना चाहिए? लेकिन उसके हृदय मे नाटक को देखने की इच्छा इतनी प्रवल थी और प्रो० सिह के कॉलेज को छोड़ देने के बाद एकाकी संध्याओं के अवसाद का भय उसके मन मे अज्ञात रूप से इतना अधिक था कि वह मान गया था। अपने मन को उसने तसल्ली दे ली थी कि कलाकार को किसी तरह के पार्ट में भेद न करना चाहिए और दूसरी शाम पैरों मे घुंघरू बाँध वह उस नृत्य का अभ्यास करने लगा था, जो उसे पहले सलीम और फिर जिल्लेइलाही[1] के सामने करना था।

०

महीना भर तक वह रोज संध्या के समय क्लब जाता रहा। उसे अपना पार्ट न याद हुआ हो या उसके वहाँ उपस्थित होने की आवश्यकता हो, यह बात न थी। उसे रिहर्सलो में बड़ा आनन्द मिलता था।

उसका अपना पार्ट इतना बड़ा न था। उस चंचल दासी की भूमिका में उसे काम करना था, जो कदाचित हृदय के अज्ञात स्तर के नीचे शाहजादे का प्रेम छिपाये हुए है, किन्तु दिलाराम और फिर अनारकली के कारण उसका प्रेम वही का वही दबा रहता है और, जो अपनी उस दबी हुई आकांक्षा को अपनी चपलता के आवरण में छिपाये रखती है।

जाने जॉफ़रान के सृजन में लेखक का कही यह उद्देश्य था भी या नही। क्योकि प्रकट तो वह शाहज़ादे को उदास घड़ियों को घुंघरुओं की मादक स्वर-लहरी से बहलाने वाली एक चंचल, चपल दासी भर थी। वह भी ऐसी नही, जैसी अनारकली। पर शायद अपनी भूमिका के महत्व को बढ़ाने के लिए चेतन ने ज़ॉफ़रान को भी सलीम की प्रेमिका के रूप में देखा था और उसे विश्वास था कि लेखक ने कही इस बात का आभास भले ही न दिया हो, पर जॉफरान को सलीम से दबी-छिपी मुहब्बत थी ज़रूर! शायद चेतन के ऐसा सोचने का यह कारण भी था कि यदि कही

१. जिल्लेइलाही = अकबर महान का खिताब।

सचमुच वह ज़ॉफ़रान होता तो वह ज़रूर सलीम से प्यार करता। इसके अतिरिक्त सलीम की भूमिका में डायरेक्टर स्वयं काम करता था और वह इतना अच्छा पार्ट करता था कि सलीम के प्रति चेतन की दया कई गुनी बढ़ जाती और वह ज़ॉफ़रान बना उससे प्यार करता।

चेतन की स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी थी। अपना तो क्या, उसे दूसरों का पार्ट भी कंठस्थ हो गया था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह कुछ गाये भी। डाइरेक्टर भी चाहते थे कि यदि वह कुछ गा सके तो बुरा नही, पर जब उन्होने चेतन से गाने के लिए कहा तो स्वर उसके कंठ से न निकला और जब निकला भी तो न जाने वह कैसा था कि उसे सुन कर सब-के-सब हँस दिये। इसलिए चेतन ने गाने का विचार छोड नृत्य की वह गत सीखने पर सन्तोष किया, जो उसे 'सितारा' के साथ मिल कर पहले अंक के दूसरे दृश्य मे सलीम के सम्मुख करना था। किन्तु एक तो उस दृश्य में सलीम अनारकली के खयाल में मग्न है और उनके नाच की ओर उसका ध्यान नही; इसलिए उस नाच मे जान डालना लेखक का उद्देश्य भी नही, दूसरे जॉफरान और सितारा से भी इस बात की आशा रखी जाती है कि वे उकताहट प्रकट करें और नाचती-नाचती थक जायँ या केवल धीमे स्वरो में बातें करती-करती महज़ पाँव हिलाती जायँ ताकि घुँघरू बजते रहें और नदी की लहरो के पट पर तस्वीरें बनाता-मिटाता शाहज़ादा जान ले कि नृत्य हो रहा है। लेकिन चेतन की इच्छा कुछ महत्व का अभिनय करने की थी और वह चाहता था कि वह और सितारा (सितारा का पार्ट करने वाला युवक) मिल कर 'रक्से माकियाँ' तैयार कर लें।

'रक्से माकियाँ' (अथवा मुर्गियो का नृत्य) वह नाच है, जो नाटक मे नौरोज़ के समारोह पर अनारकली के नृत्य से पहले जॉफरान और सितारा महाबली के समक्ष नाचती है। इस नृत्य मे उनको लडाकी बहनो का चरित्र दिखाना अभीष्ट है, जिनकी कभी बनती हैं कभी बिगड़ती है। बनती कम है विगडती ज़्यादा है। ज़रा कमर मे हाथ डाला, गले मिली, गाल

से गाल मिलाया और विगाड़ का कारण उत्पन्न हो गया । एक ने दूसरी का आभूषण देख कर मुँह बनाया । दूसरी ने उत्तर मे मुँह चिढा दिया । वस मुर्गियो की तरह एक दूसरी से गुँथ गयी । इसने उसके चुटकी भरी, उसने इसकी चुटिया खीची । खूब द्वन्द्व हुआ । एक हार कर उन्मन उदास वैठ गयी, दूसरी विजय के उल्लास मे थिरकने लगी । क्षण भर बाद जीतने वाली को हारने वाली पर दया आयी । रोती वहन को जा मनाया । आँसू पोछे, गले लगाया । संधि हो गयी । अव रोने वाली ने आरसी देखी । भवें चढायी और फिर उसे बहन के आगे कर दिया कि लो अपनी सूरत तो देखो । इस पर दूसरी जल गयी । फिर द्वन्द्व होने लगा । इसने उसके चपत जड़ी । उसने इसे काट खाया और दोनों इतना लड़ीं, कि बेदम हो कर गिर पड़ी

चेतन को ज़ॉफरान के पार्ट में यह नृत्य सब से अधिक पसन्द था । जब से उसे पता चला था कि वह ज़ॉफरान बनेगा, कई वार कल्पना मे वह अपने-आपको यह नृत्य करते देख चुका था । चेतन का वाह्य जितना निष्क्रिय दिखायी देता था, अन्तर में वह उतना ही सक्रिय था । और इसलिये नृत्य को वह इसकी समस्त गति, स्फूर्ति, चांचल्य से अपने अभ्यन्तर मे कई वार महावली के समक्ष दिखा चुका था । और उसकी वड़ी आकाक्षा थी कि वह इसे सचमुच स्टेज पर करके दिखाये । किन्तु एक तो क्लब में ऐसा सुन्दर और कलापूर्ण नाच दिखाने वाला कोई उस्ताद न था और दूसरे निर्देशक महोदय को चेतन की नृत्य सम्बन्धी प्रतिभा पर कुछ सन्देह था, इसलिए 'रक्से माकियाँ' काट दिया गया और चेतन को पहले अंक के दूसरे दृश्य में केवल घुंघरू वजाते रहने का आदेश मिला ।

पार्ट उसका इतना अधिक रह न गया था, इसलिए अपने पार्ट को रिहर्सल करने के वाद चेतन दूसरों का पार्ट देखता और बैठा-बैठा मन-ही-मन वह पार्ट किया करता था । फिर इस नाटक की तुलना उन नाटकों से किया करता तो उसने पहले पढ़े या देखे थे ।

अनारकली भले ही एक काल्पनिक नाटक हो, जीवन की वास्तविकता

से भले ही उसका बहुत नाता न हो तो भी वह नाटक अपने पहले के नाटको से सर्वथा भिन्न था। काल्पनिक होने पर भी वह वास्तविक लगता था। पुराने नाटको की तरह न इसमे बात-बात पर शेर और गाने थे, न अनुप्रासमय-सम्भाषण। चेतन को हश्र के नाटक 'तस्वीरे वफा'[1] (यहूदी की लड़की उर्फ़ रोमन दिलरुबा) का एक दृश्य याद था। उसने और हमीद ने एक बार मिल कर उसे खेलने की बात सोची थी, पर भूमिकाओ के वितरण पर झगड़ा होने के कारण सब स्कीम चौपट हो गयी थी। अनारकली के सम्वादो को सुनते समय 'तस्वीरे वफा' का एक दृश्य कई बार उसके मस्तिष्क में घूम पड़ा था :

[शाहज़ादा मार्क्स यहूदी के भेस मे उज़रा के कारखाने मे काम करता है और एक दिन उज़रा की लडकी राहील को अपना भेद बता देता है और उसे साथ भाग चलने को कहता है। जब वह नही भागती तो सीने मे खजर भोक लेना चाहता है। राहील मान जाती है। लेकिन जिस समय वे भागना चाहते है, उसी समय उज़रा आ जाता है।]

उज़रा—खबरदार! ठहरो कहाँ जाते हो। कहाँ भाग कर छुपना चाहते हो।

निकल चलने की यह हसरत बड़ी मुश्किल से निकलेगी।
कलेजा तोड़ देगी बद-दुआ जो दिल से निकलेगी॥

तुम्हारी आरज़ू दुनिया से ख़ाली हाथ जायगी।
जहाँ जाओगी मेरी बद-दुआ भी साथ जायगी॥

राहील—रहम, रहम, अच्छे अब्बा हम गुनहगारो पर रहम।

उज़रा—रहम, तुझ जैसी नाफ़रमान[2] नाहंजार पर, रहम इस जैसे बदमाश, बदकरदार पर—क्यो? इसी दिन के

---

१. तस्वीरे वफ़ा = विश्वास (मुहब्बत) की तस्वीर।

२. नाफ़रमान=पिता का आदेश न मानने वाली।

लिए मैंने तुझे आँखों में रख कर पाला था। इसी बुरे नतीजे के लिए अपनी जान की तरह सम्हाला था। (मार्क्स से) क्यों ओ रोमन क़ौम के ज़लील[1] कुत्ते ! जिसने मुहब्बत से तेरी पीठ को थपथपाया, जिसने तुझे शरीफ़ और वफ़ादार समझ कर अपनी गोद में बैठाया, उसी मुहसिन[2] पर हमला करने को आमादा हुआ, जिससे राहत और इज्ज़त हासिल की, उसी के आरामोराहत[3] मिटाने का इरादा हुआ।

मार्क्स—बुज़ुर्ग उज़रा ! बेशक मैंने क़सूर किया। और ज़रूर किया। मगर यह मेरी दानिस्ता[4] ख़ता न थी, बल्कि इस सूरत और इस दिल ने मुझे मजबूर किया।

बढ़ो आगे, छुरी लो और सीना चाक कर डालो।
ख़ता इस दिल की है, इसको जला दो, ख़ाक कर डालो।

राहील—नहीं ! प्यारे अब्बा नहीं !

इस सुबहे-ज़िन्दगी को किसी तरह शाम हो।
फेरो छुरी गले पँ कि क़िस्सा तमाम हो।
इसकी न कुछ ख़ता है न दिल का क़सूर है
मैं इसको चाहती हूँ यह मेरा क़सूर है।

उज़रा—बदबख़्त लड़की ग़ैर क़ौम और ग़ैर मज़हब को चाह बुरी होती है।

राहील—सच है, लेकिन दिल की लगी बुरी होती है।
वो जो शेरों को भी ठोकर से गिरा देते हैं,
वो भी बेदर्द मुहब्बत को दुआ देते हैं।।
ज़ोर चलता नहीं इश्क़ के दरबार में कुछ
यह वो चौखट है कि सब सिर को झुका देते हैं।।

---

१. ज़लील=निकृष्ट। २. मुहसिन=एहसान करने वाला। ३. आरामोराहत=आराम और सुख। ४. दानिस्ता=जो जान-बूझ कर किया जाय।

लेकिन अनारकली में न ये शेर थे, न ऐसी मुक्कफा (अनुप्रासमयी) इबारत, न वह 'स्वगत' जो पुराने ड्रामो मे कई-कई मिनट तक चलता था और जिसे, थियेटर हॉल के अन्त मे बैठे हुए चवन्नी वालो को सुनाने के लिए, अभिनेता गला फाड-फाड कर (अपने आप से) कहते थे। हास्य के स्थल भी उसमे बडे सुरुचिपूर्ण थे, जो ठहाके के बदले होंटो पर मुस्कान लाते थे। वास्तव मे 'अनारकली' वह सीमा थी, जहाँ उर्दू का पुराना नाटक आँख बन्द करता था और नया आँखें खोलता था। उसमे पुराने नाटको का प्रभाव भी था और नये नाटको के लिए निर्देश भी।

पुराने नाटको का प्रभाव अनारकली मे इसकी लम्बाई, इसके सम्वादों की अस्वाभाविकता और इसके कुछ दृश्यो की बनावट में था। पर चेतन ने तब कोई नया नाटक न पढा था, न देखा था। उसके लिए अनारकली एकदम अभिनव कृति थी। पुराने नाटको के शेरो और सम्वादो से जो प्रभाव जनता पर पडता था, उसका स्थान अनारकली में संकेतो और अलंकारो से भरे अस्वाभाविक सम्वादो से निकाला गया था। पर चेतन मे तब इस छान-बीन और आलोचना की क्षमता न थी। वास्तविक को अवास्तविक से अथवा यथार्थ को काल्पनिक से अलग करना उसने न सीखा था। उसका भावुक हृदय तो उन सम्भाषणो को सुन कर झूमने लगता। चौथे दृश्य मे जब अनारकली और सलीम चोरी से मिलते तो चेतन का हृदय धक-धक करने लगता....

[अनारकली हौज की सीढियो पर बैठी शाहजादे के ध्यान मे मग्न अपने-आप से बातें कर रही होती है। सलीम आ जाता है। वह उसे बुलाता है, पर जब वह उत्तर नही देती तो वह उसके कदमो पर झुक जाता है। अनारकली सहसा घबरा कर उठ खडी होती है। सलीम उसके हाथ को थाम कर उसे सीढ़ियो से उतार लेता है और आलिगन-बद्ध कर लेता है। अनारकली चिल्ला उठती है।]

अनारकली—साहिबे आलम, साहिबे आलम!

[भावों के आवेश से वह हाँफने लगती है। अपने-आपको सलीम के आलिंगन में छोड़ देती है। सलीम उसे चूम लेता है। अनारकली आलिंगन से मुक्त हो कर अलग हट जाती है]

: यह नही हो सकता। यह कभी नही हो सकता। यह हो भी गया तो ज़मीन अपना मुँह फाड देगी, आसमान अपने चंगुल बढा देगा। यह खुशी दुनिया की बर्दाश्त से बाहर है। इसका अंजाम तबाही है। शाहज़ादे भूल जाओ, शाहज़ादे भूल जाओ।

सलीम—(उसके समीप जा कर प्यार से उसकी कमर में हाथ डाल देता है) हम दोनो एक दूसरे के सीने से चिमटे हुए हो तो फिर खौफ नही। आसमाँ हमें खींच ले और हम नयी रोशनियो में उठते चले जायँ। ज़मीन हमारे पैरो के नीचे से सरक जाय और हम नामालूम अँधेरो में गिरते चले जायँ, तुम्हारे बाज़ू ढीले न पड़ें तो यह सब कुछ शीरी होगा अनारकली, बे इन्तिहा शीरी !

०

रिहर्सल जब इस स्थल पर पहुँचती तो चेतन सदैव सलीम बन जाता, नयी रोशनियो में उठता चला जाता, नामालूम अँधेरो में गिरता चला जाता। यह सब अवास्तविक उसे अक्षरशः वास्तविक मालूम होता।

इसी दृश्य में नाटककार ने नाटक की ट्रैजेडी का पता दे दिया है। जो होने जा रहा है, उसका आभास सलीम के आलिंगन में बद्ध अनारकली की इस शंका से हो जाता है: 'अल्लाह क्या यह मुमकिन है ? फिर इसका अंजाम क्या होगा ? अल्लाह इसका अंजाम क्या होगा ?'

और अंजाम था नौरोज़ के समारोह पर नृत्य के मध्य (दिलाराम के षडयन्त्र द्वारा) शराब को शरबत समझ कर अनारकली का पीना, नशे की अवस्था मे सलीम को सम्बोधित करके अपनी सच्ची भावनाओं को गाने मे प्रकट करना और यह बेबाकी देख, अकबर का क्रोध से पागल

हो कर सिंहासन पर उठ खडे होना और हाथ बढा कर चिल्लाना : 'हो!'

(महाबली के खडे होते ही सारी महफिल खडी हो जाती है।)

अकबर—काफूर !

काफूर—जिल्लेइलाही !

अकबर—इस बेबाक औरत को ले जाओ और जिन्दाँ[१] में डाल दो !

अनारकली—महाबली ! महाबली !

(तख्त की सीढियो की ओर दौडती है पर बेहोश हो जाती है।)

अनारकली की मा—(सीना थामे हुए आगे आती है—जिल्लेइलाही ! खुदा का वास्ता।

अकबर—खामोश बुढिया।

सलीम—(उठ कर बेताबाना[२] अकबर की ओर जाता है) जिल्लेइलाही ! अब्बा जान !

अकबर—(सलीम को हाथ से ढकेल देता है) नंगे खानदान ![३]

रानी—(सलीम की ओर बढना चाहती है) महाराज !

अकबर—(हाथ उठा कर) खबरदार !

(और यहाँ पर्दा गिर जाता है !)

यह दृश्य था, जो चेतन को पुराने नाटको की याद दिला देता। उसके सामने एक थियेटर-हॉल घूम जाता, जहाँ वह दर्शको में बैठा है। सामने लाहौर दुर्ग के शीश महल का ऐवाने खास, अपनी समस्त शान-शौकत और सज-धज के साथ खुला है। नौरोज के जश्न ने इसकी भव्यता को और भी बढा दिया है और इसमे यह दृश्य खेला जा रहा है। सीन पर पर्दा गिरते ही लोग तालियाँ बजाते हैं। पर्दा धीरे-धीरे फिर उठता है। अकबर हाथ उठाये, रानी सहमी, सलीम निराश, अनारकली बेहोश,

---

१. जिन्दाँ = बन्दी घर। २. बेताबाना = आतुर हो कर। ३. नंगे खानदान = वंश के नाम पर कलंक।

उसकी माँ बेचैन, महफिल निस्तब्ध और दिलाराम जैसे क्षितिज को देखती-सी खड़ी है। पर्दा गिर जाता है।

नाटक का यह दृश्य चेतन को उन्ही पुराने नाटको के वातावरण में ले जाता जहाँ टेबले की व्यवस्था होती थी और टेबले पर पर्दा गिरता था। लेकिन फिर भी 'अनारकली' में बहुत कुछ ऐसा था जो नवीन था। गत और आगत के मध्य यह नाटक जैसे एक पुल था, जिस पर दोनो युगों के पदचिन्ह दिखायी देते थे। और चेतन उस दिन की बाट देख रहा था जब रिहर्सल खत्म हो और वह इस नाटक को न केवल रंगमंच पर देखे, बल्कि उसमें अभिनय भी करे।

०

लेकिन अनारकली से पहले शिमले ही मे चेतन को एक और नाटक देखने का अवसर मिला।

अड़सठ

अनारकली के स्टेज होने में अभी दस-बारह दिन शेष थे कि लाहौर का एक क्लब बडे तमतराक से शिमले में नाटक खेलने आया। कुछ तो लाहौर से किसी क्लब का शिमले की ऊँचाइयों तक अपने सारे अमले को ले कर आना, फिर इस शान से कि उसके पात्रों में सभी सम्भ्रान्त घरानों से सम्बन्धित थे और फिर विशेषता यह कि स्त्रियों का पार्ट स्त्रियाँ ही करने वाली थी। शिमले की छोटी-सी दुनिया मे इस क्लब के आगमन से अच्छा-खासा शोर मच गया। 'पारसी विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी' से 'जुब्ली कम्पनी' तक सभी व्यापारिक कम्पनियो मे लड़कियो की भूमिकाएँ प्रायः लडको द्वारा खेली जाती थी, ऐमेचर कम्पनियों की तो बात ही दूसरी थी। फिर व्यापारिक कम्पनियाँ तो बाजारे-हुस्न से अपने मुख्य स्त्री पात्र

चुन भी लेती थीं। (कम-से-कम नाच गाने का मुख्य काम उनके द्वारा सम्पन्न हो जाता था) किन्तु ऐमेचर सोसाइटियो के लिए स्त्री पात्र जुटाना उतना सुगम न था। उनके सदस्य चाहे रात के अँधेरे में छिप कर रूप की हाट का चक्कर लगा आयें, पर दिन के उजाले में रूप की पूजा उनके बस की बात न थी। इसके अतिरिक्त जब नाचे-गाने-अभिनय को भाँडो और मीरासियो की चीज समझा जाता था, किसी मध्य-वर्गीय के लिए अपनी लडकी, बहन अथवा पत्नी को रंगमंच पर लाना कठिन था। रहे दर्शक सो वे लडकों को लडकियों की भूमिका मे देख कर प्रसन्न थे और कई तो अपनी रुचि के नवयुवको ही को स्त्री-भूमिका मे देखने के इच्छुक थे। उनके स्थान पर यदि कोई स्त्री आ जाती तो उन्हे कदाचित बुरा लगता।

किन्तु यह तो साधारण दर्शको की बात है। शिमले मे निम्न-मध्य-वर्गियों के साथ उच्च मध्य-वर्गीय तथा उच्च-वर्गीय दर्शक भी थे, बल्कि थियेटर देखने वालो मे अन्तिम दोनो वर्गों ही का बाहुल्य था। इसलिए इस मिश्रित पात्रो वाले क्लब की काफी चर्चा थी और लोग नाटक के खेले जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

क्लब वाले पात्र-पात्रियो और प्रबन्धको समेत आये थे, पर पर्दे तथा दूसरा साज-सामान न लाये थे। वह सब उन्होने 'यंगमेन्स ऐमेचर ड्रामेटिक क्लब' से उधार ले लिया था। इसी कारण चेतन को उस क्लब के नाटक की रिहर्सलें देखने, और उस नाटक के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जानने और अन्त मे 'भीष्म-प्रतिज्ञा' देखने का अवसर मिला।

शिमले मे अपनी मिश्रित मण्डली ले कर आने वाला यह क्लब कदाचित उच्च-मध्य-वर्ग के लोगो द्वारा स्थापित किया गया था। जाति-पाँति का उन्हे उतना विचार न था और न नाचने-गाने और अभिनय को ही वे इतना हेय समझते थे। कुछ पढी-लिखी युवतियाँ (जिनमे से अधिकाश क्लब के सदस्यो की पत्नियाँ थी) लाहौर के गर्ल्स कॉलेजो की दो-एक अध्यापिकाओ और कुछ ऊँचे पदाधिकारियो की पत्नियो के साथ क्लब की

सदस्याएँ वन गयी थी और क्लब के खर्च पर शिमले चली आयी थी। रुपया क्लब के पास यथेष्ट था और शायद उन लोगो की जेबों से आया था, जो नही जानते थे कि अपने धन अथवा समय का क्या किया जाय, जिन्हे अपने जीवन मे कुछ चटपटापन, कुछ सनसनी, कुछ ख्याति चाहिए।

यह क्लब इसलिए ही मिश्रित न था कि इसके अभिनेताओ मे पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी शामिल थी, बल्कि इसलिए भी कि इसके संयोजकों मे मुस्लिम और हिन्दू दोनो जातियो के लोग सम्मिलित थे। 'भीष्म-प्रतिज्ञा' नाम से जो नाटक कम्पनी खेलने जा रही थी, वह एक मुसलमान का लिखा हुआ था, जो उर्दू के वडे भारी नाटककार तथा कहानीकार समझे जाते थे। हिन्दुओं का धार्मिक नाटक, एक मुस्लिम द्वारा लिखा जाय, जिसमें प्रतिज्ञा, 'परतिज्ञा' और 'भीष्म,' 'भीषम' बन जाय, क्लब के मिश्रित होने का इससे दूसरा प्रमाण और क्या हो सकता है। इस मिलाप मे केवल एक वात खटकती थी और वह यह कि क्लब के सदस्यो मे चाहे मुसलमान पुरुप यथेष्ट संख्या मे थे, पर मुसलमान महिला एक भी न थी। क्लब के मुसलमान सदस्य दूसरो की स्त्रियो से मिलना-जुलना, हँसना-खेलना ही शायद काफी कुर्बानी खयाल करते थे और अपनी स्त्रियो के प्रति दूसरो को ऐसी स्वतन्त्रता देने का त्याग अपनी विसात से बाहर समझते थे। इस मामले मे वे अपने समस्त उदार विचारो के साथ कट्टर बने हुए थे। रहे हिन्दू सदस्य तो वे मुसलमानो को सभ्यता में पिछडा हुआ समझ कर मन-ही-मन उन पर दया करके सन्तोष कर लेते थे।

खेल देख कर चेतन को घोर निराशा हुई। उन नाटककार महोदय ने, जो स्वयं एक सरकारी पद पर आसीन थे, नाटक के दो एक दृश्य अपने दस-पाँच मुसाहिवो और मातहतो की उपस्थिति मे क्लब के सदस्यो को सुनाये थे और वडे जोरो से इस बात का दाँवा किया था कि यदि क्लब उनका लिखा हुआ वह नाटक खेलेगा तो दर्शको का इतना जमघट होगा कि क्लब को निश्चय ही नाटक की रजतजयन्ती मनानी पडेगी।

नाटक सुनने के पश्चात उन्होने अपने एक पूर्वलिखित नाटक 'क्रिशन

सुधामा' (कृष्ण सुदामा) का उल्लेख किया था, जिसे उन्होंने जुब्ली कम्पनी के भारी अनुरोध और पंजाब असेम्बली के स्पीकर की सिफारिश पर पाँच हजार रुपये मे खेलने को दिया था। इस पर उनके मुसाहिबो ने इस प्रकार सिर हिलाया था, जैसे स्पीकर महोदय ने उन्ही के सामने उस कम्पनी की सिफारिश की हो और उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से कम्पनी के स्वामी को उन्हे पाँच हजार का चेक लिख कर देते देखा हो। इतने बडे आदमी के मुँह से इतनी बडी गप सुनने पर और इतने लोगो द्वारा उसका समर्थन होने पर, उनकी ओर से क्लब की सहायता हेतु वह नाटक मुफ्त ही पा कर क्लब के सदस्यो ने अपने-आपको धन्य माना था। इतने बडे नाटककार का नाटक और मिश्रित पात्र! क्लब के सदस्य बडे प्रसन्न थे और शिमले पर उनकी चढाई सिकन्दर महान की चढाई से कम न थी। किन्तु इन समस्त तैयारियो और 'मिक्स्ड-कॉस्ट' के समस्त विज्ञापन के बावजूद उनका वह नाटक तीन दिन तक न चल सका था। चेतन को वह नाटक देखने का सौभाग्य तीसरे दिन प्राप्त हुआ था। दर्शक थोडे थे और जो थे, वे भी उकताये हुए दिखायी देते थे।

वास्तव में उस समय पंजाब मे लेखको के जिस गुट का बोलबाला था, उसके अधिकांश सदस्य उच्च-मध्य-वर्ग से सम्बन्ध रखते थे। उनमे से कोई किसी गवर्नमेंट कॉलेज मे प्रोफेसर था, कोई सरकार से आर्थिक सहायता पाने वाले पत्र का सम्पादक, कोई नवाबो और रईसों के मन बहलाव का सामान जुटा कर ऊँचा उठने वाला कवि और कोई दफ्तरो की विभिन्न मंज़िलें पार करने वाला लेखक। 'भीषम-परतिज्ञा' का लेखक भी उन्ही मे से एक था। हिन्दी के शब्दो के साथ बँगला के अमर नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय के नाटक का जो सत्यानास उसने अपने उस 'भीषम-परतिज्ञा' में किया, उसे देख कर चेतन को बड़ा दुख हुआ था। चेतन ने द्विजेन्द्र लाल राय के नाटको का अनुवाद हिन्दी मे पढा था। उनके समक्ष यह नाटक उसे अत्यन्त विरस जान पड़ा। सम्वादो मे बडे-बडे शब्दों, अलंकारो, उपमाओ की भरमार थी, किन्तु भावना और अनुभूति के

अभाव में वह सब कोरा शब्दाडम्बर अत्यन्त अप्रिय लगता था और अभिनेता उन्हें बोलते समय नकल करते हुए दिखायी देते थे । महाराज शान्तनु की भूमिका मे क्लब का निर्देशक स्वय काम कर रहा था । चेतन को उसके अभिनय में किसी तरह की विशेषता न दिखायी दी थी । फिर उसके मुख की आकृति बन्दर की-सी थी और महाराज शान्तनु का मुँह निश्चय ही बन्दर का-सा न रहा होगा (कम-से-कम चेतन ने जिन महाराज शान्तनु की कल्पना कर रखी थी, उनका मुख वैसा न था) । नृत्य, सम्वाद अभिनय, सीन-सीनरी—चेतन को सब कुछ स्वाँग का-सा लगा । रही अभिनेत्रियाँ तो वही वास्तव में दर्शकों में से लगभग सभी का आकर्षण-केन्द्र थी । अभिनय करना तो भला वे क्या जानती, प्रायः सभी स्टेज पर पहली बार आने के कारण घबरा रही थी । पुरानी अभिनेत्रियो की वह अनायासता उनमें न थी और यद्यपि चेतन के साथ बैठे दो-एक दर्शकों ने उनमें मे दो एक को देख कर दिल पर हाथ रख कर दीर्घ-निश्वास भी छोड़े थे, पर चेतन को उनमें से एक भी पसन्द न आयी थी ।

जब वह थियेटर से निकला तो उसकी दृष्टि नोटिस बोर्ड पर लगे हुए मिश्रित पात्रो के विज्ञापन पर गयी । पढ़ते ही उसे हँसी आ गयी । कितनी आशाएँ ले कर वह गया था और कितना निराश हो कर लौटा ? जब वह स्टेज पर से हो कर घर को चलने लगा तो उसके सामने अनारकली के दृश्य घूमने लगे । अच्छा हुआ—चेतन ने मन-ही-मन सोचा—जो यह नाटक अनारकली से पहले खेला गया । इस नाटक की असफलता अनारकली की सफलता को और भी बढा देगी । फीके फल को चखने ही से मीठे के स्वाद का पता चलता है । और चेतन का मन चाहने लगा कि दिन हवा हो जायँ और अनारकली के खेलने की तिथि समीप आ जाय ।

उनहत्तर

रात को गेटी थियेटर में अनारकली खेला जाने वाला था।

चेतन प्रसन्न था और नौ बजे ही माल पर घूमने को निकल आया था। उसने कविराज जी की पुस्तक खत्म कर दी थी और आज सवेरे उसका अन्तिम परिच्छेद भी उन्हें सौंप दिया था। जब से उसने क्लब में जाना आरम्भ किया था, उसका समस्त शैथिल्य, थकन, उकताहट, अवसाद, एकाकीपन जैसे पंख लगा कर उड गये थे। क्लब में जाने पर कविराज जी को कोई आपत्ति न हो, इस विचार से वह सारा दिन काम मे जुटा रहता था। महीना भर से वह मशीन की तरह काम करता आ रहा था। संध्या को जब सारे कागज-पत्र सम्हाल कर वह माल की ओर जाता तो उसके पांवो को जैसे पंख लग जाते। नाटक के दृश्यो मे घूमते, पात्रो की भाव-भंगियों को निरखते और कल्पना-ही-कल्पना मे स्वयं उनकी भूमिकाओ मे अभिनय करते हुए वह अपनी समस्त मानसिक और शारीरिक थकन भूल जाता। आज सुबह कविराज जी को उनकी पुस्तक का अन्तिम परिच्छेद सौंप देने के बाद उसे अनुभव हो रहा था, जैसे उसके कन्धों से कोई बडा भारी बोझ उतर गया हो; जैसे उसके पावो में पडी हुई लौह-शृंखला कट गयी हो; जैसे अब वह निश्चिन्त हो कर नाटक में पार्ट कर सकेगा।

दोपहर को थियेटर के हॉल मे नाटक की 'फुल-ड्रेस-रिहर्सल' होने वाली थी, पर चेतन को उस समय तक रुकने का धैर्य कहाँ ?

'गेटी थियेटर' माल के सब से भरे-पुरे भाग मे बना हुआ है। हर वर्ष वहाँ शिमले की (अपेक्षाकृत सम्पन्न) नाटक समितियाँ, विशेष कर अंग्रेजी नाटक क्लब, अपने नाटक खेला करते थे। अनारकली से पहले भी हर सप्ताह उसमे कोई-न-कोई नाटक होता ही रहता था, पर सितार और दिलरुबा खरीद लेने की अपनी मूर्खता के कारण, इच्छा रहने पर भी,

चेतन उनमें से कोई भी न देख पाया था। जब भी कभी कोई नाटक होता, वह थियेटर के बाहर लगे हुए नाटक के 'स्टिल' या 'ऐक्शन' चित्रों को ही देख कर सन्तोष कर लेता। 'भीष्म-प्रतिज्ञा' नैशनल ए० डी० सी० के शामियाने मे हुआ था, पर उस शामियाने का 'गेटी थियेटर' से क्या मुकाबिला! आज सारे-का-सारा थियेटर उनके पास था। आज न केवल वह उसे जी भर कर देख सकेगा, बल्कि उसके रंगमंच पर पार्ट भी करेगा। यह सब सोच कर वह सुबह ही थियेटर का एक चक्कर लगाने के लिए निकल पड़ा था।

माल पर न संध्या जैसी भीड थी, न रौनक। एक तरह की बेरौनकी ही वहाँ छायी थी। दफ्तरों को जाने वाले बाबू हाथ के छातो से छड़ियो का काम लेते हुए कभी अकेले, कभी दुकेले और कभी टोलियों में इधर-उधर चले जा रहे थे। इधर-से-उधर या उधर-से-इधर इसलिए कि माल के दोनो ओर सरकारी दफ़्तर हैं। एक ओर छोटे शिमले में पंजाब सरकार के और दूसरी ओर राम बाजार के आगे, मिलिट्री के। वे क्लर्क, जो सरकारी क्वार्टरो मे स्थान नही ले पाते या जिनमे अपने-अपने दफ्तरों के पास बनी हुई कोठियो या दूसरी इमारतो मे रहने की हिम्मत नहीं होती, शिमले के अंचल मे सितारों की तरह शोभित, अगनित बस्तियो में जहाँ-तहाँ दो-तीन कमरे लेते है। कई बार ऐसा होता है कि छोटे शिमले मे काम करने वाले बाबुओ को नाभा स्टेट या बालूगंज और कैनेडी कॉटेज या आर्मी-हेडक्वार्टर्ज़ मे काम करने वालो को छोटा शिमला, सँजोली या भराटी मे मकान मिल पाता है और सुबह-शाम ये बाबू थकित शिथिल शिमले की सडको पर इधर-से-उधर या उधर-से-इधर जाते दिखायी देते हैं।

हो सकता है कि कुछ नये रंगरूट, नव-विवाहित, अविवाहित अथवा दुख को निर्विकार रूप से लेने वाले या फिर बाबूगिरी के जीवन की कटुताओ को फ्लाश, ब्रिज, मदिरा आदि में भुला देने वाले उतने थकित न दिखायी देते हो, लेकिन अधिकाश के तन-मन इस मानसिक और शारीरिक दासता से बहुत पहले थक जाते है। सुबह-सवेरे दफ़्तरो की मेज़ो पर

उनके आगमन की बाट जोहती फ़ाइलों, ड्राफ्टों, रजिस्टरों, शार्टहैंड की कापियों, टाइप की मशीनो और फिर अफसरो की घुडकियो का ध्यान उनके चेहरे पर उकताहट की लकीरें पैदा कर देता और वे प्राय: हृदय के किन्ही अज्ञात स्तरों के नीचे मनाया करते है कि दफ्तर दूर हो जाय, बन्द हो जाय या 'लैंड स्लाइड' की चपेट मे आ जाय और ऐसी ही दुराशाएँ पालते दफ्तरो को ओर घिसटते चले जाते है।

कुछ ऐसे भी होते हैं, जो चाहे दफ्तर जाना नही चाहते किन्तु दफ्तर के बिना कोई ठौर-ठिकाना भी उन्हे दिखायी नही देता। दफ्तर उनके लिए पनाह का काम देता है। बेसमझ या वृद्ध या बीमार या तुनक-मिजाज या कर्कशा या चिडचिडी पत्नी और किकियाते, रिरियाते, किलबिलाते बच्चो की पलटन से उन्हे दफ़्तर के अतिरिक्त कही दूसरी जगह प्रश्रय नही मिलता। जेब की तंगी दूसरे सब मार्ग बन्द किये रहती है। वे जल्दी-से-जल्दी दफ़्तर पहुँच जाते है और जब तक बैठे रह सकें, बैठे रहते है। कौटुम्बिक झगडो को फाइलो की विरसता मे भुला देने के सिवा उन्हे और कोई मार्ग नही सूझता।

इन सब के अतिरिक्त ऐसे भी होते हैं जिन्हे दफ्तर मे उन्नति की भिन्न सीढियो को शीघ्रातिशीघ्र पार करने की उतावली होती है। वे सब से पहले दफ्तर पहुँच कर अफसरो की दृष्टि मे उठ जाना चाहते है। घर-घाट, सैर-तमाशे से उन्हे कोई सरोकार नही। साहब की प्रसन्नता कैसे प्राप्त हो, किस प्रकार अपने शक्ति-हीन ढुल-मुल सीनियरो को पाँवो के नीचे रौंदते हुए आगे बढा जाय और कैसे शत्रुओ को पछाडा जाय—इन्ही विचारो मे मग्न, चाक-चौबन्द वे शिमले की सडको को नापते दिखायी देते है।

०

लेकिन चेतन को उस समय उन क्लर्कों के भाग्यविधान से किसी तरह का प्रयोजन न था। उसे तो माल पर एक नया आकाश और नयी धरती दिखायी दे रही थी। अपने आन्तरिक उल्लास के दर्पण में उसे सब कुछ

प्रसन्न, प्रफुल्ल दिखायी दे रहा था। चिन्तित-से-चिन्तित क्लर्क का मुख भी उसे प्रमुदित और प्रसन्न लगता था। नीले निखरे आकाश में श्याम-श्वेत बादल उडे जा रहे थे। चेतन विमोहित-सा उन्हे देख रहा था। मध्य मे श्याम और कोरों मे श्वेत वे जलद बादल, छोटी-छोटी चंचल चपल किश्तियो की तरह विशाल नीलाम्बुधि मे बहे जा रहे थे। चेतन उनमे से हरेक का अनुसरण करता। उसकी दृष्टि उसके पीछे-पीछे रिज के उन पेड़ो तक जाती जिनकी हरियाली के पीछे वे लोप हो जाते। कभी-कभी उसके पास से छनछनाती हुई कोई रिक्शा गुजर जाती। वही देर तक खडा वह घंटी की छनाछन पर ताल देते हुए रिक्शा कुलियो के पैर, उनके पैरो के उत्थान-पतन के साथ उनकी गर्दन पर उठते-गिरते हुए उनकी पगड़ियो के छोटे-छोटे झब्बे और नीली वर्दियो मे आवृत्त एक फ़ौजी गति से हिलते हुए उनके शरीर देखता रहता। उसके लिए वह सब कुछ जैसे नया था, जैसे वह यह सब पहली बार देख रहा था। दायीं ओर नीलाम्बर की पार्श्व-भूमि मे दूर तक दुकानो के कंगूरे सूरज की प्रथम रश्मियो को चूम रहे थे। इनमे से एक पर चिलचिलाता हुआ चील का एक जोड़ा केलिरत था। नर की चोच मादा के सिर मे खुबी हुई थी। दोनो के पंख फड़फड़ा रहे थे और उनकी वासना-मय आनन्दजनित चिलचिलाहट प्रभात की उस नीरवता मे दूर-दूर तक गूँज रही थी। मोहाविष्ट-सा चेतन, पंख फडफडाते, चिलचिलाते उस जोड़े को, आकाशोन्मुख दुकानो के उन कंगूरो को और उनकी पृष्ठ-भूमि मे दूर तक फैले हुए नीले आकाश को देखता रहा। यह चील भी विचित्र पक्षी है। वह मन-ही-मन हँसा। केलि के लिए किसी दुकान के कंगूरे अथवा किसी तार के खम्भे की चोटी के अतिरिक्त इसे कोई उपयुक्त स्थान ही नही मिलता! स्कैंडल-पॉयंट के पास से हो कर वह गेटी थियेटर की ओर चला, तभी सामने से महाशय धर्मचन्द, लाला जीवनलाल कपूर, सम्पादक 'भूचाल' के कन्धे पर हाथ रखे हुए आते दिखायी दिये।

चेतन ने जब लिखना आरम्भ किया था तो उसकी प्रथम रचनाएँ

'भूचाल' ही में प्रकाशित हुई थी । लाला जीवनलाल स्वयं हँसमुख, बातूनी, एक के बाद दूसरी गप सुनाने और ठहाके पर ठहाका लगाने वाले मनमौजी जीव थे । किसी प्रकार, के दुख को उन्होने दिल में स्थान न दिया था और इसीलिए चौड़े मस्तक, चंचल शरारती आँखो और मुस्कराते चेहरे के साथ उनका शरीर भी स्थूलता के ओर मायल था । सफल पत्रकार थे । अशिक्षित, अर्ध-शिक्षित या फिर जाति-पाँति, धर्म-अधर्म के चक्कर मे फँसे कट्टर हिन्दुओ के सिर मूँड़ने का ढंग उन्हे खूब आता था। उनके मन भाने वाला कोई वाद-विवाद वे अपने पत्र मे चलाए रखते । उनकी दबी हुई वासना की भूख मिटाने के लिए एक्ट्रेसो की दुख-भरी आपबीतियाँ, यूरोप के 'पापियो की' जीवन गाथाएँ, 'पतन के ज्वालामुखी पर खड़े यूरोप' मे सुन्दरियो के मुकाबिले, 'यौवन की सम्राज्ञी' कहाने वाली तन्वगियो के जीवन की कहानियाँ अपनी ओर से नमक-मिर्च लगा कर अपने पत्र मे निरन्तर छापते रहते । पढ़ने वालो का धर्म भी बना रहता, वासना की भूख भी मिट जाती और वाद-विवाद मे आजादी और आजाद-खयाली को गालियाँ देने के लिए उपयुक्त उदाहरण और युक्तियाँ भी प्राप्त हो जाती । निम्न-मध्य-वर्गीय लोगो के मनोविज्ञान की जो पकड उन्हें थी, किसी दूसरे पत्र-सम्पादक को न थी । यही कारण था कि उनका पत्र कई पुराने पत्रो को पीछे छोड गया था । महाशय धर्मचन्द भी उनके शिकार थे । लेकिन अपने घाव को दिल ही मे लिये हुए, वे उनसे मैत्री बनाये हुए थे और उन दिनो अपने इस प्रतिद्वन्दी को साथ ले कर वे ब्लैकमेलिंग के लिए राजा-नवाबो के यहाँ चक्कर लगाया करते थे ।

यद्यपि चेतन ने आज भी वही कपडे पहन रखे थे—वही कमीज पायजामा और वही पुराना ओवरकोट, लेकिन उसने पहले की तरह इस महाशयो से आँख नही चुरायी । जब वे उनके बराबर आ गये तो उसने आगे बढ कर उनसे हाथ मिलाया । उसका सारा हीनभाव जैसे आज के दिन दूर हो गया था । इसी माल के सब से प्रसिद्ध थियेटर में वह आज रात को अभिनय करने जा रहा है । वह कलाकार है । उसका पद सम्राट

से भी ऊँचा है । और अपने कलाकार सम्राट के आगे उसे ये दोनों महाशय अपनी समस्त सफलता के बावजूद अत्यन्त अकिंचन और हेय दिखायी दे रहे थे ।

"कहिए, मिज़ाज कैसे है ?" हाथ मिलाते हुए उसने बड़े तपाक से पूछा ।

क्षण भर के लिए दोनो चकित-से खडे रहे । शिष्टाचार के नाते उन्होने उत्तर दिया, "आपकी दुआ है ।"

लेकिन चेतन ने उनके उत्तर और अपने सम्बन्ध मे किसी प्रकार के प्रश्न की प्रतीक्षा किये बिना अपने हाल-चाल का परिचय देना शुरू कर दिया । फिर बातो-बातो मे उसने रात को गेटी थियेटर मे होने वाले नाटक का उल्लेख किया और उनसे पूछा कि वे नाटक देखने आ रहे है या नही । और फिर उनका उत्तर सुने बिना नाटक की महत्ता पर एक छोटा-सा भाषण दिया कि अनारकली को संसार मे श्रेष्ठतम नाटको के बराबर रखा जा सकता है । इसके बाद उसने डायरेक्टर की प्रशंसा की और कहा कि उनके निर्देशन ने नाटक को चार चाँद लगा दिये है । ऐसा डायरेक्टर यूरोप के किसी स्वतन्त्र देश मे होता तो आर्मी-हेडक्वाटर मे क्लर्की की कुर्सी तोड़ने की अपेक्षा किसी बडे थियेटर का स्वामी होता ।

"सलीम की भूमिका मे शौकत साहब (डायरेक्टर) पार्ट कर रहे है," उसने सोत्साह बताया, "लगता है जैसे सलीम का पार्ट उन्ही के लिए बना है । शाहजादा सलीम का इतना सुन्दर, इतना स्वाभाविक अभिनय करते है कि मुग़ल सम्राट के महलो मे यौवन की प्रथम हिलोर मे बहते हुए स्वतन्त्र प्रकृति के उस शाहजादे का चित्र आँखो मे खिच जाता है ।" और अपनी रौ मे नाटक मे अभिनय करने वाले अन्य पात्रो के कौशल का बखान करते हुए उसने यह भी बताया कि वह स्वयं भी नाटक मे भाग ले रहा है । उसने उन दोनो महाशयो को परामर्श दिया कि इतनी सुन्दर कलाकृति को वे अवश्य देखें और हाथ का जरा-सा झटका दे कर छोड़ते हुए, वह जैसे नशे मे झूमता हुआ-सा गेटी थियेटर की ओर बढा ।

सिर पर नीला-नीला निस्सीम आकाश फैला था। सामने, वर्षा के पानी से धुली, जाकू की हरियाली थी और सड़क पर भरी-पूरी सूरज की धूप अपना वैभव बिखेर रही थी। चेतन को माल पर उस समय किसी प्रकार का भी तो अभाव नही लगा। उसके अन्तर की भांति उसका बाह्य और उस बाह्य को छूता हुआ सारा वातावरण, प्रसन्न, पुलकित और पूर्ण था।

सत्तर

गेटी थियेटर के 'ग्रीन-रूम' मे चेतन ज़ॉफरान के मेकअप की प्रतीक्षा में खडा था। यह अनुभव उसके लिए एकदम नया था। यद्यपि पहले भी, दो-चार बार उसे मेकअप करना पड़ा था, लेकिन तब पर्दे के पीछे अथवा नेपथ्य के एक ओर योही मुंह पर पाउडर मल कर उसने पिसे हुए कोयले की स्याही से मूंछें और भवें बना ली थी। किसी थियेटर के ग्रीन-रूम मे रूप-छल के समस्त प्रसाधनों की सहायता से, विशेपकर स्त्री-भूमिका मे मेकअप करने का उसका यह पहला अनुभव था और वह सब उसे अजीब-सा लग रहा था।

उसने जब ग्रीन-रूम का नाम सुना था तो उसने सोचा था कि वह कोई बड़ा-सा, गहरे हरे रंग का कमरा होगा, जिसका फर्नीचर और पर्दे सब हरे होगे। लेकिन जब संध्या को वह थियेटर पहुँचा और डायरेक्टर ने उससे कहा कि जल्दी मेकअप कर लो और चेतन ग्रीन-रूम कहे जाने वाले कमरे की ओर बढा तो वह उसकी चौखट पर क्षण भर के लिए विमूढ-सा खडा रह गया था।

तंग छोटा-सा कमरा, दीवारो पर दाढ़ियाँ, जटाएँ, बाल, गलमुच्छे और रूप-छल का अन्य सामान, एक कोने में एक सन्दूक, दूसरे में ड्रेसिंग-

टेबिल और उसके सामने एक छोटा-सा स्टूल—बस यही था वह ग्रीन-रूम ! उसमें इतना भी स्थान न था कि चार कुर्सियाँ रखी जा सकें । लगता था, जैसे किसी बाथ-रूम या स्टोर को ग्रीन-रूम में परिणत कर दिया गया है । वही चौखट पर खड़ा चेतन सोच रहा था कि आखिर इस कमरे को, जिसकी दीवार पर हरे रंग का एक छींटा भी नहीं, ग्रीन-रूम कहा ही क्यो जाता है ?

लेकिन उसके पास उस समय ग्रीन-रूम के नामकरण, उसकी परिभाषा अथवा लम्बाई-चौड़ाई के सम्बन्ध मे विचार करने का समय न था । सितारा और अम्बर का पार्ट करने वाले लड़के हरमसरा (रनिवास) की कनीज़ो के कपड़े पहन रहे थे और दिलाराम का अन्तिम मेकअप हो रहा था । जेल का दारोगा (नाटक मे जेल के दारोगा का पार्ट करने वाला) सन्दूक से कपड़े निकाल-निकाल कर उन्हे दे रहा था । चेतन को खड़ा देख कर उसने उसे भी संकेत किया और चेतन अपने वस्त्र लेने को आगे बढा ।

जब 'अम्बर' और 'मरवारीद' कपड़े पहन कर शीशे के सामने जा खड़े हुए तो उनके स्थान पर खड़े हो कर चेतन चुपचाप उन लडको को लड़कियाँ बनते हुए देखने लगा । नवयुवतियों के कपड़े पहने, वक्ष पर कृत्रिम छातियाँ लगाये वे लड़के अजब जनखे से लग रहे थे । क्षण भर बाद उसे स्वयं यही स्वाँग भरना था । तभी वहाँ खडे-खडे उसे पहली बार अनुभव हुआ कि अपनी समस्त असफलता के बावजूद लाहौर से शिमले आने वाला वह क्लब कितना सफल रहा था और अपनी सारी सफलता के साथ भी अनारकली मे क्या कमी रह जायगी । माना कि नाटक छल है, असत्य है, पर उसकी सफलता की पराकाष्ठा यही है कि वह असत्य न रह कर सत्य को छू ले । समस्त कला की शायद यही कसौटी है । कपडे बाँट कर दारोगा (जो क्लब का मेकअप-विशेषज्ञ भी था) दिलाराम के मुख पर ग्रीज़ मल कर पाउडर लगाने लगा । उसने उसकी भवें और पलकें सँवारी और मुख पर पाउडर की एक और तह जमा कर होंटो को

रँगा। ज्यो-ज्यो चेतन दिलाराम को लड़के से लडकी वनते देखता रहा, लाहौर के उस क्लब का प्रयास उसे और भी स्तुत्य लगने लगा। उस दिन की अपनी समस्त उपेक्षा पर उसे हँसी आ गयी। उसे खयाल आया कि यह दिलाराम (और अनारकली उससे भिन्न न होगी), जब स्वर्ग की अप्सरा कहलायेगी तो क्या हँसी न आ जायगी ?

तभी दारोगा ने दिलाराम का मेकअप समाप्त किया और उसके बालो पर हाथ फेरते हुए उसे चूम लिया।

चेतन का मुख लाल हो गया। कानो के पास उसे कुछ सरसराता-सा प्रतीत हुआ। दिलाराम का पार्ट करने वाला लड़का कुछ सुन्दर था। वह सकुचाया हुआ-सा एक ओर खडा हो गया और दारोगा ने 'अम्बर' को स्टूल पर बैठने के लिए और चेतन को फौरन कपड़े बदलने के लिए कहा।

यह दारोगा आर्मी-हेडक्वार्टर का तीस-पैंतीस वर्षीय बिगडा हुआ क्लर्क था। उसका विवाह न जाने इतनी आयु तक भी क्यो न हुआ था। मँझले कद का दोहरा शरीर, छोटी ठोड़ी, गोल मुँह पर चेचक के दाग, छोटी-छोटी दोनों ओर से कटी मूँछें, तंग माथा और घुंघराले बाल। उसकी आँखो मे कुछ ऐसी अतृप्ति, कुछ ऐसी भूख और हिंसा थी कि एक तीव्र घृणा, गोला-सा बन कर चेतन के गले में अटक गयी। जब अम्बर और मरवारीद का मेकअप करने के बाद (पुरस्कार स्वरूप) दारोगा ने उनका भी एक-एक चुम्बन ले डाला तो चेतन ने निश्चय कर लिया कि वह कभी इस अपमान को सहन न करेगा, वह इस जोर से उसके मुँह पर मुक्का दे मारेगा कि उसके सामने के दाँत टूट जायँ।

तभी उनका निर्देशक अन्दर आ गया और दारोगा को किसी आवश्यक काम से भेज स्वयं जल्दी-जल्दी चेतन का मेकअप करने लगा।

चेतन को इस सारे क्लब मे यह निर्देशक सब से पसन्द था। 'भीष्म-प्रतिज्ञा' में डायरेक्टर के मुकाबिले मे वह कही सुन्दर था। निर्देशन में उसे अद्वितीय निपुणता प्राप्त थी। शायद उसका कारण यह था कि वह

स्वयं एक बहुत कुशल अभिनेता था। उसका अभिनय देख कर चेतन मुग्ध हो जाया करता था। सलीम का पार्ट ही नही, अकबर से ले कर ख्वाजा सरा काफूर तक, सब का पार्ट वह बडी कुशलता से कर लेता था। जब वह ताली बजा कर उस क्रोधित हीजडे का पार्ट करता था तो हँसी के मारे पेट मे बल पड जाते। महाबली का पार्ट करते समय उसकी आकृति पर वही रुद्र-गम्भीरता, वही लौह-दृढता आ जाती। लगता जैसे कोई उकाब पर खोले उडा जा रहा है। चेतन ने अपने इस निर्देशक को रिहर्सलो मे लगभग हर पात्र का पार्ट करके उन्हे बताते देखा था और वह उसकी इस योग्यता पर मुग्ध था। जब डायरेक्टर उसके मुख पर ग्रीज़ पेंट कर रहा था तो चेतन ने आँखें उठा कर उसकी ओर देखा। उसकी दृष्टि डायरेक्टर के माथे पर बनी हुई लकीरो की ओर गयी। इस नाटक को सफल बनाने के प्रयास मे उसे इतनी जान खपानी पड़ी थी कि उसके होटो की स्वाभाविक मुस्कान लुप्त हो गयी थी।

प्राइवेट क्लबो मे किसी नाटक को रिहर्सलो की मंज़िल से निकाल कर रंगमंच तक ले जाना कोई सरल काम नही। क्लब के सभी सदस्य अपने-आपको हीरो (मुख्य पात्र) के योग्य समझते है और हीरो का नही तो कोई दूसरा महत्वपूर्ण पार्ट करना चाहते है। तब कई बार भूमिकाओं के वितरण पर ही नाटक का इतिश्री हो जाती है। यह बात यदि किसी प्रकार तय हो जाय तो नाटक समिति के पदाधिकारियो के सम्बन्ध मे झगडे खडे हो जाते है। इसके बाद चंदे, काम, सामान, थियेटर, उसकी सेटिंग और दूसरी बीसियो बातो की व्यवस्था करते-करते संयोजक हैरान हो जाता है। साधारणतया ऐसी संस्थाओ मे एक ही व्यक्ति जी-जान से काम करने वाला होता है और उसी की हिम्मत और कार्यपटुता पर क्लब की सफलता निर्भर होती है। 'यंगमेन्स एमेचर ड्रामेटिक क्लब' की जान भी यही 'निर्देशक था और इन सब पचडो से माथापच्ची करने के साथ रिहर्सलो मे पात्रो को ट्रेनिग देते-देते, उसके मुख पर उस मुस्कान के स्थान पर, जो नाटक के आरम्भ मे शाहजादा सलीम के चेहरे पर होनी चाहिए,

वह निराशा और उद्विग्नता दिखायी देती थी, जो नाटक के अन्त में शाहज़ादे की आकृति पर आ जाती है।

इन्ही सब बातों के सम्बन्ध मे सोचता हुआ अपने उस डायरेक्टर के भाग्य पर चेतन मन-ही-मन में द्रवित हो रहा था कि डायरेक्टर की दृष्टि चेतन के वक्ष की ओर गयी और खीझ कर उसने पूछा कि छातियाँ क्यो नही लगायी ?

"मुझसे लगी नही।"

तब डाइरेक्टर ने अम्बर और मरवारीद को आदेश दिया कि वे चेतन के कुर्ते के नीचे छातियाँ फिट कर दें।

अम्बर और मरवारीद की भूमिका में काम करने वाले दोनों लडके आगे बढे और उन्होने चेतन के वक्ष पर कृत्रिम उरोज फिट कर दिये। चेतन ने शीशे में दृष्टि डाली तो अपने इस स्वरूप पर उसे मन-ही-मन हँसी आ गयी। उसका रूप यद्यपि पूरे तौर पर ज़नाना न हुआ था, पर उसके बाल अम्बर और मरवारीद से लम्बे थे। इसलिए उनकी अपेक्षा वह अधिक जनाना दिखायी दे रहा था। अचानक न जाने उसे क्या सूझा कि उसने अपने बालो मे आडी माँग निकाल ली और दूसरो की भाँति नकली बाल लगाने के बदले मुगल नर्तकियो की भाँति सिर पर चुनरी बाँध ली। चेतन की आयु उस समय बाइस वर्ष की थी। यद्यपि उसका मेकअप पूरा न हुआ था, पर मुख पर पाउडर लग चुका था। केवल होंट, भवें और पलकें बनने से रह गयी थी। गोल मुख, भरे हुए कल्ले, पतले गुलाबी होंट, बडी-बडी आँखें, कानो मे कृत्रिम बुन्दे और मुगल नर्तकियो की वेश-भूषा! पेंट की सफेदी ने उसके सलोने रंग को गोरा बना दिया था। चेतन को अपना यह रूप बुरा न लगा। एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी उसके शरीर में उठी।

डायरेक्टर ने उसे दोनो कन्धो से पकड कर एक कुशल परीक्षक की भाँति उसके कपडो और उन्नत उरोजों का निरीक्षण किया और तब उसके होंटो पर सुर्खी पेंट करने लगा। होंटो का मेकअप समाप्त करके

वह उसकी पलकें सँवारने लगा था कि एक व्यक्ति ने ग्रीन-रूम मे आ कर बताया कि बाहर दो व्यक्ति चेतन से मिलना चाहते हैं।

डायरेक्टर ने कहा, "कह दीजिए उनसे कि इस समय वह मेकअप-रूम में है, नही मिल सकता !"

"जी हमने बहुतेरा कहा था, पर वे माने नही, कहने लगे उनसे कहो, महाशय धर्मचन्द आये है और उनके साथ 'भूचाल' के सम्पादक लाला जीवनलाल कपूर है।"

"जीवनलाल कपूर !" चेतन का हृदय क्षण भर के लिए धडक उठा। इस व्यक्ति से न मिलना उसे सदा के लिए अपने विरुद्ध कर लेना था। अनिच्छापूर्वक—'प्रसिद्ध अखबार के एडीटर हैं'—सफाई देते हुए चेतन चुनरी का छोर उठाये अपनी उस नयी वेश-भूषा मे कुछ जनखो की-सी चाल से चलता हुआ वहाँ पहुँचा, जहाँ पर्दे के पीछे ग्रीन रूम को जाने वाली गेलरी के अन्दर वे महाशय खडे थे।

चेतन को उस वेश-भूषा मे देख कर निमिष मात्र के लिए दोनो महाशय स्तम्भित रह गये। फिर अचानक लाला जीवनलाल ठहाका मार कर हँसे और उनका गगन-भेदी स्वर उस गेलरी मे गूँज उठा।

बाहर से आने वाले क्षीण प्रकाश में चेतन ने देखा महाशय धर्मचन्द की कानी आँख भी हँस रही है।

तब अपनी खिन्नता को छिपाते हुए, उनके अट्टहास की ओर ध्यान न दे कर चेतन ने कहा, "मै इस नाटक में ज़ॉफरॉन का पार्ट कर रहा हूँ। कहिए क्या आज्ञा है ?"

"तुमने कहा था, सो हम चले आये। किसी से कहो हमे बैठा दे।"

चेतन का दिल बैठ गया—ये अजीब आदमी है—उसने सोचा—मैंने इनसे यह कब कहा था कि आपको बैठा दूँगा। मैंने तो यो ही सिफारिश की थी कि खेल अवश्य देखिए। धर्म-संकट मे पडा, वह किंकर्त्तव्यविमूढ-सा खड़ा रहा।

"हमे महाराज कोटी की पार्टी मे जाना था," महाशय धर्मचन्द

बोले, "पर तुमने कहा था सो मै चला आया, बल्कि महाशय जीवनलाल को भी साथ ही घसीट लाया।"

"मालूम नही, .फ्री पासो का प्रबन्ध है या नही," चेतन ने विवश हो कर कहा। इसके बाद वह मुंह से जो कुछ बडबडाया, वह यद्यपि उन दोनो महाशयो की तो समझ मे नही आया, पर उसने कहना यह चाहा कि वह क्लब का बाकायदा सदस्य नही, केवल अभिनय के शौक से अस्थायी सदस्य बन गया है, आदि-आदि. .

इस पर महाशय धर्मचन्द के कन्धे पर हाथ मारते हुए लाला जीवनलाल ने फिर ठहाका लगाया।

इस बार चेतन के साथ महाशय धर्मचन्द भी कुछ खिन्न हुए और उन्होंने सफाई दी कि इसी क्लब के एक बडे सदस्य गत वर्ष उन्हें न्योता दे कर हार गये पर खेल देखने न आये। इस बार तो वे चेतन के अनुरोध पर उसका पार्ट देखने चले आये।

चेतन ने यह सब नही सुना। उसने कहा—"आप ठहरिए, मैं डायरेक्टर से पूछ देखता हूँ।" और वह धडकते हुए दिल के साथ वापस आया।

अचानक अपने डायरेक्टर से कुछ पूछने का उसे साहस नही हुआ। जब वह मेकअप को समाप्त करने के लिए फिर स्टूल पर बैठ गया और डायरेक्टर उसकी भवें और पलकें बनाने लगे तो उसने धीरे-से कहा, "मुझे दो पास चाहिएँ। 'भूचाल' के एडीटर बाहर आये हुए है, उनके साथ उनके मित्र है.. ."

"हमने .फ्री पास बिलकुल बन्द कर रखे है।" डायरेक्टर ने उसकी भवें बनाते हुए कहा।

"लेकिन ऐक्टरो के रिश्तेदारो को.. ." चेतन के कंठ मे गोला-सा अटक गया।

"वे तुम्हारे रिश्तेदार तो नही।" डायरेक्टर ने उसके स्वर-परिवर्तन की ओर ध्यान दिये बिना कहा।

चेतन चुप हो गया। बाहर आ कर उन सम्पादक महाशयों के सामने कुछ कहने का उसे साहस न हुआ। अपनी विवशता पर उसे बड़ा क्रोध आया। उसे लगा जैसे उसका भारी अपमान हुआ है। उसका जी चाहा वहाँ से भाग जाय। क्या वह उनका नौकर है? उनसे वेतन पाता है? यदि वे उसका इतना भी मान नही रख सकते तो वह ही क्यो उनकी सुविधा-असुविधा का ध्यान रखे। लेकिन चाहने पर भी वह उठ न सका! उसे ध्यान आया, उसका पार्ट है ही कितना। डायरेक्टर किसी दूसरे को दे देगा और प्रॉम्पटर की सहायता से नाटक चल जायगा। उसे दुख हुआ कि उसके पास कोई बडा पार्ट क्यो नही। हो न अनारकली (अनारकली का पार्ट करने वाले लडके) के साथ ऐसी बात? डायरेक्टर उसके पाँव तक पड जाय। उसे मालूम था, डायरेक्टर किस प्रकार अनारकली की खुशामदें करता था, किस प्रकार उसकी छोटी-से-छोटी इच्छा का मान रखते था....

यही सब सोचते-सोचते, न जाने क्यो, न जाने कैसे संयम की पूरी कोशिश करने पर भी उसकी आँखें भर आयी। उसका सिर झुक गया। उसने लाख चाहा कि वह आँसुओ को रोक ले, वहाँ से उठ कर बाहर भाग जाय, किन्तु जैसे किसी अज्ञात गोद से उसका शरीर स्टूल से चिपक गया और उसकी आँख अनायास बह चली। जब डायरेक्टर ने मेकअप को एक नजर देखने के लिए उसकी ठोडी को अँगुली से उठा कर उसका मुँह ऊपर किया तो उसने चेतन की आँखो पर बहते हुए आँसू देखे।

वह चौका। "क्यो, क्यो?...."

चेतन ने उत्तर नही दिया। केवल रुमाल से नाक साफ की। इतने वडे युवक को, जिसके बारे मे कहा गया था कि वह कवि है, लेखक है, पत्रकार है, इस प्रकार रोते देख कर डायरेक्टर धर्म-संकट मे पड गया। वह खिन्न-सा हो कर हँसा। चेतन के कन्धे को थपथपाते हुए उसने उसे सान्त्वना देने की कोशिश की, पर चेतन और भी रो पड़ा। तभी अम्बर, मरवारीद, सुरैया, अनारकली सभी लडके उस छोटे-से कमरे मे घुस

श्राये । डायरेक्टर ने कड़क कर सब को बाहर भेज दिया, श्रौर पुचकारते हुए उसने चेतन ने कहा—"क्या बात है ?"

तब बडी कठिनाई से श्रपने-श्रापको सम्हाल कर चेतन उठ खडा हुश्रा । श्रपने कपड़ो को उतारने का प्रयास करते हुए उसने कहा, "मैं जाना चाहता हूँ ।"

डायरेक्टर फिर हँसा । उसकी यह हँसी स्नेह श्रौर दया से श्रोत-प्रोत थी । डायरेक्टर कठोरता के लिए प्रसिद्ध था । यदि चेतन की श्राँखो में श्राँसू न होते श्रौर वह पास न दिये जाने के कारण क्रोध से चले जाने की धमकी देता तो डायरेक्टर उसे कान पकड़ कर बाहर निकाल देता । किन्तु चेतन तो रो रहा था । वह जाने के लिए कह रहा था, पर उसके पाँव वही जमे थे; कपडे उतारने के लिए उसने हाथ उठाया था, पर वह हाथ कपड़ो को थामे उसी प्रकार निश्चल पडा था । श्रौर उसकी श्राँखो के श्राँसू थमने के बदले श्रौर भी वह निकले थे ।

डायरेक्टर ने एक ऐक्टर को श्रावाज दी श्रौर कहा कि देखो बाहर गेलरी में दो महाशय खडे हैं । उनको ले जा कर श्रव्वल दर्जे में बैठा दो । श्रौर फिर जाते-जाते उसे रोक कर कहा—"यदि वे चले गये हों तो उन्हें इधर-उधर ढूंढ लेना, यही माल या स्कैंडल-पॉयंट पर होंगे ।"

चेतन के श्राँसू श्राप-से-श्राप थम गये श्रौर वह फिर बैठ गया । वह चाहता था कि उसके श्राँसू बन्द न हो श्रौर वह रुके नही, भाग जाय । पर वह बैठ गया । श्रौर इतनी-सी बात पर बच्चो की तरह इस प्रकार रो उठने पर उसे खेद होने लगा ।

डायरेक्टर ने उसके श्राँसू पोछे, पेंट खत्म किया । भवो श्रौर पलको को सँवार कर श्राँखो के नीचे हल्की-सी स्याही मल दी श्रौर एक बार परीक्षक की दृष्टि से उसे देख कर प्यार से चूम लिया । चेतन चौका, पर उसे क्रोध नही श्राया । उसकी श्राँखें शीशे की श्रोर उठ गयी । यह श्रजीब बात थी कि श्रम्बर श्रौर मरवारीद की श्रपेक्षा वह कही श्रधिक लड़की दिखायी देता था । डायरेक्टर के इस चुम्बन से उसे एक विचित्र प्रकार

की सहानुभूति, एक अजीब तरह की शांति मिली। उसने डायरेक्टर की ओर देखा। दारोगा की आँखों मे जो वासना थी, उसका वहाँ लेश भी न था। कुछ उस प्रकार का स्नेह उनमे वर्तमान था, जो रूठे हुए बच्चे के मनाये जाने पर उसे प्यार से चूम लेने वाले पिता की आँखो मे होता है। उसके कन्धे को थपथपा कर डायरेक्टर ने उससे कहा कि वह ऐनक उतार ले और तैयार रहे, क्योंकि उसे पहले ही दृश्य में जाना है।

चेतन ने एक दृष्टि दर्पण मे डाली और ग्रीन-रूम से बाहर निकल आया। तभी उसे मालूम हुआ कि उसके रोने की खबर एक विंग से दूसरे विंग तक चली गयी है। सभी पात्र उसकी ओर विचित्र दृष्टि और विचित्र मुस्कानों से देख रहे थे। उनकी मुस्कानों का सामना करना चेतन के लिए दुष्कर हो गया। इस सारे व्यापार से उसे वितृष्णा होने लगी। तभी उस व्यक्ति ने, जो उन दोनो महाशयो को देखने गया था ग्रीन-रूम मे आ कर कहा, "जी, वे तो मिले नही।"

"चिल्लाते क्यों हो!" डायरेक्टर ने दाँत पीसते हुए धीरे-से कहा।

यद्यपि डायरेक्टर ने बडे धीरे स्वर से उस व्यक्ति को डाँट पिलायी थी, चेतन ने यह वाक्य सुन लिया। डायरेक्टर के सद्व्यवहार से उसके मन मे क्रोध का जो बवंडर शांत हो गया था, वह एक बार फिर पूरे जोर से उठ खडा हुआ। उसके लिए वहाँ एक क्षण भी ठहरना कठिन हो गया। कपडे उतारने के लिए वह ग्रीन-रूम की ओर बढा कि नाटक की तीसरी घंटी बजी और पर्दा उठ गया। प्रार्थना आरम्भ हो गयी। इससे पहले कि वह अपने निश्चय को पूरा कर पाता उसके हाथ मे किसी ने सितार दे दी और वह अम्बर, मरवारीद, सितारा, दिलाराम और दूसरी सखियो के साथ नाटक के पहले दृश्य के लिए पर्दे के पीछे जा कर बैठ गया। बडी कठिनाई से वे दृश्य के अनुसार बैठ पाये थे कि पर्दा उठा और नाटक आरम्भ हो गया।

मुगल सम्राट अकबर महान के रनिवास की एक बारादरी का दृश्य था। यह बारादरी रनिवास के आँगन से दूर होने के कारण यौवनमाती

दासियो की आरामगाह थी। वहाँ वे उस समय बडी-बूढियो की दृष्टि से परे, उनके तानो-निशानो से दूर अपने अवकाश का समय बडे आराम से गुजार रही थी।

एक बैठी चौसर खेल रही थी। कुछ शतरंज की चालो मे संसार को भुलाये हुए थी। एक तलबवाली ने पानदान खोल रखा था। लेकिन इस एकान्त स्थान का पूरा लाभ जॉफरान और सितारा उठा रही थी। चंचल और मुँहफट लडकियाँ थी—गाने बजाने की शौकीन! लेकिन संगीत से अधिक संगीतज्ञो की भाव-भंगियो की नकल करने ही से दिलचस्पी रखती थी। पर्दा उठने पर जॉफरान सितार के कान उमेठ रही थी और संगीतज्ञो की भाँति किसी तार को छेड कर देख लेती थी कि ठीक भी कसा गया है या नही।

[नाटककार की तो यह इच्छा थी कि इस स्थल पर जॉफरान और सितारा गायें; लेकिन न चेतन को वैसा अच्छा गाना आता था और न सितारा की भूमिका मे काम करने वाले लडके को, इसलिए डायरेक्टर ने उन्हे केवल सितार के कान उमेठने और तारो को छेडते रहने का आदेश दिया था।]

दूसरी ओर दिलाराम, अम्बर और मरवारीद के साथ बैठी भेद-भरी बातो मे मग्न थी। पीढी पर बैठी हुई दिलाराम अपने बढते हुए सौन्दर्य के कारण सब से बढी-चढी दिखायी देती थी।

[उधर जब प्रार्थना हो रही थी, यह दृश्य जल्दी-जल्दी तैयार किया गया था। चेतन सितार ले कर बैठा ही था कि पर्दा उठ गया। प्रार्थना—जो उन्होने सोचा था कि पाँच-सात मिनट लेगी—केवल तीन मिनट ही में समाप्त हो गयी थी और चेतन (जॉफरान) अभी सितार को एक बार भी न छेड पाया था कि दिलाराम ने सम्वाद आरम्भ कर दिया]

दिलाराम—ऐ है तौबा, क्या टन-टन लगा रखी है (नाटक मे था—क्या गला फाड रही है) कान पडी आवाज सुनायी नही देती।

मरवारीद—दोपहर मे दो घडी का आराम भी तो कम्बख्तो ने

हराम कर दिया ।

जॉफरान—(चेतन—जिसे सितार छेडना बिलकुल भूल गया था, यद्यपि डायरेक्टर की खास हिदायत थी) हम तुम्हें क्या कह रहे है ?

[जब उसने गर्दन आगे बढा कर यह वाक्य कहा तो कुछ लोग हँसे। चेतन ने यह भी देखा कि नेपथ्य मे खड़ा हुआ डायरेक्टर हाथ की दोनो उँगलियाँ आँखों पर रख कर घबराया हुआ-सा उसे कुछ संकेत कर रहा है, किन्तु उधर मरवारीद अपना वाक्य खत्म करने को थी]

मरवारीद—घर का घर सिर पर उठा रखा है। बात करनी दुश्वार कर दी है, अभी बेचारी कुछ कह ही नहीं रही ।

जॉफरान—(चेतन—गर्दन बढा कर और हाथ मटका कर) फिर जिसे बातें करनी हों, कही और जा बैठे ।

[लोग फिर हँसे। डायरेक्टर ने और भी घबरा कर अपनी दोनो उँगलियाँ आँखो मे गड़ायो पर चेतन कुछ भी न समझा ।]

अम्बर—पर यह तानसेन की बच्ची सितार जरूर बजायेंगी ।

जॉफरान—(डायरेक्टर का आदेश था कि इस स्थल पर चेतन सितार फिर छेडने का प्रयास करे और अम्बर की बात सुन कर उसे छेड़ दे। किन्तु चेतन यह निर्देश भूल गया और बोला) मुँह सम्हाल कर बात कर अम्बर। वाह, बडी आयी कही की गालियाँ देने वाली। तू ही लगती होगी तानसेन की होती-सोती ।

दिलाराम—नही मानेगी जॉफरान। पटर-पटर बके जा रही है। मैं जा कर छोटी बेगम से कह दूँगी ।

जॉफ़रान—(सिर को झटका दे कर) ऐ तो मना किसने किया किया है। एक नही हजार बार ।

चेतन ने सिर को झटका दिया तो उसकी ऐनक खिसक कर नाक पर आ गयी। उसका दिल धक-सा रह गया। उसे समझ आ गयी कि

उससे क्या गलती हुई है । अपने उस क्रोध के आवेश और घबराहट में वह ऐनक समेत स्टेज पर आ बैठा था ।

उस समय जब वह ऐनक उतारने को था, क्रुद्ध-गम्भीर डायरेक्टर लम्बे-लम्बे डग भरता स्टेज पर आया और चेतन से ऐनक ले कर चला गया ।

दर्शकों मे एक ठहाका गूंजा । सम्वाद फिर चलने लगा, लेकिन चेतन के सामने उसकी भूल जैसे साकार हो कर आ गयी । अपने ऐनक पहने हुए रूप, डायरेक्टर की घबराहट और दर्शको के उपहास का खयाल बार-बार आ उसे परेशान करने लगा । पर्दे उठते-गिरते रहे । चेतन की भूलें, डायरेक्टर की परेशानी और उसके साथ काम करने वाले अभिनेताओ का उपहास बढता रहा, और जब चेतन का पार्ट खत्म हुआ तो डायरेक्टर ने कुछ ऐसी दृष्टि से उसे देखा कि शेष नाटक देखने का मोह छोड कर वह कपडे बदल, बाहर को भागा ।

थियेटर से निकल कर वह अभी दो पग ही चला होगा कि सहसा बिजली चमकी, माल की दुकानो के कंगूरे घिरी हुई घटा को पृष्ठ-भूमि मे चमक उठे और वर्षा का पहला तरेडा उसके मुंह पर पडा ।

इकहत्तर

कड़वी आँखें मलता हुआ चेतन हडबडा कर उठा । अन्दर के दरवाज़े में कविराज खडे मुस्करा रहे थे ।

रात चेतन को नीद न आयी थी । नाटक को बीच ही में छोड कर वर्षा मे भीगता हुआ, वह घर चला आया था। थियेटर में रुक कर अपने सहकारियो के उपहास का भाजन बनने की अपेक्षा उसने इन्द्र देवता का कोप सहना श्रेयस्कर समझा था । अपनी असफलता पर वह इतना निराश

और खिन्न था कि यदि उस समय वर्षा न हो रही होती तो वह रात भर शिमले की सडकों पर घूमता रहता । उसके सपनों की पतंग, जिसे वह एक महीने से निरन्तर ढील दिये जा रहा था, अचानक झपकी खा कर कट गयी थी । उसे आकाश का तारा बना देखने की हसरत उसके मन ही में रह गयी थी । कटी हुई डोर के अतिरिक्त उसके हाथ मे कुछ भी न रहा था । इसी डोर को खीचता, उलझाता-सुलझाता, जलता-भुनता, खीजता-भीगता वह चला आया था ।

धार्मिक वातावरण में पलने पर भी चेतन के अर्ध-चेतन मन मे कही भी भाग्य में आस्था न थी, इसलिए सहसा महाशय जीवनलाल के आगमन और उसके बाद होने वाली घटनाओ को भाग्य का विधान समझ कर उसे सन्तोष न हो रहा था । जब वह कपड़े उतार कर बिस्तर मे लेटा तो उस घटना के विश्लेषण मे लीन हो गया और उसकी नीद उड़ गयी । वह कभी महाशय जीवनलाल के घटियापन को कोसता, कभी निर्देशक की तानाशाही को और कभी अपनी भावुकता को । बार-बार एक ही घटना को सब ओर से देख कर और खीज कर जब वह सोने का प्रयास करता तो घूम-फिर कर वही घटना फिर उसके सम्मुख आ जाती । उसने उठ कर पढने की और फिर लिखने की कोशिश की, कमरे में चक्कर भी लगाये, कनपटियो को सहलाया भी; किन्तु जब भी उसने लेटने अथवा सोने का प्रयास किया, उसके कानो में महाशय धर्मचन्द और जीवनलाल के ठहाके, अभिनेताओ की कानाफूसियाँ, निर्देशक की डाँट और दर्शको के अट्टहास गूँजने लगते । प्रातः के चार बजे होगे जब उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह अब दुबारा थियेटर न जायगा, शेष दो दिन के प्रोग्राम में भाग न लेगा और सवेरे ही कविराज जी से कह देगा कि वह वापस जाना चाहता है ।

न जाने इस फैसले से उसे सन्तोष हो गया, अथवा उसका मस्तिष्क और शरीर दोनो थक कर चूर हो चुके थे कि यह निश्चय करके जब वह लेटा तो उसे तत्काल नीद आ गयी थी ।

०

"कहो अभी तक सो रहे हो ?" कविराज जी उसकी चारपाई पर आ बैठे और उसकी पीठ को थपथपाते हुए बोले, "रात नाटक अच्छा हो गया ।"

"अच्छा ही हो गया होगा ।" चेतन ने अन्यमनस्कता से कहा, "मेरे तो सिर में दर्द होने लगा था, मैं चला आया था ।"

"ओह !" कविराज ने खेद प्रकट करते हुए कहा, "अब तो ठीक है, तुम्हारी तबियत

"जी !" चेतन ने कहा, यद्यपि उस समय सचमुच उसके सिर मे पीडा हो रही थी।

"कुडी खुलवाने मे तो कष्ट नही हुआ ?" कविराज जी ने सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा । "मैंने मन्नी से कह दिया था ।"

"जी नही !"

और चेतन उनसे कहना चाहता था कि अब उसने उनकी पुस्तक तो समाप्त कर दी है, इसलिए वह जाना चाहता है । पर उसे बात आरम्भ करने का अवसर दिये बिना कविराज जी ने अपनी बात शुरू कर दी ।

उन्होने पहले उस पुस्तक की प्रशंसा की, जो उसने एक दिन पूर्व समाप्त करके उन्हें दी थी; कहा—उन्हे इस बात का सन्तोष है कि काम के साथ-साथ चेतन ने अपना स्वास्थ्य भी ठीक कर लिया है । फिर शिमले के मौसम का जिक्र किया कि जून, जुलाई और अगस्त मे वर्षा का जोर रहता है, सेहत बढाने वाला मौसम तो सितम्बर के महीने ही का होता है । और फिर उन्होने बताया कि अभी उनका सितम्बर तक वहां रहने का विचार है और वे चाहते है कि चेतन भी तब तक वही रहे और सितम्बर के स्वास्थ्यवर्धक महीने मे पूर्ण रूप से अपना स्वास्थ्य सुधार ले । अन्त मे जैसे उन्हें अचानक खयाल आ गया हो, वे बोले "बेकार समय मे यदि तुम चाहो तो मेरे लिए एक उपन्यास लिख कर दे सकते हो ।"

"उपन्यास !" चेतन की आँखो में आश्चर्य था ।

"तुम अपने लिए जो उपन्यास लिख रहे हो," कविराज जी ने कहा, "उसके कुछ अंश मैंने तुमसे सुने हैं। मुझे वे बड़े सुन्दर लगे हैं। तुममे प्रतिभा है। एक छोटा-सा उपन्यास तुम मेरे लिए भी लिख दो। अभी तो हम डेढ़ महीना यहाँ रहेंगे।"

"पर आप क्या करेंगे उपन्यास ?" चेतन ने अपने जाने की बात भूल कर विस्मय से पूछा।

"अरे भई," अपनी मुस्कान को तनिक और फैलाते और अपने मनोरथ को तनिक और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, "तुम किसी ऐसे युवक की कहानी लिख सकते हो जो अपने हाथों अपने यौवन का सत्यानाश कर लेता है। यौवन-सम्बन्धी विषयो मे बालक की जिज्ञासा, अज्ञानी माता-पिता का बच्चे के प्रश्नो को टालना, बचपन की इस जिज्ञासा का बढ़ना, कुसंगति, स्कूल कॉलेज के दूषित वातावरण, नवयुवक का साथियो से अपनी जिज्ञासा को प्रकट करना, उसका कुमार्गों मे जा पडना इन सब बातो के कारण यौवन की बहिया मे युवक के पाँवो का डगमगा जाना और आचरण भ्रष्ट हो कर जवानी के अमूल्य रत्न को अपने हाथो गँवा देना, रोना-पछताना और अन्त मे कविराज जी की शरण मे पहुँच कर गयी हुई जवानी को वापस पाना। बस यह उस छोटे-से उपन्यास के परिच्छेद हो सकते हैं।" और वे मूँछो मे मुस्कराये !

चेतन पहली पुस्तक लिख देने पर ही पछता रहा था। बोला, "मेरे लिए शायद ऐसा उपन्यास लिखना कठिन हो।"

कविराज हँसे। उसकी पीठ को थपथपाते हुए बोले, "तुम्हें अपनी प्रतिभा और शक्ति का पूरा ज्ञान नही।"

"मै अपना ही उपन्यास नही लिख पाया।"

"तुम प्रयास तो करो। एक परिच्छेद लिखो, देखें कैसा बनता है ?"

और सदा कठिन कामो को निडर और निःसंकोच हाथ में ले कर, उन्हे पूरा करने का सदुपदेश देते हुए, उन्होने अपने जीवन के उदाहरणों

की पृष्ठ-भूमि में उसे 'आत्मविश्वास' पर एक छोटा-मोटा भाषण दिया।

चेतन चुपचाप सुनता रहा। इससे पहले कि वह कुछ और कहता, वे उसकी पीठ को थपथपा कर उसे एक परिच्छेद लिखने का प्रयास करने का आदेश दे कर चले गये।

बहत्तर

"यह आपकी चिट्ठी आयी है बाबू जी!"

चेतन अनमना-सा लेटा हुआ था। सुबह कविराज जी के दुकान जाने के बाद ही से वह इस तरह लेटा था। नहाने-धोने और खाना खाने भी न गया था। लेटा रहा था और गत अढाई महीने की घटनाओं में खोया रहा था। बाहर जाते उसे शर्म आती थी और कविराज जी से क्या बहाना बनाये, यह उसकी समझ में न आता था। दोपहर को वे घर आये थे तो खिडकी में से उन्होंने पूछा था, 'कहो कुछ लिखा?' और जब उत्तर में वह चुप लेटा रहा था तो उन्होंने स्वयं ही कहा था, 'कोई बात नही, आज आराम करो, कल लिखना—Try, try again boys—' और वे हँसते हुए अन्दर चले गये थे। चेतन को शायद झपकी आ गयी थी। वह सपना देख रहा था कि वह सामान बांधे कालका के स्टेशन पर खडा है, पर गाडी नही आती। फिर उसने देखा कि स्टेशन तो गेटी थियेटर की पोर्च है और अनारकली का निर्देशक उसे अन्दर की ओर खीच रहा है कि उसके कान मे मन्नी के शब्द पडे। उसने आँखें खोली। जहाँ सुबह कविराज खडे थे, वही चौखट मे पत्र हाथ मे लिये मन्नी मुस्करा रही थी।

चेतन लपक कर उठा। लिफाफा मन्नी के हाथ से ले कर उसने खोला, पढ़ा और उछल पड़ा "मन्नो मै जा रहा हूँ।"

मन्नी चौखट से इधर उसके कमरे में आ गयी, "कहाँ बाबू जी ?"

"बस मैं यहाँ से जा रहा हूँ", चेतन ने उल्लास से कहा, "यहाँ से जालन्धर जाऊँगा, मेरी साली की शादी है, फिर वहाँ से लाहौर !"

"आपकी बीवी भी तो वहीं होगी ?" अपने पीछे किवाड़ भेडते हुए उसने कहा और उसके होंटो पर एक अरमान-भरी मुस्कान फैल गयी।

अपराह्न का समय था। कविराज खाना खा कर अपनी पत्नी को साथ लिये बाहर चले गये थे और नन्हा शायद सो रहा था। चेतन ने मन्नी की उन मुस्कुराती हुई आँखो मे वही चमक देखी, जो उसने कभी अपने झरोखे में बैठी प्रकाशो की आँखों में देखी थी। वह दरवाज़े के साथ पीठ लगाये खड़ी मुस्करा रही थी। चेतन ने देखा, मिस्सी की कालिमा उसके दाँतो की अवलि को और भी चमका रही है। उसके शरीर में झुरझुरी-सी उठी। उसने उँगलियाँ चिटकायीं और अंगों को झँझोड़ती-सी अँगड़ाई ली।

"फिर कब आयेंगे बाबू जी ?" मन्नी चहकी।

"अब मैं नही आऊँगा, मन्नी, मैं इतने ही से ऊब गया हूँ।"

"बीवी होती तो देखती कैसे ऊबते ?" और वह हँसी।

उस हँसी में न जाने कैसी बात थी कि चेतन का शरीर तन गया। इस तनाव को दूर करने के लिए वह उठ कर कमरे में चक्कर लगाने लगा। लेकिन घूमते-घूमते उसने दरवाज़े का पर्दा खींच दिया और खिड़की के पट लगा दिये। मन्नी वहीं खड़ी मुस्कराती रही। उसकी आँखो में तृष्णा की चिनगारी, जो चेतन को शिमला आते हुए दिखायी दी थी, जैसे अपनी राख को हटा कर सहसा चमक उठी। घूमता-घूमता चेतन उसके पास जा खड़ा हुआ।

"हमको कहाँ याद रखोगे बाबू जी !" कनखियों से उसने चेतन की ओर देखा।

"तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ, मन्नी !" चेतन का स्वर आर्द्र हो चला

"तुम अगर यहाँ न होती तो मेरे लिए यह अढाई-तीन महीने बिताना कठिन हो जाता ।" उसने मन्नी का हाथ अपने हाथ मे ले लिया, "मुझे तुम्हारे कारण कितना सुख, कितनी तसल्ली, कितना आराम मिला है," उसने मन्नी के हाथ पर धीरे-धीरे अपना हाथ फेरा, "तुम्हारे सामने अपना दुख-दर्द खोल कर मै कई बार हल्का हुआ हूँ ।"

वही दरवाजे से पीठ लगाये मन्नी मन्त्र-मुग्ध-सी सुनती रही । चेतन उसके हाथ को अपने हाथ मे लिये प्यार से उस पर अपना हाथ फेरता रहा । मन्नी ने विरोध नही किया । उसके शरीर मे कई बार सिहरन उत्पन्न हुई, पर वह बोली नही । और जब कोने से पीठ लगा कर चेतन ने उसको अपनी ओर खीचा तो वह अनायास उसके वक्ष से आ लगी । क्षणिक आवेश मे चेतन ने उसे अपने सीने से भीच लिया । कुनमुनाती-सी वह उसके शरीर से चिमटी रही । अपना मुँह भी उसने उसके वक्ष मे छिपा लिया और चेतन केवल उसका गाल ही चूम सका ।

तभी, जब वह उसकी ठोढी को ऊपर उठा रहा था, दूसरे कमरे में नन्हा रो उठा ।

नन्हे की वह रुदन-ध्वनि जैसे बिजली के अदृश्य तार-सी उन्हें छू गयी । किवाड़ खोल कर मन्नी अन्दर चली गयी और चेतन अपनी चारपाई पर आ गिरा । वायु के एक तीक्ष्ण झकोरे से खिडकी के पट खुल गये । क्षण भर के लिए चेतन के मस्तिष्क पर जो अँधेरा छा गया था, वह छँट गया । यह उसे हो क्या गया था ? यह मन्नी को क्या हो गया था ? वह सोचने लगा । उस क्षण मे क्या विशेषता थी ? पहले भी तो इतनी बार मन्नी आयी थी, एकान्त में आयी थी । मिनटो नही, घंटो बैठी रही थी । कभी उसके मन मे यो विकार उत्पन्न न हुआ, कभी उसको आँखो मे तृष्णा यो प्रकट न हुई । उसे जब शिमला आते समय की घटना का स्मरण होता था, वह अपने-आपको कोसने लगता था और वह समझता था कि मन्नी की दृष्टि मे कलुष नही, उसी के अपने मन मे पाप है, उसी की अपनी अतृप्ति उसे सदा भ्रम में डाल देती है । किन्तु आज यह सुन

कर कि वह जा रहा है और फिर शायद कभी न मिले, यह मन्नी को क्या हो गया ?

चेतन ने खिड़की के पट पूरी तरह खोल दिये, दरवाज़े का पर्दा हटा दिया, और फिर चारपाई पर जा लेटा। उसकी पत्नी का वह पत्र उपेक्षित-सा वहाँ पडा था। चेतन को लगा जैसे उस पत्र की आँखों से उसकी पत्नी ने उसके इस कृत्य को देख लिया है। अपने-आप पर वह झुँझला उठा, मन्नी पर झुँझला उठा, उस पत्र पर झुँझला उठा। लेकिन यह झुँझलाहट नीलाकाश में घुमड कर उठने और फिर उसी के विस्तार में विलीन हो जाने वाले बादलो-सी उसके मन में उठ कर मिट गयी और वह चारपाई पर लेटे-लेटे फिर पत्र पढने लगा।

वही चार-छः पंक्तियो का पत्र। यद्यपि लिखावट कुछ सुघर गयी थी, अक्षर टूटे-फूटे और शब्द अधूरे न थे, परन्तु उन भावनाओ का उसमें सर्वथा अभाव था, जिनकी अभिव्यक्ति की आशा चेतन अपनी संगिनी से रखता था—ये विरह के दिन उसने किस आकुलता से काटे है ? उसका मन कितना उद्विग्न रहा है ? चेतन की स्मृति उसे किस प्रकार सताती रही है, इनमें से किसी बात का उसमें आभास न था।

चन्दा उससे प्रेम न करती हो, यह बात तो न थी; लेकिन उसका प्यार धरती से फूट उठने वाले झरने की तरह न था, जो अपने वेग को दबा नहीं सकता, मुखर हो कर निकल पड़ता है; बल्कि किसी शांत सरोवर की तरह था, जो घने पेडो की शीतल छाया में मौन, मूक अपने किनारो में संयत रह कर निकट आने वाले की अशांति और श्रान्ति हर लेता है। किन्तु चेतन की चंचल प्रकृति कल-कल नाद करते हुए बन्धन तोड़ कर वह निकलने वाले चंचल, चपल झरने को पसन्द करती थी और पत्र पढते-पढते उसे पत्नी के बदले अपनी साली का ध्यान हो आया।

उन चार-छः पंक्तियो के पत्र से चेतन को पता चल गया कि था चार दिन बाद नीला का विवाह हो रहा है, उसका भावी पति बर्मा में नौकर है और चेतन को तत्काल बस्ती पहुँचना चाहिए। चेतन के सामने वे मधुर

क्षण घूम गये जो उसने नीला की संगति मे विताये थे ।

नीला का विवाह हो रहा है । उसे प्रसन्न होना चाहिए था, किन्तु उसके मन मे प्रसन्नता का लेश भी न था । विवाह में शामिल होने के बहाने नाटक, क्लब और फिर कविराज के चगुल से छुट्टी पाने और इतने दिनों के बाद घर जाने के विचार से उसे जो प्रसन्नता हुई थी, वह इस बात का ध्यान आते ही सहसा लुप्त हो गयी कि नीला सदा के लिए उससे बिछुड रही है । बर्मा—बर्मा मे क्यो हो रही है नीला की शादी ? क्या जालन्धर या होशयारपुर, अमृतसर, लाहौर, गुजरांवाला, गुरदासपुर या इनके निकटवर्ती नगरो और कस्बो मे उसके लिए कोई वर नही मिला ? पण्डित बेणी प्रसाद की मूर्खता पर चेतन का मन खीज उठा ।

लेकिन तभी किवाड खुला और मन्नो नन्हें को गोद मे लिये हुए चौखट में आ खडी हुई । उसके होट उसी तरह मुस्करा रहे थे, किन्तु उसकी आंखो मे आमंत्रण-सा देती हुई रेखा मिट गयी थी । काली-कजरारी आंधी ने जैसे क्षण भर के लिए निर्मल आकाश को ढँक लिया था, पर उसके गुज़र जाने पर फिर वह स्वच्छ और निर्मल हो उठा था । स्वयं चेतन भी शायद अब मन्नी की मुस्कराती हुई आँखें न देख रहा था । उसकी आंखो में उसे नीला की मुस्कान दिखायी दे रही थी—नीला की, जो उससे योजनो दूर जा रही थी; शायद सदा....सदा के लिए । पत्र को लिये हुए वह उठा ।

"मन्नी मैं ज़रा दुकान पर जा रहा हूँ," यह कहता हुआ वह सीढियाँ उतरने लगा ।

मन्नी ने उसके पीछे किवाड़ लगा लिये और एक लम्बो साँस भरते हुए नन्हे को अपनी गोदी से चिमटा लिया ।

तिहत्तर

टैक्सी कालका की ओर उड़ी जा रही थी। किसी बड़े सम्पन्न सेठ की तरह चेतन टाँग-पर-टाँग रखे, सीट से पीठ लगाये, ड्राइवर के बराबर बैठा था और उसके मस्तिष्क में निरन्तर कविराज जी के शब्द गूँज रहे थे।

मन्नी से विदा ले कर जब वह उनके पास गया था और उसने उन्हें अपनी पत्नी की चिट्ठी दिखायी थी और कहा था कि वह तत्काल जाना चाहता है तो पहले उन्होंने उसे रोकने का प्रयास किया था।

"साली का विवाह तुम्हारे स्वास्थ्य से अधिक महत्व नहीं रखता, भाई।" उन्होंने कहा, "तुम्हें चाहिए कि तुम अपने शिमले आने का पूरा-पूरा लाभ उठाओ, सितम्बर तक यहाँ रहो और फिर पूर्ण रूप से स्वस्थ हो कर जीवन-संग्राम में जुटो।" लेकिन जब चेतन किसी तरह भी न माना तो उन्होंने उसकी पीठ थपथपाते हुए उसे तसल्ली दी कि उनकी सहायता का हाथ सदैव उसके सिर पर रहेगा और यदि वापस जा कर समाचार-पत्र की नौकरी के सम्बन्ध में उसे कुछ कठिनाई हो तो वह सीधा उनके पास चला आये। वे उसके लिए जो भी होगा, करेंगे। अन्त में जब वह चलने लगा था, उसे रोक कर उन्होंने कहा था :

"मेरे बच्चे, तुम मेरे पास तीन महीने तक रहे हो। चलते समय मैं तुम्हें दो-एक नसीहतें करना चाहता हूँ। यदि मेरा लड़का विवाहित होता तो उसको भी मैं ऐसी ही नसीहत करता।"

चेतन दत्तचित्त हो कर सुनने लगा था।

"वैद्य के रूप में अपने इस लम्बे अनुभव में," कविराज जी ने सहसा गम्भीर हो कर बुजुर्गाना लहजे में कहा, "मुझे पता चला है कि सौ में से अस्सी स्त्री-पुरुष पाँच-पाँच बच्चे पैदा करने पर भी नहीं जान पाते कि

वैवाहिक जीवन का वास्तविक आनन्द क्या है ? सफल वैवाहिक जीवन सफल यौन-सम्बन्ध पर निर्भर है और सफल यौन-सम्बन्ध, स्वस्थ शरीर और पति-पत्नी के सगी भाव पर !"

और अपनी रौ मे कविराज वैवाहिक जीवन मे यौन-सम्बन्ध पर उसे एक छोटा-मोटा लेक्चर देने लगे :

"हमारे देश के अधिकाश वासी उस आनन्द को नही जानते," उन्होंने कहा, "भावनाहीन, आनन्द-रहित, मशीन के पुर्जो की तरह, वासना की करेंट से प्रचालित वे उस सम्बन्ध को निभाये जाते है। समय आता है कि उन्हें अपने-आप से अथवा एक दूसरे से घृणा हो जाती है। पत्नी बच्चो में जी बहलाती है और पति घर के बाहर सुख ढूंढने का विफल प्रयास करता है।"

कविराज के भाषण का एक-एक शब्द चेतन के मस्तिष्क मे ठोकरें मार रहा था। तभी वायु का एक शीतल झोका आया। चेतन का ध्यान उचट गया। बायी ओर पहाड का एक भाग सडक के ऊपर तक छाया हुआ था और यद्यपि दो दिन से वर्षा नही हुई थी तो भी उसमे से निरन्तर पानी झर रहा था, वायु के साथ उड रहा था और उस स्थल को शीतल श्रान्तिहर बना रहा था। चेतन ने सिर बाहर निकाला। उसकी ऐनक धुंधली हो गयी और मुंह ठडी फुहार से भीग गया। सीट से फिर पीठ लगा कर उसने ऐनक के शीशे रूमाल से साफ किये। बायी ओर पहाडी पर अनगिनत जंगली फूल खिले हुए थे और दायी ओर घाटी में केलू सरसरा रहे थे। चेतन मन्त्र-मुग्ध-सा बैठा इस अनुपम सौन्दर्य को देखने लगा। लेकिन धीरे-धीरे फिर उसके दिमाग मे कविराज जी के यही शब्द गूंजने लगे। साथ ही उसके सामने चंगड मुहल्ले की वह कोठरी घूम गयी, जिसमें वह सख्त गर्मी मे निचुड़ते हुए शरीर के कई बार पशु की भांति वासना का दास बना था। उसे याद आया कि उसे कभी तृप्ति नही मिली। उसे लगा जैसे वह अब भी अतृप्त है। उस पुलक का (जिसका उल्लेख कविराज जी ने अपने उपदेश मे किया था) उसे कभी आभास तक नही मिला। और उसके

कानों में अँधेरी रात में, चगड मुहल्ले जैसी ही सील-भरी कोठरी में सुने हुए कुछ शब्द गूंज गये । वह बहुत छोटा था; बहुत ही छोटा था । अपने भाई के साथ एक ही चारपाई पर सोया हुआ था कि सहसा उसकी माँ के सहमे-सहमे डरे-डरे स्वर ने उसे जगा दिया था । वह विनीत, सभीत, करुण स्वर में कह रही थी—'जाने दीजिए, मेरी तबीयत ठीक नहीं'—और नशे में चूर उसके पिता ने अत्यन्त अश्लील गालियाँ देते हुए उसे अपनी ओर खींचा था ।

किसी भयानक दुःस्वप्न की तरह वह रात उसके मस्तिष्क में अंकित हो कर रह गयी थी और विस्तृत मरु में गूंज उठने वाले किसी असहाय राही के चीत्कार की तरह उसकी माँ के वे कातर शब्द उसके कानों में गूंज उठते थे । उस रात की घटना को कल्पना में देखना, उन शब्दों को सुनना पाप समझ कर, वह अपने मन को दूसरी ओर लगाने का प्रयास किया करता था । वह उसे भूल भी जाता था, लेकिन कभी-कभी अँधेरी गुफाओं में से जाग उठने वाले प्रेतों की तरह वे शब्द उसके सामने मूर्तिमान हो उठा करते थे ।

जब से उसने कविराज जी की बातें सुनी थी, कई बार उसके सामने यह घटना घूम गयी थी; उसके कानों में वे कातर शब्द गूंजे थे और कल्पना-ही-कल्पना में उसने 'में मे, में में' करती हुई भेड़-बकरियों की तरह अगनित असहाय, अवश नारियों को वासना की छुरी का शिकार बनते देखा था ।

"हमारे यहाँ विवाह भी धर्म का अंग है," कविराज जी ने अपनी रौ में कहा था, "और जिस प्रकार धर्म रूढिगत हो कर अपने प्राण खो बैठा है, उसी प्रकार विवाह-धर्म से उसके प्राण निकल गये है । जिस प्रकार हमारे अधिकांश देशवासी बिना सोचे-समझे, भावना-रहित हो कर पूजा-पाठ, धर्म-कर्म किये जाते है, उसी प्रकार वैवाहिक जीवन को निभाये जाते है । यही कारण है कि यौन-सम्बन्ध जिस पुलक की सृष्टि करता है, उससे अगनित स्त्री-पुरुष महज अनभिज्ञ रह जाते है । दो परिचितों, मित्रों,

प्रेमियों या पुलक की वांछा रखने वाले दो शरीरो के स्थान पर यहाँ एक ओर (पुरुष में) संकोच-रहित वासना होती है और दूसरी ओर (स्त्री में) संकोचशील लज्जा; एक ओर हिंस्र पशु होता है और दूसरी ओर भीता मृगी। पत्नी जब तक संगिनी नही बनती, स्वयं भी उसी पुलक की वांछा नही रखती, जब तक पति-पत्नी मे भावनाओ का एकीकरण नही होता, वह पुलक प्राप्त नही हो सकता।"

टैक्सी चली जा रही थी। चेतन के मस्तिष्क मे कविराज का उपदेश चल रहा था :

'....विवाह की पहली रात ही सौ मे पचहत्तर वैवाहिक जीवन खत्म हो जाते है।'

'. ..विवाह की पहली रात ही अगनित पुरुष अपनी पत्नियो से घृणा करने लगते है।'

' .विवाह की पहली रात ही अगनित नव-विवाहिता पत्नियाँ अपने पतियो के प्रति अपने अर्धचेतन मे एक अवश क्रोध, एक असहाय भय, एक अज्ञात घृणा को स्थान दे देती है।'

'....विवाह की पहली रात ही अगनित पति हैरान हो कर सोचते है—क्या यही कुछ था विवाह मे ? अतृप्ति की आग मे जल कर बार-बार वे पशु बनते हैं, पर तृप्ति उन्हे नही मिलती। धीरे-धीरे यह अतृप्ति, यह घृणा, एक अभेद्य चट्टान बन जाती है और वैवाहिक जीवन की नदी उससे टक्करें मार-मार कर रह जाती हैं। उसे भेद कर अपने नैसर्गिक प्रवाह में नही बह पाती।'

टैक्सी चली जा रही थी। दोनो ओर पहाड़ छोटे होते-होते समाप्त हो चले थे! सड़क घूमती-फिरती नीचे मैदान से मिलती दिखायी देती थी। सामने की घाटी मे कालका का नगर मैदान मे बसा बड़ा सुन्दर लग रहा था। यद्यपि दिन अभी शेष था, किन्तु सूरज समय से पहले अपनी कान्ति खो कर बादलो मे छिप गया था।

चेतन ने लम्बी साँस ली। क्षण भर के लिए उसके सामने अपना

पिछला वैवाहिक जीवन घूम गया। क्या चन्दा उसकी संगिनी रही है? क्या उन्होंने कभी उस पुलक का अनुभव किया है? उसने अपने मन को टटोला; उसे तो कभी वह आनन्द प्राप्त नहीं हुआ, चन्दा को प्राप्त हुआ होगा, इसकी सम्भावना नहीं। उसने यह कभी जानने का प्रयास ही नहीं किया।

क्षण भर के लिए वह मन्नी को भूल गया, नीला को भूल गया। उसके सामने चन्दा अपने समस्त भोलेपन, संकोचशीलता, लज्जा के साथ आ गयी और मन-ही-मन उसने निश्चय किया कि ज्यों ही उसे अवसर मिला, वह चन्दा को अपनी संगिनी बनाने का प्रयास करेगा। उसे समझायेगा कि जब तक पति-पत्नी में स्वामी-भृत्या का-सा नाता है, जब तक वह केवल कर्त्तव्यवश अपने शरीर का समर्पण करती है, उन्हें वास्तविक पुलक प्राप्त नहीं हो सकता।

चौहत्तर

"एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को, चलो कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को!"

एक पाँव ताँगे के बम पर और दूसरा अगले पायदान पर रखे, खुले गले का कुर्ता और एड़ियों के नीचे लटकता हुआ तहमद पहने ताँगे पर खड़ा, बायें हाथ से लगाम को हिलाता और दायें से मूँछों को ताव देता हुआ ताँगे वाला आवाज़ लगा रहा था, "चलो भई कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को, चलो कोई एक सवारी...."

चेतन को बड़ी सड़क पार करके बस्ती के अड्डे की ओर बढ़ते हुए देख कर उसने आवाज़ लगायी।

"बैठिए बाबू साहब, बस एक ही सवारी दरकार है।"

अगली सीट पर एक जगह ख़ाली थी। चेतन चुपचाप वहाँ जा कर

बैठ गया । लेकिन ताँगे वाला चला नही । तहमद को ऊपर खोसते हुए, घोडे को हंटर जमा कर उसने ताँगे को वही अड्डे पर एक चक्कर दिया और यद्यपि चार सवारियाँ पूरी हो चुकी थी तो भी उसने जोर से हाँक लगायी :

"चलो भई कोई एक सवारी वस्ती गज़ाँ को !"

०

चेतन चुप बैठा रहा । पहले की तरह वह जरा भी नही झल्लाया । एक और सवारी के पैसे भी उसने नही दिये । अपने विचारो मे मग्न बैठा, वह चुपचाप सामने के मकान की ओर देखता रहा, जिसके परनाले से गन्दा पानी निरन्तर अड्डे के नाले मे गिर रहा था ।

वह प्रातः जालन्धर पहुँचा था । घर पहुँच कर माँ के पाँव छुए और आशीर्वाद पाने के वाद जव उसने चन्दा के वारे मे पूछा तो उसे पता चला कि चन्दा तो सात दिन से वस्ती गयी हुई है । नीला की वारात आज ही आने वाली है और उसका साला रणवीर दो वार चेतन के सम्वन्ध में पूछ गया है ।

तव सितार और दिलरुवा, जिनसे उसका प्रेम कव का खत्म हो गया था और जिनके साथ चिटें लगा कर, उसने सुन्दर अक्षरो मे 'चन्दा के लिए' लिख रखा था, एक ओर रख कर, नहा-धो, कपडे वदल कर वह वस्ती की ओर चल दिया ।

चल तो वह दिया था, लेकिन उसका मन जाने को जरा भी न हो रहा था । कुछ अजीव-सा संकोच उसके मन मे कही से आ बैठा था । कविराज का उपदेश, चन्दा से मिलने का सुख, वैवाहिक जीवन का पुलक —सव कुछ उस समय उसे भूल गया था । उसके सामने आ गयी थी नीला, उसके साथ वीती हुई घडियाँ, इलावलपुर के वे दिन, उनकी अपनी मूर्खता, नीला की होने वाली शादी और वीसियों दूसरी वातें । और उसे संकोच होता कि इलावलपुर की अपनी उस मूर्खता के वाद, वह कौन-सा मुँह ले कर नीला के सामने जायगा ।

कभी वह सोचता था कि नीला उस घटना को भूल गयी होगी, अपनी शादी में खुश होगी और यह सोच कर वह तेज-तेज कदम रखने लगता। लेकिन फिर उसे खयाल आता, यदि वह न भूली, यदि वह खुश न हुई....और उसकी गति मन्द पड जाती। इसी प्रकार तीव्र-मन्द गति से चलता-चलता वह बस्ती के अड्डे पर पहुँच कर ताँगे मे आ बैठा था। लेकिन उसकी विचारधारा न टूटी थी। उसे मालूम नही कब ताँगा चला, कब बस्ती के अड्डे पर पहुँचा, वह कब उतरा और बस्ती का टेढा-मेढा बाजार तै करके पंडित वेणी प्रसाद के मकान के सामने जा पहुँचा।

डेवढी पार करते ही सब से पहले जिससे उसका साचातकार हुआ, वह थी नीला। आँगन के कोने मे नाली पर अपनी पतली बाँह बढाये हुए वह बैठी थी! उसकी कलाई पर जोकें लगी हुई थी और उसका लोहू पी कर धीरे-धीरे फूल रही थी!

पल भर के लिए चेतन उस गोरी-गोरी कलाई और उससे चिपटी हुई उन भूरी-भूरी जोको को देखता रहा। फिर वहाँ से हट कर चेतन की दृष्टि उसके मुख पर गयी। उसे लगा जैसे वह कुछ पीला हो गया है। उसे लगा जैसे नीला कुछ दुबली भी हो गयी है। लेकिन उसने यह भी महसूस किया कि पीली-दुबली हो कर वह पहले से भी सुन्दर दिखायी देने लगी है। वह शायद माईयाँ बैठी थी, क्योंकि उसके कपड़े मैले थे और उन पर जगह-जगह उबटन के धब्बे पडे हुए थे। उन मटमैले कपडो में भी उसकी देह का सोना जैसे कुन्दन बन कर दमक उठा था। यौवन अभी पूरे वेग से न उतरा था और वह उस अर्ध विकसित कली-सी लगती थी, जिसे किसी के स्नेह-स्पर्श ने अभी फूल न बनाया हो।

एक रूखी-सी 'नमस्ते' चेतन की ओर फेंक कर नीला फिर अपनी कलाई से चिमटी हुई जोको को देखने लगी।

चेतन का समस्त संकोच जैसे पूरे वेग से लौट आया। उसके पास से हो कर वह चुपचाप दालान की ओर बढ गया और लोहे की खाली कुर्सी

पर जा बैठा ।

क्या शिमले से इतना फासला उसने केवल यह रूखी-फीकी 'नमस्ते' पाने के लिए तै किया था ? उसे खेद हुआ, वह क्यो चला आया इस विवाह में । इलावलपुर की घटना के बाद उसे कभी नीला के सम्मुख न आना चाहिए था ।

उसने कनखियों से नीला की ओर देखा। चेतन की ओर पीठ किये वह लगातार उन जोको की ओर देख रही थी । एक बार भी पलट कर उसने चेतन की ओर न देखा था । शायद नीला उस घटना को न भूली थी, उसने उसे क्षमा न किया था । वह क्यों चला आया वहाँ ? और उसका जी चाहा कि वापस भाग जाय । लेकिन तभी उसकी बडी साली गोद में अपने डेढ-दो वर्ष के रिरियाते बच्चे को उठाये हँसती-मुस्कराती वहाँ आ गयी ।

"नमस्ते जी !" बच्चे के मुंह में निस्संकोच अपना बडा बेडौल स्तन देते हुए उसने चेतन का अभिवादन किया ।

निमिष भर के लिए चेतन के कानो में नीला के वे शब्द गूंज गये, जो उसने इलावलपुर मे अपनी इस बडी बहन के गृह-जीवन के बारे में कहे थे । इस फूहड को कौन इंजीनियर पसन्द करेगा—चेतन ने सोचा, किन्तु प्रकट उसने हँस कर कहा, "नमस्ते मीला जी, कहिए प्रसन्न तो हैं ।"

"कहिए कब आये ?" मीला जी बोली, "आपकी राह देखते-देखते तो आँखें पक गयी ।"

"आज ही सुबह आया हूँ," चेतन बोला और फिर उसने नीला की ओर देख कर कहा, "नीला की बाँह में क्या कष्ट है ?"

"फोडा उठ आया था कलाई पर, हकीम ने जोकें लगाने का आदेश दिया है ।"

"ब्याह स्थगित क्यो नही कर दिया आप ने ?"

"लडके को (दुल्हे को) फिर छुट्टी नही मिल सकती । बड़ी मुश्किल से एक महीने की छुट्टी ले ' ' आया है । सेना की नौकरी ठहरी, फिर निकट

हो तो भी कुछ हो सकता है। लेकिन बर्मा से तो बार-बार नही आया जा सकता।"

"वर्मा!" चेतन के दिल को धक्का-सा लगा, "क्या करता है वह?"

"मिलिट्री एकाऊंटेंट है रंगून मे।"

तब चेतन के सामने नीला का पीला दुर्बल मुख घूम गया। उसके गले मे गोला-सा आ कर अटक गया। आर्द्र हो कर उसने कहा, "लेकिन आपने बडी दूर तै की नीला की शादी!"

उत्तर मे उसकी साली ने बताया कि लड़का अढ़ाई सौ रुपया मासिक पाता है और नाते में उसका देवर होता है—उसके ससुर के बड़े भाई का लडका। बडा नेक, सहृदय और परिश्रमी है। पाँच वर्ष हुए, उसकी पत्नी मर गयी थी। इसके बाद उसने विवाह नही किया। एक से दूसरे स्थान पर बदली होती रहती थी, एक जगह टिक न पाता था। अब उसे विश्वास है कि शीघ्र ही उसकी बदली पंजाब मे हो जायगी। इसलिए उसने लिखा था कि उसके लिए लड़की देख दी जाय।

"मुझे पता चला तो मैंने झट नीला की सगाई वहाँ कर दी।" मीला जी ने सोल्लास कहा। और अपनी इस कारगुजारी पर खुद ही हँसते हुए उन्होंने स्तन को बरबस जोंक की तरह चिमटे हुए अपने लड़के के मुँह से खींचा और हल्का-सा थपेड़ा उसकी पीठ पर जमाते हुए कहा, "कमबख्त इतना बडा हो गया है फिर भी मेरी जान खाये जाता है।" तभी शायद काम में व्यस्त चन्दा उधर से गुज़री। तब चिल्ला कर उसे चेतन के लिए कुछ लाने का आदेश दे कर चेतन की बड़ी साली पड़ोसिन से बात करने को बढ गयी और वह मर्माहत-सा वहाँ बैठा रह गया।

रगून, विधुर (पाँच वर्ष का), मिलिट्री एकाऊंटेंट—ये तीनों शब्द उसके कानों में बार-बार गूँजने लगे। चेतन ने एक बार फिर नीला की ओर देखा। उसके हाथों से जोकें उतार ली गयी थी। फोड़े का उभार कम हो गया था। रक्त-स्राव के कारण उबटन की केसर से मिला उसका पीलापन कुछ और अधिक बढ़ गया था। उसकी आयु पन्द्रह-सोलह वर्ष की

थी, पर उस समय वह तेरह की दिखायी देती थी । यह कली खिलने से पहले ही बिंध जायगी और फिर धीरे-धीरे मुरझा जायगी । चेतन के हृदय में टीस-सी उठी । यदि वह इलावलपुर मे पंडित वेणी प्रसाद से वह सब न कहता तो क्या नीला इतनी जल्दी काले कोसो दूर, एक विधुर मिलिट्री एकाऊंटेंट की दूसरी पत्नी बनने जाती । अपनी मूर्खता की गुरुता और भी बढ कर चेतन के सामने आने लगी । उसके लिए वहाँ बैठना दुष्कर हो गया । वह उठा, लेकिन तभी अपने गोल गुलगोथने मुख पर मृदु-हास बिखेरती हुई, तश्तरी थामे चन्दा वहाँ आ गयी ।

०

सारा दिन चोरो की तरह, वह नीला से बातें करने का अवसर ढूँढता रहा । वह जरूर उससे नाराज़ थी । वह इतने महीनो के बाद आया था, अगर नाराज़ न होती तो अपनी मुखर चंचलता से घर भर को गुंजा देती । विवाह में उसकी चंचलता रुक जाय—चाहे वह उसका अपना ही क्यो न हो—एसा सम्भव न था । पर वह तो ऐसे यन्त्र-चालित-सी घूमती थी, जैसे विवाह उसका अपना नही, किसी दूसरी सर्वथा अपरिचित लड़की का था । चेतन से वह कन्नी काटती रही । सहेलियो, बहनों, भावजो या पड़ोसिनो मे घिरी रही । दो-एक संक्षिप्त शब्दो या एक-आध वाक्य के अतिरिक्त उन दोनो मे कोई भी बात न हो सकी थी ।

०

'नीला कैसी हो ?'

'अच्छी हूँ ।"

और वह किसी सहेली से कोई बडी महत्वपूर्ण बात कहने चल दी ।

'नीला तुम तो दुर्बल हो गयी हो ।'

'नही तो जीजा जी ।'

और सहसा भावज से कोई आवश्यक मन्त्रणा करना उसे याद आ गया ।

'नीला अब तो तुम बड़ी दूर चली जाओगी ।'

'हाँ जीजा जी।'

'नीला तुम मुझसे नाराज़ हो?'

'नहीं जीजा जी।'

०

और इससे अधिक उत्तर चेतन उससे न पा सका था। उस छोटे-से आँगन में एक साथ इतना कुछ हो रहा था। इतनी चहल पहल थी, इतने लोग आ जा रहे थे और फिर इस सब कोलाहल में उसकी बड़ी साली अपने देवर के स्वभाव, वेतन, रहन-सहन आदि का बखान निरन्तर इस प्रकार करती रही थी कि नीला से जुदा होने से पहले उससे खुल कर बातें कर लेने, उससे क्षमा माँग कर हल्का हो लेने का अवसर चेतन न पा सका था। झल्ला कर खाना खाने के बाद वह ऊपर चौबारे में निवाड़ के पलंग पर जा लेटा था।

०

रंगून के उस विधुर मिलिट्री एकाउंटेंट की प्रशंसा न जाने चेतन को क्यों अच्छी न लगी थी। लेटे-लेटे उसे खयाल आया कि नीला के इस मौन का कारण कदाचित कहीं इतना अच्छा दुल्हा पाने का गर्व तो नहीं। उसकी साली नीचे आँगन में फिर किसी पड़ोसिन के सामने अपने देवर की प्रशंसा कर रही थी, अपनी बहन के भाग्य को सराह रही थी और लड़का रोक लेने में उसने जिस त्वरा से काम लिया था, उसकी दाद पा रही थी। चेतन के लिए वहाँ लेटे रहना कठिन हो गया। अपने भावी पति के इन गुणों को सुन कर नीला की आकृति पर कैसे भाव आते हैं, यह जानने के लिए वह आतुर हो उठा। झपाके के साथ नीचे गया। दालान के अँधेरे कोने में घुटनों पर ठोढ़ी टिकाये, अपने दोनों हाथ पैरों पर रखे, नीला चुप बैठी थी। न जाने वह अपनी बहन की कोई बात सुन भी रही थी या नहीं। चेतना-हीन, भावना-हीन-सी वह बैठी थी। बहाने से जब चेतन उसके पास जा बैठा तो नीला ने ठोढ़ी के बदले गाल अपने घुटनों पर टिका कर मुंह दूसरी ओर कर लिया। क्या नीला रो रही है? चेतन का

हृदय धक-धक करने लगा । क्या उसे इस शादी का दुख है, क्या उसके हृदय के किसी कोने मे अब भी अपने इस 'जीजा जी' के लिए प्रेम है ? और चेतन मन-ही-मन सान्त्वना भरे, पश्चात्ताप भरे, क्षमा भरे कुछ शब्द सोचने लगा । लेकिन तभी उसकी सास ने नीला को आवाज दी । (बारात आने वाली थी और उससे पहले किसी रस्म का पूरा होना आवश्यक था ।) नीला उठ कर आँगन मे गयी तो प्रकाश मे चेतन ने देखा कि नीला के मुख पर रोने जैसा कोई चिह्न नही । वहाँ दर्प की भी कोई भावना नही । राग-द्वेष, उल्लास-विषाद, सुख-दुख का कोई भी भाव वहाँ नही । एक विचित्र, कठोर, कठिन उदासीनता-सी वहाँ छायी हुई है । चेतन विमूढ-सा खडा रह गया ।

तभी बाहर बारात के आने का शोर मचा और उसकी सास ने उसे बारात के स्वागत को जाने के लिए कहा ।

०

बस्ती के एक एडवोकेट से माँगी हुई ब्यूक मोटर मे दुल्हा के रूप मे जो व्यक्ति मुँह पर सेहरा लगाये बैठा था, उसे देख कर न केवल चेतन को किसी प्रकार की ईर्ष्या नही हुई, बल्कि नीला के भाग्य और भविष्य पर उसका हृदय करुणा से भर आया ।

क्या यही वे देवर महोदय, है जिनके गुण सुबह से गाये जा रहे थे ? बस्ती के एक दरवाजे से बस्ती के दूसरे दरवाजे के बाहर धर्मशाला तक (जहाँ बारात के ठहराने का प्रबन्ध था) बारात के साथ जाते-जाते, उसके उतरने और नाश्ते आदि का प्रबन्ध करते-कराते चेतन ने इस मिलिट्री एकाउंटेंट दूल्हे को हर कोण से देख लिया । गंजी होती हुई चाँद पर जवानी की यादगार के रूप मे चंद बाल, आँखो के नीचे बढते हुए गढे, उभरे हुए जबडे, पिचके हुए कल्ले, (जहाँ हँसने से तो दूर मुस्कराने ही से झुर्रियाँ पड़ जाती थी) कृत्रिम दाँत और पैंतीस से चालीस को पहुँचती हुई उम्र—यह था वह 'लडका', जिसे श्रीमती प्रमिला देवी ने अनदेखे ही अपनी छोटी बहन के लिए चुना था ।

बारात को धर्मशाला में उतार कर जब चेतन घर पहुँचा तो उसने रसोई-घर की चौखट में खड़ी अपनी सास को अपनी बड़ी साली से कहते पाया :

"तुमने देखा न था लड़के को मीला ?"

चेतन की बड़ी साली ने आँखों में आँसू भर लिये । "मुझे क्या पता था चाची कि इतनी उम्र है । वह तो बर्मा ही में था जब मैं ससुराल गयी, मुझे तो चित्र दिखाया गया था । पिता जी नीला की सगाई जल्दी करने पर जोर दे रहे थे । अढ़ाई सौ रुपया लड़के का वेतन था । मैंने रोक लिया ।"

"बेचारी नीला !" चेतन की सास ने दीर्घ-निश्वास छोड़ा, "वह तो बच्ची है अभी ।"

अपनी सास के ये शब्द तीर की तरह चेतन के अन्तर मे पैठ गये । उसके लिए वहाँ बैठना, नीला से आँखें मिलाना कठिन हो गया । वह फिर ऊपर चौबारे मे चला गया और जा कर अनबिछे पलँग पर लेट गया ।

नीला के पिता ने जल्दी की और उसकी बहन ने अनदेखे, अनजाने (रिश्ते में अपने दूर के) देवर का केवल चित्र देख कर उससे अपनी छोटी बहन की सगाई कर दी । लेकिन उनकी इस जल्दी की तह में था क्या ? इलावलपुर को वह छोटी-सी घटना, जब नीला ने अपने इस डरपोक जीजा जी के बालो पर हाथ फेरते हुए प्रेम प्रकट किया था ! क्या वह इतना बडा दोप था ? इतना बड़ा पाप था कि उसको जीवन भर उस बूदम मिलिट्री एकाउंटेंट से बाँध दिया जाय ! उसने क्यों नीला के पिता से वह सब कहा ? क्यों वह चुप न रहा ? उसे लगा जैसे इस प्रकार नीला का गला घोटने में समस्त दोष उसी का है । आत्म-भर्त्सना से उसका गला भर आया, उसके सामने नीला और उसके दूल्हे का चित्र साथ-साथ आया और उसके जी में आयी कि जा कर नीला के सामने फ़र्श पर माथा पटक दे और उस समय तक न उठाये जब तक वह उसे क्षमा न कर दे । तभी उसने सुना कि चौबारे के बाहर दो स्त्रियाँ धीरे-धीरे मिसकौट कर रही

हैं :

"लड़की का गला घोट दिया वहन ने, ललतो की माँ । कुछ सुना तुमने, चालीस-पैंतालीस वर्ष का होगा दूल्हा ।"

"और नीला तो अभी वच्ची है," ललिता की माँ वोली ।

"मैंने तो यह भी सुना ललतो की माँ कि यह तो उसकी तीसरी शादी है ।"

"तीसरी !" ललिता की माँ आश्चर्य प्रकट कर रही थी कि किसी ने नीचे से आवाज़ दी—"ललतो की माँ, छन्ने भरने जा रही हैं हम, आओ जल्दी ।"

और ललिता की माँ अपनी साथिन को साथ लिये नीचे चली गयी ।

'तीसरी शादी !'—ये दो शब्द हथौड़े की निरन्तर चोटों की तरह चेतन के मस्तिष्क को ठकोरने लगे और लेटा रहना उसके लिए कठिन हो गया । वह फिर उठा ।

नीचे आँगन में मुहल्ले भर की स्त्रियाँ इकट्ठी हो रही थी । रणवीर और उसकी पत्नी रस्सी, डोल और मिट्टी के छन्ने (कूज़े-कुल्हड़) लिये हुए छन्ने भरने के लिए चलने को तैयार थी । चेतन के नीचे उतरते-उतरते स्त्रियाँ रणवीर को आगे-आगे किये, नीला को झुरमुट में लिये, छन्ने भरने की रस्म पूरी करने के लिए चल दी । चेतन चुपचाप उनके पीछे हो लिया ।

जब डोल भर कर ऊपर आता तो उसे फिर कुएँ मे उलटतीं, रणवीर को सतातीं, गातीं, हँसी-ठिठोली करतीं बस्ती के विभिन्न कुओ से छन्ने भरती हुई स्त्रियाँ, दरवाज़े के बाहर उस धर्मशाला की ओर को मुड़ीं जिसमें बारात उतरी थी तो चेतन उनके साथ नही गया, वह सीधा चलता गया । धर्मशाला के आगे की दो-एक दुकानें और लकड़ी के टाल पीछे रह गये । चेतन चलता गया, यहाँ तक कि वह खेतो में पहुँच गया । तब वह एक खेत को मेंड़ पर हो लिया ।

तृतीया का चाँद रात के इस पहले पहर ही में क्षितिज की गोद में सो गया था । तारे अपनी टिमटिमाती हुई ज्योत्स्ना से रात के बढ़ते हुए

"हुनर साहब !" चेतन ने व्यंग्य-भरी दृष्टि रणवीर के उल्लसित मुख पर डाली और करवट बदलते हुए कहा, "तुम चलो रणवीर, मैं कुछ देर बाद आता हूँ ।"

रणवीर आशा करता था कि हुनर साहब जैसे प्रसिद्ध कवि का नाम सुनते ही उसके जीजा जी उछल कर उठेंगे और उसके साथ नीचे को भाग चलेंगे, किन्तु चेतन की अन्यमनस्कता और उसकी दृष्टि के व्यंग्य को देख कर उसे कुछ ज्यादा अनुरोध करने का साहस न हुआ । "वे सुबह से आये हुए हैं । मैं पहले भी दो बार आपको बुलाने आया था, पर आप सोये हुए थे । हमारे सामने के मकान की बैठक मे हैं । आप वहीं आइएगा ।" एक ही साँस मे यह सब जैसे चेतन की गर्दन के पिछले हिस्से को सुना कर रणवीर चलने को हुआ । लेकिन फिर कुछ रुक कर उसने इतना और कहा, "हुनर साहब एक बडा सुन्दर सेहरा लिख रहे हैं ।"

'सेहरा'—चेतन मन-ही-मन हँसा । न जाने उस सेहरे की रचना मे किस-किस कवि की कृति पर डाका पडेगा, न जाने वह (अभी लिखा जाने वाला) सेहरा पहले कितने दूल्हो और उनके सगे-सम्बन्धियो को प्रसन्न कर चुका होगा और उसके बल पर हुनर साहब ने कितनी जेबो को हल्का किया होगा ? रणवीर की आँखो मे जो उल्लास और उसकी वाणी में जो उत्साह था, उसे देख कर चेतन को अपना उस समय का उल्लास और उत्साह स्मरण हो आया, जब पहली बार हुनर साहब से उसकी भेंट हुई थी । मन-ही-मन रणवीर की मूर्खता पर दया-भाव से हँस कर उसने आँखें मूँद ली ।

०

चेतन सारी रात जागता रहा था । बारात के आने से ले कर विवाह संस्कार के अन्तिम मन्त्र तक खोया-खोया-सा प्रत्येक रस्म को देखता रहा था । नीला के इस अनमिल विवाह पर उसे अतीव दुख था और यद्यपि वह अपने मन को कई तरह से समझा चुका था, किन्तु फिर भी हृदय के

किसी कोने में वह अपने-आपको उसका दोषी समझता था। नीला जीते जी, उसके देखते-देखते, क़ब्र मे डाली जा रही थी और वह मजबूर था। और फिर ये बाजे, ये रस्मे, ये गीत! जिस चीज़ ने उसकी मानसिक पीड़ा और भी अधिक बढ़ा दी थी, वह यही गीत थे। उसने ज्योंही दूल्हे को देखा था उसके कानो में 'सोहाग' के वे बोल गूंज उठे थे जो उसने घर में प्रवेश करते ही सुने थे :

चन्दन दे ओहले ओहले क्यों खड़ी, नी बेटी!
चन्दन दे ओहले
मैं ते खड़ी आं बाबल जी दे कोल, बाबल वर लोडिए।
नी बेटी!
केहो जेहा वर लोड़िए?
बाबल, ज्यों तारियां विचों चन्न, चन्ना विच्चों कान्ह,
कन्हैया वर लोड़िए[1]

साँझ को देर तक रहँट के पास बैठे रहने के बाद जब वह लौटा था तो घोड़ी की रस्म कभी की समाप्त हो चुकी थी और लग्नों की तैयारियाँ हो रही थी। दूल्हा वेदी के नीचे आ बैठा था, पंडित जी हवन की आग सुलगा रहे थे और आँगन मे वर और वधू पक्ष के लोग इकट्ठे हो चुके थे। चेतन चुपचाप जा कर आँगन की दीवार से पीठ लगा कर बैठ गया।

नीला का विवाह आर्य-समाजी रीति के बदले सनातनी ढंग से हो रहा था। पंडित वेणी प्रसाद स्वयं आर्य-समाजी विचारों के थे, किन्तु मध्य-वर्गीय घरानो में प्रायः लड़की के पिता का धर्म वर अथवा उसके पिता के विचारो के अनुसार बदलता रहता है। वे समस्त रस्में, जिनका अभाव

---

१. ऐ बेटी तू चन्दन के पेड़ की ओट में क्यों खड़ी है?
मै तो बाबल (पिता) के हुज़ूर में खड़ी हूँ क्योंकि मुझे वर चाहिए?
ऐ बेटी तुझे कैसा वर चाहिए?
ऐ पिता जैसे तारों में चाँद ओर चाँदों में कान्हा, वैसे ही मुझे भी कन्हैया-सा वर चाहिए!

चेतन को अपने विवाह पर खटकता था, अपने समस्त गुण-दोषों के साथ यहाँ विद्यमान थी। भाँवरें भी सनातनी ढंग से हो रही थी। जब गठरी-सी वनी नीला को दो बालिश्त घूँघट काढ़े वेदी के नीचे खारे पर बैठा दिया गया तो सामने बरामदे मे बैठी हुई स्त्रियों ने गीत छेड़ दिया।

ओह दिन याद कर कान्हा ...

कान्हा ! और चेतन के ध्यान मे फिर सुहाग के वे बोल गूँज उठे। 'कैसा कान्हा वर ढूँढा है नीला के लिए !' उसने मन-ही-मन कहा और एक व्यंग्यमयी मुस्कान उसके होटो पर फैल गयी। कौन लड़की है जो चाँद-सा वर नही चाहती ! किन्तु चाँद-सा वर क्या सभी को सुलभ है ! उनकी बात तो दूर रही जो स्वयं कुरूपा होने पर भी चाँद-सा वर चाहती है, पर उन युवतियो मे से भी कितनो को ऐसा वर मिलता है, जो हर प्रकार से ऐसे वर के योग्य है ? प्रतिदिन कान्त-कामिनी तरुणियाँ, अनमिल युवको, अधेड़ो अथवा विधुरो के संग बाँध दी जाती है और ये अपढ स्त्रियाँ अपने गीतो मे निरन्तर उन्हे 'कान्ह' और 'कन्हैया' बनाया करती है। क्या इनके आँखे नही ? क्या ये चुप नही रह सकती ? यदि लडकी का गला घोटना ही अभीष्ट है तो क्या वह 'सत्कार्य' मौन रूप से नही हो सकता ? क्या इन बाजो-गाजो और बेचारी लड़की के जले हुए दिल को भी जलाने वाले इन गीतो के बिना काम नही चल सकता ? चेतन ने देखा उन गाने वालियो मे उसकी सास भी थी जिसने साँझ ही को भरे हुए गले से कहा था—'और नीला तो अभी बच्ची है ?' और वह पडोसिन भी थी, जो बोली थी, 'लडकी का गला घोट दिया बहन ने, ललतो की माँ।' यन्त्र-चालित-सी वे इन घिसे-पिटे गीतो को भावना रहित, निर्लिप्त भाव से गा रही थी। उनके लिए जैसे इन गीतो का गाना विवाह की इस रस्म की पूर्ति का एक अंग मात्र था।

और चेतन को यह सब सोचते-सोचते उन समस्त रस्मो से घृणा हो उठी—उन अन्धी-बहरी रस्मो से, जो भावनाहीन चक्की की तरह मानवो के हृदय और जीवन कुचले जा रही थी। क्या कभी ऐसा समाज न

वनेगा जो इन रस्मो से आजाद हो या जहाँ ये रस्मे देखें, सुनें, अनुभव करें और समय के अनुसार (कुर्बानियाँ चाहे विना) अपना चोला वदलती रहें।

अपने मनोभावो का, उस पीड़ा का जो उसके अन्तर मे प्रति पल तीव्रतर हो रही थी, विश्लेषण करते-करते चेतन नीला की मानसिक स्थिति के सम्वन्ध मे सोचने लगा। वह क्या सोचती होगी ? ये गाने और रस्में उसके दिल पर क्या प्रभाव कर रहे होगे। उसने आँख उठा कर नीला की ओर देखा। गठरी-सी वनी वह चुपचाप वैठी विवाह-संस्कार मे योग दे रही थी। चेतन को लगा, जैसे वह मिट्टी का एक वडा-सा लौंदा वन गयी है, और उसके अन्तर की विजली सदा के लिए जम कर रह गयी है।

आँगन की दीवार से पीठ लगाये वह इसी प्रकार खौलता रहा था और विवाह की जंजीर नीला के गिर्द दृढ से दृढतर होती गयी। वह वैठा रहा था और पंडित ने अन्तिम मन्त्र पढ कर घर के वडे भाई को ववाई दी थी और स्त्रियो ने अलसाये हुए कंठो से नया गाना छेड़ दिया था।

०

रणवीर के चले जाने के वाद चेतन ने फिर सोने का प्रयास किया। लेकिन उसकी मुंदी हुई आँखो के सामने रात की घटना अपने छोटे-से-छोटे व्योरे के साथ घूमने लगी और उसके विशृंखल विचार और भी विखर उठे।

अव, जव नीला सदा के लिए उससे विछुड़ रही थी, चेतन को महसूस होता था कि वह उसे कितना चाहता है। वाह्य-संयम, समाज के प्रतिवन्धो और नैतिकता के आवरण के नीचे दवा हुआ उसका हृदय घायल पत्री की तरह छटपटा रहा था। वह गर्व, जो वह नीला के प्रेम को दवा कर, ठुकरा कर, सारी वात उसके पिता को वता कर, अनुभव किया करता था, उसे कोरी प्रवंचना दिखायी देने लगी। अपना वही कृत्य जिस पर, अपनी पत्नी के प्रति अपनी वफादारी के विचार से उसे गर्व था, उसे घोर अपराध

दिखायी देने लगा ।

०

चेतन की नीद बिलकुल उड़ गयी । उसकी आँखें भी मुँदी न रह सकी । उसने करवट बदल ली । दिन बहुत चढ आया था । प्रकाश से कमरा जगमगा रहा था । नीचे खूब चहल-पहल थी । लेकिन वह उठा नही । वही लेटा चुपचाप शून्य मे देखता रहा ।

०

यदि वह नीला के पिता को सब बात न बताता—उसकी विचार-धारा ने एक दूसरा रुख पकडा तो करता भी क्या ? क्या वह चन्दा को छोड सकता था ? क्या नीला से विवाह कर सकता था ? और वह मन-ही-मन हँसा । उस आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति मे यह कब सम्भव था । फिर यदि नीला का विवाह किसी सुन्दर, स्वस्थ, तरुण से होता तो क्या वह इतना दुख मानता । तब उसका यही कृत्य जो पाप बन-कर रह गया था, पुण्य हो जाता । बारात मे उसका परिचय एक अति सुन्दर स्वस्थ लडके के साथ हुआ था । उसका नाम था त्रिलोक और वह नीला के जेठ का लडका था । चेतन ने सोचा यदि नीला की शादी चचा से न हो कर भतीजे से होती तो कितना अच्छा होता ? लेकिन त्रिलोक शायद किसी सम्पन्न किन्तु मूर्ख, कुरूप लड़की से ब्याहा जायगा और चचा उस लड़की का पति बनेगा जो कदाचित भतीजे के लिए उपयुक्त थी । और चेतन को लगा कि उसके, नीला के, त्रिलोक के, इस जर्जर मध्य-वर्ग के समस्त स्त्री-पुरुषो के गिर्द रूढि-ग्रस्त समाज की लौह-दीवारें खडी है । क्या यह दीवारें कभी न गिरेंगी ? क्या इनकी चारदीवारी मे घुट कर मरने वाले स्वतंत्र हो कर कभी सुख की साँस न ले सकेंगे ।

बाहर गली में बाजे बजने लगे । बारात शायद खाना खाने के लिए आ रही थी । चेतन उठा । उँगलियो मे उँगलियाँ डाल कर उसने एक लम्बी अँगडाई ली । अपने उन्मन विचारो को सिर के एक झटके से दूर करने का प्रयास करते हुए वह बाहर निकल गया ।

नहा-धो कर जब वह गली के चौक में गया तो बारात खाना खा चुकी थी और खादी का कुर्ता-धोती पहने, बड़ी अदा से हाथ में कागज़ लिये हुनर साहब खड़े थे। रणवीर ने बड़े गर्व स्फीत शब्दों में उनकी कवित्व शक्ति का परिचय दिया था और वे सेहरा पढने वाले थे। चेतन ने सोचा था कि सेहरा पढा गया होगा। उसके जी में आया कि मुड़ जाय, लेकिन इस तरह आ कर चला जाना किसी को बुरा न लगे, इसलिए वह एक ओर जा कर चुपचाप खड़ा हो गया।

सेहरा पढने से पहले उन्होने एक छोटा-सा भाषण देना आवश्यक समझा। बताया कि उनका सम्बन्ध वर तथा वधू दोनों पक्षों से है। जन्म उन्होंने जालन्धर में लिया है, लेकिन जवानी के दिन उनके अमृतसर मे बीते है। इसलिए यद्यपि वे वधू-पक्ष की ओर से आये है तो भी उन्हे अधिकार होता है कि वर का सेहरा पढें। और इस तरह वर के साथ अपना नाता स्थापित करके उन्होंने सेहरा पढ़ना शुरू किया।

वही पुरानी तर्ज़ और वही पुराने विचार—सेहरे और दूल्हे की प्रशंसा मे चाँद-तारो की उपमाएँ। हर शेर के बाद चेतन सोचता—क्या इस कवि को दिखायी नही देता कि दूल्हे के मुख से एक भी उपमा मेल नही खाती। रात स्त्रियो के गीतों की सुन कर उसके हृदय मे क्रोध का जो बवन्डर उठा था, वह इस सेहरे को सुन कर फिर हरहरा उठा। तभी हुनर साहब ने उपस्थित जनो का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हुए शेर पढा :

यह तार हैं सेहरे के गर सीमीं शुआएँ तो
अपने में है आरिज़ भी दूल्हे का महे कामिल[1]

चेतन और न सुन सका। अधेड़ उम्र के इस गंजे विधुर को पूर्णिमा का चाँद कहना! चेतन को लगा कि न केवल सेहरा पढ़ने वाला ही अन्धा

---

१. सेहरे के तार यदि चाँद की किरणें हैं तो वर का मुख पूर्णमासी का चाँद है।

है, बल्कि सुनने वाले भी आँखों से वंचित हैं। उसका ध्यान सहसा रणवीर की ओर गया। विस्फारित नेत्र, सिर से पैर तक मानो कान बना वह खडा था। ऐसा लगता था जैसे हुनर साहब के मुखारविन्द से निकला हुआ प्रत्येक शब्द अमृत समान वह पी रहा है। चेतन ने चाहा जा कर दो थप्पड उस बूदम के मुँह पर जमा दे। सेहरा पढने के लिए हुनर साहब को बुला लाया है! यदि कहीं उसकी अपनी बहन इस जैसे दूल्हे से ब्याही जाती, चेतन ने सोचा, तो वह सेहरे के बदले मरसिया पढ़ता, फिर चाहे उसके पिता मार-मार कर उसकी चमडी ही क्यो न उधेड देते।

लेकिन उसने रणवीर से कुछ भी नही कहा। केवल मन-ही-मन 'गधे' का खिताब दे कर उसे दाँतो मे 'गदहा' कह कर वह चुपचाप वहाँ से खिसक आया।

०

नीला गठरी-सी बनी दालान के एक कोने मे बैठी थी। सहानुभूति का एक अथाह सागर उसके लिए चेतन के हृदय मे ठाठें मार उठा। वह उसके पास पडी हुई लोहे की कुर्सी पर जा बैठा। किन्तु नीला ने उस ओर आँख उठा कर भी नही देखा। वह बैठी रही और पाँव के अँगूठे से धरती पर बे-नाम की शक्लें बनाती रही।

चेतन नीला से कुछ कहना चाहता था। पर क्या कहे, उसे सूझ न पाया। वह चुपचाप बैठा रहा और नीला ही की तरह पाँव के अँगूठे से धरती पर बे-नाम की शक्लें बनाने लगा।

सहसा बाहर जोर-जोर से बाजे बज उठे। शायद हुनर साहब ने सेहरा खत्म कर दिया था और बारात वापस जाने को तैयार थी। तभी बाहर आँगन में चेतन को अपनी बड़ी साली के दो शब्द सुनायी दिये, 'चले आओ इधर त्रिलोक, यह रही इधर तुम्हारी चाची।'

दूसरे क्षण हँसता-लजाता त्रिलोक दालान की चौखट मे आ खड़ा हुआ। चेतन उसके लिए कुर्सी छोड कर अलग हो गया।

"नीला यह है त्रिलोक, तेरे जेठ का लड़का।"

चेतन की दृष्टि उस नवयुवक पर गयी । पंच-शर-हस्त मदन-सा सुन्दर ! फिर उसने नीला की ओर देखा—रति क्या इससे अधिक सुन्दरी होगी ?

तभी त्रिलोक ने कहा, "चाची जी नमस्ते !"

नीला ने आँख उठा कर देखा । चेतन को लगा जैसे क्षण भर के लिए नीला की दृष्टि त्रिलोक के मुख पर रुकी, उसका पीला-सा मुख लाल हो उठा और उस अँधेरे में उसकी उदास आँखों में एक अज्ञात-सी चमक कौंध गयी ।

छिहत्तर

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बाबल असाँ उड़ जाना ।
साडी लम्बी उडारी वे
खबरे किस देस जाना ?

आधी रात की निस्तब्धता में यह करुण गीत, जैसे किसी दूरस्थ प्रदेश से आ कर निरन्तर चेतन के कानों में दर्द उँडेल रहा था । उसका गला भरा आ रहा था और आँखें आर्द्र हो चली थीं ।

०

नीला की शादी हो गयी थी । चेतन अपनी पत्नी को वापस जालन्धर ले आया था । यद्यपि चन्दा इतने दिनों के बाद उससे मिली थी और यद्यपि आकाश पर बादल रिमझिमा रहे थे और ऋतु अत्यन्त सलोनी और सुहानी थी, लेकिन जब वह उसके साथ बरसाती के एकान्त में, एक ही चारपाई पर सोया तो उसके मन में ज़रा भी प्यार न जगा । उसकी बाँह पर अपना सिर रखे, उसके गदराये गर्म वक्ष से लगा वह चुपचाप छत की

ओर देखता रहा था। चन्दा ने एक दो बार बात चलाने का प्रयास भी किया, पर चेतन के संक्षिप्त उत्तरों ने उसे हतोत्साह कर दिया था। इस एक-डेढ वर्ष के साहचर्य के बावजूद चन्दा कभी प्यार मे पहल न कर पायी थी। वह कई दिनो की थकी हुई थी, इसलिए चेतन की उदासीनता ने उसके शरीर मे सोयी हुई नीद उसकी पलको मे भर दी थी और वह चेतन से शिमले के बारे मे बातें पूछते-पूछते सो गयी थी।

o

उसका इस तरह सो जाना चेतन को बुरा लगा था, लेकिन उसका ध्यान उस समय अपने अथवा अपनी पत्नी के मानापमान की ओर न था। उसके सामने तो नीला की बिदाई का दृश्य बार-बार आ रहा था और उसके कान निरन्तर सुन रहे थे—वही मधुर करुण गीत :

साडी लम्बी उडारी वे, खबरे किस देस जाना।

लम्बी उड़ान ! कितनी लम्बी ! ! कहाँ जालन्धर और कहाँ रंगून ? न जाने सदियो पहले अपने मायके और सहेलियो से दूर, अपनी ससुराल मे बैठी किस दुखिनी की भावनाएँ इस करुण गीत मे फूट पडी थी। सदियाँ बीत गयी, पर उस दुखिनी की परवशता उसी प्रकार बनी हुई है।

चेतन सोचता था इस गीत को सुन कर नीला के हृदय पर क्या बीत रही होगी ? कितना पूरा उतरता था उसकी स्थिति पर यह गीत

साडी लम्बी उडारी वे....

o

बाहर वर्षा थम गयी थी। चेतन उठ कर छत पर चला आया। बादल छँट कर नीलाम्बर पर बहे जा रहे थे। हल्की-हल्की समीर चल रही थी। दूर सामने के मकान की ओट मे छिपा हुआ पंचमी का चाँद अपनी मन्द ज्योत्स्ना से काली छत को बादलो की बराबरी करने से से रोक रहा था। चेतन के देखते-देखते रजत-वक्र सीग की नोक-सी छत के ऊपर बादल से बाहर निकलने लगी। आकाश मे कई जगह फटे हुए मेघो में नीलिमा चमक उठी, नीचे के अंधकार में सोये-खोये-से मकानो

की रेखाएँ उभर आयी । धीरे-धीरे वह वक्र-सीग बाहर निकल आया, कुछ क्षण तक बहते हुए बादलो पर तैरता रहा; फिर शायद कोई भयानक काला बादल चढ़ दौड़ा और वह रजत सीग जैसे एक ओर से निकला था, वैसे ही दूसरी ओर से बढती हुई उस कालिमा मे डूब गया । मकान की छत फिर बादलो की बराबरी करने लगी । मकानों की रेखाएँ फिर तिमिर के उस बढते सागर मे डूब गयी ।

चेतन कुछ क्षण छत पर चक्कर लगाता रहा, फिर सीमेट की ठंडी, गीली शहनशील पर बैठ गया । बायी ओर मकानो की छतो के ऊपर दिखायी देता हुआ 'बरने पीर' का नीम एक बड़ा-सा धब्बा बन कर रह गया था । चेतन निर्मिमेष उस धब्बे की ओर देखता रहा, फिर उसी धब्बे पर नीला के विवाह की समस्त घटनाएँ अपने छोटे-से-छोटे ब्योरे के साथ चित्रित हो उठी ।

०

त्रिलोक के प्रति नीला की आँखों में जो चमक पैदा हुई थी, उसने चेतन के मन में अज्ञात रूप से कही एक छोटा-सा ईर्ष्या का अंकुर उत्पन्न कर दिया था और रात होते-होते अंकुर एक पेड़ का आकार धारण कर गया था ।

दिन भर चेतन उखड़ा-उखड़ा-सा घूमता रहा था। अपने सहपाठी मित्रो को उसने उनके घरो से जा खोद निकाला था और उनकी संगति मे किसी-न-किसी तरह वक्त का गला घोंट कर वह संध्या को अपने चौबारे मे जा लेटा था । जब बारात खाना खाने आयी थी तो वह अस्वस्थता का बहाना करके वही लेटा रहा था ।

किन्तु जब बारात जाने लगी थी और बाजे बजने लगे तो उसके लिए वहाँ लेटे रहना कठिन हो गया था । उठ कर वह आँगन की मुंडेर पर जा बैठा और जब नीचे आँगन मे उसने त्रिलोक की आवाज़ सुनी तो उसका दिल धक-धक करने लगा !

नीचे चची और जठीए (जेठ के लड़के) में क्या बातें हुई, यह चेतन

न जान सका, लेकिन जब त्रिलोक चला गया तो वह सब जानने के लिए वह आतुर हो उठा । अपनी छोटी साली शीला को अपने 'जीजा जी' के लिए पानी का गिलास लाने का आदेश दे कर वह फिर अन्दर चारपाई पर जा लेटा था । जब शीला गिलास ले आयी तो उसने एक घूंट भर कर गिलास को सिरहाने के ताक मे रख दिया और अपनी उस नन्ही मुन्नी साली को गोद मे ले कर पूछा : "नीचे कौन आया था शीलो !"

और भोली-भाली शीला ने अपने जीजा जी की प्यार भरी गोद मे बैठे-बैठे सब कुछ बता दिया था कि, 'और कौन आता, त्रिलोक आया था। नीला बहन से मज़ाक करता रहा । बेचारी नीला लजा-लजा कर रह गयी लेकिन उसे शर्म न आयी ।'

और अपने जीजा जी के गले मे बाहे डाल कर उसने कहा, "आप तो बड़े 'बीबे'[1] है जीजा जी, पर त्रिलोक बड़ा 'गोला'[2] है ।"

"क्या मज़ाक किये त्रिलोक ने तुम्हारी बहन से, शीलो ?"

पर शीलो बेचारी इस बारे मे अपने जीजा जी को कुछ न बता सकी । चेतन ने अन्दर-ही-अन्दर त्रिलोक की इस आदत पर जल कर अपनी साली को गोद से उतार दिया और अनमना-सा लेट गया ।

त्रिलोक के प्रति यह जलन कैसी ? निमिष भर के लिए चेतन के मन मे ध्यान आया था कि उसे नीला के पति के प्रति क्यो ईर्ष्या न हुई जिसने नीला का सब कुछ हथिया लिया था, उसके इस भोले-भाले तरुण भतीजे के प्रति क्यो हुई ?

लेकिन इस प्रश्न पर विचार करके उसका ठीक उत्तर ढूंढ सके, ऐसी स्थिति चेतन के मन की न थी ! नीला का पति कुरूप था और चेतन के हृदय मे यह सत्य अज्ञात रूप से छिपा हुआ था कि नीला अपने तन को भले ही अपने पति के चरणो पर रख दे, उसका मन उसे कभी न मिलेगा। वह मन उसके जीजा जी का ही रहेगा, चेतन को इस बात का विश्वास था । और उन मिलिट्री-एकाउंटेंट के प्रति ईर्ष्या के बदले एक दया का भाव

१. बीबा=अच्छा । २. गोला=बुरा ।

उसके मन मे वर्तमान था ।

और यह त्रिलोक, इसने उस विश्वास को डिगा दिया था, और नीला के तन और मन दोनों से वंचित हो जाना कदाचित चेतन को प्रिय न था। वह बेचैनी से निरन्तर करवटें बदलता रहा था ।

रात को चन्दा उसे स्वयं खाना खिलाने आयी थी और उसने चेतन को बताया कि सुबह ही नीला विदा हो जायगी । वर को शीघ्र ही अपनी नौकरी पर जाना है, इसलिए तीन से अधिक 'रोटियाँ'[1] वे लोग नही चाहते, सुबह नाश्ते के बाद ही वे नीला को विदा कराके ले जायेंगे । चन्दा ने उससे यह भी प्रार्थना की थी कि यदि उसकी तबीयत ज्यादा खराब न हो तो नीला की विदाई के समय चेतन को अवश्य नीचे जाना चाहिए । गौना साथ ही दिया जा रहा था, इसलिए चन्दा ने उसे बताया था कि पहले नीला सुबह ही विदा हो कर बारात के अड्डे (धर्मशाला) मे जायगी । फिर जब बारात नाश्ते को आयेगी तो साथ ही उसे भी लेती आयेगी और दस बजते-बजते दूसरी और अन्तिम विदाई हो जायेगी । चन्दा ने पाँच रुपये भी उसके सिरहाने रख दिये थे कि विदाई के समय वह नीला के हाथ मे रख दे ।

चेतन ने कुछ उत्तर न दिया था । रुपये चेतन ने तकिये के नीचे रख लिये थे और चुपचाप लेटा रहा था । तब चन्दा ने पूछा था : "क्या आपकी तबीयत कुछ ज्यादा खराब है ?"

"नही नही, कोई ऐसी बात नही, मै दे दूँगा शगुन के रुपये !" और चन्दा आश्वस्त हो कर नीचे चली गयी थी ।

०

लेकिन चेतन की तबीयत वास्तव मे खराब थी । तन से न सही, मन से वह अस्वस्थ था । वही लेटे-लेटे एक बार फिर उसके सामने इलावलपुर की वह घटना घूम गयी । किस तरह उसकी बीमारी की खबर सुनते ही नीला उसकी सेवा-सुश्रूषा मे आ जुटी थी, उन चार-छः दिनो मे वह

१. दावतें ।

कितना उसके समीप आ गयी थी । लेकिन अब....? वह कितना भी बीमार क्यों न हो जाय, वह न आयेगी । चेतन का जी चाहा, वह सचमुच बीमार पड जाय, मरणासन्न हो जाय । वह मर रहा है, यह सुन कर तो वह एक बार जरूर आयेगी । मर कर वह अपने उस पाप का प्रायश्चित्त कर देगा जो उसने अनजाने ही नीला का जीवन नष्ट करने मे किया था । तब उसकी विकृत-अस्वस्थ-कल्पना के सामने उसकी अपनी मृत्यु का दृश्य भी घूम गया—वह मर रहा है, चन्दा उसके सिर को गोद मे लिये बैठी है । उसकी सास, उसकी माँ, उसके भाई सब आँखो मे आँसू भरे उसके आस-पास बैठे है । बाहर बाजे बज रहे है । नीला को जाना है । वह रुक नही सकती । उसके मिलिट्री-एकाउंटेंट पति मिलिट्री के नियन्त्रण से बँधे है । उन्हे रगून पहुँचना है । उनकी नव-परिणीता पत्नी के 'जीजा जी' की बीमारी या मौत कुछ भी उन्हे नही रोक सकता । जाने से पहले नीला क्षण भर के लिए आती है । अपने जीजा जी को मरणासन्न देख कर दो आँसू आप-से-आप उसके गालो पर ढुलक आते है । फिर वह चुपचाप उसके चरणो को छू कर, मुँह फेर कर, भाग जाती है ।

नीचे आँगन में किसी ने उसकी पत्नी का नाम ले कर पुकारा था । चेतन की कल्पना का तार झन से टूट गया था । अपनी इस मूर्खता पर वह जोर से हँस पड़ा था ।

लेकिन उसकी हँसी ज्यादा देर उसके होंटो पर नही रही । उसकी आँखो के सामने से अचानक एक पर्दा उठ गया था । अपना वास्तविक नग्न रूप उसके सामने आ गया । वह नीला को चाहता है, इस डेढ वर्ष के वैवाहिक जीवन के बावजूद चाहता है । उसकी उदास मुस्कान, उसकी उन्मन दृष्टि, उसके पीले मुख, उसके शरीर के एक-एक अंग को उसी शिद्दत से चाहता है, जिस शिद्दत से उसने उसे उस दिन चाहा था जब वह अपनी भावी पत्नी को देखने बस्ती गर्जां आया था और उसने नीला की चंचल मूर्ति देखी थी । उसकी चाहना और उसकी शिद्दत मे जरा भी तो कमी नही आयी थी । बुद्धि, धर्म, नैतिकता, समाज, विवाह यह सब

दीवारें, जो यथार्थ मे उसकी चाहना को घेरे थी, कल्पना में गिर गयी थी और उसके प्रेम की लौ, जिसे फ़ानूस की बिल्लौरी दीवार ने धुंधला कर रखा था, उसके टूट जाने पर स्पष्ट ही चमक उठी थी। चेतन ने बेचैनी से करवट बदली।

और उसकी रात करवटें बदलते गुज़र गयी थी। दूर किसी मुर्ग़ ने प्रातः की अज़ान दी जब उसका मस्तिष्क थक कर सो गया था।

०

सुबह जब वह जगा था तो बारात नाश्ता खा कर जा चुकी थी। नीला की पहली बिदायगी हो चुकी थी और वह दूसरी और अन्तिम बार जाने को तैयार थी।

"जीजा जी उठिए, जीजा जी उठिए!" शीला के निरन्तर झकझोरने से वह उठा था और यद्यपि उसने, 'चलो मैं आता हूँ शीलो' कह कर फिर लेटने का प्रयास किया था किन्तु शीला ने उसे सोने न दिया था, "चन्दा बहन ने आपको बुलाया है," उसने उसे फिर झकझोरा था, "नीला जा रही है!"

वह उठ कर बैठ गया था और शीला नीचे भाग गयी थी। लेकिन चेतन नीचे न गया था। मन में उसने निश्चय कर लिया था कि जब नीला लम्बा-सा घूंघट निकाले अपने बड़े भाई या चाचा की गोदी मे बैठ, अपने वर के पीछे-पीछे जा कर ताँगे मे बैठ जायगी तो वह बिना उससे आँखें मिलाये उसके हाथ मे पाँच रुपये की भेंट दे आयगा।

न जाने क्यो, न जाने कहाँ से, एक अज्ञात क्रोध उनके मन मे आ कर बैठ गया था। वह सोचता भी था वह किससे रूठा हुआ है? नीला से! उससे रूठने का उसे क्या अधिकार है? इसका उत्तर उसे न मिला था। लेकिन उत्तर न पा कर उसके मन का क्रोध कम न हुआ था और न वह वहाँ से हिला ही था।

अभी शीला को गये चंद ही मिनट हुए होगे कि चन्दा भागी-भागी ऊपर आयी, "चलिए भी! आप अभी तक यहीं बैठे हैं।"

"तुम घबराओ नही", चेतन ने अपनी पत्नी को आश्वासन देते हुए कहा था, "मै जा कर नीला का शगुन दे आऊँगा । अभी मेरे सिर मे चक्कर आ रहे है।"

"आपकी तबीयत खराब है तो आराम कीजिए," चन्दा घबरा गयी थी, "क्या करूँ इतना काम है नीचे कि आपके पास बैठ नही पायी । नीला की बिदायगी हो जाय तो आपके सिर मे तेल मल दूँगी । लाइए रुपये दे दीजिए, आपकी ओर से मै ही शगुन दे दूँगी ।"

लेकिन चेतन को यह स्वीकार न था। नीला से चाहे उसका साक्षात्कार न हो, लेकिन वह उसकी अन्तिम झलक अवश्य पा लेना चाहता था। चन्दा को तसल्ली देते हुए बोला, "नही, नही कोई ऐसी बात नही, तुम चलो मै आता हूँ।"

और चन्दा के जाने के बाद वह इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि कब बाजे बजने लगें, कब नीचे स्त्रियाँ नीला को ले कर गाती हुई चलें तो वह भी नीचे उतर कर उनके पीछे-पीछे हो ले ।

तभी बाजे बजने लगे और स्त्रियों ने गीले, भारी स्वर में गाना शुरू किया :

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बावल असाँ उड़ जाना
साडी लम्बी उडारी वे
ख़बरे किस देस जाना ?

चेतन के जी को कुछ होने-सा लगा था। उसे अपने-आप पर क्रोध हो आया था। क्यो उसने चन्दा को रुपये न दे दिये। उसका जी कही भी जाने को न चाहता था। वह तो चाहता था, वही लेटा रहे और इतने दिन से मन मे एकत्र होने वाली घटनाओ को आँखो के रास्ते बहा दे ।

क्षण भर को वह फिर लेट गया। जब बाजे दूर चले जायँगे तब वह उठेगा, उसने मन-ही-मन सोचा और करवट बदली। लेकिन तभी सीढ़ियो में उसे गहनो-कपड़ो मे लदी नीला छम-छम करती हुई आती

दिखायी दी ।

चेतन उठ कर बैठ गया । उसका दिल धक-धक करने लगा ।

नोला चौखट मे आ कर खडी हो गयी । दोनो हाथ बांध कर मस्तक तक ले जाते हुए उसने लगभग आर्द्र स्वर मे कहा, "जीजा जी नमस्ते, मेरी भूल-चूक क्षमा कर दीजिएगा ।"

वह तेजी से मुडने को थी कि चेतन ने उठ कर उसका हाथ थाम लिया । उसके क्रोध, ईर्ष्या, दर्द की चट्टानें जैसे नीला के एक ही वाक्य से पानी-पानी हो कर बह चली ।

"नीला मुझे माफ कर दो, मैंने सचमुच तुम्हारा बड़ा अपराध किया है ।" और वह उसके चरणो में झुक गया !

"जीजा जी आप क्या करते है !" नीला ने उसे कन्धों से थामा, और फिर पीठ मोड कर वह सिसकी को दबाती हुई नीचे को भाग गयी ।

०

बादलो की नयी तहे आकाश पर छा गयी थी । पंचमी के चाँद की ज्योत्स्ना गहरे अंधकार मे जा छिपी थी । मकान, उनकी छतें, बरसातियाँ और वरने पीर का नोम सब अधकार का अंग बन गये थे । एक दो बूंदें चेतन की नाक पर गिरी । उसके विचारों का क्रम टूट गया । गीली शहनशीन पर बैठे-बैठे उसकी कमर दुखने लगी । वह उठा और अन्दर बरसाती मे चला गया ।

चन्दा गहरो नीद सो रही थी । चेतन चुपचाप उसके साथ जा लेटा । यौन-सम्बन्ध पर कविराज का उपदेश उसके कानो मे गूंज उठा । उसे अपना प्रण भी याद आया और वह मन-ही-मन हँस दिया । कहाँ है उसका वह प्रण, उसकी वह वासना, उसकी नसों मे तरल आग का उबाल । उसकी पत्नी उसके पास लेटी है, उसका गर्म गदराया शरीर उसके शरीर के साथ सटा हुआ है, लेकिन पास-पास लेटे हुए भी उसे लगता है जैसे वे एक दूसरे से कोसो दूर हैं; जैसे एक अभेद्य, अदृश्य दीवार उन दोनो के बीच खड़ी है ।

वही लेटे-लेटे अंधकारमय-शून्य मे उनीदी आँखों से तकते-तकते चेतन को लगा कि यह दीवार उसके और उसकी पत्नी के मध्य ही नही, नीला और त्रिलोक के मध्य भी है, और जब उसने और भी सोचा तो जाना कि नीला और त्रिलोक के मध्य ही नही, बल्कि इस परतन्त्र देश के सभी स्त्री-पुरुषो, तरुण-तरुणियो, वर्गों और जातियो के मध्य ऐसी ही अगनित दीवारे खडी है—कविराज में और उसमे, उसमें और जयदेव में, जयदेव में और यादराम मे—इन दीवारो का कोई अन्त नही। उस तिमिराच्छन्न निस्तब्धता में चेतन ने अगनित प्राणियो की मूक सिसकियाँ सुनी जो इन दीवारो मे बन्द थे और निकलने की राह न पा रहे थे। इन दीवारो की नीव कहाँ है ? ये कब गिरेंगी, कैसे गिरेंगी ? बार-बार सोचने पर भी चेतन को कुछ मालूम न हो सका। उद्विग्न-व्यथित वह उठ कर घूमने लगा।

०

बाहर जोर-जोर से वर्षा होने लगी और आँगन के जँगले पर पडी हुई टीन की चादरें वर्षा के निरन्तर थपेड़ो से क्रन्दन कर उठी।